राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक

जे. के. बंसल R.A.S.

(निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

संशोधित मूल्य रु........
राज्यादेश: [illegible]
दिनांक [illegible] के अनुसार
प्रभारी अधिकारी
रा० प्रा० वि० प्र० भरतपुर

ग्रन्थांक 194

राजस्थान के ऐतिहासिक भाषा काव्य

सम्पादक

ओ३म्प्रकाश शर्मा

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1999

प्रथमावृत्ति—500

मूल्य : रु. 120.00

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक
जे. के. बंसल R.A.S.
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थांक 194

राजस्थान के ऐतिहासिक भाषा काव्य

सम्पादक
ओ३म्प्रकाश शर्मा

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1999

मूल्य - 120.00

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक
जे. के. बंसल R.A.S.
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थांक 194

राजस्थान के ऐतिहासिक भाषा काव्य

सम्पादक
ओ३म्प्रकाश शर्मा

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1999

मूल्य - 120.00

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानप्रदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाड्मयप्रकाशिनी विशिष्टग्रन्थावली

सम्पादन मण्डल

ओ. पी. शर्मा

डॉ. गोविन्दराम चरौरा **डॉ. वसुमती शर्मा**

ग्रन्थाङ्क 194

राजस्थान के ऐतिहासिक भाषा काव्य

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

© प्रकाशक

प्रथमावृति—500 मूल्य - 120.00

निदेशकीय

पिंगल-डिंगल भाषा निबद्ध राजस्थानी साहित्य के ऐतिहासिक काव्यों की खोज को दृष्टिगत रखते हुए सन् 1996 में राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के मुख्यालय में एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। उक्त संगोष्ठी में पठित 43 आलेखों में मारवाड़, मेवाड़, ढूंढाड़, मेवात, बागड़, शेखावाटी एवं राजस्थान के अन्य सुदूर क्षेत्रों के भी काव्यों पर प्रकाश डाला गया है जो हमारी समृद्ध साहित्य परम्परा के द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त मेवात प्रदेश में मौखिक रूप में उपलब्ध लोक काव्यों पर भी प्रथम बार प्रकाश डालते हुए कई अनुद्घाटित तथ्यों की ओर संकेत किया गया है।

वस्तुतः राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के जो अद्यावधि इतिहास उपलब्ध हैं उनमें महज मारवाड़ और मेवाड़ क्षेत्र की ही चारणीय कृतियों का प्रचुरता से संकलन है, अन्य क्षेत्रों की रचनाओं की उपेक्षा रही है। यह प्रसन्नता की बात है कि प्रथम बार अलवर, भरतपुर, बागड़, शेखावाटी आदि क्षेत्रों में प्राप्त काव्यों के अलावा मेवात में मौखिक परम्परा में प्राप्त काव्यों पर भी प्रकाश डाला गया है जो एक स्तुत्य कार्य है। मुझे आशा है कि विद्वज्जन एवं शोधार्थी इसी मार्ग के पथिक बनकर अधिकाधिक अनुसन्धेय तथ्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास करेंगे तभी तो तमस् का संहरण होकर ज्योतिर्मय मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

जे. के. बंसल
निदेशक

अनुक्रमणिका

1	राजस्थान के ऐतिहासिक चरित्र काव्यों का ब्यौरा	रतुदान रोहड़िया	1-6
2	मरुमण्डल का परमार इतिहास व उसकी समस्याएं	गोविन्दलाल श्रीमाली	7-12
3	'वीठू सूजा कृत छंद राउ जैतसी रौ' के ऐतिहासिक सन्दर्भों पर विचार	डा. सोहनकृष्ण पुरोहित	13-21
4	छंद राउ-जइतसी रो-वीठू सूजा कृत	दीनदयाल ओझा	22-25
5	कान्हड़दे प्रबन्ध में सैनिक पराजय के समाधान का मूल्यांकन	डा. महावीरसिंह गहलोत	26-29
6	किसना आढा कृत महाराजा गजसिंघजी रो छंद	डा. शिवदत्तदान बारहठ	30-36
7	गजगुणरूपग में वर्णित ऐतिहासिक घटनाक्रम	डा. वसुमती शर्मा	37-42
8	'जसवन्त उद्योत' एक आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक विश्लेषण	डा. भंवर भादानी	43-50
9	कवि कुम्भकर्ण कृत रतनरासो और उसका ऐतिहासिक महत्व	डा. मनोहरसिंह राणावत	51-57
10	कवि काशी छंगाणी कृत छत्रपतारासो	डा. विक्रमसिंह राठोड़	58-62
11	राठोड़ रतनसिंह री वेलि इतिहास का स्रोत	रामदत्त थानवी	63-65
12	राजरूपक की ऐतिहासिकता	डा. सद्दीक मोहम्मद	66-73

13	सूरजप्रकाश और राजरूपक का ऐतिहासिक तुलनात्मक विवेचन	डा. राजकृष्ण दुगड़	74-78
14	डिंगल का ऐतिहासिक काव्य 'सूरजप्रकाश'	डा. प्रतापसिंह राठौड़	79-85
15	मानजसोमण्डण	डा. के. एस. सक्सेना	86-88
16	1857 के विप्लव में ठा. खुशाल-सिंह चांपावत की भूमिका	डा. रामसिंह सोलंकी	89-101
17	बलवद्विलास : एक अध्ययन	डा. उषाकँवर राठौड़	102-111
18	उदावत रूपसिंघ री झमाल; एक अनुशीलन	भवानीसिंह पातावत	112-115
19	सोढा जाति का संक्षिप्त इतिहास	रतनलाल कामड़	116-120
20	सुजान-चरित्र	डा. ओंकारनारायणसिंह	121-130
21	लछिमनगढ़ रासो में ऐतिहासिक तथ्य	डा. जगदीशप्रसाद गुप्त	131-135
22	प्रतापरासो : इतिहास एवं संस्कृति	डा. जीवनसिंह	136-147
23	विनयसिंह विजय संग्राम वर्णन	मोतीलाल बैरवा	148-155
24	शंकरराव कृत भीमविलास की ऐतिहासिकता	डा. महावीरप्रसाद शर्मा	156-167
25	मेवाती काव्य में राजनैतिक इतिहास	अनिल जोशी	168-174
26	हमीरायण काव्य का राजनैतिक दृष्टि से विवेचन	डा. देवकुमार	175-182
27	घेला खिड़िया कृत वियाखरी दूदा हाडा री	डा. अम्बादान रोहड़िया	183-189

28	डिंगल का ऐतिहासिक काव्य जवानरासो	डा राघवेन्द्रसिंह मनोहर	190-195
29	जयपुर के कच्छवाह शासकों का इतिहास	डा. गिरिजाशंकर शर्मा	196-199
30	केसरीसिंह समर का ऐतिहासिक विवेचन	मनोहरसिंह राठौड़	200-204
31	क्यामखांरासो की ऐतिहासिकता	डा. रतनलाल मिश्र	205-213
32	क्यामखां रासो: इतिहास, शासन एवं सांस्कृतिक चिन्तन का दस्तावेज	डा. बी. एल. माली	214-226
33	हल्दी घाटी युद्ध के सन्दर्भ में मानचरित्र रासो	श्रीमती मधुकांता शर्मा	227-232
34	कुंवरजी श्री संग्रामसिंहजी शक्तावत री दवावैत	मोहब्बतसिंह राठौड़	233-236
35	सगतरासो का ऐतिहासिक महत्व	डा. हुकमसिंह भाटी	237-244
36	राजविलास का ऐतिहासिक महत्व	डा. गिरीशनाथ माथुर	245-249
37	राजप्रकाश का ऐतिहासिक महत्व	डा. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया	250-252
38	जगविलास का ऐतिहासिक महत्व	डा. राजेन्द्रनाथ पुरोहित	253-255
39	महावजसप्रकाश का आलोचनात्मक अध्ययन	डा. जे. के. ओझा	256-264
40	सज्जनयशवर्णन	डा. द्वारकालाल माथुर	265-267
41	किसनावतवंशप्रकाश की ऐतिहासिकता	श्रीमती कमला अग्रवाल	268-273

42	उदयप्रकाश की ऐतिहासिकता	प्रो. मथुराप्रसाद अग्रवाल	274-282
43	हरिपिंगल प्रबन्ध में इतिहास	डा. भगवतीलाल शर्मा	283-288
44	कवि नरसिंह मेव कृत हसनखां की कथा	डा. रामकिशन	289-292
45	गोरा बादल पद्मिनी चउपई : ऐतिहासिक अन्वेषण	डा. सोनाराम विश्नोई	293-303

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति और साहित्य के विकास में राजस्थान का विशिष्ट योगदान रहा है। यहां का इतिहास भारत के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा अधिक उदात्त तथा प्रखर है और यहां के समाज की यह ऐतिहासिक प्रगति निरंतर यहां के साहित्य में प्रतिफलित मिलती है। शौर्य की प्रतीक इस वीर भूमि ने राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा के लिए अपूर्व बलिदान का आदर्श प्रस्तुत किया है। कर्नल टॉड जैसे विदेशी ने भी यहां की शौर्यगाथा से चकित हो यहां की हर घाटी को 'थर्मोपोली' घोषित किया है और यहां के सामंती युग में रचित साहित्य की मूल्यवत्ता को नतशिर स्वीकार किया है। बाद में भाषाशास्त्री तैस्सीतोरी ने राजस्थान में स्थान-स्थान पर घूमकर यहां के साहित्य का संग्रह किया और पुरानी पश्चिमी राजस्थानी भाषा का वैज्ञानिक ढंग से ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया। इन दोनों विद्वानों को सर्वत:प्राक् विश्व का ध्यान इस प्रदेश के इतिहास और भाषा साहित्य की ओर आकृष्ट करने का श्रेय जाता है। बाद में तो कविराजा श्यामलदास, मुंशी देवी प्रसाद, म.म.गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पं.विश्वेश्वर नाथ रेउ, डा.मथुरा लाल शर्मा, जगदीश सिंह गहलोत, डा.दशरथ शर्मा, डा.गोपीनाथ शर्मा जैसे इतिहासविदों ने तथा पं.रामकरण आसोपा, प्रो.नरोत्तमदास स्वामी,ठाकुर रामसिंह, प्रो.सूर्यकरण पारीक, डॉ.मोतीलाल मेनारिया, डॉ.पतराम गौड़, कन्हैयालाल सहल आदि साहित्य के विद्वानों ने क्रमश: यहां के इतिहास तथा काव्य के अनेक अज्ञात पक्षों को समुद्घाटित करने का स्तुत्य कार्य किया है। इनके द्वारा किया गया अध्ययन आज भी राजस्थान के इतिहास और साहित्य को समझने में हमारा महत्त्वपूर्ण पथ-प्रदर्शक रहेगा।

विज्ञान, दर्शन तथा साहित्य अपने-अपने ढंग से मानव और उसके परिवेश, मानव की अस्मिता और मानव की संस्कृति की विकास प्रक्रिया को समझने का प्रयास करते रहे हैं। इतिहास जहां किसी देश विशेष के मानव समाज की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति का धारावाहिक अध्ययन तथ्यों के आधार पर कर वैज्ञानिक पद्धति पर उस प्रगति के कार्य-कारण संबंधों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है, वहां साहित्य और विशेषत: काव्य मानव की रागात्मक वृत्तियों का चित्रण उपस्थित कर उसकी आंतरिक संरचना का दर्पण उपस्थित करता है। वस्तुत: किसी देश-विशेष और

प्रदेश-विशेष का परिवर्तनशील इतिहास, साहित्य के परिवर्तनशील रूपाकारों में निरंतर प्रतिबिम्बित देखा जा सकता है। दोनों में मानव की अदम्य जिजीविषा के अपने-अपने ढंग से दर्शन होते हैं और इनका अनुशीलन हमें अपने आप को, अपने परिवेश को, समझने में सहायक सिद्ध होता है।

उपनिषद् का प्रसिद्ध वाक्य है 'आत्मानं विद्धि' अपने आपको जानो। दर्शन और विज्ञान दोनों इसी प्रयत्न में युगों से लगे हुए हैं। इतिहास का लक्ष्य भी आत्मपरिज्ञान है, हम इतिहास का अध्ययन इसी दृष्टि से करते हैं। इतिहास दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान कॉलिंगबुड ने अपने ग्रंथ 'द आइडिया ऑफ हिस्ट्री' में कहा है-we study history in order to attain self-knowledge.

इतिहास द्वारा हम केवल राजवंशों और वीर पुरुषों, शासन पद्धतियों, आक्रमणों, युद्धों का ही अध्ययन नहीं करना चाहते अपितु तत्तत्काल में सामान्य जनता की सामाजिक स्थिति क्या थी इसका भी लेखा जोखा प्राप्त करना चाहते हैं। आज इतिहास का अर्थ मात्र राजनीतिक इतिहास (Political history) नहीं लिया जाता, जिसका विषय केवल शासकों, बल्कि इस विधा के अंतर्गत मानव समाज के,विशेष कर सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास (Social cultural history) को समझा जाता है। काव्य मूलत: समाज विशेष की भाव संतति तथा विचारों की अभिव्यक्ति है, अत: हमें चाहिये कि यहां के ऐतिहासिक काव्यों में यहां के समाज के रीति-रिवाज, आचार-विचार आदि के गतिशील स्वरूप और विशिष्टता का कैसा चित्रण मिलता है उसकी ओर भी ध्यान दें। राजाओं और सामंतों के सन्धि-विग्रह, उनसे जुड़ी घटनाओं, युद्धों के विवरणों का भी उस समय के अन्य साहित्य, संस्कृत साहित्य,फारसी तवारीख, इस प्रदेश के ख्यात तथा वचनिका साहित्य, लोक साहित्य, लोक प्रचलित जन श्रुतियों, रोजनामचा, पट्टे परवानों, शिलालेखों आदि प्रबुद्ध सामग्री के आलोक में समीक्षात्मक अध्ययन करना आवश्यक है। यह कार्य इतिहासविदों और साहित्यिक समीक्षकों के सम्मलित प्रयास से ही संभव है।

राजस्थान का भाषा काव्य मूलत: दो भाषाओं में उपलब्ध है-हिन्दी तथा राजस्थानी। यहां का मध्ययुगीन साहित्य प्राय: ब्रजभाषा अर्थात् पिंगल और राजस्थानी की विशिष्ट काव्यात्मक शैली डिंगल में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त नाथ तथा संत कवियों की 'सधूकड़ी या राजस्थानी' मिश्रित हिन्दी की भी रचनाओं का संकेत किया जा सकता है। हमारा प्रयोजन यहां केवल पिंगल तथा डिंगल के उन काव्यों से है जो राजस्थान की विविध बोलियों के ऐतिहासिक संदर्भों से जुड़े हैं। इस कोटि का प्रबुद्ध साहित्य महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तकछंदों व गीतों के रूप में उपलब्ध है। हिन्दी तथा राजस्थानी के विकास के पूर्व भी अपभ्रंश काल में यहां ऐसी रचनाए लिखी जाती रही हैं, जोयहां के वीरों को शौर्य तथा राष्ट्रीय अस्मिता का पाठ पढ़ाती रही हैं। ऐसे फुटकर दोहे हेमचंद के यहां मिल जाते हैं:-

पूते जाय कवण गुणो अवगुणो कवण मूहेण ।
जा बपी कर भूंहडी चंपिज्जइ अवरेण ॥

इस परम्परा की ही गूंज हमें मिसण सूर्यमल के राजस्थानी दोहे में थोड़े अंतर से स्पष्ट सुनाई पड़ती है:-

इला न देणी आपणी हालरिये हुलराय ।
पूत सिखाये पालणे मरण बड़ाइ माय ॥

यहां के वीरों के नाम मात्र का ऐसा आतंक था कि शहंशाह अकबर तक दुरसाआढा के शब्दों में सुख की नींद नहीं सो पाता था । ऐसे सपूतों को जन्म देने का श्रेय राजस्थान की जामण जन्म भूमि को ही रहा है:-

माइ एड़ा पूत जण जेहा राणा प्रताप ।
अकबर सूतो ओझ के जाण सिराणै सांप ॥

राष्ट्रीय अस्मिता तथा स्वतंत्रता की रक्षा की प्रेरणा यहां के राव, भाट, ढाढी, चारण, मोतीसा कवियों की वाणी हमेशा देती रही है । हिंदी के शृंगारी रीति कवियों की तरह ये कवि संयोग तथा ऊहात्मक वियोग के वर्णन तथा नायि का भेद के रसमय व्यंजनों को परोसने में दिलचस्पी प्राय: नहीं लेते, बल्कि वीरों की शौर्य गाथा को कवित्त या छप्पय जैसे ओजस्वी छन्दों अथवा बड़ा साणोर या छोटा साणोर जैसे बरसाती नाले के वेग से बहते तीव्र लयात्मक गीतों में ऐसी अभिव्यक्ति देते हैं कि श्रोता को श्रावण बिंब की जैसी अनुभूति होती है, वह सहसा उसके भुजदण्डों में हरकत पैदा कर देती है ।

अंग्रेजी हुकूमत के जमाने में भी इस प्रदेश की मुमूर्षु राष्ट्रीय चेतना में नया प्राण फूँकने का काम यहां के बांकीदास, मिसण सूर्यमल और विशेषत: केसरी सिंह बारहठ, विजयसिंह पथिक आदि कवियों ने किया है । कहीं अभिधा और कहीं अन्योक्ति शैली में यहां का कवि अंग्रेजों द्वारा गुलाम बनाई राजस्थानी वीरभूमि की वेदना को वाणी देता रहा है । यह वही वीर भूमि है जहां के सिंह सपूतों के डर से बेचारे गेण्डे,नीलगाय यहां तक बनेले सूअर भी इस जंगल में आने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे । सूर्यमल यह देखकर बेहद दुखी थे कि यहां आकर अंग्रेज सियार धमाचौकड़ी मचाते नज़र आने लगे थे:-

जिणवण भूलन आवता गेंड गवे गिंडराज ।
तिणवण जम्बुक ताखडा ऊधम मंडे आज ॥

राजस्थानी ही नहीं हिन्दी के भी साहित्यिक इतिहास का समारंभ मूलत: इसी प्रदेश के इतिहास से जुड़ा है । आचार्य शुक्ल ने जिस प्रारंभिक साहित्यिक काल को वीरगाथा काल कहा है उस काल की अधिकांश प्रामाणिक तथा अर्द्ध प्रामाणिक रचनायें इसी धरती के कवियों की देन हैं । यहीं के चंद सारंगधर, श्रीधर और पद्मनाभ ने पृथ्वीराज, हमीर, रणमल और कान्हडदे के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को अपने काव्यों द्वारा अमर बना दिया है । आज उपलब्ध पृथ्वीराज रासो में भले ही बहुत सारा हिस्सा बाद का प्रक्षेप है पर पुरातन प्रबंध संग्रह में उद्धृत चार छप्पय छंदों, जिन्हें रासो में कवित्त कहा गया है-पुरानी राजस्थानी या परवर्ती अपभ्रंश में चंद कवि द्वारा रचित चौहान नरेश पृथ्वीराज

पर वीरगाथात्मक काव्य के अस्तित्व का ठोस प्रमाण है । सारंगधर ने तो रणथम्भोर के हमीर के शौर्य का चित्रण, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी राजस्थानी में गाथा तथा छप्पय छन्दों में कर अलाउद्दीन के रणथम्भोर के आक्रमण का संकेत किया है । युद्धभूमि में जाने को सन्नद्ध हमीर अपनी पत्नी को हंसकर तलवार सौंपने को कह रहा है ताकि म्लेच्छों के शरीरों को काट कर विजयश्री प्राप्त करके वह फिर से अपनी प्रेयसी के प्रसन्न मुख का अवलोकन कर सके ।

मुञ्चहि सुन्दरि पाअं अप्पहि हंसिउण समुहि खड्ग मे ।
कप्पिअ मेझ शरीरं पेच्छइ वत्रणाइ तुम्ह धुण हम्मीरी ॥

इन काव्यों का अध्ययन करते समय इतिहास तथा ऐतिहासिक काव्य में शैली भेद को हमें स्पष्ट ध्यान में रखना होगा । इतिहास तथ्यों का सटीक विवरण तथा उनके कार्यकारण संबंधों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जहां पात्रों के मनोभावों के सूक्ष्म चित्रण और कलात्मक अभिव्यंजना के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । कवि तथ्यों की अपेक्षा काव्य में, अरस्तू के शब्दों में 'सम्भाव्य सत्य'(Possible truth) का चित्रण करता है साथ ही उसके शिल्प में भी अतिशयोक्ति तथा लाक्षणिकता का समावेश होता है । प्रसिद्ध भारतीय काव्यशास्त्री आनंदवर्धन के शब्दों में मात्र ऐतिहासिक इतिवृत का वर्णन कर देने से कोई कवि नहीं हो जाता-'इतिवृत्तमात्रनिर्वहिणैव कवेरात्मपदलाभ: संभवति' ।

अत: जब भी हम राजस्थान के ऐतिहासिक काव्यों में संकेतित यहां के इतिहास को ढूँढ़ें तो हमें काव्य के झीने रुपहले परदे में छिपे ऐतिहासिक तथ्यों का ही विश्लेषण करना है, कवि के द्वारा चित्रित संभाव्य सत्य को पूरी तरह ऐतिहासिक तथ्य नहीं मान लेना है । हम दो उदाहरण ले लें । पृथ्वीराजरासो में:संयोगिता पद्मावती और शशिव्रता को प्राप्त करने के लिए युद्धों का वर्णन है । पद्मावती और शशिव्रता के हरण तथा उनसे सम्बद्ध युद्धों की ऐतिहासिकता विवादग्रस्त है । काव्य में शशिव्रता को तो स्वर्ण की किसी शापभ्रष्ट अप्सरा का पृथ्वी पर अवतरण माना गया है । यह कविनिबद्ध प्रौढोक्ति है । पृथ्वीराज तराइन के द्वितीय युद्ध में खेत रहे या मुहम्मद गौरी द्वारा बंदी बना कर गजनी ले जाये गये जहां चंदवरदाई उसे छुड़ाने गये, यह ऐतिहासिक तथ्य भी अभी पूरी तरह निर्धारित नहीं हो पाया है । क्योंकि संस्कृत कवि जयानक के पृथ्वीराजविजय में बाद की घटनायें नहीं मिलतीं और मुस्लिम तवारीख नवीसों के तजकिरे भी पूरे प्रामाणिक नहीं लगते ।

जालौर के सोनगरा नरेश कान्हडदे पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण का कान्हडदे प्रबंध में इस ऐतिहासिक घटना के कोई सवा सौ, डेढ़ सौ साल बाद कवि पद्मनाभ ने मरते समय कान्हडदे तथा उनके पुत्र वीरमदेव की अपूर्व वीरता का वर्णन किया है, पर इस काव्य में वीरमदेव के प्रति खिलजी शाहजादी फिरोजा के आसक्त होने तथा पिछले ६ जन्मों में भी वीरमदेव तथा फिरोजा की प्रणय गाथाओं के फिरोजा के मुंह से कहलवाने में कहां तक ऐतिहासिकता है । अमीरखुसरो जैसे फारसी तवारीखकार इसका कोई संकेत नहीं करते कि खिलजी शहजादी वीरमदे के प्रति आसक्त थी और खिलजी बादशाह ने वीरमदे से मुस्लिम युवती के साथ प्रणय सूत्र में आबद्ध होने को कहा

था। हमें बड़ी सावधानी के साथ इन ऐतिहासिक काव्यों की परख करते समय ऐतिहासिक और काव्यगत कथानक रूढियों को अलग कर वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास के संदर्भों का अन्वेषण करना होगा।

यहां के राव तथा चारण कवियों ने विशेष शैली के ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन कर हिन्दी तथा राजस्थानी के इतिहास में रासो काव्यों की परम्परा का सूत्रपात किया। पृथ्वीराजरासो, खुमाणरासो, राणारासो, रतनरासो, कायमखांरासो जैसी कृतियां इसका प्रमाण है। जिनमें चौहानों और राठौड़ों और गहलोतों के धारावाहिक इतिहास का वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त वचनिका साहित्य जैसे शिवदास की अचलदासखींचीरी वचनिका तथा वेलि साहित्य जैसे कल्याणदास की रावरतनरी वेलि का संकेत किया जा सकता है। डा.भानावत ने अपने शोध द्वारा नौ ऐतिहासिक बेलियों का संकेत किया है। अचलदासखीची री वचनिका में मालवा (माण्डू) के सुलतान के साथ गागरोण के खीची चौहान अचलदास के युद्ध और अपूर्व वीरता का वर्णन मिलता है। अन्योक्ति के माध्यम से वीर को सिंह की उपमा देता हुआ कहता है, स्वतंत्रता प्रेमी शेर वन में अकेला ही रहता है। हाथी बंधन में बंध कर लाख में मिलता है। पर शेर कौड़ी में भी नहीं। अगर शेर बंधन में बंध जाये तो उसका मूल्य दस लाख हो जाय।

एक्कइ वन्न बसंतडी एवड़ अंतर काय।
सिंघ कबड्डी न लडे गयवर लाख बिकाय॥
गयवर गले गलगथ्थियो, जहं खचे तहां जाय।
सिंघ गलव्यणै सहे तो दसलाख बिकाय॥

राव रतन री बेल में हाडा राजकुमार रतनसिंह जो राव सुरजन के पौत्र थे, की अपूर्व वीरता का वर्णन है। चुनार किले को हस्तगत करने आये इहाहबाद के सूबेदार शरीफ खाँ के साथ युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध का वर्णन सूर्यमल के वंशभास्कर में तथा मेरे द्वारा सम्पादित संस्कृत काव्य शत्रु शल्यचरित्र में मिलता है। इस लड़ाई का बड़ा सुन्दर किंतु अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन अप्रकाशित वेल में मिलता है, युद्ध का वर्णन वर्षा के रूपक द्वारा किया गया है।

सलिल संग्राम सुतट दोउ सेना,
गति जल सहि लंहर गज गाह।
करपे मीन चीहूर में काझी
बहे धार अद्‌भुत मेवाह॥

प्रबंध काव्यों के अतिरिक्त चारण गीतों में भी ऐतिहासिक संदर्भ मिलते हैं। डा.परिहार ने मध्यकालीन चारण साहित्य में छ:दर्जन चारण कवियों की रचनाओं और गीतों का अध्ययन कर उनमें प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों का संकेत किया है।

यहां के कवि मात्र लेखनी के धनी नहीं थे, बल्कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता की रक्षा के लिए रणांगण में भी तलवार का जौहर दिखाकर शत्रुओं के दांत खट्टे करने में समर्थ थे। इतना ही नहीं यहां

के अनेक संस्कृत पंडित और कवि भी जो राजकुलों के गुरु थे युद्ध में उतरते देखे जाते हैं और जैन मंत्री तथा सेनापति भी सैन्य संचालन करते थे। यहां की वीर रमणियाँ युद्धभूमि से कायर की तरह भाग कर आते पति की भर्त्सना करती देखी जाती हैं। धरमत के युद्ध से औरंगजेब से हारकर लौटे महाराजा जसवंतसिंह से सम्बद्ध घटना प्रसिद्ध है। यहां की वीर रमणी पति का रणभूमि में खेत रह जाना अपने सौभाग्य का प्रतीक मानती थी। हेमचंद द्वारा संगृहीत यह दोहा राजस्थानी क्षत्राणी की ही उक्ति जान पड़ती है:-

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि मरया कंतु।
लज्जिजंतु वयसिअहुं जइभगा घर एंतु॥

सूर्यमल मिश्रण की वीरांगना क्षत्राणी वीरांगण में गये पति के खेत रहने पर आत्मोत्सर्ग कर उसके साथ सहगमन करने में अपना परम सौभाग्य समझती हैं।

नायण अंजन मांड पग, काल सूणीजे जंग।
धारा दिजे जजगणी तजदीजे घणरंग॥

×× ×× ×× ××

ऊभी गोख अवेखि पेला रो दल सेर।
पडियो घण सुनियो नहीं लीधो धण नालेर॥

अपने प्रबंध काव्यों में ये कवि आश्रय दाताओं की युद्ध वीरता और दानवीरता का ही वर्णन नहीं करते बल्कि उनकी चारित्रिक दुर्बलता की भर्त्सना भी करते देखे जाते हैं। सूर्यमल जैसे कवि तो अंग्रेजों के हिमायती महाराव राजा रामसिंह का वंशभास्कर में कतई उल्लेख नहीं करते। वे अपना काव्य केवल उनके पिता विष्णुसिंह तक ही लिख कर समाप्त कर देते हैं। दिल्ली दरबार में भाग लेने जा रहे महाराजा फतहसिंह को 'चेतावनी रा चूटियां' द्वारा दरबार में शामिल होने से रोक कर मेवाड के गौरव की रक्षा करने का श्रेय केसरीसिंह बारहठ को ही जाता है।

डा. भोलाशंकर व्यास
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी

भूमिका

राजस्थान का सांस्कृतिक वैभव विश्व इतिहास में अप्रतिम है । यहां की सांस्कृतिक धरोहर हजारों वर्ष पुरानी सभ्यता के वरदान से ओतप्रोत है । आज का रूखा राजस्थान किसी समय सघन एवं हरित वृक्षावली से आच्छादित था और सरस्वती नदी के कलकल निनाद से गुंजायमान था । सूरतगढ़ के पास लाखा फूलाणी का टीबा, काली बंगा, आहड एवं पुष्करा आदि स्थानों के उत्खनन स्वरूप उद्भूत सभ्यताओं ने प्रमाणित किया है कि इस क्षेत्र में ईसा से हजारों वर्ष पूर्व लोग रहते थे और ये सभ्यतायें सिन्धुघाटी की सभ्यता से प्राचीन हैं ।

राजस्थान का यह प्राक्-ऐतिहासिक वैभव घग्घर की बाढ़ में बहकर समाप्त हो चुका है, मात्र उसके स्वरूप की ही कल्पना कर सकते हैं । फिर भी प्राचीनं काल के राजप्रासाद, दुर्ग, मन्दिर एवं मूर्तियाँ हमारे प्राचीन कलात्मक वैभव के साक्षात् निदर्शन हैं । आबू, चित्तौड़, नागदा, चन्द्रावती, आमेर, झालरापाटन, ओसियाँ, किराडू आदि का स्थापत्य तत्कालीन शिल्प चातुर्य के उदाहरण हैं । उदयपुर से १० किलोमीटर दूर अवस्थित १० शताब्दी की बाडोली गाँव की प्रतिमायें श्रेष्ठ स्थापत्य के नमूने हैं जिनकी प्रशंसा फर्ग्यूसन जैसे विद्वान् ने भी की है । देवालयों, दुर्गों आदि सार्वजनिक स्थलों पर हजारों लाखों की मात्रा में भित्तिचित्रों का आलेखन हुआ जिसकी उत्कृष्टता विश्व व्यापी है । संगीत के क्षेत्र में भी इस प्रदेश का गौरव अन्य प्रान्तों से कम नहीं है । मीरांबाई के राग मल्हार की गूँज तत्कालीन सौराष्ट्र तक थी । मांड राग की उत्पत्ति ही जैसलमेर से मानी जाती है । मेवाड़ के महाराणा कुम्भा (१४९०-१५२५ वि. सं.) संगीत शास्त्र के विद्वान् के साथ ग्रन्थ प्रणेता भी थे । खानदेश के पुण्डरीक विट्ठल ने जयपुर महाराजा भगवंतदास के काल में (१६३०-४६) रागमंजरी नामक रचना लिखी । बीकानेर में कई संगीत के ग्रन्थ लिखे गये जिसमें अनूप संगीतरत्नाकर प्रमुख थे । संगीत, कला एवं स्थापत्य के अलावा यहां का इतिहास कलम एवं तलवार का धनी रहा है । राजपूत वीरों ने जहां अपनी संस्कृति के संरक्षणार्थ वीरभूमि में प्राणोत्सर्ग किया वही असंख्य ललनाओं ने लीलया अग्नि में कूद कर जौहर व्रत का पालन किया । कर्नल टॉड के शब्दों में राजस्थान में कोई छोटा सा भी ऐसा राज्य नजर नहीं आता जिसमें थर्मोपोली जैसी रणभूमि न हो ।

विविध कलाओं को आश्रय देने वाली इस भूमि का साहित्यिक गौरव भी किसी से कम नहीं है । राजस्थानी साहित्य में विगत एक हजार वर्षों से लिखा जा रहा है लेकिन इस विषय में अद्यावधि बहुत कम जानकारी उपलब्ध है । अभी तक राजस्थानी भाषा एवं उसके प्रणेताओं का न्यूनमात्रा में ही इतिहास लिखा गया है जिससे प्राचीन साहित्य का आकलन नहीं हो पा रहा है । राजस्थानी भाषा के आदिकाल में छोटी मोटी प्रकीर्ण कवितायें ही दृष्टिगोचर होती है किन्तु मध्यकाल से प्रबन्ध काव्यों की एक पुख्ता परम्परा मिलती है ।

राजस्थान का प्राचीन साहित्य डिंगल एवं पिंगल दो भाषाओं में प्राप्त होता है । पिंगल का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है और डिंगल का गुर्जरी अपभ्रंश से । पिंगल - डिंगल की भिन्नता व अभिन्नता के विषय में कविराजा बांकीदास, सूर्यमल मीसण, जार्ज ग्रियर्सन, सुनीतिकुमार, चाटुर्ज्या एवं डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानों के भिन्न भिन्न विचार हैं किन्तु अकारण पिष्ट पेषण न कर इतना ही निवेदन समीचीन है कि ये दोनों भाषायें भिन्न भिन्न है । प्राचीन राजस्थानी डिंगल के नाम से तथा ब्रजभाषा का एक राजस्थानी स्वरूप पिंगल नाम से अभिहित है ।

सम्पूर्ण राजस्थानी साहित्य चार मुख्य भागों में है । १. जैन साहित्य २. चारण साहित्य ३ भक्ति साहित्य. ४. लोक साहित्य ।

जैन साहित्य को अपभ्रंश अथवा आदिकालीन राजस्थानी साहित्य भी कहते हैं । श्वेताम्बर एवं दिगम्बर कवियों द्वारा लिखित यह साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । संवत् १०४४ में निर्मित हरिषेण की धम्म परिक्खा, धनपाल की भविष्यदतकथा, १२९५ में विरचित लक्खण कवि का जिनदत्त चरित्र, नेमीनाह चरित्र, उपदेश माला टीका आदि कतिपय निदर्शन अपभ्रंश काल के हैं । हालांकि जैन साहित्य राजस्थानी साहित्य की बहुत बड़ी धरोहर है किन्तु यह साहित्य जन जन से नहीं जुड़ सका । वास्तव में यह साहित्य जैनधर्मावलम्बियों के व्रत नियमों व धार्मिक आस्थाओं तक ही सीमित रहा । संत साहित्य एवम् नाथ साहित्य के तुलसी, मीरां, सूर, दादू, कबीर आदि की रचनाओं को जो आदर मिला, यह साहित्य उससे वंचित रह गया ।

जैनेतर साहित्य के आदिकाल को जानने हेतु इतिहास में बहुत कम सामग्री उपलब्ध है । उद्योतन सूरिरचित कुवलयमाला से हमें मरुभाषा के विषय में जानकारी मिलती है । इससे इतना ही पता चलता है कि नवी शताब्दी में राजस्थानी साहित्य का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था ।यद्यपि १०वीं शताब्दी तक कोई प्रामाणिक रचना उपलब्ध नहीं है । विद्वानों की धारणा है कि तत्कालीन समाज के नायक, जोगी एवं गुर्जर वर्ग के लोग अपने साहित्य को कण्ठस्थ कर सुरक्षित रखते थे । पंवाड्या, पड़ें एवं गीतों के रूप में मौजूद इस साहित्य को रावण हत्थे (एक वाद्य यंत्र) पर बजाकर चौपाल में गाया जाता थां और तरह से यह साहित्य पीढी दर पीढी सुरक्षित बना रहा । दु:ख की बात तो यह है कि लोक साहित्य की यह परम्परा चाहे यह बगडावत काव्य अथवा पाबूजी के पवाडों के रूप में हो , आज कालकवलित हो रही है, जिसकी सुरक्षा आवश्यक है ।

हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् स्व. रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल को वीरगाथा काल कहा है और वर्षों तक उनका मत मान्य बना रहा । बाद में परीक्षणोपरान्त यह पाया गया कि वीरगाथा कालीन सभी रचनायें १६वी शताब्दी से पहले की नहीं है । पृथ्वीराजरासो, वीसलदेवरासो एवं खुम्माणरासो आदि की भारत में प्राप्त विभिन्न प्रतियों की जाँच के बाद ये सभी रचनायें उत्तर मध्यकाल की सिद्ध हुई हैं ।

आदिकालीन जैनेतर ऐतिहासिक काव्यों में रणमलछन्द नामक एक छोटा सा ग्रन्थ प्राचीनतम है । इसके प्रणेता श्रीधर ईडर के राठौड़ राजा रणमल के समकालीन थे । इसमें पाटण के सूबेदार एवं रणमल के मध्य युद्ध का वर्णन है । यह युद्ध वि. स. १४५४ में हुआ था । ग्रन्थ रचना काल १४५७ के आसपास है । कई विद्वज्जन शिवदास रचित अचलदास खीचीरी वचनिका को आदिकालीन चारणशैली का काव्य मानते हैं जिसका रचनाकाल वि. स. १४८५ है किन्तु डा. टेसीटोरी एवं डा. रामकुमार वर्मा इसे विक्रम संवत् १६१५ की रचना मानते है ।

राजस्थानी भाषा के मध्य काल (१४६०-१९००) वि. के विवेचन से पूर्व यहाँ यह प्रतिपादन करना आवश्यक है कि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान द्वारा मार्च १९९६ में जोधपुर में एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें ४०-४५ आलेखों का पठन किया गया । संगोष्ठी का शीर्षक था "राजस्थान के इतिहास विषयक भाषा काव्य" । संगोष्ठी में पठित आलेखों में अधिकांश मध्यकालीन एवं आधुनिक काल से सम्बन्धित हैं । अतः कालक्रम के साथ उन ग्रन्थों की प्रासंगिकता को भी देखना होगा ।

मध्यकाल में विदेशी आक्रान्ताओं के जहाँ आक्रमण हुये वही राजपूत राजा आपस में लड़ते रहते थे । फलस्वरूप राजनैतिक स्थितियाँ अत्यन्त अनिश्चित हो चुकी थीं । राजपूतों की फूट का लाभ उठा कर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अपनी सत्ता उत्तर भारत में कायम कर ली । फिर धीरे धीरे राज्य विस्तार के नाम पर राजपूत राजाओं पर आक्रमण करने लगे । अतः स्पष्ट है कि यह काल भयंकर संघर्ष एवं अशान्ति का युग था । राजपूतों ने अपनी धरती एवं मानमर्यादा की रक्षा हेतु जो अतुल शौर्य का परिचय दिया उसकी मिसाल विश्व इतिहास में दुर्लभ है । यही कारण है कि इस काल में आत्मबलिदानी राजपूतों के शौर्य की अनेक गाथायें लिखी गईं जो आज डिंगल साहित्य की एक बड़ी धरोहर के रूप में है ।

भारतीय साहित्य पर ऐतिहासिकता का अभाव और अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण का आरोप है । यह सत्य है कि अधिकांश काव्यों में तिथिक्रम का अभाव सा है किन्तु राजस्थानी के डिंगल काव्यों पर यह कथन लागू नहीं होता । सच तो यह है कि १६ वीं शताब्दी से प्राप्त डिंगल ग्रन्थों में ऐतिहासिक सामग्री का प्राचुर्य है । दुःख की बात यह है कि भारतीय इतिहास के प्रणेताओं में या तो पाश्चात्य विद्वान् रहे हैं या मुस्लिम इतिहासकार जो राज निष्ठा या अन्य कारणों से सत्योद्घाटन से दूर रहे । फलस्वरूप डिंगल साहित्य की अमूल्य सामग्री उपेक्षित रही जिससे इतिहास भी आधा अधूरा, एक पक्षीय व भ्रमात्मक रहा । राजस्थान के चरित्र काव्यों के ब्यौरे में लेखक रतुदान रोहड़िया ने ५५ लघुकाव्यों की सूची के माध्यम से बालाजी का पवाड़ा, राव अमरसिंह का झूलणा और

ऐतिहासिक डिंगल गीतों के माध्यम से कई अनुद्घाटित ऐतिहासिक तथ्यों की ओर संकेत किया है । कुछ उदाहरणों में महाराजा अजितसिंह का औरंगजेब के साथ युद्ध, बीकानेर के राव दूदा द्वारा मलूखान की पराजय, बीकानेर के कूपा राठौड़ द्वारा शाही फौज को हराना, चित्तौड़पति राजसिंह द्वारा औरंगजेब को हराना आदि घटनाओं का नामोल्लेख किया जा सकता है । इतिहास के पुनर्लेखन में इन ग्रन्थों की उपादेयता असंदिग्ध है ।

इब्राहिम लोदी को हराकर बाबर ने दिल्ली का तख्त हस्तगत कर लिया । फिर उसने खनवा के मैदान में संवत् १५८४ में मेवाड़पति राणा सांगा को भी हरा दिया । इस पराजय के बाद राणा सांगा की कुछ ही दिनों में मृत्यु हो गई । साम्राज्य विस्तार एवं सत्ता लोलुपता का यह क्रम बाबर के पुत्र कामरान एवं बीकानेर राव जैतसी के बीच युद्ध में वीठू सूजा द्वारा विरचित पुस्तक "छन्द राउ जैतसी रउ" में नजर आता है । वास्तव में प्रस्तुत कृति को प्रकाशन में लाने का श्रेय टेसीटोरी को है । इस युद्ध का वीठू सूजा ने विस्तार से वर्णन किया है जिसमें तत्कालीन पंजाब के हाकिम कामरान की पराजय हुई थी । सन् १५३४ में सम्पन्न इस युद्ध के बारे में मुस्लिम इतिहासकार बिल्कुल मौन है । आलेख प्रस्तुतकर्ता डा. सोहनकृष्ण पुरोहित ने ठीक ही लिखा है कि कामरान पराजय को संजोये रखने वाला यही एक मात्र ग्रन्थ है । इसमें बीकानेर के दो अकालों का (संवत् १५४२-१५५४) भी वर्णन है । बीकानेर दुर्ग की निर्माण तिथि भी इसमें है ।

राजस्थान के इतिहास परिज्ञानार्थ ख्यात, बात. तवारीख, पट्टों, परवानों, तीर्थयात्रा वृतान्तों एवं भाटों की बहियों को भी काफी महत्व दिया गया है । यही बात डा. दीनदयाल ओझा ने अपने शोध पत्र "जैसलमेर के राव केल्हण एवं जैतसी का इतिवृत्त" में प्रतिपादित की है ।" छन्द राउ जैतसी रउ" को आधार बनाकर प्रस्तुत इस आलेख में बताया गया है कि राव केल्हण ने चूंडा को मारा था । इस बात की पुष्टि प्रस्तुत रचना के अतिरिक्त जैसलमेर की ख्यात एवं राव केल्हण के शिलालेख के माध्यम से की गई है ।

जैसा कि बताया जा चुका है कि बाबर ने इब्राहिम लोदी को हराकर दिल्ली के सिंहासन पर कब्जा कर लिया था । बाबर एवं इब्राहिम लोदी के युद्ध का वर्णन कवि नरसिंह मेवकृत हसनखां की कथा में किया गया है । अलवर के तत्कालीन शासक हसनखां मेवाती ने राणा सांगा के साथ मिलकर बाबर से युद्ध किया और वीरगति प्राप्त की ।

खिलजी वंश के सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी एवं रणथम्भौर के शासक हमीर का युद्ध बहुत ही प्रसिद्ध है । इसी कथा के आधार पर लिखा गया संस्कृत का हम्मीर महाकाव्य बहुचर्चित है । व्यास जाति के कवि भांडउ ने वि. सं. १५३८ में हमीरायण काव्य की रचना की थी जिसे राय हमीरदेव चोपई भी कहते है । इस ग्रन्थ में हमीर के पराक्रम के अलावा शरणागतवत्सलता का भी वर्णन है ।

दक्षिण विजय के पश्चात् अल्लाउद्दीन खिलजी ने उत्तरभारत के दूर्गों पर भी विजय अभियान प्रारम्भ किया था । इसी क्रम में रणथम्भौर के पतनोपरान्त सिवाणा एवं जालोर दुर्गों का भी पतन हुआ । जालोर दुर्ग के पतन के १५० वर्ष बाद रचा गया कान्हड़दे प्रबन्ध ग्रन्थ मिलता है

जिसमें वीर कान्हड़दे की वीरता का वर्णन है । जालोर एवं सिवाणा की पराजय से स्तम्भित एवं कुण्ठित हिन्दु जनता हेतु कवि पद्मनाभ ने काव्य में कल्पना का सहारा लेकर पराजय की स्थिति का समाधान किया है । सातलदेव को देवी दर्शन देकर सोते हुए सुल्तान की ओर देखने को कहती है जो शिवरूप नजर आते हैं । इसी तरह से कान्हड़दे के समक्ष भी सुल्तान की पुत्री फिरोजा के मुख से भविष्यवाणी कराई जाती है कि पराभव ही ईश्वरेच्छा है । आलेख प्रस्तोता डा. गहलोत ने निष्कर्ष निकाला है कि पराजित एवं उत्साहहीन समाज को समाधान देकर कवि ने जागृत किया है कि पिछली घटनाओं पर मानव का नियन्त्रण नहीं है - भवितव्यता निश्चय ही होकर रहती है ।

मुगल सम्राट् अकबर ने जोधपुर के राजा मालदेव से नाराज होकर अजमेर के ब्राद पाली जिले के जैतारण गाँव पर आक्रमण किया । जैतारण के ठाकुर रतनसिंह ने मालदेव से सहायता मांगी जो उपलब्ध न हो सकी । इस युद्ध में अद्भुत वीरता का प्रदर्शन कर रतनसिंह ने मृत्यु का वरण किया । वि. स. १६१४-१५ में घटित इस घटना को वेलि का रूप दिया है राठौड़ रतनसिंह री वेलि नाम से । वस्तुत: वेलि काव्य १७वीं शताब्दी की एक विधा है । जैन वेलियों में धर्म, भक्ति आदि का प्रभाव देखा गया है जबकि राजस्थानी साहित्य में वीर क्षत्रिय के पराक्रम की किसी खास घटना को साहित्यिक रूप देकर प्रशस्ति की जाती है । प्रस्तुत आलेख में राठौड़ रतनसिंह री वेलि को ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

जोधपुर नरेश गजसिंह प्रथम के समकालीन कवि केसोदास गाडण महात्मा ईसरदास के समकालीन कवि थे । राव अमरसिंह जी रा दूहा, नीसाणी विवेक वारता, गजगुणचरित एवं फुटकर दोहों के अलावा गजगुणरूपकबंध ग्रन्थ भी इनकी रचनायें हैं । महाराजा गजसिंह ने मुगल सम्राट् जहाँगीर की ओर से शाहजादा खुर्रम के विरूद्ध युद्ध किया था । यह युद्ध वि. स. १६८१ में हुआ था और ग्रन्थ भी वि. स. १६८१ में लिखा गया था । महाराजा गजसिंह के समकालीन कवि दुरसा आढ़ा के पुत्र किसना आढ़ा ने महाराजा गजसिंह रो छन्द कृति का सृजन किया जिसमें खुर्रम के विरुद्ध महाराजा गजसिंह द्वारा लड़े गये युद्ध का वर्णन है । इसमें भीम सिसोदिया का महाराजा द्वारा वध किया जाना वर्णित है । यह रचना अद्यावधि अप्रकाशित है । गजगणरूपक बन्ध पर डा. बसुमती शर्मा एवं महाराज गजसिंह रो छन्द पर शिवदत्त दान बारहठ ने आलेख प्रस्तुत किये ।

जोधपुर नरेश गजसिंह के द्वितीय पुत्र जसवन्तसिंह थे । इनके अंग्रज अमरसिंह ने बादशाह शाहजहां की भरी सभा में सलावतखाँ को मारा था । स्वेच्छाचारी एवं उद्धत प्रकृति का होने के कारण महाराजा गजसिंह ने अमरसिंह को देश निकाला देकर जसवन्तसिंह को शासन संभलाया । जसवन्त सिंह स्वयं विद्या व्यसनी भी थे । इनके बनाये गये भाषाभूषण, सिद्धान्तबोध, अपरोक्ष सिद्धान्त आदि ९ भाषा ग्रन्थ मिलते हैं । इन्हीं महाराजा की प्रशंसा में दलपति मिश्र द्वारा जसवन्त उद्योत नामक ग्रन्थ की वि. स. १७०८ में रचना की । आलेख प्रस्तुति में डा. भंवरभादानी ने इस ग्रन्थ को इतिहास की विस्मृत कड़ियों को जोड़ने में सहायक बताया है । राठौड़ों की विभिन्न खांपों के परिज्ञानार्थ ग्रन्थ का भारी महत्व है ।

महाराजा जसवन्तसिंह के जीवन से सम्बन्धित धरमत का युद्ध एक उल्लेखनीय घटना

है जिसका चित्रण कवि कुम्भकर्ण ने रतनरासौ में किया है । धरमत के युद्ध में जसवन्तसिंह का एक सेनापति औरंगजेब से जा मिला । फलस्वरूप महाराजा जसवन्तसिंह युद्ध क्षेत्र से पलायन कर गये । तब रतलाम के राजा रतनसिंह ने बागडोर संभाली और युद्ध में अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हुए प्राणोत्सर्ग किया । कवि कुम्भकर्ण ने रतनरासौ के अतिरिक्त जयचन्दरासौ, अमररासौ, रूपग राजसमंद राणा राजसिंघ रौ एवं कतिपय फुटकर छन्दों का सृजन किया है । इन सभी ग्रन्थों का ऐतिहासिक दृष्टि से भारी महत्व है । आलेख की प्रस्तुति डा. मनोहरसिंह राणावत ने की है ।

राजस्थानी के ऐतिहासिक काव्यों में छत्रपता रासौ का भी महत्वपूर्ण स्थान है जिसका सर्जन वि. स. १७४० में बीकानेर नरेश अनूपसिह के काल में किया गया । इसमें राव बीका से कर्णसिह पर्यन्त राज्यारोहण की तिथियां हैं जो इतिहास सम्मत हैं । मतीरे की राड़ नाम से प्रसिद्ध जाखणिया गाँव की लड़ाई का भी इसमें चित्रण है जो बीकानेर व नागौर के मध्य हुई थी वि. स. १६९९ में । वि. स. १७१४-१५ में शाहजहां के अस्वस्थ होने पर करणसिंह ने शाहजहां की ओर से युद्ध किया था और औरंगजेब से दुश्मनी मोल ली । इतिहासकारों के अनुसार औरंगजेब के सम्राट् बनने पर कर्णसिंह ने अपने आप को मुगल साम्राज्य के प्रति समर्पित कर दिया था किन्तु ग्रन्थकार इस बात को नही मानता । ग्रन्थकार के अनुसार महाराजा राजसिंह की समझाइश के बाद आपस में सुलह हुई थी । जो भी हो शोध की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है । आलेख डा. विक्रमसिंह राठौड़ ने प्रस्तुत किया है । ग्रन्थ प्रकाशित है ।

वि. स. १६७१-१७२१ के मध्य शेखावाटी क्षेत्र के जान कवि ने लगभग ७६ ग्रन्थों की रचना की थी । जिनमें एक रचना क्यामखां रासौ पर दो आलेख डा. रतनलाल मिश्र एवं डा. वी. एल. माली 'अशांत' द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं । इस ग्रन्थ में शेखावाटी क्षेत्र के राजनैतिक इतिहास के साथ शेखावाटी के नवाबों का इतिहास है । इसके अलावा मुगलकालीन अनेक घटनाओं का उल्लेख है । इसके द्वारा इतिहास की अनेक विलुप्त कड़िया जोड़ी जा सकती हैं ।

१८वी शताब्दी की श्रेष्ठ डिंगल रचनाओं में वीरभाण का राजरूपक एवं कविया करणीदान का सूरजप्रकाश उल्लेखनीय है । वीरभाण रतनू जोधपुर राज्यान्तर्गत घडोई गाँव के निवासी थे और रतनू शारवा के चारण थे । कविया करणीदान मेवाड़ राज्यान्तर्गत शूलवाडा ग्राम के निवासी और जाति से चारण थे । सूरजप्रकाश एवं राजरूपक दोनों ही ग्रन्थों में महाराजा अभयसिंह एवं गुजरात के सूबेदार सर बुलन्द खां के मध्य १७८७ (वि. स.) में हुए अहमदाबाद युद्ध का वर्णन है जिसमें अभयसिंह को विजय प्राप्त हुई थी । ऐसा कहा जाता है कि महाराजा अभयसिंह ने युद्ध में जाने से पूर्व कविया करणीदान, वीरभाण रतनू तथा बखता खिड़िया को युद्ध का वर्णन करने की आज्ञा दी । इसके अलावा अहमदाबाद युद्ध में खेतसी साँदू भी उपस्थित रहे थे जिन्होंने भाषाभारथ नामक ग्रन्थ रचा था । खेतसी सांदू के अलावा सभी कवियों ने युद्ध का आखों देखा वर्णन किया है ।

सूरजप्रकाश एवं राजरूपक दोनों ही राजस्थानी वीरकाव्यों में शीर्षस्थान के अधिकारी हैं । सूरजप्रकाश में इतिहास एवं कल्पना का सामंजस्य है तो राजरूपक में इतिहास आधार है और कल्पना न्यूनप्राय है । इतिहास की दृष्टि से एक कमी दोनों ही काव्यों में विद्यमान है । यह ऐतिहासिक

तथ्य है कि महाराजा अजितसिंह की हत्या उनके द्वितीय पुत्र बखतसिंह द्वारा की गई थी किन्तु सुरजप्रकाश ने जहां इसे अजीतसिंह का स्वर्गवास बताया वहीं राजरूपक ने हत्या न बताकर भवितव्यता वश मृत्यु का उल्लेख तिथिवार किया है । जो भी हो , इतना निश्चित है कि ये दोनों ग्रन्थ मध्यकाल के श्रेष्ठ महाकाव्य हैं । डा. सद्दीक मोहम्मद, डा. राजकृष्ण दुग्गड़ एवं डा. प्रतापसिंह राठौड़ ने इन रचनाओं पर आलेख प्रस्तुत किये हैं ।

जोधपुर महाराजा मानसिंह के गुरु बांकीदास डिंगलभाषा के विद्वान् व आशुकवि थे । इनके रचे हुए ४१ ग्रन्थ मिलते है ।ऊदावत रूपसिंघ री झमाल व मानजसोमण्डन नामक दो रचनायें बांकीदास जी की है । इन रचनाओं में ऊदावत रूपसिंघ री झमाल पर भवानीसिंह पातावत ने आलेख पढ़ा है तथा मानजसोमण्डन पर डा. सक्सेना ने ।

मानजसोमण्डन में २३२ दोहों का संकलन है जिसमें महाराजा मानसिंह के प्रशस्ति गान के अलावा तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हुए अंग्रेज व मरहठों के साथ मानसिंह के संबंधों को दर्शाया गया है ।ऊदावत रूपसिंघ री झमाल में रायपुर (पाली) के घेरे का वर्णन है जो अमीरखां व उसकी सेना द्वारा डाला गया था । इसमें ठाकुर रूपसिंह उदावत का कुशल सैन्यसंचालन, मोर्चाबन्दी व आगे अमीरखाँ का पराजित होना वर्णित है ।

अद्यावधि पश्चिमी राजस्थान के ही कतिपय आदर्श वीरकाव्यों का चित्रण हुआ है । वस्तुत: तत्कालीन राजस्थान के सभी क्षेत्रों में चारण, भोजक, ब्राह्मण, ओसवाल एवं राजपूत आदि लोगों ने इस साहित्य के सृजन में योग दिया है । मेवात, ढूंढाड़, बागड़ एवं मेवाड़ सभी क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा मे वीरकाव्य का सृजन हुआ है ।

मेवाती काव्य में राजनैतिक इतिहास शीर्षक से एक आलेख का पठन श्री अनिल जोशी ने किया जिसमें इस क्षेत्र के कतिपय प्राचीन वीर काव्यों पर प्रकाश डाला गया है । हसनखां अलवर के राजा अलावलखाँ का पुत्र और तत्कालीन दिल्ली सम्राट् इब्राहिम लोदी का मौसेरा भाई था । जब बाबर ने इब्राहिम लोदी का पानीपत के युद्ध में वध कर दिया तो हसनखाँ ने मेवाड़ महाराणा सांगा के साथ मिलकर बाबर से युद्ध किया और वीरगति प्राप्त की । यह युद्ध खानवा के मैदान में हुआ था । महाराजा बख्तावरसिंह के समय (१७९१-१८१५) कोराणी के युद्ध की प्रशंसा में जयसिंह शायर का काव्य महाराजा मंगलसिंह (१८७४-९२) के काल में घुड़चढ़ी मेवकी प्रशंसा में तथा अलवर शासक जयसिंह (१८९२-१९३७) के क़ाल में गोविन्दगढ़ में मेवों ने काफी संघर्ष किया उसका चित्रण काव्यमय किया गया है । शाहजहां के समय का पांच पहाड़ का काव्य नाम से भी वीरकाव्य लिखा गया था । इन सभी रचनाओं में मेवाती कौम का चरित्र चित्रण है जिसने हमेशा अत्याचारी शासकों का विरोध किया और प्रलोभनों के वशीभूत होकर अपनी परम्पराओं को त्यागा नहीं ।

भरतपुर राज्य के संस्थापक सूरजमल का प्रशस्ति काव्य सुजानचरित्र ब्राह्मण सूदन द्वारा विरचित है । इस काव्य में सन १७४५ में १७४५ तक की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है । महाराजा सूरजमल द्वारा लड़े गये विभिन्न आठ युद्धों का चित्रण है । हालांकि काव्य में कई स्थानों पर प्रामाणिकता का अभाव है फिर भी तत्कालीन जाटों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति, सैनिक

व्यवस्था आदि बातों का इसमें प्रामाणिक चित्रण है । आलेख की प्रस्तुति डा. ओंकारनारायण ने की है ।

१८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राव राजा प्रतापसिंह ने अलवर राज्य की स्थापना की थी । जाचीक जीवण ने प्रतापसिंह की प्रशास्ति में डिंगल पिंगल मिश्रित इस काव्य की रचना की है । यह काव्य भी सुजान चरित्र की परम्परा में आता है जिसके ९ प्रभावों में प्रताप सिंह द्वारा लड़े गये विभिन्न युद्धों का वर्णन है । काव्य का सृजन वि. स. १८३७ में हुआ था । आलेख प्रस्तुति डा. जीवनसिंह ने की ।

वि. सं. १८७३ में लछिमनगढ़ रासा का सृजन खुशाल कवि ने किया । ये अलवर नरेश राजा विनयसिंह के आश्रित कवि थे । इसका विवेच्य लछिमनगढ़ का युद्ध है जो राजा प्रतापसिंह एरं नजफखां के मध्य हुआ । इस युद्ध में प्रतापसिह को विजयश्री मिली । खुशाल कवि द्वारा विनयसिंह विजय संग्राम नाम से वि. स. १८८१ में एक काव्य का प्रणयन किया गया जिसमें बख्तावरसिंह के निधनोपरान्त विनयसिंह एवं बख्तावर सिंह के मध्य उत्तराधिकार के लिये हुए षड़यन्त्रों का चित्रण है जिन में विनयसिंह की विजय हुई थी । काव्य का उद्देश्य विनयसिंह की प्रशंसा करना है लेकिन घटनाक्रम पूर्णतया इतिहास सम्मत है । आलेख प्रस्तोता श्री मोतीलाल बैरवा है ।

नीमराणा (अलवर) के चौहान शासक भीमसिंह चौहान के आश्रित कवि शंकरराव द्वारा विरचित भीमविलास एक ऐतिहासिक काव्य है । इस काव्य के पूर्वार्द्ध में चौहान वंशावली तथा उत्तरार्द्ध में राजा भीमसिंह एवं जनकसिह की उपलब्धियों का वर्णन है । पृथ्वीराज III के बाद चौहानों के ठिकानों के विषय में इस काव्य में महत्वपूर्ण जानकारी है । हालांकि पृथ्वीराज III की परम्परा में काव्य में कई ऐतिहासिक भूलें हैं फिर भी नीमराणा के चौहान शासकों पर इसमें महत्वपूर्ण जानकारी है ।

अकबर, प्रताप एवं मानसिंह के त्रिकोण को आधार बनाकर संस्कृत एवं राजस्थानी में विभिन्न काव्यों की रचना की गई हैं । हल्दीघाटी युद्ध के संदर्भ में मानचरित्ररासो पर डा. मधुकान्ता शर्मा ने अपनी आलेख प्रस्तुति में मानचरित्ररासो में उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला है । मानचरित्ररासो में कहीं भी मेवाड़ राजवंश के प्रति घृणा भाव नहीं है । इतिहासकारों ने महाराणा प्रताप एवं अकबर के मध्य हल्दीघाटी युद्ध के लिये उदयपुर के भोजन प्रकरण वाले मनमुटाव को माना है किन्तु इस काव्य में उसका जिक्र तक नहीं है । महाराणा प्रताप ने जालोर के पठानों पर आक्रमण कर उनसे कर वसूला था और पठानों द्वारा अकबर को इस सम्बन्ध में शिकायत की गई तब अकबर ने मानसिंह के नेतृत्व में विशाल सेना महाराणा के विरुद्ध भेजी जिसका प्रतिफलन हल्दी घाटी का युद्ध है । इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि वि. स. १६९७ की है । मेवाड़ का राजप्रशस्ति काव्य वि. सं. १७३२ का तथा अमर काव्य तो उसका भी परवर्ती है । अत: मेवाड़ पर यह रचना प्राचीनतम होने से ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

खण्डेला निवासी हरिनाम उपाध्याय ने अपने राजा केसरीसिंह १७४०-१७५४ के शौर्य, साहस, धर्मप्रियता एवं स्वाभिमान का चित्रण अपने काव्य केसरीसिंह समर में किया है ।

कथानक की पूर्वपीठिका में खण्डेला राजा के पूर्वजों का वर्णन, दूसरे प्रकरण में केसरीसिंह का जीवन वृतान्त तथा उसके द्वारा लड़े गये युद्धों का वर्णन, तीसरे प्रकरण में उनकी चार रानियों के सती होने का वर्णन है । इस काव्य में दर्शित युद्ध औरंगजेब की सेना एवं केसरीसिंह के मध्य स. १७५४ में हुआ था जिसमें केसरीसिंह वीरगति को प्राप्त हुयें । आलेख प्रस्तुति मनोहरसिंह राठौड़ ने की है ।

जयपुर के शासक सवाई प्रतापसिंह के शासनकाल में मरहठों के साथ कई लड़ाइयां हुई जिसमें तुंगा का युद्ध काफी प्रसिद्ध है । इस युद्ध से ६ मास पहले बोराज का युद्ध मरहठों एवं खंगारोत कछवाहों के मध्य वि. स. १८४३ में हुआ था जिसमें बोराज ठाकुर सकतसिंह के छोटे पुत्र जवानसिंह ने मरहठों का संहार कर अप्रतिम वीरता का प्रर्दशन किया था और वीरगति पाई थी । आलेख प्रस्तुतकर्ता डा. राघवेन्द्र मनोहर ने इस वीरकाव्य की दो प्रतियों का जिक्र किया है । यह काव्य अद्यावधि , अप्रकाशित होने से ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

जयपुर के कच्छवाह शासकों पर कविचंद ने १८५७ में कूर्मविलास नामक ग्रन्थ की रचना की थी । कच्छवाहा वंश के पूर्व पुरुषों से लेकर, सवाई रामसिंह द्वितीय की घटनाओं का इसमें विस्तृत ब्यौरा है ।

हिन्दी साहित्य में जायसी का पद्मावत मेवाड़ की पद्मिनी के कथ्य की प्रथम रचना है । इसी क्रम में आचार्य हेमरत्न कृत गोरा बादल पद्मिनी चऊपई पर डा. सोनाराम विश्नोई द्वारा प्रस्तुत आलेख में गोरा बादल पद्मिनी की ऐतिहासिकता सिद्ध की गई है ।

ऐतिहासिक काव्यों के प्रणयन में मेवाड़ की महत्वपूर्ण भूमिका है । महाराणा राजसिंह (१६५२-८० ई.) के शासनकाल में मानकवि ने राजविलास काव्य का सर्जन किया जिसके १८ विलासों में मेवाड़ की ऐतिहासिक घटनाओं को पिरोया गया है । डा. मोतीलाल मेनारिया के सम्पादकत्व में यह ग्रन्थ १९५८ में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है ।

देवलिया प्रतापगढ़ के शासक महारावत हरिसिंह (१६८५-१७३०) तथा उनके पुत्र महारावत प्रतापसिंह के राज्याश्रित कवि चारण जोगी दास ने हरिपिंगल प्रबन्ध की रचना की जिसके तृतीय परिच्छेद में इतिहास विषयक नूतन सामग्री है । आलेख प्रस्तोता डा. भगवती लाल शर्मा ने गुहिलवंश प्रशास्ति से महारावत हरिसिंह तक के वर्णन वाले २९७ छंदों का हवाला दिया है । उदयपुर के महारांणा जगत्सिंह ने वि. स. १६९० में महारावत जसवन्तसिंह को उदयपुर बुलवाकर उन पर नैश आक्रमण करवाया जिससे महारावत अपने १००० राजपूत वीरो सहित काम आये । वीरगति प्राप्त करने वाले योद्धाओं का प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णन है । इस ग्रन्थ में महारावत हरिसिंह की जन्मतिथि के विषय में संकेत है । हालांकि इतिहासकार इस विषय में बिलकुल मौन हैं ।

वि. स. १७१९ में कवि किशोरदास ने राजसिंह प्रथम के समाश्रय में राजविलास ग्रन्थ की रचना की थी । इस ग्रन्थ में महाराणा अमरसिंहकालीन ऊंटाला युद्ध में वीरगति प्राप्त योद्धाओं का विवरण है । इसमें महाराणा के विजय अभियानों का भी वर्णन मिलता है । साथ ही राजसिंह के दरबार में प्रचलित रागरागनियों का भी विस्तार से वर्णन है । रचना के अन्त में राजसिंह के दरबारियों का वर्णन है । आलेख प्रस्तुति डा. पुरुषोतम लाल मेनारिया की थी ।

वि. स. १७२० -३० के मध्य गिरधर आशिया का सगतरासौ ग्रन्थ इतिहास व साहित्य दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । इस ग्रन्थ से मेवाड़ के विषय में नवीन ऐतिहासिक जानकारी मिलती है और इतिहास की उलझी कड़िया सुलझाने में इस ग्रन्थ का भारी महत्व है । इसमें शक्तिसिंह की तीन पीढ़ियों का वृत्तान्त है । शक्तावतों के अलावा राठौड़, सांखला, भाटी, तंवर, ओसवाल आदि विभिन्न योद्धाओं की इसमें जानकारी दी गई है । महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप व अमरसिंह के बारे में नवीन जानकारी है । इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ को वीरभाण रतनू के राजरूपक से भी अधिक महत्व दिया है । डा. हुकमसिंह भाटी ने आलेख में ग्रन्थ का विस्तृत पर्यालोचन किया है ।

मेवाड़ के वीर काव्यों में आसिया मानसिंघ का महावजसप्रकाश राजनैतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काव्य है । मेवाड़ महाराणा संग्रामसिंह के सेनापति महासिंह ने बांधनवाड़ा के युद्ध में जो अद्भुत दिखाई उसका चित्रण इस काव्य में किया गया है । यह युद्ध शाहआलम के सेनापति रणबाजखाँ एवं महासिंह के मध्य वि. स. १७६८ में हुआ था । समसामयिक रचना होने से ग्रन्थ महत्वपूर्ण है ।

महाराणा जगत्सिंह द्वितीय १७३४-१७५१ ई के आश्रित कवि नन्दराम ने वि. स. १८०२ में जगविलास काव्य की रचना की थी । इसमें महाराणा जगत्सिंह की दिनचर्या, राजसी वैभव, राजप्रबन्ध तथा जगनिवास महल के प्रतिष्ठा महोत्सव का विशद वर्णन है । यह रचना तत्कालीन इतिहास की जानकारी हेतु उपयोगी है ।

मारवाड़ के विभिन्न योद्धाओं पर दवावैत शीर्षक से रचनायें मिलती हैं । किन्तु मेवाड़ की एक मात्र दवावैत कुंवरजी संग्रामसिंहजी शक्तावत री दवावैत मिलती है जो मेवाड़ के इतिहास पर शक्तावतों की भूमिका उजागर करने तथा इतिहास की अनेक अनजुड़ी गुत्थियों को सुलझाने में सहायक है । इसकी रचना महाराणा भीमसिह के काल में हुई थी ।

कविराजा श्यामलदास का वीरविनोद मेवाड़ के इतिहास का एक अनूठा ग्रन्थ है किन्तु कविराजा ने एक अन्य ग्रन्थ सज्जनयशवर्णन की भी रचना की थी । इस ग्रन्थ में महाराणा सज्जनसिंह के राज्याभिषेकोत्सव दिवस के कार्यक्रमों एव महाराणा की दिनचर्या का विस्तृत वर्णन है । तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों हेतु ग्रन्थ महत्वपूर्ण है ।

रणथम्भौर के शासक हमीरदेव चौहान के कथानक को आधार बनाकर संस्कृत एवं राजस्थानी भाषा में कई ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है । जयचन्द्रसूरि का हमीरकाव्य संस्कृत का प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य माना जाता है । राजस्थानी भाषा में हमीरायण एवं हमीररासो नाम से कई कृतियाँ उपलब्ध हैं । कवि जोधराज का हमीररासो एवं महेश कवि रचित हमीररासो भी मिलता है । भाण्डउ व्यास प्रणीत हमीरायण काव्य पर डा. देवकुमार ने अपना आलेख प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का चित्रण करते हुए हमीर देव की शरणागत वत्सलता एवं कर्तव्यपरायणता की प्रशंसा की है ।

हाड़ौती प्रदेशान्तर्गत बूंदी के राव सुरजन के पुत्र दुर्जनशाल बड़े वीर व युद्ध निपुण शासक के रूप में माने जाते हैं । राव दुर्जन को पराजित करने के उद्देश्य से मुगल सम्राट् अकबर ने

उन पर आक्रमण किया । घमासान युद्ध में अकबर को पराजित होकर दिल्ली लौटना पड़ा । अकबर ने शाही कचहरी में ऐलान किया कि जो कोई दुर्जनशाल को हरायेगा उसका शाहजादी के साथ विवाह होगा और उसे हाड़ाओं का आधा राज्य दिया जायेगा । बहादुरखान ने बीड़ा स्वीकारा और ससैन्य बूंदी पहुँचा किन्तु पुन: घमासान युद्ध में राव दुर्जनसिंह ने उसे भी पराजित कर दिया ।घेला खिड़िया ने बियाखरी दूदा हाडा री में उक्त कथानक को ही बियाखरी छन्द में अमर स्वरूप दिया है । आलेख प्रस्तुति डा. अम्बादान रोहडिया की है ।

राजस्थान का आदिवासी बहुल डूंगरपुर, बांसवाड़ा क्षेत्र प्राचीनकाल से ही बागड़ नाम से विख्यात रहा है । डूंगरपुर महारावल उदयसिंह द्वितीय के राज्याश्रित कवि किशनजी सिंढायच ने महारावल के आग्रह से उदयप्रकाश ग्रन्थ की रचना की जिसमें महारावल उदयसिंह का जीवन चरित्र वर्णित है । साथ ही इनके पूर्वजों पर भी यत् किंचित् प्रकाश डाला गया है । महारावल के राज्यारोहण की तिथि वि. सं. १९०३ है ।

मेवाड़ा में चूण्डावतों के ठिकानों में सलूम्बर, देवगढ़, आमेट, मेजा, भैंसरोडगढ़, आसींद, चावंड, मदेसर, वेमाती एवं बेगू आदि है । रावत यहां के शासकों की उपाधि है । चूण्डा की सातवी पीढ़ी में किसनदास हुये जिनके वंशज मेवाड़ के इतिहास में किसनावत चूंडावत कहलाते हैं । महियारिया शाखा के किसी चारण कवि ने किसनावतवंशप्रकाश की वि. सं. १९०० के आसपास रचना की थी । इस रचना में रावत चूँड़ा से रावत जोधसिंह द्वितीय तक का पद्यबद्ध ऐतिहासिक वर्णन है । मेवाड़ व बेगू के ईतिहास में किसनावतों की भूमिका बताने वाला यह एक मात्र महत्वपूर्ण ग्रन्थ है ।

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समूचे भारतवर्ष में परिवर्तन की एक लहर आई । मुगल साम्राज्य के पतन के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत की सत्ता संभाली और भारत को दासता की शृंखला में पुन: जड़ दिया । राजस्थान के राजा महाराजा आपसी फूट वैमनस्य के कारण पहले से काफी जर्जरित थे तिस पर मरहठों के आक्रमण से वे तंग आ चुके थे । मरहठों से मुकाबला करने का आश्वासन देकर अंग्रेजों ने इन्हें अपने अधीन कर लिया किन्तु अंग्रेजों के आये दिन राजकाज आदि कार्यों में हस्तक्षेप से राजा महाराजा खिन्न हो गये और स्थिति के परित्राण का उपाय सोचने लगे । १८५७ का विप्लव उसी चिंगारी का एक बड़ा रूप था ।

१८५७ के विप्लव पर कोई स्वतन्त्र रचना उपलब्ध नहीं है परन्तु विभिन्न चारण कवियों द्वारा दोहों एवं गीतों के माध्यम से विप्लव का इतिवृत्त प्रतिपादित किया है । सूर्यमल मीसण की वीरसतसई में ५-७ पद्यों में उक्त घटना का निरूपण है । सन् १८५७ के विप्लवमें आउवा ठा. खुशालसिंह चांपावत की भूमिका शीर्षकान्तर्गत आलेख डा. रामसिहं सोलंकी ने प्रस्तुत किया है । उक्त आलेख में बताया गया है कि आउवा ठाकुर ने आसोप, गूलर और आलनियावास ठाकुरों के अलावा लाम्बिया, बांता, भींवालिया, रड्डावास, बाजावास, सलूम्बर, रूपनगर, लासाणी एवं आसीन्द आदि के सरदारों को अपनी ओर मिला लिया था । सितम्बर १८५७ को जोधपुर की फौज और आउवा ठाकुर की सेना में युद्ध हुआ । जोधपुर की फौज का सेनापति अनाड़सिंह मारा गया । १८

सितम्बर ५७ के द्वितीय युद्ध में जोधपुर के पोलीटिकल एजेन्ट का वध करके उसका सिर आउवा किले की प्राचीर पर टांक दिया । तृतीय युद्ध में आउवा का ठाकुर भाग गया । फलतः आउवा का किला महल आदि नष्ट कर दिये गये । अन्ततः ठाकुर खुशालसिंह ने अंग्रेजो के सामने समर्पण कर दिया । अंग्रेजों ने उनकी ६२ प्रतिशत जागीर जप्त कर उन्हें क्षमा कर दिया ।

वि. स. १९०० से अद्यावधिपर्यन्त राजस्थानी भाषा का आधुनिक काल माना गया है । बूंदी के सूर्यमल्ल मिश्रण आधुनिक काल के सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं । वे प्रखर प्रतिभा के धनी माने जाते हैं । डा. मोतीलाल मेनारिया, डा. रघुवीरसिंह एवं डा. सुनीतकुमार चाटुर्ज्या आदि विद्वानों ने इस कवि के साहित्यक कौशल की प्रशंसा की है ।

सूर्यमलमिश्रण ने ऐतिहासिक महाकाव्य वंशभास्कर के अलावा वीरसतसई, रामरंजाट और बलवद्विलास ग्रन्थों की रचना की है । वंशभास्कर एक विशाल गद्यपद्यबद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ है जो चार जिल्दों में प्रकाशित हो चुका है । हालांकि इसमें वर्णित विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर विद्वानों में मतभेद है । वीरसतसई इस युग का सर्वश्रेष्ठ वीररसात्मक काव्य है जिसमें बिखरी राजपूत शक्ति को एकसूत्रता में बांधने का प्रयास किया गया है । इसके अलावा छन्दशास्त्र का छन्दोमयूख भी इनके द्वारा विरचित माना जाता है । डा. मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थानी के भाषा साहित्य के इतिहास में इनके दो और ग्रन्थ सतीरासो एवं धातुरूपावली का भी उल्लेख किया है ।

डा. ऊषाकंवर राठौड़ ने बलवद् विलास पर आलेख प्रस्तुत करते हुए प्रतिपादित किया है कि राजस्थानी के ऐतिहासिक काव्यों में बलवन्तसिंह का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है जो सत्य नही है । डा. मोतीलाल मेनारिया ने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ राजस्थानी भाषा और साहित्य के इतिहास में बलवद्विलास एवं इसके नायक बलवन्त सिंह का परिचय दिया है । वस्तुतः भिनाय नरेश बलवन्त सिंह के जीवन वृत्त पर आधारित होने पर इस ग्रन्थ का नाम बलवन्तविलास रखा गया है । इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में राजा बलवन्त सिंह के पूर्वज राठौड़ राजवंश का ऐतिहासिक इतिवृत्त है तो उत्तरार्द्ध में बलवन्त सिंह के जीवन पर्यन्त की घटनाओं का वर्णन है ।

आधुनिक काल को डा. मोतीलाल मेनारिया दो भागों में विभक्त कर उसका पर्यालोचन करते हैं । प्रारम्भिक काल के सूर्यमल ही सर्वोत्कृष्ट रचनाकार हैं जिनके आगे तत्कालीन सभी कवि निस्तेज होकर अस्त हो चुके थे । डा. मेनारिया के अनुसार सूर्यमल का प्रभाव तत्कालीन कवियों पर उतना अधिक था जितना रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बंगाल में । सूर्यमल के निधनोपरान्त कवियों को सुध आई और उन्होंने पुनः सृजन प्रारम्भ किया । यह काल हिन्दी साहित्य में भारतेन्दुकाल के नाम से जाना जाता है । इस काल में राजस्थानी कवि ब्रजभाषा, खड़ीबोली एवं राजस्थानी में रचना करने लगे थे । इस काल के प्रमुख कवियों में स्वरूपदास, नटनागर, जीवनलाल, बख्तावरजी, गुलाबजी, मुरारिदान, बिड़दसिंह, चन्द्रकला, उमरदान, किशनजी, चतुरसिंह, बालाबख्श, केसरीसिंह, रामसिंह, गिरधरशर्मा, नाथूदान, अमृतलाल, मोहनसिंह, पतरामगौड़ आदि कई साहित्यकारों का नाम लिया जा सकता है । सच कहा जाये तो साहित्यसृजन एक अविराम प्रक्रिया है और इस काल में अगणित कवियों का प्रतिपादन किया जा सकता है ।

राजस्थान में इतस्तत: बिखरे पड़े राजस्थानी साहित्य के ऐतिहासिक काव्यों के अनुसन्धान को दृष्टिगत रखकर आयोजित राष्ट्रीय सेमीनार से विद्वज्जगत् निश्चय ही लाभान्वित हुआ है । विद्वानों ने समय समय पर राजस्थानी भाषा एवं साहित्य पर इतिहास लिखे हैं जिनमें पश्चिमी राजस्थान के ही कतिपय ऐतिहासिक काव्यों का प्रतिपादन कर अवसान कर दिया जाता है जो नितान्तरूपेण एकपक्षीय एवं अन्यायपूर्ण होने के साथ साथ हमारे साहित्यकारों के इतिहास बोध पर प्रश्नचिह्न लगाता है । संगोष्ठी में मारवाड़ के साथ साथ मेवाड़, ढूंढाड, मेवात, बागड़ एवं शेखावटी क्षेत्र के ऐतिहासिक काव्यों पर भी आलेख प्रस्तुत किये गये हैं जो हमारी समृद्ध साहित्य परम्परा का परिचायक है । मौखिक परम्परा में उपलब्ध मेवात प्रदेश के लोक काव्यों पर पहली बार प्रकाश डाला गया है जिनमें कई अनुद्घाटित ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश है । सारांश यह है कि इतिहास लेखन में अद्यावधि उपेक्षित इन काव्यों का अत्यधिक महत्व है । ये ग्रन्थ जहां विस्मृत इतिहास की कड़िया जोड़ने में सहायक हैं वही इतिहास पुनर्लेखन में एक अभिनव ऐतिहासिक दृष्टि प्रदान करने में भी सक्षम हैं । समाज के पुरोधा इतिहासकारों के पुनर्जागरण में इस तरह की संगोष्ठियां निश्चय ही सहायक होगी बशर्ते कि ऐसे प्रयासों की पुनरावृत्ति होती रहे ।

राजस्थानी साहित्य और भाषा के इतिहास लिखने लिखाने के जो प्रयास अद्यावधि किये गये हैं उनके लिए यह कहना आवश्यक हो जाता है कि इन्होंने महज मारवाड़ या मेवाड़ तक सीमित रहकर यहां के चारणीय साहित्य को ही लगभग राजस्थानी साहित्य के नाम से अभिहित किया है । पिछले पृष्ठों में जिन काव्यों की चर्चा करने का अवसर मिला है उन पर एक सरसरी नजर डालने से यह बात सामने आती है कि इनमें अधिकांश कृतियों की चर्चा सम्भवत: प्रथम बार ही इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में हुई है । साहित्य को इतिहास के सन्दर्भ में देखने व जानने का चूंकि यह हमारा प्रथम प्रयास ही था इसलिए सम्पूर्ण राजस्थान के विभिन्न अंचलों के कवियों की कृतियों का इसमें समावेश न भी हो पाया हो फिर भी मेवात की मौखिक परम्परा में सुरक्षित काव्यों पर एक दृष्टि डालने से यह स्वत: ही प्रमाणित होता है कि ऐसी अन्यान्य काव्य सर्जनाओं को संकलित किया जाना चाहिये । इतिहास के सन्दर्भ में किसी राज्य का आश्रित कवि तो महत्वपूर्ण है ही किन्तु युद्धों की विभीषिकाओं में प्रतिक्षण तपते जन जन के अनुभव जो इन मौखिक परम्पराओं में सुरक्षित हैं, इतिहास के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं है । इन सब पर सम्यक् प्रकाश तभी पड़ सकेगा जब विभिन्न आंचलिक स्तर पर इस तरह की चर्चाओं का आयोजन हो । ऐसी आयोजनों की श्रृंखला से ही राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के इतिहास को एक पूर्ण इतिहास या परिपक्व इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है ।

इन काव्यों में कुछ तो ऐसे हैं जिन्हें हम युद्ध का आंखों देखा हाल कह सकते हैं और यह हाल किन्ही बहियों या ख्यातों में संकलित नहीं किया गया है । सच पूछिये तो ऐसे युद्धों के लिए इस प्रकार के काव्य ही अभिलेख हैं । इस दृष्टि से सामरिक इतिहास के लिए इन काव्यों का अध्ययन एवं अन्वेषण कितना आवश्यक है यह बताने की आवश्यकता नहीं है ।

कुछ व्यक्तियों को यह आपत्ति हो सकती है कि इनमें प्रशंसात्मक व अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन बहुलता से मिलते हैं । परन्तु इन अतिशयोक्तियों के बीच नीरक्षीरविवेक से सत्य का ग्रहण इतिहासविद् की निपुणता है । हाल ही दो तीन दशाब्दियों में ही साहित्य के इतिहासपरक अध्ययन की रुचि को बढ़ावा मिला है । इसलिये राजस्थान के इतिहास को अपनी छाती से लगाये अनवरत रूप से किये गये ये काव्य सर्जन निश्चिय ही इतिहास के पुनर्लेखन में सहायक होंगे और प्राप्त अभिलेखों या परशियन स्त्रोतो से भी जो कड़िया जुड़ती नजर नहीं आ रही है, उन्हें जोड़ने में राजस्थान की इस वीर काव्य परम्परा का अवदान हमारा अवलम्ब हो सकेगा ।

ओमप्रकाश शर्मा

राजस्थान के ऐतिहासिक चरित्र काव्यों का ब्यौरा

-रतुदान रोहडिया

राजस्थान के इतिहास विषयक भाषा काव्यों में डिंगल साहित्य का बड़ा महत्व रहा है । आज तक गुजरात, राजस्थान और अन्य प्रान्तों में डिंगल साहित्य के संशोधन संपादन के लिए अनेक विध प्रवृत्तियाँ चल रही हैं फिरभी आज तक डिंगल साहित्य का सिर्फ दसवां हिस्सा ही प्रकाशित हो पाया है । भारतवर्ष की सांस्कृतिक धरोहर को उजागर करने वाले कितने ही कवियों की बाणी कंठस्थ कृतियों में ही संगृहीत थी जो आज लुप्त होने जा रही है तो समाज का यह उत्तरदायित्व बनता है कि उन कवियों की अनमोल वाणी को एकत्रित करके प्रकाशित, परिमार्जित करवा कर अनमोल साहित्य प्रकाशित करवाया जाय तो उनके सहारे हमारे ऐतिहासिक सत्य के कई नये पहलुओं पर प्रकाश पड़ेगा । जिनके लिए मेरा एयूक्त प्रयास है । हमारे भारतवर्ष का इतिहास कुछ ऐसे लोगों का लिखा है जिन्होंने सत्य को नजरअंदाज करके अन्य बातें उभार दी हैं । मगर सत्य से परे नहीं हैं । सत्यान्वेषण के लिए उन काव्यों का संशोधन और संपादन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी प्रतीत होता है । भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता को बनाये रखने में उन कवियों का बड़ा योगदान रहा है । राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की ओर से आयोजित इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में इतिहास विषयक भाषा काव्यों की महत्ता प्रस्थापित करने के लिए कई शोधपत्र प्रस्तुत किये गये हैं । उनमें सौराष्ट्र विश्व विद्यालय गुजराती भाषा साहित्य भवन की ओर से संगृहीत हुई कुछ पांडुलिपियों के आधार पर कहा जा सकता है कि डिंगल काव्यों में राजस्थान के इतिहास के लिए भरपूर सामग्री मिल सकती है । मैंने देखा है कि उन पांडुलिपियों के जरिये राजस्थान की ऐतिहासिक और राजनैतिक घटनाओं पर प्रकाश डाला जा सकता है ।

राजस्थान के इतिहास विषयक जिन छोटे-मोटे कई काव्यों में ऐतिहासिक तथ्यों की झांकी मिलती है उन ग्रंथों और प्रांतों की सूची निम्नांकित है:-

क्र सं	कृति	कृतिकार	लिपिकार	विषय	भाषा / समय	विषयवस्तु
१	बाली का पवाड़ा	—	—	ऐतिहासिक	डिंगल	जोधपुर के राजा अजीत सिंह का औरंगजेब के साथ युद्ध ४ पक्तियाँ
२.	राव अमर संग के झूलना	—	धीरजी आशिया	ऐतिहासिक	डिंगल	
३.		—	—	"	"	सिरोही के राज सुरतान के मरशिये २ पंक्ति (अपूर्ण)
४.		—	—	"	"	हाडी रानी के मरशिये ३ पक्तियाँ
५.		—	—	"	"	क्षत्रियों की शाखा उप शाखा की नामावली के ३ गीत
६.		—	—	"	"	जोधपुर के गजेसिंह ने हाथियों का दान दिया ६ पंक्तियों का गीत
७.		—	—	"	"	साहबसिंह परमार ने मेवाड में अन्नदान किया ४ पंक्तियाँ
८.		—	—	"	"	छत्रछल हाडा का वीररस पूर्ण गीत
९.		—	तेजामेहडु	"	"	वखतसिंह (जोधपुर के) और जयसिंह के बीच युद्ध का वर्णन ४ पंक्तियाँ
१०.		—	—	"	"	सूरताज जी सोनीगरा और मालाजी सिसोदिया युद्ध में खफा हो गये ३ पंक्तियाँ
१,.		—	—	"	"	डिंगल बून्दी के अनूपसिंह के पुत्र द्वारा कटार चलाई गई ४ पंक्तियाँ
१२.		—	—	"	"	आहवा के गोपालसिंह राठौड़ ने अपने सात पुत्रों के साथ शत्रुओं से युद्ध किया १ पंक्ति

क्रसं.	कृति	कृतिकार	लिपिकार	विषय	भाषा / समय	विषयवस्तु
१३.		—	—	ऐतिहासिक	डिंगल	जोधपुरपति विजयसिंह शौर्यगाथा वर्णन
१४.		—	—	"	"	जोधपुर पति अभैसिंह ने बादशाही धरती को भाले की नोंक रखी (जनन 'किया) ५ पंक्तियाँ
१५.		—	—	"	"	जोधपुर पति विजयसिंह के शौर्य की प्रशंसा ४ पंक्तियाँ
१६.		—	—	"	"	जोधपुरपति मानसिंह को अंग्रेजों के साथ लड़ने की प्रेरणा १ पंक्ति
१७.		—	—	"	"	जोधपुर के राठौड़ शेरसिंह की शौर्य कथा २५ पंक्तियाँ
१८.		—	—	"	"	उज्जैन के युद्ध में से वापस लौटने पर जोधपुर पति जशवंतसिंह की डांट फटकार ४ पंक्तियाँ
१९.				"	"	सिरोही के रावभाण की प्रशंसा
२०.				"	"	जोधपुर के मालदेव की रानी उमादे सती हुई ११ छप्पय
२१.				"	"	जोधपुर नरेश जसवंतसिंह की बिरुदावली के ७२ छंद
२२.				"	"	चित्तौड़ के राजा जशवंतसिंह शिव और राठौड़ राजी भंगारूप हैं
२३.				"	"	कछवाहों को सिसोदियानी के समान क्यों न गिनना ? ३ पंक्तियाँ
२४.				"	"	राज जगनसिंह (उदेपुर) की दातारी २ गीत ३-२ पंक्तियाँ

क्र सं.	कृति	कृतिकार	लिपिकार	विषय	भाषा / समय	विषय वस्तु
२५				ऐतिहासिक	डिंगल	प्रतापसिंह सिसोदिया की दातारी ४ पंक्तियाँ
२६				"	"	राज जगसिंह का शाहजादा के साथ युद्ध ४ पंक्तियाँ
२७				"	"	झाला रायसिंह का स्वमान पूर्वक चित्तौड़ की कचहरी में प्रवेश ४ पंक्तियाँ
२८				"	"	जोधपुर नरेश अजीतसिंह गादीपति बने ४ पंक्तियाँ
२९				"	"	जोधपुर पति अभैसिंह ने सुबा शेर बुलन्दखान को पराजित किया १० पंक्तियाँ
३०				"	"	वीरमदेव चौहान का छेदा गया मस्तक विपरीत होकर शाहजादी को उपहार दिया ।
३१				"	"	शाही सैन्य के साथ वीरमदेव चौहान का युद्ध २ गीत ४,४, पंक्तियाँ
३२				"	"	रणमल के पुत्र जोधा राठौड़ की वीरता ४ पंक्ति
३३				"	"	जयमल राठौड़ की वीरता
३४				"	"	हाथियों की फौज के सामने इसरदास राठौड़ की वीरता ४ पंक्तियाँ
३५				"	"	हाथियों की फौज के सामने गोपाल दास राठौड़ की वीरता २ गीत
३६				"	"	बीकानेर का राव दुदा ने मलुखान को पराजित किया ४ पंक्तियाँ

क्र सं.	कृति	कृतिकार	लिपिकार	विषय	भाषा / समय	विषय वस्तु
३७				ऐतिहासिक	डिंगल	शेषा राठौड़ का फरारी पराक्रम घटना
३८				"	"	बीकानेर के कृपा राठौड़ ने शाही फौज को पराजित किया ९ गीत
३९				"	"	देदा राठौर की वीरता
४०				"	"	जाम उनडने कवि को सिंध राज्य दान में दिया ४ पंक्तियाँ
४१				"	"	रतनु चारण की उत्पत्ति के बारे में
४२				"	"	जोधपुर नरेश मानसिंह को विश्वासघात के लिए किया गया उपालम्भ ५ पंक्तियाँ
४३				"	"	मेधपुर नरेश अभेसिंह ने शेर बुलन्द को पराजित किया
४४				"	"	जोधपुर की रानी उमादे भटियानी सती हुई १३ कवित्त
४५				"	"	चित्तौड़पति राजसिंह ने औरंगजेब को पराजित किया
४६				"	"	चित्तौड़ के राज जगतसिंह के यहाँ बलुजी चापावत ने मुगलों के साथ युद्ध किया
४७				"	"	दुर्गादास राठौड़ की स्वामी भक्ति
४८				"	"	बूंदी के राय दूदा का अकबर के साथ युद्ध वर्णन सम्बन्धी पवाड़ा
४९				"	"	सोढ़ा राय देथा का पवाड़ा
५०				"	"	राणा प्रताप की प्रशंसा ४ दोहे

क्र सं.	कृति	कृतिकार	लिपिकार	विषय	भाषा / समय	विषय वस्तु
५१				ऐतिहासिक	डिंगल	शेख पाटना की वंशावली
५२				"	"	झाला सोलंकी सिसोदिया एवं चौहान की शाखा प्रशाखा की नामावली
५३				"	"	परमार क्षत्रियों की शाखाओं की सूची
५४				"	"	बूंदी के राव दूदा की शौर्यगाथा २ पृष्ठ छंद
५५				"	"	भरपारकर के सोढ़ाओं के पारिवारिक कलह की कथा ४० झूलने

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय स्थित गुजराती भाषा साहित्य भवन में पांडुलिपि संग्रह स्थान में उपलब्ध उपर्युक्त हस्त लिखित ग्रंथों की सूची के अध्ययन से इस बात का पता चलता है कि राजस्थान के इतिहास विषयक विशेष माहिनी एवं महत्व की घटनाओं का इसमें लेखा जोखा हो सकता है । भारत वर्ष के इतिहास को जब नये सिरे से लिखा जाय तो उन सब बातों को ध्यान में लेकर के आवश्यक सुधार अवश्य किया जा सके । इन हस्त लिखित ग्रथों के माध्यम से हम सब सत्य से ज्यादा करीब पहुँच सकते हैं । हमें आशा करनी है कि जब भी इतिहास विषयक काव्य हों तो उन सब पहलुओं को ध्यान में लेकर राजस्थान के इतिहास और सभ्यता, संस्कृति के कुछ नये पहलुओं का भी जोड़ किया जाय ।

राजकोट
(गुजरात)

मरुमंडल का परमार इतिहास : उसकी समस्याएँ

— गोविन्दलाल श्रीमाली

'मरुमंडल' से अभिप्राय अर्बुद-प्रदेश से लेकर किरातकूप-शिवकूप तक के पश्चिमी राजस्थान के भूभाग से माना गया है, जिसमें भीनमाल, जालोर और सांचोर के प्रदेश भी सम्मिलित रहे हैं। विक्रम की दसवीं शताब्दी से ही यह प्रदेश परमारों की अर्बुदाद्रि-शाखा-प्रशाखाओं से संबंधित रहा था। इस प्रदेश में परमार स्वतंत्र शासक थे, पर बाद में वे गुर्जर चालुक्यों के वशंवद (सामन्त) बना लिये गये। मूलराज चालुक्य से लेकर भीमदेव (द्वितीय) तक इस प्रदेश पर 'कम-ज्यादा' चालुक्यों की सार्वभौमसत्ता रही थी। परमार उनके अधीनस्थ सामन्त थे। उन्होंने संभवतः इस क्षेत्र की सत्ता गुर्जर प्रतिहारों या मंडोर के प्रतिहारों से हस्तगत की होगी, जबकि प्रतिहार-साम्राज्य पतनोन्मुख होने लगा था।

इस मरुमंडल में धूम्रराज और सिन्धुराज नामक दो प्रसिद्ध परमार शासक हुए, जिनमें से प्रथम का आबू और भीनमाल के शिलालेखों में और द्वितीय का जालोर किराडू अभिलेखों (वि.सं. १२१८) में नामोल्लेख पाया जाता है। इन दोनों शासकों के स्वतंत्र अभिलेख अभी तक मरुमंडल क्षेत्र से नहीं मिले हैं। धूम्रराज परमार के पूर्वज कौन थे ? इसका पता नहीं पर सिन्धुराज के पूर्वज के रूप में वाक्पतिराज मुंज का नाम अवश्य लिया जा है। (डी.सी. गांगुली)

स्व. डा. गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा ने आबू से लेकर किरातकूप तक के परमार अभिलेखों की वंश-परंपरा को देखकर इस वंशावली का प्रारंभ सिन्धुराज से माना था, क्योंकि किरातकूप की परमार प्रशस्ति (वि.सं. १२१८) में परमार सिन्धुराज को मरुमंडल का प्रथम राजा कहा गया है— 'सिन्धुराज महाराज समभून्मरुमंडले'। उन्होंने वसन्तगढ़ के अभिलेख (वि.सं. १०९९) में

उत्पलराज और अरण्यराज के नामों से पूर्व में सिन्धुराज के होने की संभावना भी इस आधार पर की थी, क्योंकि किरातकूप का उपर्युक्त अभिलेख सिन्धुराज के बाद में ऊसल या दुःशालराज (दूसल) का उल्लेख करने के ठीक पश्चात् 'शम्भुवद् भूरि भूमीशा— अभ्यवतीर्णा महीतले'— शम्भु की तरह (ऊसल के बाद में) अनेक परमार राजा पृथ्वी पर हुए। ऐसा उल्लेख करता है। तब से सिन्धुराज महाराज सम्मिलित मरुमंडल का प्रथम परमार शासक माना जाता रहा है।

इधर परमार इतिहास के एक विद्वान का विचार है कि 'मरुमंडल के परमारों का आदि पुरुष' परमार सिन्धुराज को आबू के परमारों का भी आदि पुरुष मानने के लिए अब कोई तर्क शेष नहीं, क्योंकि 'आधुनिक शोध से यह भ्रान्ति दूर हो गई है।'— आबू के किसी भी लेख में इसे परमार आदि पुरुष नहीं माना।'

यह सच है कि अर्बुद क्षेत्र के मरुमंडल से सिन्धुराज परमार का कोई स्वतंत्र लेख नहीं मिला है और जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक उसे अर्बुद क्षेत्र के परमारों का आदि पुरुष मानना संभव नहीं। हमें उस समय तक उपर्युक्त मान्यता को मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

आगे उस विद्वान् ने यह भी लिखा है कि मरुमंडल (जिसे जालोर, भीनमाल, किराडू क्षेत्र कहते हैं)' के परमारों की शाखा निःसंदेह आबू के परमारों से भिन्न थी। सिन्धुराज का अधिकार भीनमाल और जालोर क्षेत्र पर था। यह भी सच है कि जालोर में सिन्धुराजेश्वर का मंदिर (वि.सं. ११७४) और किराडू अभिलेख में सिन्धुराजपुर के नाम उपलब्ध होने से आंशिक रूप से उक्त कथन की यथार्थता प्रमाणित होती है, पर उनके कथन का यह अंश जो 'मरुमंडल' के परमारों की शाखा को आबू के परमारों की शाखा से निःसंदेह भिन्न मानता है, क्या यह युक्तिसंगत है ? यहां हम इस मान्यता की वस्तुस्थिति को समझने का प्रयत्न करेंगे।

वि.सं. १२८७ फाल्गुन वदि ३ रविवार के आबू (लूणवसति) के अभिलेख में चौलुक्य महाराजाधिराज भीमदेव द्वितीय के विजयी राज्य में परमार धारावर्ष के पुत्र सोमसिंह देव को "श्रीमद् धूमराज कुलोत्पन्न महामंडलेश्वर राजकुल श्री सोमसिंहदेव' कहा गया है। सोमसिंह देव आबू की परमार शाखा से संबंधित सोलंकी (चौलुक्य) सम्राटों का सामन्त था। ठीक इसी प्रकार सोमसिंह देव से अनेक पीढ़ी पूर्व में विद्यमान परमार देवराज को 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के वीरगणि प्रबन्ध में श्री 'धूमराज वंशीय' कहा गया है— "श्रीमालनगरे तत्र धूमराजवंशीयो देवराज नृपः" लिखा गया है। यहां यह ध्यान में रखना उपयोगी होगा कि देवराज असन्दिग्ध रूप से भीनमाल और किराडू की प्रशाखा से संबंधित परमार शासक था और आबू और श्रीमाल (भीनमाल) इन दोनों स्थान पर धूमराज एक सामान्य पूर्वज परमार शासक के रूप में उल्लेखित हुआ है। इस धूमराज के अस्तित्व की गूंज 'मूता नैणसी की ख्यात' में भी 'डाभ ऋषि का धूमऋषि और धूमऋषि का राजा धर्मदेव किराडू' का शासक इस रूप में उल्लेख प्राप्त होता है।

मांगता गांव के ताम्रपत्र (वि.सं. १२३९) के अनुसार परमार देवराज धरणीधर या धरणीवराह का पुत्र था। इसके अतिरिक्त वह कभी भीनमाल (श्रीमालनगर) में भी अवस्थित रहा होगा। किरातकूप (किराडू) के अभिलेख में इसे 'देवराजेश्वर' कहा गया है।

ऐसी स्थिति में जबकि आबू और भीनमाल दोनों स्थानों के परमार शासकों का एक पूर्वज 'धूमराज' माना गया है, तब आबू की मूलशाखा से 'मरुमंडल' (भीनमाल, किराडू) की परमार प्रशाखा को भिन्न मानना कहां तक उचित होगा ? यहां यह भी ध्यान में रहें कि किरातकूप के वि.सं. १२१८ के अभिलेख के अनुसार यह देवराजेश्वर सिन्धुराज का वंशज और धरणीवराह का ख्यात के अनुसार भाई और ताम्रपत्र के अनुसार पुत्र था, तब न केवल देवराज अपितु स्वयं सिन्धुराज भी धूम्रराजवंशीय सिद्ध होगा, चाहे उसे आबू का शासक माना जाये या नहीं माना जाये । वस्तुतः आबू से लेकर जालोर, भीनमाल, किरातकूप के सभी परमार शासक आबू की मूल परमार शाखा से ही निकले थे, अतः वे सभी धूमराज के वंशज थे । उपर्युक्त अभिलेख और 'पुरातनप्रबन्ध संग्रह' क्या इस कथन के साथी के रूप में माने जा सकते हैं ! इस विषय में विद्वज्जन ही प्रमाण हैं ।

'नेशनल म्यूजियम, दिल्ली का सिंहराज (ताम्रपत्र वि.सं. १०५४) सिन्धुराज है'— यह भी एक व्यक्तिगत आग्रहपूर्ण मान्यता है जो विचारणीय है । वि.सं. १०६९ या वि.सं. १०६७ के दुर्लभराज के नेशनल म्यूजियम दिल्ली के एक अन्य ताम्रपत्र में गुर्जर तंत्रपाल क्षेमराज के द्वारा भीनमाल मंडल का क्षत्रियपद्र नामक गांव भीनमाल निवासी नन्नुक को देने का उल्लेख हुआ है । यह ताम्रपत्र भाषा और शैली की दृष्टि से चालुक्य दुर्लभराज के समय का है । मूललेख मुनि जिनविजय अभिनंदन ग्रंथ में स्व. डा. दशरथ शर्मा द्वारा प्रकाशित कर दिया गया था ।

नेशनल म्यूजियम, दिल्ली के उपर्युक्त संवत् १०५४ के अभिलेख में भी सत्यपुर पथाका के 'चीफ सिंहराज द्वारा उसी गोविन्द पुत्र ब्राह्मण नन्नुक को कोई सांचोर का गांव देने का वर्णन है । उपर्युक्त दुर्लभराज के समय का वि.सं. १०६९ का ताम्रपत्र, वि.सं. १०५४ के ताम्रपत्र से केवल १५ वर्ष बाद का है, जिसमें उसी भीनमाल निवासी नन्नुक के लिए दिया गया दान वर्णित है । अतः यह दानदाता सिंहराज गुर्जर चालुक्यों का सामन्त होना चाहिए । इस समय १०५४ से १०६९ तक इस क्षेत्र में सार्वभौम सत्ता गुजरात के चालुक्यों की थी, अतः नेशनल म्यूजियम दिल्ली के ताम्रपत्र (वि.सं. १०५४) के प्रदाता सिंहराज के नाम की परमार सिन्धुराज के रूप में संभावना करना क्या उचित होगा ? वैसे भी यह समय परमार-धरणीवराह और चालुक्य मूलराज दुर्लभराज का है । इस समय परमार सिन्धुराज की उपस्थिति क्या संदिग्ध नहीं है ?

इसके अतिरिक्त थांवला गांव (पुष्कर के समीप) के चौहान सिंहराज के (वि.सं. १०१३) के अभिलेख में 'सिंघराज' इस पाठ को देखकर कई अन्य विद्वानों को सिन्धुराज का भ्रम हो गया था । (मारवाड़ के अभिलेख पृष्ठ सं. ५ लेखांक १३, डा. व्यास मयंक) राजस्थानी बोली (डायलेक्ट) में 'स' को प्राय 'ह' बोला जाता है । इसे न समझते हुए 'घ' को 'ध' समझ लेना इस भ्रम का कारण है । वि.सं. १०५४ के उपर्युक्त सत्यपुर पथाका वाले ताम्रपत्र की भाषा और शैली की तुलना चालुक्य ताम्रपत्रों की भाषा और शैली से करके ही निश्चयात्मक निर्णय पर पहुंचा जा सकता है । इस संबंध में स्व. डा. दशरथ शर्मा का विचार है कि—

"Simharaj of this plate might have been a chalukya feudatory ruling over a pathaka"

फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि 'सत्यपुर-पथाका' का सिंहराज सिन्धुराज परमार नहीं है । 'सिंहराज' यह नाम चौहानों की वंशावली में उल्लिखित है । अब उपर्युक्त इस परमार सिन्धुराज, से संबंधित एक समस्या यह भी है कि क्या मालवा से संबंधित वाक्पति मुंज का उत्तराधिकारी और भोजराज का पिता सिन्धुराज ही आबू-किराडू के मरुमंडल का सिन्धुराज है ? यद्यपि मरुमंडल के महाराज सिन्धुराज का समय निश्चित नहीं है, पर उसका समय दशम शतक का मध्यभाग वि.सं. ९५९-ई.सं. ९०२ विद्वानों द्वारा अनुमानित है । मालवा के सिन्धुराज का समय इससे प्रायः सौ वर्ष बाद वि.सं. १०५४-१०६७ ई. स. ९९७-१०१० में आता है । ऐसी स्थिति में इन दोनों को मानना भी संभव नहीं । आशा है कि परमार इतिहास के विद्वान् इस समस्या पर भी विचार करेंगे ।

किराडू अभिलेख में सिन्धुराज के बाद में 'प्रतापाभदूसल:' इस रेखांकित पद में डा. जी.एच्. ओझा ने ऊसल या उत्पल और परमार राजवंश का इतिहास के लेखक गांगुली । दुःशालराज या दूसलराज नाम माने हैं । निश्चय ही 'ऊसल' उत्पल का अपभ्रंश नहीं हो सकता । 'नैणसी की ख्यात' में उत्पल का अपभ्रंश 'ऊपल' (राज) दिया गया है । डा. ओझाजी ने वसन्तगढ़ के अभिलेख के अनुसार सिन्धुराज के बाद उत्पलराज यह नाम माना था । क्या आज इस मान्यता को बदल देने की आवश्यकता है ?

'मरुमंडल के परमार' इतिहास की एक समस्या आबू शाखा में महीपाल के पश्चात् और भीनमाल किराडू प्रशाखा में देवराज के बाद में ढुंढीराज (धन्धुक) और कृष्णराज, दो पीढ़ियों तक ये दो नाम समान क्रम से हैं । प्रत्येक पीढ़ी में दो नामों का यथावत् होना, क्या यह संदेह उत्पन्न नहीं करता कि महीपाल या देवराज के पुत्र-धन्धुक और पौत्र कृष्णराज आबू शाखा से भीनमाल या भीनमाल शाखा के आबू गोद गये हों ? राजपूत इतिहास में दो पीढियों तक लगातार एक से दो नाम मुश्किल से ही मिलेंगे । क्या परमार धन्धुक और कृष्णराज को आबू की मूल शाखा के साथ में श्रीमालनगर किराडू की उपशाखा में भी एक ही समय में समसामयिक माना जाय ? क्या इसका और कोई विकल्प संभव है ? डा. ओझाजी ने महीपाल और देवराज को एक मानकर हल सुझाया था ।

इस प्रपत्र के अन्त में जालोर के महाराजाधिराज परमार विजयराज से संबंधित समस्या पर भी विचार करना उचित होगा । एल.डी. इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद के संवत् ११६० के ताम्रपत्र में इस विजयराज को 'महाराजाधिराज' कहा है और वि.सं. ११६५ के जाबालिपुर (जालोर) के सहारामंडलस्थ वाक्पतिराज के नाम से आरंभ होने वाले अभिलेख में विजयराज को 'महामंडलेश्वर' बतलाया है । यह परमार विजयराज कौन है ? उपर्युक्त दोनों लेखों से उसकी वंश परम्परा का बोध नहीं होता । मरुमंडल के किसी ताम्रपत्र में उसकी वंशावली नहीं दी गयी है, अगर वह जालोर का जन्मजात शासक होता, तो उसकी वंशावली के कुछ नाम तो वहां के लेखों में अवश्य होते । निश्चय ही वह किसी अन्य क्षेत्र का जालोर का परमार प्रशासक रहा होगा । चालुक्य मूलराज के समय से ही पहले सांचोर और बाद में भीनमाल पर गुर्जर चालुक्यों का दबाव पड़ रहा था, अतः उसे स्वतंत्र शासक मानना भी संभव नहीं । वि.सं. ११६५ के उक्त अभिलेख में तो वह स्पष्ट ही वशंवद- महामंडलेश्वर

कहा गया है। वि.सं. ११६५ के ताम्रपत्र में 'श्री विजयराज प्रसादावाप्त' के बाद में 'स्वभुज्यमान बांधडवाड़ा ग्रामे' लिखकर वहां स्थानीय परमार शासकों— पूर्णराज और मियणपाल— के द्वारा उसके भोगे जाने का उल्लेख किया है। ये परमार निश्चय ही स्थानीय परमार थे, विजयराज महामंडलेश्वर के अधिकार क्षेत्र में थे। वि.सं. ११७४ के वीसल भूपति की रानी मेलरदेवी वाले लेख (सिन्धुराजेश्वर मंदिर पर कलश चढ़ाने वाले लेख) से यह सिद्ध है कि इस समय तक यह विजयराज परमार जालोर से जा चुका था।

मैंने अर्थूणा (बांसवाड़ा) के परमार चामुण्डराज के पुत्र परमार विजयराज के वि.सं. ११६० से ११६५ तक जालोर में गुर्जर चालुक्यों के प्रशासक के रूप में उपस्थित होने की स्वतंत्र रूप से संभावना (विश्वम्भरा वर्ष २५ अंक १ पृ. २५-२६) की थी, क्योंकि इस समय के आसपास वि.सं. ११६० से ११६६ में यह मालवा और गुजरात के मध्यवर्ती भाग 'वटपद्रकामंडल' में शासन करने लगा था। मैंने यह संभावना परमार विजयराज के वि.सं. ११६० और वि.सं. ११६५ के मूल लेखों को सामने रखकर ही की थी। जहां तक जालोर से अर्थूणा (बांसवाड़ा) की दूरी का प्रश्न है, वह तो गुर्जर चालुक्यों द्वारा सुदूर विजित प्रदेशों में शक्तिशाली प्रशासक नियुक्त करने की परम्परा को देखते हुए स्वाभाविक रूप से उत्तरित हो जाता है। वि.सं. १२०७ में भी सम्राट् कुमारपाल चालुक्य ने दंडनायक सज्जन को (चित्तौड़ विजय के पश्चात्) वहां प्रशासक नियुक्त किया था। स्वयं सिद्धराज जयसिंह वटपद्रक (बागड़) के मार्ग से मालवा गया था। उसके लिए कूटनीतिक रूप से मार्ग की परमार शक्ति को अनुकूल बनाना जरूरी था। इसी कारण से विजयराज को वटपद्रक से उत्तर-पश्चिम में जालोर भेजा गया होगा। विजयराज परमार अपनी शक्ति से नहीं, अपितु चालुक्यों की साम्राज्य विषयक शक्ति से जालोर आया होगा। इस समय गुर्जर चालुक्यों की सत्ता उत्कर्ष पर थी। चालुक्य सम्राट् सिद्धराज जयसिंह मालवा के परमारों को कुचलने में लगा था। उसने आबू की तरह अपने समय में बागड़ के परमारों को भी बारह बांट किया था। अगर विजयराज परमार जालोर का स्थानीय शासक होता तो वि.सं. ११६५ वैशाख वदि ५ गुरुवार के पश्चात् किसी न किसी रूप में वहां उसका उल्लेख जरूर मिलता। अगर वह जालोर के स्थानीय चंदन परमार के वंशजों में से किसी से हारा है, तो उसका प्रामाणिक उल्लेख मेरे ध्यान में नहीं है। केवल जालोर के वीसल परमार के अभिलेख (वि.सं. ११७४) में विजयराज का नाम अनुपलब्ध होने से तो उसकी वहां अनुपस्थिति जरूर पायी जाती है, पर उसकी पराजय स्पष्ट ही नहीं पायी जाती।

यहां इंगोदा (मालवा) वाले 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' विरुदवाले गुहिल विजयपाल के समय की सीमा वि.सं. ११९०— परमार विजयराज के समय से लगभग ३० वर्ष की दूरी पर है और इस समय तक वह बागड़ में नहीं आया था।

परमार विजयराज अगर गुर्जर चालुक्यों का मंडलेश्वर था, तो इस समय उसकी इतनी शक्ति तो रही ही होगी कि वह चालुक्य सम्राटों से पराभूत और उनके वशंवद आबू के परमारों और भर्तृपट्टवंशी गुहिलोतों के गृहराज्यों को पार करके जालोर में पहुंच जाय।

मेरा प्रस्तुत विषय में कोई आग्रह नहीं है । इस परमार विजयराज की खोज अन्यत्र भी की जानी चाहिए । इस प्रपत्र का उद्देश्य परमार इतिहास की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए उनके हल की दिशा का संकेत मात्र करना है । आशा है कि परमार इतिहास के मूर्धन्य विद्वान् इस विषय पर प्रकाश डालेंगे । इतिहास परम्परागत आस्था का विषय नहीं, वह यथार्थ तथ्यपरकता का अनुगामी होता है । "वादे वादे जायते तत्त्वबोधः ।'

शोध अधिकारी
महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश,
मेहरानगढ़, जोधपुर

'वीठू सूजा कृत छंद राउ जैतसी रौ' के ऐतिहासिक संदर्भों पर विचार

डा.सोहन कृष्ण पुरोहित

राजस्थानी छन्द शास्त्रों की परम्परा में वीठू सूजा कृत 'छन्द राउ जइतसी रउ' एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है। इस खण्ड काव्य को प्रकाश में लाने का श्रेय प्रसिद्ध इटालियन विद्वान् एल.पी.टैसीटरी को है। उन्होंने संवत् १६२९ में लिपिंबद्ध की गई एक हस्तलिखित प्रति को आधार बना कर इस ग्रन्थ का सम्पादन किया।[१] टैसीटरी को यह प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में राजस्थानी ग्रन्थों का सर्वेक्षण करते समय प्राप्त हुई थी[२] जिसे उनकी मृत्यूपरान्त १९२० ई.ममें एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (कलकत्ता) ने प्रकाशित किया।

'छन्द राउ जइतसी रउ' डिंगल भाषा का ऐतिहासिक दृष्टि से उपादेय ग्रन्थ है। पं.गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और दशरथ शर्मा आदि विद्वानों ने इसकी ऐतिहासिकता को स्वीकार किया है। अभी तक टैसीटरी के अलावा सूर्यकरण पारीक, मूलचन्द प्राणेश और अमर सिंह राजवी ने वीठू सूजा के इस छन्द ग्रन्थ को अनूदित और सम्पादित कर प्रकाशित किया है।

छन्द शास्त्र का ज्ञाता वीठू सूजा बीकानेर के मुंजासर गांव का चारण कवि था। उसके पिता का नाम नगराज था। वीठू सूजा का जन्म ऊदासर गांव में (तहसील सरदार शहर, जिला चुरु) हुआ। उन्हें बीकानेर के राव जैत सिंह (१५२६-१५४२) ने १२ गांवों की ताजीम के साथ लाख पसाव प्रदान किया। उसको दिये हुए गांवों में पाबूसर और खिलेरिया प्रमुख हैं।[३]

राव जैतसिंह का बाबर के पुत्र कामरान से १५३४ ई.में युद्ध हुआ। इस ऐतिहासिक घटना के लगभग एक वर्ष पश्चात् वीठू सूजा ने 'छंद राउ जइतसी रउ' शीर्षक ग्रंथ लिखा। इसलिये पं.गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इस ग्रन्थ को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक माना है।[४]

छन्द राउ जइतसी रउ ग्रन्थ में कुल ४०१ छन्द हैं जिनमें से ११ गाहा, ४ दूहा, ३८५ पाधड़ी छन्द और १ कवित है। इसकी भाषा १६वीं की डिंगल है। वीर रस की घटनाओं के वर्णन हेतु इसमें पाधड़ी छन्द अनुकूल बन पड़े हैं। डिंगल के प्रसिद्ध वैण सगाई अलंकार का प्रयोग भी इसमें देखा जा सकता है। किन्तु कवि इसकी अनिवार्यता से बन्धा नहीं है। उपमा, रूपक, और उत्प्रेक्षा सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग करने में कवि सिद्ध हस्त है।[५]

राठौड़ों के शौर्य को उजागर करने वाला 'छन्द राउ जइतसी रउ' गाहा छन्द में माँ शारदा की वन्दना से प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् मारवाड़ के शासक चूण्डा से राव जोधा तक उनकी सामरिक उपलब्धियों को क्रमानुसार गिनाया गया है। फिर बीकानेर के संस्थापक राव बीका से लेकर जैतसिंह के राज्यकाल की महत्वपूर्ण घटनाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार 'छन्द राउ जइतसी रउ' मारवाड़ और जांगलदेश के इतिहास प्रेमियों का प्रिय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ से संकेतित होता है कि मारवाड़ एवं बीकानेर की कुछ राजनीतिक घटनाओं की पृष्ठ भूमि में राव जैतसी की शौर्य गाथा लिखने के उद्देश्य से ही वीठू सूजा ने अपना 'छन्द राउ जइतसी रउ' ग्रन्थ लिखा।[६]

वीठू सूजा ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में २ से २० वें छन्द तक मारवाड़ के राव चूण्डा की सामरिक उपलब्धियों का संक्षेप में वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि राव चूण्डा परमवीर था। उसने सालोड़ी में अपना थाना स्थापित किया।[७] उसने यवनों को पराजित कर मण्डोर पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[८] फिर उसके आस पास के भूभाग को अधिकृत किया। चूण्डा ने नागौर पर विजय की और डीडवाना के शासन में परिवर्तन किया।[९] उसने छापर के शासक को पराजित कर मोहिलों को युद्ध शिक्षा से अवगत करवाया।[१०] चूण्डा ने राणिगदे को मार गिराया और जोहियों को शस्त्र घात से घायल किया।[११] राव चूण्डा की गतिविधियों से यवन शासक खिज्र खां नाराज हो गया।[१२] उसने चूण्डा पर आक्रमण किया तो राव केल्हण (पूंगल) और जैसलमेर के भाटी देवराज ने उसे अपने शत्रु से जांगलू लेने हेतु सहयोग दिया।[१३] यवन बादशाह पंजाब होकर मारोठ तक आ गया और फिर आगे बढ़ते हुए नागौर तक आ पहुँचा।[१४]

इसलिये उसने परिस्थिति का आकलन कर जौहर ज्वाला प्रज्ज्वलित की जिसमें राणियों ने जौहर कर अग्नि का आलिंगन किया। तब बन्द दुर्ग के किवाड़ खोल दिये गये। राव चूण्डा हाथ में तलवार लेकर शत्रु सेना पर टूट पड़ा और लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुआ।[१५] इस प्रकार राव चूण्डा के सम्बन्ध में वीठू सूजा ने जिन घटनाओं का उल्लेख किया है उनकी पुष्टि इतिहास ग्रन्थों से होती है। वीठू सूजा ने यवन शत्रु का नाम खोदिर खां लिखा है जबकि रेउ और गहलोत ने उसका नाम सलीम या सलेम खां लिखा है जो यवन बादशाह नहीं अपितु दिल्ली के सुल्तान की तरफ से मुल्तान का हाकिम था।[१६]

राव चूण्डा का उत्तराधिकारी रणमल्ल बना जिसने अपने पिता की मृत्यु का बदला ले लिया। उसने उसी युद्ध में भाटी देवराज को मार डाला। उसने सोजत को सोनगरों से मुक्त करवाया और महमद को मार कर महाराणा मोकल (मेवाड़) की रक्षा की। उसने मेवाड़ के चाचा और मेरा को

मार डाला और यवनों का प्रतिरोध करने हेतु कुम्भा को सिंहासन पर बैठाया । किन्तु कुम्भा ने रणमल्ल को धोखे से मरवा डाला । वीठू सूजा ने ५ छन्दों (२१-२४) में रणमल्ल की उपलब्धियों पर संक्षेप में प्रकाश डाला है । ये घटनाएं भी ऐतिहासिक ग्रन्थों से पुष्ट हैं ।[१७]

वीठू सूजा के अनुसार राव रणमल्ल का उत्तराधिकारी राव जोधा बना । उसने पूरे क्षेत्र में अपनी आण फिराई । उसने मेवाड़ की सेना को पराजित कर वापिस लौटने के लिए बाध्य कर दिया और कोसाणे की सेना को भी हराया ।[१८] जोधा ने अपनी सेना को हंसा दुर्ग के निकट पहुँचाया और आका तथ हाजा को नष्ट किया ।[१९]

जोधा ने महाराणा कुम्भा को युद्ध क्षेत्र में गिरा दिया और मण्डोवर पर फिर राठौड़ों का अधिकार हो गया । जोधा ने प्रयाग यात्रा कर वहां पिण्ड दान किया । उसने यवनों पर आक्रमण कर पठानों को अपना करद बनाया । जोधा ने चौहानों को अपने राज्य क्षेत्र से बाहर निकाल दिया । उसने १२ पठानों सहित सारंग खां और खाटू के पठान को फतेहपुर के युद्ध में पराजित कर यश प्राप्त किया ।[२०] वीठू सूजा ने यह विवरण करीब १४ छन्दों (२५ से ३८ तक) में लिखा है । डॉ.दशरथ शर्मा का मत है कि वीठू सूजा ने जोधा की उपलब्धियों का विवरण काल क्रमानुसार प्रस्तुत किया है[२१] जिसे इतिहासकार रेउ ने अपने ग्रन्थ में स्वीकार किया है ।[२२]

वीठू सूजा ने मारवाड़ राज्य के तीन शासकों के राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करने के बाद बीकानेर राज्य की तीन पीढ़ियों का विस्तार से वर्णन किया है ।[२३] वीठू सूजा के अनुसार बीकानेर नरेश राव बीका ने नृसिंघ को मार डाला और भारड्ग के कोट को तहस नहस कर दियां । उसने देरावर पर आक्रमण कर यवनों को वश में किया और मूमण-ब्राह्मण को परास्त किया । ओझा के अनुसार यह कुम्मण द्वारा बसाया हुआ कोई गांव रहा होगा ।[२५]

राव बीका ने देपालपुर तथा सिरसा पर आक्रमण किये और वीठउंड तथा भटनेर पर विजय प्राप्त की । उसके अश्व हिसार की ओर से गये और फिर उसने नरहड़ के घरों को नुकसान पहुँचाया । उसने वहां से दिलावर को भगा दिया । राव बीका ने बहलोल शाह से वचनबद्ध होकर फतेहपुर तथा झुंझुनू को अपने अधिकार में कर लिया और वहां के शासकों को रक्षा हेतु वचन दिया । उसने नागौर के किले को दो बार अधिकृत किया और फिर अजमेर दुर्ग से वरसिंघ को कैद से मुक्त करवाया । जब सीह राय ने शेखा राव (पुंगल) को पकड़ लिया तो उस राठौड़ वीर ने उसे छुड़ा लिया । पं.गौरीशंकर हीराचन्द ओझा यहां वीठू सूजा से असहमत हैं और वे शेखा को लंगों से मुक्त करवाने का श्रेय राव बीका को देते हैं । (पूर्वो.पृ.९३-९४) छन्द ४९ के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में विवाद है । श्रीमूलचन्द प्राणेश के अनुसार इसमें १५४२ में बीकानेर में पड़े अकाल का वर्णन है जिससे बीका ने जनता को मुक्त करवाया जबकि सूर्य करण पारीक ने इसका तात्पर्य छत्रपतियों को अपनी छत्र छाया में लेना माना है ।[२७] बीका ने दुर्ग का निर्माण करवाया जिसका नाम सौभाग्यदीप था । श्री पारीक इस को स्वीकार नहीं करते प्रतीत होते हैं । गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने लगभग सभी घटनाओं की ऐतिहासिकता में विश्वास व्यक्त किया ।[२८] बीकाजी ने जोधपुर दुर्ग पर आक्रमण किया जिसका

उल्लेख ओझा, मुंशीदेवी प्रसाद और दयालदास ने किया है । किन्तु सूजा ने उनके इस कृत्य पर पर्दा डालने का प्रयास कर इस अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख तक नहीं किया ।[२९]

राव बीका के पश्चात् नरा उसका उत्तराधिकारी बना किन्तु कुछ माह के शासनोपरान्त ही उसका निधन हो गया । तब १५०५ ई.में राव लूणकरण सिंहासन पर बैठा । उसने १५२६ ई.तक राज्य किया । 'छंद राउ जइतसी रउ' में बीठू सूजा ने उसकी उपलब्धियों पर ४५ छन्द प्रस्तुत किये है । राव लूणकरण ने शासक बनने के बाद मण्डोर से लेकर मुलतान तक अपनी दुहाई (आन) फिरवाई ।[३०] उसने करणीजी के देहरे पर ध्वजा चढ़ाई और सं.१५५४ के अकाल में देवालय के पूजन हेतु प्रसाद तैयार करवाया ।[३१]

उसने देवालय तथा प्रजा की अकाल से रक्षा की । उन दिनों नागौर के साथ बीकानेर के सम्बन्ध वैमनस्य पूर्ण थे । उसने महमन्द खां (मोहम्मद खां) की सेना को बुरी तरह पराजित किया ।[३२] वीठू सूजा ने जैसलमेर के रावल जैतसी और राव लूणकरण के मध्य हुए संघर्ष का विस्तृत विवरण किया है । वह लिखता है कि राव लूणकरण विशाल सेना लेकर जैसलमेर की ओर रवाना हुआ । उसने मार्ग में पोकरण को भी विजित कर दिया । जैसलमेर में रावल से उसका युद्ध सायंकाल में हुआ (छन्द ६९) जिसमें पराजित रावल का गर्व खण्डित हुआ । युद्ध में कुंवर प्रतापसिंह ने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया । जिसका विवरण वह अपने ग्रन्थ में इस प्रकार प्रस्तुत करता है:

कुंअरां गुरि वूहइ काकि करन्न, छावड़ई सेन भागउ छप्पन्न ।
राड कोई रतउ गोइन्द राउ, गढ़ि पइसि गया खेराइ गाउ ॥७ ॥

राव लूणकरण के समय मारवाड़ के राव गांगा ने नागौर के खान पर आक्रमण कर गढ़ को घेर लिया । तब लूणकरण ने खान की सहायता हेतु प्रस्थान किया और युद्ध कर उसे मुक्त करवाया । तब गांगा और खान में मैत्री हो गई (छन्द ७४-७५) । लूणकरण ने कई सीमावर्ती शासकों पर भी विजय की । डीडवाना का शासक उससे डरकर उसे कर देने लगा । मेवाड़ के ग्रासिये उससे डर कर भाग गये । राव लूणकरण की सेना ने वागड़ के शासक दौलत खां की सहायता की । उसने नहवा के नवाब से झुंझनु भी छीन लिया । काबाल तथा नरहड़ का मनोमालिन्य दूर कर दिया और सींघाणा की सेना को रौंद डाला ।[३३] तत्पश्चात् पंचेरी में फौज का घेरा डाला । फिरोशाह ने पैर पकड़ कर उसकी अधीनता स्वीकार की ।[३४] राव लूणकरण ने नारनौल पर आक्रमण किया । उस समय वहां का शासक शेख अबीमीरा था ।[३५] दोनों में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें लूणकरण की सेना पीछे हटने लगी । कुंवर प्रतापसिंह तथा वैरसी ने नवाब का सामना किया । युद्ध में राव लूणकरण, प्रतापसी, नैनसी और बैरसी सहित मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

राव लूणकरण के स्मारक लेख के अनुसार यह घटना ३१ मार्च १५२६ को घटित हुई ।[३७] वीठू सूजा के ग्रन्थ में राव लूणकरण सम्बन्धी जो घटनाएं दी हुई हैं उनमें कुछ का विवरण दृश्यात्मक है । उसने सामग्री को संक्षिप्त करने के प्रयास में कुछ घटनाओं जैसे लूणकरण के फतेहपुर पर आक्रमण, दद्रवा युद्ध, चायलवाड़ अभियान आदि को छोड़ दिया है । शायद इसका कारण ग्रन्थ

को लूणकरण पर केन्द्रित न कर राव जैतसी को विशेष रूप से प्रकाश में लाना रहा हो।

राव लूणकरण की मृत्यु के पश्चात् राव जैतसी सिंहासन पर बैठा। उसने अनेकं गढ़ों पर अधिकार कर लिया। उसके समय राज्य में सर्वत्र खुशहाली थी, जांगल देश मरु क्षेत्र का कश्मीर कहलाता था। वीठू सूजा लिखता है कि उस समय राठौड़ राज्य राम राज्य के समान था। जैतसी ने अपने अभियानों में भटनेर का विध्वंस किया, सिरसा का नाश किया तथा हिसार दुर्ग पर विजय प्राप्त कर नरहड़ को नष्ट कर दिया। उसने वडसी तथा हांसी में मुकाम किये।[३८] गौरीशंकर ओझा, खत्री दीनानाथ देव, कुंवर कन्हैयाजू आदि बीकानेर का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने इन घटनाओं का उल्लेख तक नहीं किया है। शायद इनकी दृष्टि में ये विजयें जैतसी को कामरान पर विजय की तुलना में नगण्य रही हों। उधर वीठू सूजा ने भी जैतसी के द्रोणपुर अभियान, सिंहाणकोट के जोहियों पर आक्रमण, कच्छवाह सांगा की सहायता, जोधपुर के राव गांगा को सहयोग जैसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं को नज़रअंदाज किया है।[३९]

वीठू सूजा ने जैतसी के राज्यारोहण का उल्लेख करने के पश्चात् कुछ छोटी-मोटी घटनाओं का उल्लेख कर भारत की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डाला है। उस समय दिल्ली सल्तनत अवनति की ओर अग्रसर थी। अफगान शासक इब्राहिम लोदी दिल्ली पर शासन कर रहा था। तब यवन बादशाह बाबर ने खुरासान मार्ग से दिल्ली की ओर प्रयाण किया। उस माड देश (भाटी प्रदेश) नष्ट किया। खेर को विचलित किया और सातलमेर को नुकसान पहुँचाया।[४०] फिर उसने मारोठ, भेरहा (भेहरउ), बगा और भंभेरी को जीता। तेजी से आगे बढ़ते हुए बाबर ने सिरमौर तथा लाहौर के लोगों को अपने अधीन किया और दियालपुर को खूब लूटा।[४१] उसने राजपूतों के यादव, प्रतिहार, चौहान, तंवर आदि ३६ राजवंशों को श्रीविहीन कर दिया। समाना और सरहिन्द को जीतकर उसने इब्राहिम लोदी से युद्ध किया, जिसमें वह मारा गया जिससे दिल्ली, आगरा और बयाना उसके अधिकार में आ गये। बाबर ने चन्देरी को भी अस्थिर किया और जौनपुर, अयोध्या में अपनी आन फिरवायी। बिहार में भी उसने अपने शत्रुओं को हराया और विजय करते हुए जगन्नाथ तक जा पहुँचा। उसने बिहार तथा ब्रह्मपुत्र के मध्य बंभणवाह जैसे देशों को आतंकित किया कर पण्डवई तक घेरा डाला। बाबर ने मेवाड़ के राणा सांगा को भी पराजित किया।[४२] इसके बाद उसकी सेना ने अलवर पर आक्रमण किया और मेवात को जी भर कर लूटा। मुगलों ने आमेर के शासक पूरणमल को मार डाला तथा सांभर, नागौर, और सम्भवतः फतेहपुर बिसाऊ आदि पर भी अपना अधिकार कर लिया।[४३] बाबर की भारतीय विजयों का इतना विस्तृत विवरण अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता।[४४]

बाबर के पश्चात हुमायू आगरा के राज्यसिंहासन पर बैठा। उस समय उसका सगा भाई कामरान काबुल तथा कन्धार का सूबेदार था। उसने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् हुमायू के सम्मुख झुकने से मना कर दिया क्योंकि उसकी सैनिक स्थिति अत्यंत मजबूत थी। इसलिये हुमायू ने साम्राज्य का विभाजन करते हुए पंजाब,काबुल, और कन्धार मिर्जा कामरान को दे दिये।[४५]

मुगल बादशाह कामरान बीकानेर नरेश राव जैतसी का समकालीन था। कामरान ने

मारवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया और युद्ध की तैयारियाँ जोर शोर से प्रारम्भ कर दीं। तैयारी पूर्ण होने पर कामरान अपनी विशाल सेना सहित लाहौर से रवाना हुआ। उसने सतलज को पार किया और तोपों सहित अबोहर में से होकर गुजरा।[४६] इस प्रकार आगे बढ़ती हुई कामरान की सेना धूल का बवण्डर उड़ाते हुए भटनेर तक आ पहुँची। कामरान ने अपने प्रधान योद्धाओं के साथ राव खेतसी को कहलाया कि वह इस्लाम धर्म ग्रहण कर लें और बादशाह को दण्ड स्वरूप कुछ धन देकर उसे नमन करें। इस संदेश को पाकर भटनेर शासक अरढक मल्ल पुत्र खेतसी झुका नहीं।[४७] इसलिये मुगल सेना तोप के गोले बरसाती हुई दुर्ग की ओर बढ़ी। खेतसी उसका मुकाबला करने में असमर्थ था इसलिये योद्धाओं ने स्नान कर गले में तुलसी की माला धारण की। युद्ध आरम्भ हो गया और दुर्ग के द्वार खोल दिये गये। खेतसी युद्ध करते हुए शत्रु सेना में प्रवेश कर गया। जैसा और राणिगदेव उसे लगातार सहयोग करते रहे । राव खेतसी शत्रुओं को मार कर गिराता हुआ स्वयं भी वीर गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार भटनेर दुर्ग पर मुगल सेना का अधिकार हो गया।[४८] वीठू सूजा इस घटना का ब्यौरा इस प्रकार देता है:

पड़ियड रिणि खेतल पिसणपाड़ि, मालहरि चाड़ि धज मारू आड़ि।
कांधल किंवाड़ वसी करेय, लोपियड मीर भटनेर लेय ॥

भटनेर युत्र के बाद राव जैतसी को जासूसों ने सूचित किया कि बादशाह (कामरान) के पास अथाह सेना है। इस समाचार को सुनकर मरुप्रदेश के लोग दु:खी और भयभीत हो गये। किन्तु राव जैतसी इससे निडर था। जब कामरान की सेना तालाब के पास पहुँची तो जैतसी को संदेश भेजा गया कि वह बादशाह के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दे और उसे १० करोड़ रुपये देकर अपनी कन्या विवाह हेतु समर्पित कर दे।[४९]

कामरान के प्रधानों को लौटाते हुए जैतसी ने उत्तर दिया कि मल्लिनाथ ने जिस प्रकार खेत में मीरों को मारा, राव चूण्डा ने विजुली खान को मारकर तोखटी पर अधिकार किया, राव सातल ने फिरोज खां को भगाया,रणमल ने महमद खां को मार ख्याति प्राप्त की । यह तुझे याद रहे। सारंग खां को राव जोधा ने मारा, राव सातल ने शेर खां को भगा दिया, यह भी तुझे याद रहे।

उसने आगे कहा, राव बीका ने दिल्ली के यवनों को पराजित किया और दूदा ने युद्ध में सिरिया खां का संहार किया, लूणकरण ने मुहम्मद खां के साथ युद्ध कर उसे पराजित किया, राव गांगा ने नागौर के शासकों को हराया और उसके हाथी छीन लिये।[५०] यह प्रत्युत्तर भेजने के बाद राव जैतसी ने युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी। कामरान को जब जैतसी के विचारों की जानकारी मिली तो उसने सेना सहित तलहटी में प्रवेश किया। स्वयं जैतसी ने दुर्ग की रक्षा का भार भोजराज रूपावत तथा अन्य भाटियों पर छोड़कर वहां से दूर हट गया जिसे मार कर मुगलों ने बीकानेर के गढ़ (पुराना) पर अपना अधिकार जमा लिया।[५१] किन्तु युद्ध जारी रहा । जैतसी ने मुगल सेना का पीछा न छोड़ा। युद्ध में सबसे पहले देद वंश का डूंगरसिंह घायल हुआ। अमर, पीथल तथा रायमल राठौड़ सेना को सहयोग करने लगे। हरराज तथा जेतसी भी मारकाट मचाते हुए आगे बढ़े।[५२] वीठू सूजा ने उन

घोड़ों के नाम तथा गुणों का उल्लेख किया है जिन पर बैठकर योद्धाओं ने युद्ध किया। कविवर सूजा के छन्द ग्रन्थ से उन प्रमुख योद्धाओं के नाम भी मिलते हैं जिन्होंने जैतसी के साथ मिलकर मुगल सेना से युद्ध किया।[५३]

वीठू सूजा लिखता है कि युद्ध के दौरान जैतसी कवच धारण किये हुए शत्रु सेना के मध्य घुस गया। बादशाह कामरान समुद्र है तो राव जैतसी अगस्त्य। वह अपनी तलवार से शत्रु समूह को सोख लेगा या नष्ट कर देगा। राव जैतसी ने कृष्ण पक्ष चतुर्थी शनिवार संवत् १५९१ को रात्रि में कामरान की सेना पर अंतिम प्रहार किया। यवनों में हाय हाय होने लगी। वे मुहम्मद का और हिन्दू राम का जयघोष करने लगे। सांगा ने अपने अश्वों को शत्रु की तलवारों के मध्य झोंक दिया। जैतसी अपने भाले के विश्वास पर आगे बढ़ रहा था। युद्ध में दोनों पक्षों में हाक पर हाक होने लगी। तलवारें टकराने से कोलाहल होने लगा। कविवर वीठू सूजा इसका वर्णन इस प्रकार करता है:

दाकि दाणवि जइत सरूपदीव, नेठाहि धीरि नाखिय नित्रीठ।
हिदुआं तुरुक्का हुबिय हक्क, कारिमाक वाजि कक्किय कटक्कक ॥३७९॥

युद्ध में तलवारों के प्रहार से चिंगारियां फूटने लगीं। तलवारों से कटे हुए कबन्ध इधर उधर लुढ़क रहे थे। अश्वों के सिर कट गये थे। अन्त में जैतसी ने यवन सेना को तितर बितर कर दिया। इस प्रकार मारवाड़ कामरान रूपी ग्रह से मुक्त हुआ। पराजित कामरान अपने वीरों और अमीरों के साथ लाहौर लौट गया। इस विजय के उपलक्ष्य में मरुधरा में खूब उत्सव मनाये गये।[५४]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'छन्द राउ जैतसी रौ' एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें मारवाड़ और बीकानेर राज्य के प्रारम्भिक इतिहास के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है जिसकी पुष्टि अन्य साक्ष्यों से भी होती है। वीठू सूजा ने कहीं कहीं कुछ घटनाओं को अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया है। किन्तु उसने इतिहासकारों को कुछ अतिरिक्त शोध सामग्री प्रदान की है। जैतसी कामरान युद्ध एक ऐतिहासिक घटना है जिसका फारसी ग्रन्थों में उल्लेख तक नहीं मिलता। शायद इसका कारण कामरान की पराजय रहा हो।[५५] यदि इस घटना का कहीं विस्तृत विवरण उपलब्ध है तो इसे संजोये रखने वाला एक मात्र ग्रन्थ छन्द राउ जैतसी रौ है। इस ग्रन्थ से बीकानेर में पड़े दो अकालों (संवत् १५४२ तथा संवत् १५५४) का उल्लेख भी मिलता है। इससे भी महत्वपूर्ण राव जैतसी के सहयोगी वीरों की नामावली है, जिन्होंने कामरान को पराजित करने का श्रेय प्राप्त किया। इससे बीकानेर दुर्ग निर्माण की तिथि की भी पुष्टि होती है। इस प्रकार 'छन्द राउ जैतसी रौ' राजस्थानी भाषा का श्रेष्ठ ऐतिहासिक काव्य है।[५६]

सह-आचार्य, इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर (राज.)

सन्दर्भ सूची

१. परम्परा, छन्द राउ जैतसी रौ, (टीकाकार पारीक सूर्यकरण) सम्पादकीय, परम्परा, डॉ.टैसीटरी द्वारा राजस्थानी ग्रन्थों का सर्वेक्षण, अंक २८-२९, पृ.११५,

२. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास खण्ड, पृ.१३२-१३८

३. प्राणेश, मूलचन्द (सम्पा), छन्द राउ जइतसी रउ (वीठू, सूजा रउ कहियउ), पृ.३, ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, खण्ड । पृ.११९ एवं १३६

४. परम्परा, अंक ९८-९९ सम्पादकीय, ओझा, पूर्वो पृ.१३२

५. परम्परा, वही, जिज्ञासु मोहनलाल, वही पृ.१३३

६. लालस, सीताराम, राजस्थानी भाषा साहित्य एवं व्याकरण पृ.१२४-१२५

७. सूजा वीठू, छन्द राउ जइतसी रउ, छन्द २

८. सकखहर राउ सिरिवधी सेस, इकपत्ति हुअउ सिरि दसां देस ।
मंडोवर लियउ मल्लेछ मारि, विड्डारि सत्र मिरिया वहारि ॥४ ॥

९. सूजा वीठू, पूर्वो., छन्द ८

१० वही छन्द ९

११. वही छन्द १०.

१२. वही छन्द ११

१३. वही छन्द १३ मूलचन्द प्राणेश ने जैसलमेर के शासक का नाम राव केल्हण लिखा है । देवराज कौन था इसके सम्बन्ध में वे मौन हैं । द्र.पूर्वो. पृष्ठ १७

१४. वही छन्द १४, १६

१५. वही, छन्द १८-२०

१६. रेउ, विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग पृ.५८-६४,

१७. शर्मा, जी.एन. राजस्थान का इतिहास, पृ.२५२ इस संघर्ष का विवरण नैणसी री ख्यात में भी मिलता है ।

१८. सूजा वीठू, पूर्वो. छन्द २७ राठौड़ गोविंदसिंह (सं), मारवाड़ की सांस्कतिक धरोहर पृ.१०,

१९ वही छन्द २९, गहलोत ने इनका नाम अक्र्क और अहाड़ा हिंगोला दिया है । (मारवाड़ राज्य का इतिहास) पृ.९७

२०. दयालदास इस मत से असहमत है । शर्मा दशरथ, लैक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ.९२ ओझा, गौरी शंकर हीराचन्द, जोधपुर राज्य इतिहास, १ पृ.२४५

२१ शर्मा दशरथ, वही पृ.८५

२२. रेउ मारवाड़ का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ.८३-१०३

२३. प्राणेश मूलचन्द, पूर्वो., पृ.५

२४. वही पृ.२०-२३, छन्द ३९ से ५० तक

२५. ओझा, पूर्वो.पृ.१००

२६. प्राणेश मूलचन्द, पूर्वो. पृ.२३

२७. पारीक सूर्यकरण, टीकाकार, छन्द राउ जैतरी रौ, परम्परा ९८-९९ पृ.२१

२८. ओझा, पूर्वो.पृ.९०-१११

२९. ओझा, पूर्वो.पृ.९४, देवी प्रसाद मुंशी, राव बीकाजी का जीवन चरित्र पृ.३५-३९, दयालदास की ख्यात, जिल्द २ पृ.५-६, जोधपुर राज्य की ख्यात, जि.१, पृ.५६, ४६-४७, श्यामलदास वीर विनोद भाग-२, पृ.४८०

३०. सूजा, बीठू, छन्द राउ जइतसी रउ, छन्द ५०
३१. यहां मूलचन्द प्राणेश छन्द का अर्थ करणीजी के देहरे पर ध्वजा चढ़ाना से करते हैं (पूर्वो. पृ.२४ छंद ५४) जबकि सूर्यकरण पारीक लूणकरण को धर्म की ध्वजा फहराने का श्रेय देते हैं हैं (पूर्वो.पृ.२२) दीनानाथ खत्री (बीकानेर राज्य का इतिहास पृ.६) ने प्राणेशजी का समर्थन किया है।
३२. ओझा, पूर्वो.पृ.११४, छन्द राउ रजइतसी रउ, छन्द सं.६१
३३. सूजा वीठू, छन्द ७५-८१
३४. फिरोज खां कौन था यह ज्ञात नहीं है।
३५. ओझा पूर्वो. पृ.११८
३६. सूजा वीठू, पूर्वो.छन्द ८२-९२ जर्नल आफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल १९१७ पृ.२३८-२३९
३७. ओझा, पूर्वो.११९.
३८ प्राणेश मूलचन्द, पूर्वो.छन्द राउ जइतसी रउ, छन्द सं.९४-१०४
३९. ओझा, पूर्वो.पृ.१२२-१२८
४०. सूजा वीठू, छन्द राउ जइतसी रउ, छन्द सं.११५
४१. वही, छन्द ११६-११९, टैसीटरी (सं.) छन्द राउ जइतसी रउ, वीठू, सूजइ रउ कहियउ, भूमिका पृ.(४) देखें पारीक का अनुवाद पृ.३३
४२. वही छन्द, १२३-१३५
४३. वही छन्द सं.१३७-१४०
४४. शर्मा, एस.आर.भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास पृ.२०-२२७
४५. वही पृ.२३४
४६. सूजा वीठू, पूर्वो., छन्द १४१-१६१
४७. वही, छन्द १६२-१६६
४८. पूर्वो.छन्द १६७-१७६
४९. वही, छन्द १८१-१८७, कामरान की भटनेर विजय की पुष्टि नैणसी की ख्यात (खण्ड २ पृ.१९२), दयालदास की ख्यात जिन्द-२ पृ.१४ से होती है । इन ग्रन्थों में किसी जैन साधु द्वारा कामरान को भटनेर (हनुमानगढ़) पर आक्रमण करने हेतु आमंत्रित करने का उल्लेख मिलता है जिसे ओझा ने निराधार माना है।
५०. सूजा, वीठू, पूर्वो.छन्द १९०-१९५
५१. ओझा, पूर्वो, पृ.१३१, वीठू सूजा, पूर्वो छन्द २१६
५२. सूजा, वीठू, वही, छन्द २१६-२३५
५३. वही छन्द २३६-३४२
५४. सूजा बीठू, पूर्वो.छन्द ३६१-४००, खत्री, पूर्वो.पृ.१४, ओझा, पूर्वो.पृ.१३१-१३२, राजस्थानी मासिक माणक, सितम्बर १९८४ पृ.३६ । युद्ध की तिथि का विवरण इस प्रकार है:
पनर समत एकावण पक्खरि, पुणि मागासिरि प्रथम पखि पूंवरि ।
हठमल हइवइ संउ हथियारे, विढियउ जउदूत चइभि सिनिवारे ॥
५५. टैसीटरी (सं.) छन्द राउ जइतसी रउ, भूमिका, पृ.(१)
५६. लालस सीताराम, पूर्वो.पृ.१२५, टैसीटरी, वही, प्राणेश मूलचन्द, पूर्वो.पृ.३-८, शेखावत कल्याणसिंह, राजस्थानी भाषा, साहित्य संस्कृति, पृ.१४३, ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, खण्ड, पृ.१३२ । डा.दशरथ शर्मा, मोतीलाल मेनारिया, और गोविन्द अग्रवाल आदि विद्वान् छंदराउ जैतसी रौ, ग्रन्थ की ऐतिहासिकता के प्रति श्रद्धावान् हैं।

छन्द राउ जइतसीरो-वीठू सूजा कृत भाषा काव्य ग्रन्थ में

जैसलमेर के राव केल्हण और रावल जैतसी का इतिवृत्त

दीनदयाल ओझा

राजस्थान के इतिहास की गहन जानकारी हेतु जितना महत्व ख्यातों, तवारीखों, शिलालेखों, पट्टों, परवानों, गोवर्द्धनों, सिक्कों, पट्टावलियों, तीर्थ यात्रा वृत्तान्तों, भाटों की बहियों आदि आदि को दिया गया,उतना महत्त्व भाषा काव्य ग्रन्थों को नहीं मिल पाया । पर इतिहासविद् डा.रघुवीर सिंह सीतामऊ प्रभृति विद्वानों ने विविध भाषा काव्य ग्रन्थों का गहन अध्ययन करके उनमें प्रामाणिक ऐतिहासिक सूत्रों का अनुसंधान किया ।

प्राचीन भाषा-काव्य ग्रन्थों में जैसलमेर के यदुवंशी शासक:-

जैसलमेर के यदुवंशी शासक राजस्थान के उन प्राचीन शासकों में से हैं, जिनका भारत के ही सुविशाल क्षेत्र पर नहीं, अपितु गजनी, मुल्तान, सिंध तक का क्षेत्र इनके अधीन था । वर्चस्व के इस चरम बिन्दु पर पहुँचे यदुवंशी भाटी शासकों को एक ओर मुसलमान शासकों से लोहा लेना पड़ा तो दूसरी तरफ आस-पास के क्षत्रिय राजपूतों और जोधपुर, मंडोर, बीकानेर, सिंध के शासकों से भी । पिता-पुत्र या भाई-भाई से रूठकर अथवा अपनी स्वतंत्र स्वेच्छाचारी भावना के बल पर कभी राज्य त्याग और कभी नवीन राज्य अथवा ठिकाना स्थापित करने हेतु संघर्ष करना या संघर्ष झेलना पड़ा । अत: राजस्थान के इतिहास विषयक अनेकानेक भाषा काव्यों में जैसलमेर के अधिशासकों का ऐतिंहासिक वर्णन अवश्य उपलब्ध होता है ।

छन्द राउ जइतसी रउ में राव केल्हण:-

डा.दशरथ शर्मा के अनुसार महाराज केल्हण अपने समय का प्रसिद्ध व्यक्ति था ।

जैसलमेर के रावल केहर का सबसे बड़ा पुत्र होने पर भी पिता की इच्छा के बिना अन्यंत्र सगाई कर लेने के कारण वह जैसलमेर गद्दी पर न बैठ सका। कुछ समय बाद केल्हण ने पूगल पर भी कब्जा कर लिया। यह पहले रावल लखणसेन के पुत्र राणागदे भाटी के अधिकार में था। राणगदे भाटी मंडोर के राव चूंडा के साथ मारा गया।

पूंगल की विधवा रानी को इस बैर का बदला लेने का वचन देकर केल्हण पूगल के समान समुद्र स्थान का स्वामी बन गया।[१]

राव केल्हण के अधीन नीचे सिरने कोट थे-

'पूगल बीकूंपुर पुगवि मूंमणवांह मरोट।

देरावर ने केइरोर, केल्हण इतरा कोर॥'[२]

'छन्द राउ जइतसी रउ' के छंद संख्या ११ से २० तक में इसी इतिहास पराक्रमी केल्हण प्रसिद्ध का वर्णन बड़ी ही भव्यता के साथ चारण कवि वीठू सूजइ ने अधोलिखित रूप में वर्णित किया है।

राव चूंडा चारों ओर से द्रव्य उगाहने लगा। इससे यवन सेना एकत्रित करने लगे। यवन शासक खिद्दिरखां क्रोधित हो राव चूंडा से शत्रुता करने लगा तथा उसने राव चूंडा पर आक्रमण भी कर दिया। मुल्तान के बादशाह अपने दीवान में बीड़ा रखा। इस बीड़े को सांखला एवं भाटी सरदारों ने सुसज्जित होकर तैयारी के साथ ग्रहण किया। जैसलमेर के राव केल्हण ने अपनी मूंछों को ताव देते हुए असंख्य सेना के साथ प्रयाण किया। देवराज ने अपने प्रबल शत्रु से जांगलू हस्तगत करने के लिए यवन सेना को भी साथ ले लिया। बादशाह पंचनद को पार करके कोट मरोठ में आ उतरा। चाचि ने सुल्तान की सहायता की। उसने अपने कुंए जुतवाकर पानी से तालाब भरवा दिये। राव चूंडा को मार कर प्रतिशोध लेने हेतु वे सभी कवच धारण करके तथा तलवारों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए तत्पर हुए। उन्होंने जांगलू को लक्ष्य बनाकर अपनी सेना को चलाया तथा जांगलू के केशोलाव तालाब पर अपनी सेना को पानी पिलाया। शत्रुओं के लिए कुठारस्वरूप राव धूधा के वंशज राव चूंडा ने स्नान करके कंठ पर माला धारण की। उसने अपने हाथों में तलवार पकड़ी। तत्पश्चात् उसने जौहर की चिता में अग्नि प्रज्वलित की और अत्यधिक उत्साहित होकर आकाश तक जा लगा। जौहर की अग्नि में थोड़े से समूह में सतियों ने प्रवेश किया। राव वीरम के पुत्र चूंडा ने अपने हाथों से अग्नि दी तथा सिंह के समान चलते हुए दुर्ग के किवाड़ों को खोल कर अलग अलग कर दिया। राव वीरम का पुत्र प्रजापालक राव चूंडा कवचित होकर दोनों सेनाओं के मध्य प्रविष्ट हुआ। ढोल बजने लगे। वीरों की हाक होने लगी। धनुष की प्रत्यंचाएं गूंजने लगीं, जिससे आकाश ध्वनित हो उठा। दस योद्धा प्रतोली के द्वार पर काम आये। अपने स्वामियों के साथ आठ स्त्रियों ने अग्नि प्रवेश किया। राव चूंडा स्वर्ग पहुँचा।

जैसलमेर री ख्यात के अनुसार वि.सं.१४६५ रै माह में राठौड़ चांवडैजी ने (केल्हण) मारीया॥[३]

राव केल्हण का शिलालेख:

इसी असाधारण वीर, धैर्य का धनी, आत्मविश्वासी कुल गौरव संरक्षक और राव चूंडा का गर्व मर्दन कर उसे पंच तत्व में मिलाने वाला राव केल्हण का एक महत्व पूर्ण शिलालेख भी श्रीगंगासिंह गोल्डन जुबिली म्यूजियम बीकानेर में उपलब्ध है। जैसलमेर के पत्थर पर कलापूर्ण महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति, जिसे देवीश्री अंटालि कहा गया है, से युक्त इस शिलालेख की मूल पंक्तियां इस प्रकार हैं-

पंक्ति १ संवत् १४७५ वर्ष कार्तिक सुदि षष्टी (ष्ठी) सु (शु) क्र दिने

पंक्ति २ देवी श्री अंटालि सह । महाराज श्री केल्हण

पंक्ति ३ करावितं । कमर श्री चाचा । सूत्रधार हापा अटितं ॥

छंद राउ जइतसी रउ में राव लूणकरण का जैसलमेर पर आक्रमण:-

बीकानेर के राव लूणकरण ने जैसलमेर के अपने समकालीन राव जैतसी पर आक्रमण करके उसे पराजित किया। नगर को विजयी सेना ने लूटा। डा.ओझा के अनुसार लूणकरण एक मास तक अड़सीसर पर रहा, परन्तु भाटी गढ़ से बाहर न निकले और उन्होंने भीतर से ही आदमी भेज कर सुलह कर ली। इस पर लूणकरण ने जैतसी को मुक्त कर जैसलमेर उसके हवाले कर दिया तथा अपने पुत्रों का विवाह उसकी पुत्रियों से किया। अनन्तर अपनी सेना सहित लूणकरण बीकानेर लौट गया।[४]

'जैसलमेर री ख्यात' में इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का विशद वर्णन तो क्या संकेत भी रावल जैतसी के वर्णन में उपलब्ध नहीं होता पर 'छंद राउ जइतसी रउ' के रचयिता चारण कवि वीठू सूजा ने बड़ा ही सुन्दर और जीवन्त वर्णन प्रस्तुत किया है, जिसकी भाव भरी वीररस पूर्ण पंक्तियों का भाव अधोलिखित रूप में पठनीय है:-

राव लूणकरण अपनी सेना के साथ चढ़कर पोकरन पहुँचा। वह युद्धवाद्यों को बजाकर इस प्रदेश को नष्ट करने लगा। तत्पश्चात् वह अपने घोड़ों को लेकर नगाड़ों पर डंका देते हुए जैसलमेर के ऊपर चढ़ चला। चक्रवर्ती राव लूणकरण ने भाटियों के शासन का उच्छेदन करने हेतु राठौड़ों की सेना बनाकर आक्रमण किया। जैसलमेर के मार्ग को सेना के अश्वों के खुरों की धूलि से धूमिल कर दिया। जांगलू का राव लूणकरण युद्ध जीतने के लिए अपनी अनगिनत सेना एकत्र करके जैसलमेर के दुर्ग पर पहुँचा। राव लूणकरण अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बारहवें महीने ढोल बजवाता हुआ जैसलमेर पहुँचा। जैसलमेर का शासक (रावल) दिन के युद्ध में राव के समक्ष नहीं आ सका।वे ठीक सायंकाल के समय युद्ध के लिए एकत्र हुए अथवा भिड़े। राव लूणकरण एवं जैसलमेर की भाटी सेना के दोनों दल अपने अपने हाथियों द्वारा भिड़े। युद्ध करने के लिए प्रतापसिंह निर्भय होकर अपने पिता से आगे आया। राव लूणकरण ने अपने प्रहार से भाटी शासक एवं सरदारों को एक ही मार्ग पर लाकर पराजय स्वीकार करवाई। रात्रिकालीन आक्रमण में जैसलमेर के रावल को पराजित किया तथा अपनी सेना को लेकर तालाब पर पहुँचे। राव लूणकरण ने विजय अर्जित की। अपने हाथियों को जैसलमेर

के तालाब पर ले जा कर मीठा पानी पिलाया । राव लूणकरण भाटी प्रदेश को नष्ट भ्रष्ट करके विजय प्राप्त करता हुआ लासांवर पहुँचा । (छंद संख्या ६५ से ७३)

विद्वानों की दृष्टि में छंद राउ जइतसी रउ और उसका रचयिता वीठू सूजइ (सूजा):-

वीठू नगराज के पुत्र सूजा वीठू का जन्म गांव उदासर तहसील सरदार शहर जिला चूरु में हुआ । सूजा वीठू असाधारण प्रतिभा का धनी और डिंगल भाषा एवं छंद शास्त्र का मर्मज्ञ था । बीकानेर के राव जैतसी ने उसकी काव्य प्रतिभा से प्रभावित हो १२ गांवों की ताजीम और लाखपसाव दिया था । प्रदत्त गांवों में पाबूसर और सिलेरिया विशेष उल्लेखनीय हैं । इस प्रसंग का साक्षी स्वरूप अधोलिखित दोहा आज भी प्रचलित है ।

'जैतराण जाणै जगत, वंस व धारणवांन ।
सूजै नै दी सौ सहस, थिर पाबू सर थान ॥'

विद्वान् डा.शक्तिदान कविया के शब्दों में -'इतिहास की दृष्टि से 'छंद राउ जैतसी रउ' एक विशेष महत्त्व पूर्ण काव्य कृति है ।—पूरे ग्रन्थ में कहीं पर भी कपोलकल्पित, अतिरंजित अथवा अलौकिक तत्वों का उल्लेख न मिलना, इस कृति की ऐतिहासिक महत्ता का पुष्ट प्रमाण है । यह एक वीररस प्रधान ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य है ।' एक चारण कवि की ऐतिहासिक डिंगल रचना होने के कारण इसमें राजस्थान की शौर्य प्रधान संस्कृति के अनेक प्रेरक प्रसंग अंकित हैं ।[५] डा.मोहनलाल जिज्ञासु के शब्दों में 'छंउ राउ जइतसी रउ' सबसे प्राचीन होते हुए भी एक अद्वितीय ग्रन्थ है क्योंकि इसमें वर्णित घटनाओं का उल्लेख इतिहास में नहीं हुआ है । अनेक स्थानों पर अखिल भारतीय इतिहास के महत्व की घटनाएं भी हैं ।[६] डा टेसीटोरी, डा.गौ.हीराचंद ओझा डा.दशरथ शर्मा, डा.रघुवीर सिंह, डा.हीरालाल माहेश्वरी प्रभृति विद्वानों ने प्रस्तुत काव्य की नाना रूपों में भूरि भूरि सराहना की है । वस्तुत: राजस्थान के इतिहास विषयक भाषा काव्यों में 'छंद राउ जइतसी रउ' एक अनूठी असाधारण, अद्वितीय कृति है जिसमें इसके रचयिता के प्रामाणिक इतिहास बोध की जितनी सराहना की जाय, कम होगी ।

साहित्य साधना सदन
केला पाड़ा, जैसलमेर

---

१. डा.दशरथ शर्मा लेख संग्रह-हिन्दी विश्व भारती अनुसंधान परिषद,बीकानेर पृ.सं.९३ व ९४
२. मुंहता नेणसी री ख्यात-रा.प्रा.वि.प्र.जोधपुर पृ.स.११५
३. पृ.सं.६० जैसलमेर री ख्यात राज. शोध संस्थान चौपासनी,जोधपुर
४. बीकानेर राज्य का इतिहास डा.गौ.हीराचंद ओझा पृ.सं.११५ व ११६
५. छंद राउ जइतसी रउ - सं. मूलचन्द प्राणेश पृ.सं.५,१३
६. चारण साहित्य का इतिहास पृ सं. २१०

कान्हड़दे-प्रबंध में सैनिक पराजय के समाधान का मूल्यांकन

-डॉ.महावीर सिंह गहलोत

'पुण्य विवेक' विरुद धारी कवि पद्मनाभ ने अपनी काव्य कृति में 'कान्हड़दे प्रबन्ध' को रचकर, राजस्थान के ऐतिहासिक व साहित्य भण्डार में अपूर्व योगदान दिया है । यह दोनों विधायें तो प्रसिद्ध ही हैं परन्तु इस सराहना के अतिरिक्त, इस रचना के 'इतिहास बोध' पर ध्यान आकर्षित करना इस समय अपेक्षित है । यह कृति अपने प्रमाणिक पाठ में उपलब्ध है । इसके अपरनाम 'श्री राउल कान्हड़ पावडू रास' अथवा 'श्री कान्ह चरिय' रचना के मन्तव्य को और भी स्पष्ट कर देते हैं । स्वयं रचना में उल्लेखित है कि यह रचना जालोर पतन (पराजय) के १४५ वर्ष पश्चात् पूर्ण हुई (का.प्र.३/३४३) । रचना का सृजन उसी राजवंश के वंशज अखेराज के सान्निध्य में एवं उसी जालौर के स्वर्णगिरी पर स्थित दुर्ग में हुआ है । इन परिस्थितियों में साधन एवं आधार पर सामग्री प्रामाणिक उपलब्ध रही होगी, ऐसी अवधारणा सही ही की जानी चहिए ।

ऐतिहासिक तथ्यों के अस्थिपंजर को तात्कालिक समाज की भावनाओं व आकांक्षाओं की मांस-मज्जा देकर, घटना के उस समय के इतिहास को मूर्तरूप इस कृति में दिया है । भाषा तो वाहन है और इसके सहाय्य के अभाव में तथ्यों का अस्थिपंजर गतिहीन पड़ा रहेगा । तथ्य व समाज की भावनाओं का मूर्त रूप इतिहास होता है । इस प्रक्रिया में जब अलंकरण का सहयोग लिया जाता है तो यह कोरा इतिहास, फिर अपना मोहक रूप धारण कर, काव्य की श्रेणी में भी स्थान पा जाता है । इस प्रक्रिया में रचनाकार की कल्पना के द्वारा जो योगदान होता है, वो उस कृति का प्रयोजन अथवा ध्येय होता है । यह कल्पना अधिकांश में चित्तविनोद अथवा विद्याविलास हेतु होती है, परन्तु युग

निर्माता कवि इसी प्रक्रिया में अपना 'इतिहास बोध' भी जोड़ देते हैं ।

यह योगदायी अंश, उपेक्षा के कारण क्षेपक कहकर टाल भी दिया जाता है । कभी इसे कल्पना इतिहास-विरुद्ध निरर्थक आदि शब्दावली से नामांकित कर, ऐसा अंश त्याज्य कर दिया जाता है । ऐसा अंश किसी प्रयोजन के कारण ही रचनाकार द्वारा उस कृति में समाहित किया जाता है और ऐसे अंश को पहिचानकर उसका मूल्यांकन करना उसके 'इतिहास बोध' को समझना है ।

यह तो इतिहास के तथ्यों से १०० प्रतिशत सिद्ध है कि दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी सल्तनत का विस्तार, दक्षिण विजय के पश्चात् पश्चिमी भारत में किया, हिन्दुओं के सुदृढ़ गढ़ ध्वंस होने लगे । रणथम्भोर व चित्तौड़ के पतन से देशवासियों की स्व-राष्ट्र की भावना के स्वाभिमान को नष्ट कर दिया । इसके पूर्व तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के दलबल की पराजय, राष्ट्रीय शासन की कमर तोड़ ही चुकी थी । विदेशी आक्रान्ता रणथम्भोर व चित्तौड़ के पश्चात् सिवाणे (जिसके समियाणा आदि अपरनाम भी है) की ओर बढ़ा । वहां वीर सातलदेव को परास्त कर दुर्ग पर अधिकार कर लेता है, तो जनमानस व हिन्दू-शासक-कुल स्तम्भित हो जाते हैं । आगे कुछ समय बाद, यही दशा जालोर की होती है । इन पराजयों से सारे देशवासी निराशा के सागर में डूब गये । पद दलित, ऐश्वर्यहीन, राज्यहीन व पराजित मनोदशा सर्वत्र छाई थी । यह वह स्थिति थी कि उसे भुलाया नहीं जा सकता था । दशक ही नहीं शताब्दी बीत गई । नई पीढ़ियों की सन्तान अपने विगत इतिहास को स्मरण करती व ज्ञात करती तो किस प्रयोजन के लिए ? क्या पराजित तथ्य उन्हें उत्साह दे सकते थे ? वे किस हेतु जीयें ? गाय, गंगा, तुलसी व सालिगराम के प्रबल भक्त अवतारी कान्हड़दे भी असफल रहे । पर-नारी को पूज्य मानने वाले वीरमदे भी क्या काल के मुंह में नहीं गये ? क्या फल मिला, धर्म व संस्कृति के पालन करने से ? इस आचरण का अंत क्या दुःखद नहीं हुआ ? आदि आदि अनेक प्रश्न व शंकाओं का अम्बार लगा होगा । भावी पीढ़ी इसके उत्तर की अपेक्षा करती ही होगी ?

ऐसे संकटकाल में कवि पद्मनाभ अपनी कथावस्तु और उसके पात्रों के आचार-विचार शुद्ध रूप में प्रस्तुत करते हुए, अपनी कल्पना द्वारा, इस पराजय की स्थिति का समाधान प्रस्तुत करता है । वह अवलम्ब लेता है, उस दिव्य शक्ति का जिसके प्रति श्रद्धा व धर्म भाव जन मानस में अभी भी बचा था । वह भावी आशा को जीवित रखने के लिए कर्म गति और जन्मान्तर का सिद्धांत अपने कथानक में प्रस्तुत करता है । कथानक के पात्रों द्वारा वह भविष्यवाणी भी कराता है, जिसमें वह वार, तिथि, मास व संवत् देकर उसको प्रामाणिक रूप देता है । वह प्रेरणा देता है कि अन्ततोगत्वा धर्म की ही जय होगी । धर्म के पालन से पुण्य (सद्फल) प्राप्त होगा । दृढ़ ध्येयधारी, अनुरागी कवि अपने को 'पुण्य विवेक' विरुद को इस प्रकार सुशोभित करता है ।

अब इस रचना में पराजय के कारणों का समाधान जो दिया है, उनका अवलोकन करना समीचीन होगा ।

सातलदेव (समियाणा) को ईस दर्शन

सिवाणा दुर्ग की लम्बी नाकाबन्दी व घेराबन्दी, जो वर्षों तक चली, के कारण दुर्ग में सामग्री का अभाव होने लगा। इस विकट स्थिति से ग्रस्त होकर सातलदेव अपनी आराध्य देवी आशापुरी से प्रार्थना करता है कि वह उसका संकट दूर करें। देवी उसका हाथ पकड़कर, उसको ले जाती है और नींद में सोते हुए सुल्तान की ओर देखने के लिए कहती है- [२/१३१-१३९]

बे कर जोड़ी करी वीनती, आसापुरी अवधारि।
सातल भणइ भांजि तुं संकट, असुर सवे सिंहारि॥
हूइ पसाउ अंबिका तूठी, दीठउं प्रत्यक्ष रूप।
बांह धरी दलि जई देषाडिउं, नीद्रिइ पउढय्यउ भूप॥
दीठां नयण त्रिणि मुष पांचइ, कपिल जटा सुविसाल।
रुडमाल दीठी करि तंबा, दीठउं ब्रह्मकपाल॥
जटामुगट मांहि गंगा दीठी, अंगि भसमीअ धूल।
बाधचंब पांगुरणे दीठां, दीठउं वली त्रिमूल॥

दूहा :

चित्ति चमक्यउ चिंतवइ, रंगि रहिउ सिर नामि।
पदमनाभ पंडित तणउ, सांतलि दीठउ स्वामि॥

पवाडु :

रुद्र रूपि सुरताण अवतरिउ, किम घालीजइ घाउ।
हियइ बात विमासी संतलि पाछउ दीधउ पाउ॥
वली विमासी पासइ हुंतउ, गुर्ज लीउं अहिनाण।
विण संकेत कहीइ केतलइ, नहीं मानइ सुरताण॥
आसापुरी तणे पाए लागी, गढि आव्यउ चहूआण।
सकल सरूप जाणीउं संतलि, तुहि न मूंकइ माण॥
कहइ प्रधान एक परि कीजइ, अवधारउ सुरताण।
गए ऊपरि छइ एक सरोवर, तिणइ करउ विनाण॥

ऊपर लिखे सारे दृश्य को देखकर कि सुल्तान स्वयं भगवान शिव का अवतार है, सातलदेव संतुष्ट हो जाता है और सोये हुए सुल्तान के पास से गुर्ज (गदा) उठाकर स्मृति-चिन्ह के रूप में ले आता है। इस गदा को वह वापिस सुल्तान के पास भेजता है, तो सुल्तान सातलदेव पर जो दिव्यकृपा है, उससे अवगत हो जाता है और कामना करता है कि वह उसे मिल जावे परन्तु सातलदेव क्षत्रिय की शान में युद्ध को नहीं रोकता है और प्राणों की आहुति देता है। उसकी मृत देह से जो रक्त गिरा उसका टीका अलाउद्दीन अपने ललाट पर करके उसकी वन्दना करता है। इस प्रकार से सातलदेव

का दु:खद अन्त (पराजय) बहुत सुखद रूप में पाठक के सम्मुख प्रस्तुत होता है कि मरने पर भी उसका इतना सम्मान हुआ (का.प्र.२/१६७)।

कान्हड़दे को स्वप्न में जालोर दुर्ग के दर्शन

कान्हड़दे को स्वप्न में स्वयं जाबाली-दुर्ग मूर्तरूप धारण कर दर्शन देता है और उसे सावधान कर देता है कि वह चिन्ता न करे। दुर्ग में धन-धान्य परिपूर्ण रहेगा (का.प्र.३/२०७)। परन्तु तथ्यों को जानने वाला पाठक/श्रोता पराजय (अन्त) की राह देखता है। यहां पर कवि कथानक में जन्म जन्मान्तर की रीति और कर्मगति सम्बन्धी भविष्यवाणियां सुल्तान की पुत्री सीताई अपरनाम पिरोजा के मुख से कराता है। वह निश्चित समय बताती है कि इस युद्ध में कब और किसका अन्त कब होगा (का.प्र.३/२०७)। रचना का पाठक या श्रोता इस पराभव को भाग्य के अधीन मानता है और कवि के कथानक के साथ वह अपना साहस और आशा के भाव बनाये रखता है। इस संदेश को कवि ने मृत्यु का वरण करने जाती महिलाओं के मुंह से कहलवाया है-

विषम कर्मगति किम टलई, हो मनि विषाद म आणि।
भगति मुगति दानेश्वर सुणीई, समरि न सारंगपाणि ॥ (का.प्र.४/२४४)

रचना के अंत में धर्म के लिए त्याग व बलिदान के पराक्रम की कथा श्रवण की फलश्रुति दी है।

इतनी चर्चा के पश्चात् यह निष्कर्ष निकालना समीचीन होगा कि पराजित एवं उत्साहहीन समाज को समाधान देकर, कवि ने समाज को जागृत किया कि पिछली घटनाओं पर मानव का नियंत्रण नहीं था, वे भावी थी, इस कारण वे घटी। धर्म पालन और मर्यादा में रहने से भावी उज्ज्वल है। यह सोनगिरा चौहानों का राज्य इसी वंश के पास रहेगा। यह बात तो बहुत सही है क्योंकि पद्मनाभ जब अपनी रचना सुना रहा होगा तो उसके सम्मुख उस समय का शासक सोनगिरा चौहान अखेराज, अपना मस्तक हिलाकर स्वीकृति दे रहा था।

मेड़ती गेट के अन्दर
जोधपुर

किसना आढ़ा कृत 'महाराजा गजसिंघजी रो छंद' एक समालोचनात्मक अध्ययन

डा.शिवदत्तदान बारहठ,

ऐतिहासिक पात्रों के जीवन चरित्र, उनके क्रिया-कलापों और इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं, युद्धों का काव्यमय वर्णन करने की परम्परा राजस्थान में अति प्राचीन रही है । मध्यकाल में इस परम्परा को राज्याश्रय में रहते हुए चारण कवियों ने भली-भाँति आगे बढ़ाया । उन्होंने अपनी ओजस्वी भाषा में जिस साहित्य की रचना की वह डिंगल साहित्य की अमूल्य निधि तो है ही, साथ ही यह साहित्य समकालीन इतिहास निर्माण के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है । प्रस्तुत काव्य रचना 'महाराजा गजसिंघ जी रा छंद' भी इसी तरह की वीर रस प्रधान एक काव्य रचना है, जिसमें मारवाड़ के शासक महाराजा गजसिंह (१६१९-१९३८ ई.) के शासन काल की एक ऐतिहासिक घटना का ओजपूर्ण भाषा में वर्णन किया गया है । इस काव्य का रचनाकार महाराजा गजसिंह का समकालीन प्रसिद्ध कवि किसना आढ़ा था ।

राजस्थान के मध्यकालीन चारण कवियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त दुरसा आढ़ा का किसना आढ़ा सबसे छोटा पुत्र था ।[१] दताणी के प्रसिद्ध युद्ध (अक्टूबर १७, १५८३ ई.)[२] में राव रायसिंह चन्द्रसेणोत की ओर से लड़ता हुआ दुरसा आढ़ा घायलावस्था में रणक्षेत्र में राव सुरताण द्वारा उठाया जाकर सिरोही ले जाया गया । तब राव सुरताण ने उसको झांकर व पेशवा ग्राम प्रदान कर स्थायी रूप से अपने राजदरबार में स्थान दे दिया ।[३] इस समय सोजत परगने में नाथल कुड़ी और दुणला नामक ग्राम दुरसा आढ़ा की जागीर[४] में होने के कारण सिरोही में निवास करते हुए भी उसका मारवाड़ से यथावत संबंध बना रहा । इस घटना के कुछ समय पश्चात् मारवाड़ के शासक राजा उदयसिंह द्वारा सांसण गांवों को जब्त किये जाने पर इस राजाज्ञा के विरुद्ध आऊवा में दिये गये

धरणे [५] में दुरसाआढ़ा भी सम्मिलित हुआ था। धरणे के उपरांत मारवाड़ में वापस आ जाने का निश्चय कर दुरसा आढ़ा वापस सिरोही चला गया। लेकिन मारवाड़ के प्रति उसका लगाव बना रहा। इसी मोह के कारण उसने मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह प्रथम से मारवाड़ की सीमा पर स्थित गोडवाड़ परगने का रायपुरीया ग्राम मांग कर लिया। [६] इसके पश्चात् दुरसाआढ़ा सिरोही राज्य में मिले ग्रामों को अपने बड़े पुत्रों में बांटकर सबसे छोटे पुत्र किसना के साथ जिसका जन्म दुरसा आढ़ा की द्वितीय पत्नी, सांइया झूला की पुत्री की कोख से हुआ था, [७] रायपुरीया में निवास करने लगा। किसना की साहित्य के प्रति रुचि माता व पिता दोनों पक्षों से मिली थी। वह भी अपने पिता के समान ही उच्च कोटि का कवि और स्वाभिमानी साहित्यकार था।

इस समय मारवाड़ की राजगद्दी पर सवाई राजा सूरसिंह बैठा था। लेकिन राजा सूरसिंह अधिकांशत समय में शाही सेवा में मारवाड़ से दूर ही रहता था और अपनी अनुपस्थिति में यहां से प्रशासन की देख-रेख का सारा कार्य महाराजकुमार गजसिंह पर ही छोड़ रखा था। दुरसा ने अपने पुत्र किसना को महाराज कुमार गजसिंह के दरबार में भेजा। उसने अपनी प्रतिभा से गजसिंह को प्रभावित किया। अपने राज्यारोहण के बाद महाराजा गजसिंह ने सं.१६७७ वि.में किसना को सोजत परगने का गोडवाड़ की सीमा पर स्थित पांचेटिया ग्राम प्रदान कर [८] अपने दरबारी कवियों में सम्मिलित कर लिया।

महाराजा गजसिंह अपने युवराज काल से ही उच्च सैनिक प्रतिभा और अद्भुत पराक्रमी वीर योद्धा के रूप में प्रसिद्धि पा चुके थे। उसी के अनुरूप महाराजा ने अपने राज्यारोहण के तत्काल बाद शाही सेवा में दक्षिण में जाकर मलिक अम्बर के विरूद्ध लड़ाइयों में शौर्य प्रदर्शन करते हुए विजयश्री प्राप्त की। फलस्वरूप मुगल बादशाह जहांगीर ने सन् १६२२ ई.में महाराजा गजसिंह को दलथंभ की पदवी से सम्मानित किया। [९] महाराजा गजसिंह के इसी अद्भुत पराक्रम, रणकौशल और गुणग्राही स्वभाव ने समकालीन कवियों को प्रभावित किया और उन्होंने इन्हीं गुणों को अपने काव्यों का विषय बनाया।

महाराजा गजसिंह के राज्याश्रय में रहने वाले केसोदास गाडण और किसना आढ़ा ने महाराजा गजसिंह के वीरतापूर्ण कृत्यों पर अलग अलग काव्यों की रचना की। कवि केसोदास गाडण ने महाराजा गजसिंह के सैनिक अभियानों, विशेष रूप से सन् १६२४ ई.में जौनपुर के निकट टोंस नदी के किनारे विद्रोही शाहजादा खुर्रम की सेना से हुए युद्ध में महाराज गजसिंह द्वारा प्रदर्शित शौर्य का वर्णन 'गजगुणरूपक बंध' में विस्तार से किया है। [१०] महाराजा गजसिंह के समकालीन कवि किसना आढ़ा ने भी इसी युद्ध का सांगोपांग वर्णन अपनी लघु काव्य कृति 'महाराजा गजसिंघ जी रा छंद' में किया है। किसना आढ़ा की यह कृति अब तक अप्रकाशित ही है। वर्तमान में इस रचना की एक प्रति श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में संग्रहीत कविराजा बांकीदास मुरारदान संग्रह के ग्रंथ संख्या ३१ में उपलब्ध है। इस अप्रकाशित लघु काव्य कृति के ऐतिहासिक महत्व को ध्यान में रखते हुए विषय के संशोधकों के समक्ष विवरण प्रस्तुत समीचीन होगा-

किसना आढ़ा ने परम्परागत ढंग से अपनी इस रचना के प्रारंभ में सरस्वती एवं गणेश की वंदना करते हुए काव्य रचना के उद्देश्य को स्पष्ट किया है-

श्री सारद वंदू चलण, कर गणपत प्रणाम ।
'गजन' दखाणू महाबलि, राजा आरंभ राम ॥

सरस्वती वंदना के पश्चात् काव्य के मूल विषय वर्णन के पहले किसना आढ़ा ने महाराजा गजसिंह के युवराज काल की उपलब्धियों, उनके बल पराक्रम व सैनिक प्रतिभा और राज्यारोहण के तत्काल बाद शाही सेवा में रहते हुए दक्षिण में मलिक अम्बर के विरुद्ध किये गये सैनिक अभियानों की तरफ संकेत करते हुए लिखा है-

गढ जालंधर पालटण, ढंढोलण पाहाड़ ।
दल थंभण दोली दलां, दल दखपाद विभाड़ ॥

जालोर पर अधिकार

बादशाह जहांगीर ने जालोर के बिहारी शासक पहाड़ खां से नाराज होकर सन् १६१७ई. को उसको मरवा कर [११] जालोर का इलाका शाहजादा खुर्रम को जागीर में दे दिया । लेकिन जालोर पर अधिकार न हो सका । तब बादशाह से जालोर का दुर्ग मारवाड़ के शासक राजा सूरसिंह को दिया । इस समय सूरसिंह दक्षिण में था, अतः उसने दुर्ग पर अधिकार करने का दायित्व युवराज गजसिंह को दिया, गजसिंह ने जालोर पर सैनिक अभियान पर केवल तीन मास के संक्षिप्त समय में नारायण दास काबा की मदद से भादवा सुदी ९, १६७४[१२] वि.शनिवार, अगस्त ३०, १६१७ ई.के दिन जालोर दुर्गपर अधिकार कर [१३] तथा वहां से बिहारियों को मार भगाया । महाराज कुमार गजसिंह की इस उपलब्धि के लिए एक प्राचीन दोहा भी प्रचलित है-

बारे वरस अलावदी, खप छूटो पतसाह ।
चढ़िया घोड़ा सोनगढ़ तै लीनों गजसाह ॥

ढंढोलण पहाड़-

किसना आढ़ा द्वारा दिया गया संकेत 'ढंढोलण पहाड़' से तात्पर्य महाराज़ कुमार गजसिंह द्वारा विद्रोही कर्मसेन राठौड़ के उपद्रव को शांत करने के लिए अरावली पहाड़ों में उसका पीछा करना और वहां के उपद्रवी मेर और भोमियों का सफलतापूर्वक दमन करने से है ।

दलथंभण दीली दलां, दल दखणाद विभाड़ ॥

मारवाड़ के शासक सवाई राजा सूरसिंह का स्वर्गवास शाही सेवा में दक्षिण में रहते हुए मेहकर के थाने पर हुआ । इसके पश्चात बादशाह जहांगीर ने गजसिंह को मारवाड़ राज्य का टीका प्रदान किया । तथा उसको दक्षिण में नियुक्त किया । इस समय दक्षिण में शाही सेना अहमद नगर और उसके प्रधानमंत्री मलिक अंबर के विरूद्ध सैनिक अभियानों में लगी हुई थी । महाराजा गजसिंह ने अपनी सेना के साथ मलिक अंबर के विरुद्ध सैनिक अभियान कर उसको आत्म समर्पण

के लिए मजबूर किया । महाराजा की इन्हीं उपलब्धियों की ओर किसना आढ़ा ने संकेत करते हुए महाराजा गजसिंह के लिये 'दिल्ली की सेना को स्थिर कर दक्षिण की सेना को नाश करने वाला' विश्लेषण का प्रयोग किया है । बादशाह जहांगीर ने भी इस समय महाराजा गजसिंह को दलथंभ की पदवी और मनसब में इजाफा प्रदान किया ।[१४]

महाराजा गजसिंह के शौर्य वर्णन के पश्चात् कवि ने उसको अद्वितीय बताते हुए काव्य के मुख्य विषय का वर्णन भुजंगी छंदों में किया । किसना ने महाराजा गजसिंह के शौर्य वर्णन के बाद शाहजादा खुर्रम के विद्रोह और उसकी विद्रोही गतिविधियों का वर्णन करते हुए विद्रोही शाहजादे को दबाने के लिए शाहजादा परवेज की नियुक्ति तथा उसके साथ हिन्दू मुसलमान अमीरों को तैनात करने का उल्लेख किया है ।

तेड़ाये दरबार हींदू तुरक्कं ।
चकत्ते किया हेकठां च्यार चक्कं ॥

इस समय विद्रोही शाहजादे की सेना का नेतृत्व भीम सिसोदिया कर रहा था तथा उसने पटना पर अधिकार कर लिया था । तब बादशाह ने अपने पुत्र शाहजादा परवेज के नेतृत्व में एक सेना खुर्रम के विरुद्ध भेजने का निर्णय लिया । उसके साथ बादशाह जहांगीर ने भीम सिसोदिया के विरुद्ध महाराजा गजसिंह को भेजने का निश्चय किया । इस समय महाराजा गजसिंह जोधपुर में निवास कर रहा था । विकट परिस्थितियों को देखते हुए जहांगीर ने महाराजा गजसिंह को भी शाही दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी । किसना ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है-

रौंदा राव जप्पै वडा रिम्म राहं ।
दला ऊपरा तेग झालो दुबाहं ॥

आज्ञानुसार महाराजा गजसिंह अपनी सेना के साथ जोधपुर से रवाना होकर २१ उर्दीबहिश्त सन् १८ जुलूस तदनुसार वैशाख सुदी १२, १६८१ वि.मई १, १९२३ ई.के दिन महाराजा गजसिंह, जहांगीर के समक्ष उपस्थित हुआ । इसके चार दिन पश्चात् २५ उर्दीबहिश्त सन् १८ जुलूस, मई ५, १६२३ ई.के दिन बादशाह जहांगीर ने महाराजा गजसिंह के मनसब में इजाफा प्रदान कर उसको परवेज के साथ नियुक्त किया ।[१५] किसना ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है-

गजस्साह मांझी गजां थाट साहै ।
सुरत्ताण माथै फुरम्माण साहै ॥

महाराजा गजसिंह ने इस आज्ञा को स्वीकार करते हुए-

निहतौ लियो नेत गंगेव नीड़ो ।
बुंदेला मुगल्लां विचै झाल बीड़ौ ॥
करै ऊठियौ कोप धूणै कबांण ।
सुरत्ताणं सूं हींदुओ सुलताणं ॥

इसके पश्चात् किसना आढ़ा ने अपनी ओजपूर्ण शैली में महाराजा गजसिंह की सेना का वर्णन करते हुए विशाल सेना के चलने का लिखा है —

कठ्ठे प्रथी पीठ हाले कटवक्कं

इसी तरह उसने यह भी लिखा है कि -

पडै भंग पाताल धूजे पनंगे ।

न दीसे रजी धोम आगैं निहंग ॥

कवि ने दोनों पक्षों की सेना का वर्णन करने के साथ ही शाहजादा खुर्रम की सेना के प्रधान सेनापति भीम सिसौदिया का वर्णन करते हुए लिखा है-

अगै भीम खूमाण वांसे असल्ली ।

दिली रा दलां ऊपरां वाग ढीली ।

इसौ सौहियो भीम राजा अभंगं ।

कुरु पाथ सूं बाथ लेवा किलंगं ॥

इन दोनों सेनाओं की टौंस के निकट आने के पश्चात् व्यूह रचना की गई ।

किसना के अनुसार मिर्जा राजा जयसिंह के साथ उसकी सेना और बीकानेर के शासक खड़े किये गये थे । महाराजा गजसिंह को सेना की दाहिनी ओर खड़ा किया गया था ।

दलाथंभ राठौड़ मांझी दिलीरा ।

मडै जीमणौ हाथ सैदात मीरा ॥

वर्णन करते हुए किसना ने लिखा है-

वडै मांड है वाज वीमाह वाजा ।

राजा भीम सोहे परे वींद राजा ॥

इसके पश्चात् कवि द्वारा युद्ध वर्णन में वीर, रौद्र व बीभत्स रस का सुन्दर निरूपण किया गया है ।इस युद्ध के घटनाक्रम के अनुसार [१६] शाहजादा खुर्रम की ओर से भीम सिसोदिया ने परवेज की सेना पर भयंकर आक्रमण किया । तब महाराजा गजसिंह युद्ध से उदासीन अपनी जगह पर खड़े रहे । युद्ध में भीम सिसोदिया ने परवेज और मिर्जा राजा जयसिंह की सेना को तहस नहस कर रणक्षेत्र से भागने के लिए मजबूर कर दिया था । इसके पश्चात् भीम ने महाराजा गजसिंह की सेना पर आक्रमण किया जिसका वर्णन किसना आढ़ा ने निम्न रूप से किया -

दिली सैन सीसोदियो लोप दाणै ।

जला बोल इग्यारमौ रुद्र जाणै ॥

विचित्रा गजे फौज सारे वरंतो ।

कमंधे गयो भीम हाका करंतौ ॥

खुदालम रा ऊमरा मार खग्गे ।

मेवाड़े मारु राव सूं बाध मग्गे ॥

गजसाह भीमेण भीमे गजन्नं ।

कुरु वाजिया पाध भाराध क्रन्न ॥

इसके पश्चात् किसना ने भीम व महाराज़ा गजसिंह के मध्य में हुए युद्ध का वर्णन करते हुए महाराजा गजसिंह के हाथों भीम सिसोदिया का मारा जाना उल्लेखित किया है ।

भड़े पाड़ै खुरासाण भांजै ।

गंजस्याह ऊभा पतस्साह गाजै ।

भीम की मृत्यु के साथ ही इस युद्ध का अंत हो गया और विद्रोही शाहजादा खुर्रम कवि के शब्दों में -'खुरनसाह भागौ खग्गै' ।

किसना ने इस युद्ध की तिथि कार्तिक पूर्णिमा, सं.१६८१ वि.तदनुसार शनिवार, अक्टूबर १६, १६२४ ई. दी है, जिसकी अन्य प्रमाणिक इतिहास ग्रंथों से पुष्टि होती है ।[१७]

इस प्रकार किसना ने अपनी इस लघुकाव्य कृति में जौनपुर के निकट टौंस नदी के तट पर हुए इस युद्ध का सांगोपांग वर्णन किया है । यद्यपि रचना छोटी ही है, परंतु समकालीन कवि की अब तक अप्रकाशित रचना होने के कारण विषय के संशोधकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी ।

वरिष्ठ शोध अधिकारी
श्री नटनागर शोध संस्थान,
सीतामऊ (म.प्र.)

संदर्भ ग्रंथ

१. साधारण ख्यात, कविराजा संग्रह, ग्रंथ १५, पृ.७८७ कवि श्री नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ (म.प्र.) बांकीदास की ख्यात, कविराज़ा संग्रह, ग्रंथ ७०, पृ.१७९ ब., डा.मोहनलाल जिज्ञासु ने किसना को दुरसा आढ़ा का पाटवी (बड़ा) पुत्र माना है, जो ठीक नहीं है । चारण साहित्य का इतिहास, भाग १, पृ.१५९

२. जोधपुर राज्य की ख्यात, सं.डा.रघुबीरसिंह व डा.मनोहर सिंह राणावत, पृ.११६-१७

३. साधारण ख्यात, कविराजा संग्रह, ग्रंथ १५, पृ.७५७ अ.

४. मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग १, पृ.७८-७९, ८१-८२, सं.डा.नारायणसिंह भाटी, रा.मा.वि.प्र.जोधपुर

५. इस समय राजा उदयसिंह के दुरसा आढ़ा की जागीरी के दोनों ग्राम भी जब्त किये थे । धरणे के विवरण हेतु देखें इतिहास प्रसिद्ध आऊवा का धरणा, शोध साधना, अंक १०, पृ.१-२१

६. साधारण ख्यात, ग्रंथ १५, पृ.७५७ ब

७. साधारण ख्यात, कविराजा संग्रह, ग्रंथ १५, पृ.७८७ अ, बांकीदास री ख्यात, ग्रंथ ७०, प.१७९ ब
८. राठौड़ां री ख्यात, ग्रंथ ७२, पृ.४१ ख, जोधपुर राज्य की ख्यात, स.डा.रघुबीर सिंह व डा.मनोहर सिंह राणावत, पृ.२०२
९. गज गुण रुपक बंध, पृ.९३-९४, जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ.१६६
१०. इस ग्रंथ का संपादन स्व.सीताराम लालस ने किया जो प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से प्रकाशित किया गया है।
११. मुंशी देवीप्रसाद कृत जहांगीर नामा, पृ.३८३
१२. मारवाड़ परगना री विगत, भाग १, पृ.१०२
१३. रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग, १, पृ.१९४-९५, नबाव सर तलेमुहम्मद खां, पालणपुर राज्य नो इतिहास, भाग १, पृ.५४-६२, सैयद गुलाब मियां कृत तारीख पालनपुर, पृ.१५०-१६०
१४. जोधपुर राज्य की ख्यात, सं.डा.रघुबीर सिंह पृ.१६६
१५. ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ.३८८
१६. जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ.१६६; तुजुक-ई-जहांगीरी (अं.अ.) राजर्स व वेबरिज, भाग २, पृ.२१५
१७. तुजुक (अं.अ.) रार्जस, भाग २, पृ.२५९-६० जहांगीरनामा, मुंशी देवीप्रसाद, पृ.५१४, जहांगीर का आत्म चरित्र, पृ.७७७, वीर विनोद, भाग २, पृ.८१९
१८. जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ.१६८-६९
१९. जोधपुर राज्य की ख्यात, सं.डा.रघुबीर सिंह व डा.मनोहर सिंह राणावत, पृ.१६८, मारवाड़ परगना री विगत, भाग १, पृ.१०८, गज गुण रुपक बंध, पृ.२४३

गजगुण रूपक बन्ध में वर्णित ऐतिहासिक घटनाक्रम

डॉ.वसुमती शर्मा

मध्यकालीन राजस्थान के घटनाचक्र में १४वीं से लेकर १८वीं शती तक का समय एक ओर भक्ति की लहर का स्वर्णकाल रहा वहीं दूसरी ओर प्रतिद्वंद्विता, संघर्षों का काल रहा। भक्ति एवं शक्ति की इन गौरवान्वित परम्पराओं के मध्य विविध ज्ञानोपयोगी साहित्य रचा गया। राजस्थान में शक्तिपरक-साहित्य प्रमुखतया डिंगल-पिंगल में है जिसे चारण एवं ब्रह्मभट्टों द्वारा वीरता, युद्ध के वर्णन, राजाओं के जीवन चरित्रों, नीतियों, उनकी उदारता, सदगुणों द्वारा अपने काव्यात्मक प्रशस्तियों, विरुदावलियों, बन्ध, रासो, गाथाओं, काव्यों में लिपिबद्ध किये गये। इसी क्रम में कवि केशवदास गाडण द्वारा रचित 'गजगुण रूपक बन्ध' काव्य में जोधपुर शासक गजसिंह प्रथम द्वारा लड़े गए युद्धों का वर्णन किया गया है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाक्रमों का उल्लेख होने से यह ग्रंथ इतिहास के लिए महत्वपूर्ण हो गया है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाक्रमों का उल्लेख होने से यह ग्रंथ इतिहास के लिए महत्वपूर्ण हो गया है । यह उन घटनाओं की सत्यता को भी उल्लेखित करता है, जिनको मुगल इतिहास लेखन में अधिक महत्व नहीं दिया गया । मध्यकालीन राजस्थान इतिहास के अध्ययन में इन योद्धाओं, वीरों को समुचित स्थान भी प्राप्त नहीं हुआ। जबकि कवियों ने उन घटनाओं को ज्यों का त्यों अपने काव्यों में उतारा है। भाषा काव्यों में इतिहास की अमूल्य निधि सुरक्षित है, जिन पर ज्ञानपरक दृष्टि केन्द्रित करना आवश्यक है। आज भी भाषा काव्यों के प्रति मानसिकता कुछ इस प्रकार की है कि इनमें नरेशों के वीरोचित वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। किन्तु यदि हम उसके ऐतिहासिक पक्ष को दृष्टिगत करें तो पायेंगे कि कविहृदय ने शृंगारिक रूप से अनेक युद्धों के वर्णन, सेना वर्णन, वीर योद्धाओं के वर्णन बड़े ही जीवंत ढंग से प्रस्तुत किए हैं।

वीरोचित भाषा काव्यों के रचयिता चारण कवि जो स्वयं भी युद्धस्थल पर नरेश की सेना के साथ होते थे तथा आंखों देखा हाल का वर्णन अपनी लेखनी से इन काव्यों में उतारते थे। गजगुण का रचयिता कवि केशोदास स्वयं नरेश के साथ युद्ध स्थलों पर था, तथा वह साथ-साथ घटनाक्रमों को लिपिबद्ध कर रहा है, ऐसा जान पड़ता है । यथा —

महणा रंभ मत्थियौ, तेग तुडि दक्खन मारी
पातिसाह हुई प्रसन, हुक्म किय पांच हजारी

यहां यह बात भी विचारणीय है कि तात्कालिक परिवेश में राज्याश्रित कवि यदि आलंकारिक भाषा तथा नरेश के यशोवर्णन उस शैली में नहीं लिखते तो उन्हें मान, सम्मान, धन प्राप्ति नहीं हो सकती थी।

गजगुण रूपक बन्ध राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से मुद्रित है तथा प्राप्त चार प्रतियों के आधार पर संपादित किया गया है।

यह काव्य अनेक रूपों में मारवाड़ नरेश के राजनैतिक घटनाचक्रों का सविस्तार, सुन्दर चित्रण करता है । संक्षेप में सीहा की यात्राओं, राठौड़ों की वंशावली को बताते हुए, इस काव्य के मूल नायक के जन्म, उसके पिता के राज्य वैभव, पिता की अनुपस्थिति में पुत्र द्वारा राज्यभार को सम्भालने तथा नाडोल, सिरोही पर विजय, गोइंद, जालोर पर विजय तथा युद्धों में वीरगति प्राप्त योद्धाओं के वर्णन मिलते हैं। सवाई राजा सूरसिंह की मृत्यु तथा गजसिंह के राजतिलक का वर्णन, गजसिंह द्वारा दक्षिण युद्धों का संचालन तथा विजय प्राप्त करना, मुगल बादशाह द्वारा पद, जात, सवार तथा अनेक परगनों का दिया जाना। मलिक अंबर, सिसोदिया भीम का मारा जाना, दलथम्बन की पदवी दिया जाना, राज्याधिकार हेतु खुर्रम का विद्रोह, शाही सेना का कूच, गजसिंह के सामंतों की सभा,युद्धों के वर्णन अनेक ऐसे घटनाक्रम हैं, जो इस काव्य को ऐतिहासिक काव्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। प्रस्तुत पत्र में दो प्रमुख घटनाक्रम प्रथम अहमदनगर युद्ध द्वितीय खुर्रम का विद्रोह पर मूलत: विचार किया गया है तथा मुगलकालीन अज्ञात तथ्यों को उद्घाटित किया है। हालांकि मारवाड़ की ख्यातें तथा जोधपुर राज्य पर लिखे इतिहास इन घटनाओं का संकेत देते हैं।

अहमदनगर युद्ध वर्णन

अकबर द्वारा अहमदनगर विजय करके निजामशाही वंश को हटाया गया, किन्तु जहांगीर के काल में मलिक अंबर नाम के अबीसीनिया निवासी द्वारा इस वंश की पुन: स्थापना की गई। मलिक अंबर को उस युग के सर्वश्रेष्ठ सेनानायकों और शासकों में से एक माना जाता है। कहा जाता है कि इसने मरहठों को छापा मारकर युद्ध करने की शिक्षा दी थी।

इस युद्ध के विषय में मुगलकालीन लेखक लिखते हैं कि 'मलिक अंबर ने शाहजादा खुसरो के विद्रोह से लाभ उठाकर दक्षिण में शाही सेना पर आक्रमण कर दिया था तथा १६१० ई. में पुन: अहमदनगर को जीत लिया था। १६१३ ई. में खुर्रम सेनापति बनाया गया, उसने मलिक को संधि के लिए कहा, मलिक मान गया, आदिलशाह ने १५ लाख खुर्रम को भेंट किये व मलिक अंबर

द्वारा जीती गई सारी भूमि वापिस करने का वचन भी दिया।' खुर्रम को 'शाहजहां' की उपाधि दी गई। मनसब ३०,००० जात व २०,००० सवार बढ़ा दिये, किन्तु न तो अहमदनगर जीता गया न ही मलिक अंबर की शक्ति का दमन हुआ । १६२९ ई.सं.में अंबर की मृत्यु तक यही परिस्थितियाँ चलती रहीं।

गजगुण रूपक अन्य युद्धों के साथ ही वि.सं.१७७८ (१६१२) दक्षिण के युद्धों का वर्णन इस प्रकार देता है।

'खान खानान् अब्दुर्रहीम के साथ गजसिंह दक्षिण में उपद्रवों को रोकने हेतु नियुक्त हुए ।' दूसरी ओर दक्षिणी फौज का संचालक मलिक अंबर अहमदनगर के बादशाह का मंत्री था।

गजसिंह सेना के अग्रभाग (जिसे हरावल कहा जाता है) में रहे तथा दो पहर के युद्ध पश्चात् बहुत से योद्धाओं को मार, विजय प्राप्त की।

'सुदृढ़ सारवेत सगलौ सओधा
हुआ हरबल्ल, रिसायल्ल जोधा ॥'

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि मलिक अंबर की विशाल व शक्तिशाली सेना से मुकाबला करने में हाडा वीर रतनसिंह, बुन्देला वरसिंह सीसोदिया चांदा तथा खान खानान्न के पुत्र दाराब खां ने युद्ध से मुँह फेर लिया था। ऐसी परिस्थिति में गजसिंह ने मुगल बादशाह की ओर से दक्षिण के युद्धों में भाग लिया।

राउ राठौड़ रिणताल जीतौ, बिढे पतिसाह प्रिथवीं व दीतौ
लडणा 'गजसाह' असमान लग्गे, अरध लख दखणी ताम भग्गे ॥ पृ.८७, ८८ (८)

महकर के थाने पर दो बार घेरा क्रमश: चार माह व तीन माह तक रहा । महकर के उपद्रवों को शांत कर गजसिंह ने बुरहानपुर में वीरता दिखाई। बादशाह जहांगीर ने खान खानान् के कहने पर 'दक्षिण सेना को रोकने तथा विजय प्राप्त करने पर बादशाह की ओर से 'दल थंभण' (दल-सेना को रोकने वाले) की उपाधि दी गई।'

उतुक जहांगीरी में लिखा है (पृ.३५१) वि.सं.१६७९ की चैत्र सुदि ९ (ई.सं.१६२२ की ११ मार्च) को इन्हें एक नक्कारा उपहार में दिया गया।

टॉड लिखते हैं कि ई. १६२० में गजसिंह राज्याधिकारी बना तथा अनेक नगर कंचनगढ़, आसेर व सितारा पर विजय प्राप्त कर इन सभी नगरों को मुगल राज्य में मिला दिया (पृ.३७७) ।

मुगल इतिहासकार दक्षिण युद्धों के वर्णन में गजसिंह की वीरता तथा युद्धों की विजय का श्रेय राठौड़ राजपूतों को देने में स्पष्ट नहीं है, जबकि इन युद्धों के परिणाम बता रहे हैं कि गजसिंह ने दक्षिण की सेना को रोका, 'दलथम्बन' की उपाधि एवं नक्कारा आदि दिये जाने का उल्लेख प्राप्त हो रहा है। सत्य यह है जिसे गजगुण रूपक अभिव्यक्त करता है कि गजसिंह ने युद्ध के अग्रभाग (हरावल) में रह कर भाग लिया, युद्ध में विजय प्राप्त की जिससे 'दलथम्बन' की उपाधि प्राप्त हुई।

'साह दिस्स मेलिया, खान खाना लिख कागल
ऐ अजीत रटठड, किता जै जीता कदल ॥
सबला सत्र संघरे, छले सबले पडि-गिरिया
जेथ भिड़े दलि पडे, तेथ आडा भुज धरियो ॥'
कवि मूल निभैभणा, कलि मथणा, ऊभौ सिरि 'अंबर' डहै ।
पतिसाह परीछै ए प्रसिध, 'थल थंभण राजा कहै (४)'
रट्ठोड़ रूप राए दीनौ, सुरताणा नाम दलथंभणा
हिंदुवै मुसलमांणौ,विरदावियै जोध विरदेता ॥

साथ ही इस युद्ध में मलिक अंबर चंपू० का लाल झंडा छीन लिया गया, तथा इस घटना की याद में तब से जोधपुर के राजकीय झंडे में लाल रंग की पट्टी लगाई जाने लगी, गजगुण रूपक स्थान, तिथि तथा वीरों के नामोल्लेख के साथ ही घटना का सम्पूर्ण विवरण देता है ।

खुर्रम के विद्रोह की घटना तथा भीम का मारा जाना

जहांगीर का बड़ा लड़का परवेज राज्य का उत्तराधिकारी था, खुर्रम छोटा था । जहांगीर पुत्र परवेज तथा खुर्रम में उच्चाधिकारी बनने हेतु झगड़ा पैदा हो गया था । इस समय गजसिंह दक्षिण में खुर्रम के साथ था, किन्तु वह मन से परवेज का पक्षधर था । अपने प्रधान भाटी गोविन्ददास को मरवाये जाने पर गजसिंह ने खुर्रम का साथ छोड़ दिया तथा अपने राज्य में आ गया ।

इधर खुर्रम का विद्रोह जहांगीर के विरुद्ध जब बढ़ गया तथा वह युद्ध की तैयारी से फौज के साथ वि.सं.१६८१(ई.सं.१६२४) में बनारस पहुँचा । खुर्रम का विद्रोह दबाने के लिए जहांगीर ने राजपूत नरेशों की सहायता ली ।

इस अवसर पर गजसिंह द्वारा जहांगीर को धैर्य दिया गया । गजसिंह द्वारा विशाल सेना से भयानक युद्ध किया गया, जिसमें खुर्रम की पराजय हुई तथा वह जान बचा कर भाग गया । युद्ध में वीर सीसोदिया भीम जो कि खुर्रम की ओर था, मारा गया:-

'रुन्ड मुन्ड रोलिया भीम पाडियौ भुजालौ ॥
भारत कुर-खेत रै, हुऔ जुध लंका वालौ ॥' पृ.२४१

गजगुण रूपक इस घटनाक्रम का विस्तृत एवं रोचक वर्णन देता है यथा:-

(१) खुर्रम द्वारा बगावत का झंडा उठाना
(२) अजमेर, सांभर, टोडा, रणथंभोर होते हुए दिल्ली के तख्त पर अधिकार करने की नीयत से रवाना होना ।
(३) दिल्ली के निकट बादशाह तथा खुर्रम की सेनाओं का पहुँचना ।
(४) बादशाह द्वारा गजसिंह को युद्ध हेतु बुलवाना ।
(५) कूंपावत राजसिंह को लेकर युद्ध हेतु रवाना होना ।
(६) बादशाह द्वारा युद्ध का समस्त भार गजसिंह पर सौंपना ।

(७) महाराजा का शाही सेना के साथ खुर्रम का पीछा करने को प्रयाग, काशी व गया की यात्रा करते टूस नदी के उस पार कोरहा में पहुँच ठहरना ।

(८) उस समय खुर्रम का पड़ाव खैरागढ़ में होना ।

(९) दोनों सेनाओं के मध्य फासले दो कोस के रहना ।

(१०) खुर्रम की सेना के अग्रभाग में महाराणा अमरसिंह के पुत्र सीसोदिया भीम का होना ।

(१२) शाही सेना के अग्रभाग में शाहजादे परवेज और महाबल खां की सलाह पर गजसिंह को रखना ।

(१३) युद्ध वि.सं.१६८१ की कार्तिक सुदी १५ को होना ।
'सोलह सै संवत हुऔ, जोगणापुर चालै
सम्मैं एकासिये मासा काति वडालै
पूनम थावर वार सरद ऋतु है पालडी
वीर खेत पूरब्ब रित्त हेमंत प्रघट्टी ॥२० ॥ पृ:२४३

(१४) इस युद्ध में भीम मारा गया तथा खुर्रम की सेना मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई ।
सुरताणा खुरम भागौ भिडै
चाडि चकथां चक्कवै
गजसिंह प्रवाडौ खाट्टियौ
वहै भीम चीतो डवै ॥
गजसिंह कियौ गजगाहणौ, भीम मारि भागौ खुर्रम
कमधज्ज पखै जीतौ कमणा, साणै नाद संग्राम ॥ पृ.२४२

मुगल इतिहासकार अन्य बातों के साथ ही भीम के मारे जाने तथा खुर्रम के भाग जाने की घटना को स्पष्ट नहीं बताते हैं, जबकि यह काव्य सम्पूर्ण जानकारी तिथि, वार, युद्ध स्थान, योद्धाओं के नाम सहित अनेक तथ्य उल्लेखित करने में सक्षम है । ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण इस काव्य में उल्लेखित वीरों की वीरता पर संदेह भी नहीं किया जा सकता, अत: इन अज्ञात तथ्यों को मध्यकालीन इतिहास में समावेशित कर प्रस्तुत करना आवश्यक है ।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
शाखा कोटा

आधार ग्रन्थ

१. गजगुण रूपक बन्ध-संपा सीताराम लालस रा.प्रा.वि.प्र.जोधपुर
२. डिंगल कोष-संपा.डॉ.नारायणसिंह भाटी
३. टॉड लिखित राज.का इतिहास, अनुवाद केशवकुमार ठाकुर
४. जहांगीर का आत्म चरित्र जहांगीरनामा अनु.ब्रजरत्नदास नागरी प्रचारणी सभा
५. महाराजा गजसिंह की ख्यात नं. १५६३३ रा.प्रा.वि.प्र.जोधपुर
६ मुस्लिमकालीन भारत, विद्याधर महाजन
७. मारवाड़ का इतिहास I; वि.नाथ रेऊ

जसवंत उद्योत

एक आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. भंवर भादानी

अभिलेख, शिलालेख, मुद्राएं एवं गद्य में रचित इतिहास ग्रंथ मूलत: इतिहास लेखन के आधार रहे हैं । सामान्यत: काव्य ग्रंथों को काव्यकार की कल्पना कह कर इतिहास के स्त्रोत के रूप में उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता रहा है । यही कारण है कि अधिकांश काव्य-ग्रंथ निजी एवं राजकीय अभिलेखागारों में कैद होकर रह गए हैं । इनमें से कुछ विद्वानों द्वारा संपादित होकर प्रकाश में भी आए हैं, लेकिन इतिहासकारों ने उन्हें मूल स्त्रोत का दर्जा अब तक प्रदान नहीं किया है । इसी कारण से ये काव्य-ग्रंथ इतिहास-ग्रंथ होते हुए भी इतिहास स्त्रोत के रूप में अपनी उपयोगिता प्रमाणित करने में असफल रहे हैं ।

काव्य में इतिहास-लेखन की एक लंबी एवं सुदृढ़ परम्परा रही है । इतिहास के जन्मदाता हेरोडोटस के पूर्व इतिहास की जन्म स्थली यूनान में इतिंहास लेखन का माध्यम काव्य था । इनको लोगोग्राफर्स कहा जाता था । इनका मुख्य उद्देश्य काव्य के माध्यम से लोगों तक समसामयिक ऐतिहासिक घटनाओं को पहुँचाना होता था । दूसरे शब्दों में प्राचीन इतिहासकार एक अर्थ में गायक अथवा भाट थे जिनके गीतों में समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन होता था । होमर इसी श्रेणी के कवियों से सम्बद्ध हैं जिनकी कविताएँ विपुल ऐतिहासिक सामग्री का भंडार हैं । इसी प्रकार हेसियोड दूसरे ऐसे महान कवि हैं ज़िन्होंने यूनानी देवताओं की वंश परम्परा को रेखांकित करने का प्रयास किया है । जो दूसरे इतिहासकारों के लिए उसी प्रकार महान् व्यक्तियों, अमीरों, एवं अपने स्वामियों की वंश परम्परा एवं पीढ़ियों को रेखांकित करने का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

भारत में काव्य एवं गीत लेखन की एक परम्परा रही है। वेद, उपनिषद, गीता एवं रामचरित्र मानस ऐसे काव्य ग्रंथ हैं जिनकी गेयता का सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव रहा है। राजस्थान में भी काव्य-ग्रंथों एवं गीतों की एक सुदीर्घ एवं सुदृढ़ परम्परा रही है। अधिकांश काव्यात्मक रचनाएं किसी राजा, सरदार, भूमिया अथवा जागीरदार को केन्द्र में रखकर की जाती थीं। उदाहरणार्थ सगतरासो, सूररासो, गजगुणरूपक-बंध, अजितोदय, राजविलास, हमीररासो, वंश भास्कर एवं जसवंत उद्योत आदि मुख्य हैं जिनकी रचना रचनाकारों ने अपने स्वामियों की प्रशंसा एवं उनकी वंश की परम्परा को रेखांकित करने के लिए की थी। इन महाकाव्यों के अतिरिक्त बड़ी संख्या में डिंगल गीतों की भी रचना हुई। इन रचनाओं के सृजन का मुख्य उद्देश्य रचना के नायकों को काव्य-गीत सुनाकर प्रसन्न करना होता था। अधिकांश रचनाएं नायक की उपस्थिति में दरबार में सुनाई जाती थीं। इनमें नायक की प्रशंसा के साथ साथ उसके वंश की उत्पत्ति एवं वंश के महान पुरुषों की कीर्ति का भी वर्णन समाहित होता था इसलिए ये रचनाएं मात्र काव्य ही नहीं बल्कि समकालीन घटनाओं एवं नायक के वंश से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज हैं।

राजस्थान के कवियों एवं गीतकारों मुख्यत: चारणों एवं भाटों को यूनान के लोगोग्राफर्स एवं गायकों के समतुल्य कहा जा सकता है। इस समुदाय के रचनाकारों ने असंख्य काव्य-ग्रंथों एवं गीतों का सृजन किया है। ये लोग अपनी शैली में अपने आश्रयदाताओं को गा कर सुनाकर उनको प्रसन्न करके इनाम इकराम प्राप्त करते थे। इनके ये गीत एवं काव्य काव्यकला को तो प्रदर्शित करते ही थे, साथ ही साथ समकालीन घटनाओं को भी गेयात्मक रूप में श्रोताओं तक पहुँचाते थे।[२] दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की काव्यात्मक रचनाएं मूलत: इतिहास ग्रंथ हैं। आधुनिक इतिहासकार इनमें रेखांकित घटनाओं की अन्य स्त्रोतों से तुलना करके इनकी ऐतिहासिकता की पुष्टि कर सकते हैं।

I

प्रस्तुत ग्रंथ 'जसवंत उद्योत' जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की प्रशंसा में दलपत मिश्र द्वारा रचित एक काव्य-ग्रंथ है जिसका दूसरा नाम 'जसवंत विलास' है।[२] कवि के अनुसार ग्रंथ की रचना वि.सं.१७०५/१६४८ ई.में की गई लेकिन ग्रंथ में वि.सं.१७०७/१६५० ई.की[३] पोकरण विजय का वर्णन स्वभावत: इसके रचनाकाल को इसी वर्ष या सं.१७०८/१६५१ का वर्ष निर्धारित करती है। इस तिथि से यह बात भी उजागर होती है कि इस काव्य-ग्रंथ की रचना मुंहणोत नैणसी की रचनाओं से पूर्व की गई है।[४] ग्रंथ के रचयिता ने महाराजा जसवंत सिंह के चरित्र को अपने काव्य की विषय वस्तु के रूप में चुना है जिसको उन्होंने व्यापक एवं रुचिशील बनाने का प्रयास किया है। इस प्रयास में यह काव्य ग्रंथ जोधपुर राज्य एवं राठौड़ों का इतिहास बन गया है। कवि ने मात्र नायक के चरित्र चित्रण तक ही अपने आपको सीमित नहीं रखा है बल्कि अपने नायक के चरित्र एवं राठौड़ वंश के ताने-बाने को अत्यंत दक्षता से बुनने का प्रयास किया है जिसके परिणामस्वरूप काव्यात्मक इकाई नज़र आती है।

जोधपुर के शासकों में महाराजा जसवंत सिंह के बहुआयामी आकर्षक व्यक्तित्व ने कई समकालीन काव्यकारों को अपनी ओर आकर्षित किया था। दलपति मिश्र भी उनमें से एक था। महाराजा जसवंत सिंह के साहित्य प्रेम के कारण ही मिश्र उनके सम्पर्क में आए और इसी सम्पर्क के कारण से ही अपने आश्रयदाता के वंश के इतिहास की अच्छी जानकारी का एकत्रित हो जाना स्वाभाविक बात थी। वह महाराजा की वंशावली को रेखांकित करने के साथ ही साथ उसके पुरखों द्वारा राज्य की स्थापना एवं इसके विस्तार हेतु किये गए प्रयासों का भी संक्षेप में वर्णन करता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों जैसे युद्ध अभियानों एवं कुए-बावड़ियां आदि बनाने के राजाओं के प्रयासों को अपने ग्रंथ में स्थान देता है। दूसरे शब्दों में कवि ने अपने काव्य-ग्रंथ के द्वारा राठौड़ वंश के इतिहास को व्यापक रूप में रेखांकित करने का प्रयास किया है।

दलपति मिश्र द्वारा रचित उपर्युक्त इतिहास ग्रंथ को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, राठौड़ वंश का सम्बन्ध देव श्रेणी से जोड़ने के प्रयास में पौराणिक कथाओं का संकलन, द्वितीय तिथि विहीन लोक-विश्वासों पर आधारित इतिहास, एवं तृतीय दस्तावेजों पर आधारित तथ्यात्मक इतिहास।

प्रथम भाग में काव्यकार ने पौराणिक कथाएं विष्णु-पुराण से ली हैं। इस पुराण में उल्लेखित वंशावली राठौड़ों की वंशावली से जोड़ दी गई है, एवं दोनों के मध्य के समानान्तर को कल्पित नामों से भर दिया गया है। इसके पीछे काव्यकार का उद्देश्य राठौड़ राजाओं को दैवीस्वरूप प्रदान करने का रहा है। अगर राजत्व के सिद्धांत की दृष्टि से देखें तो काव्यकार अपने उद्देश्य में पूर्णत: सफल रहा है, लेकिन अगर इतिहास की दृष्टि से देखें तो यह सम्पूर्ण वर्णन पूर्णत: अनैतिहासिक एवं निरर्थक है।[५]

द्वितीय भाग की शुरूआत राव सीहाजी की कन्नौज से द्वारिका यात्रा के साथ प्रारम्भ होती है। मथुरा की यात्रा कर वहां के माथुरों को राव सीहा ने दान दिया एवं जगदीश जी एवं केशोराव जी के मंदिरों के दर्शनों के पश्चात् द्वारिका पहुँचे। वापिसी में सोलंकी सिद्धराज जयसिंह से मिलना एवं उनके इसके उपलक्ष्य में सोलंकी राजा द्वारा अपनी लड़की विवाहना एवं मारवाड़ राज्य दहेज में प्राप्त करना[६] ऐतिहासिक जांच की कसौटी पर सही नहीं उतरता है। सीहा द्वारा लाखा फूलाणी का मारा जाना नितान्त भ्रामक है। क्योंकि लाखा फूलाणी राव सीहा की मृत्यु से २०० वर्ष से भी अधिक वर्ष पूर्व सोलंकी मूलराज के हाथों मारा गया था।[७] द्वितीय काव्यकार कहीं कोई तिथि दर्ज नहीं करता। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां भी कवि ने जन प्रचलित विश्वासों का सहारा लिया है।

राव सीहा से सम्बन्धित कथाओं को काव्यकार ने काव्य की माला में तो पिरो दिया है लेकिन ऐतिहासिकता को एक सूत्रता में आबद्ध करने में पूर्णत: असफल रहा है। लगभग यही वर्णन मुहणोत नैणसी ने अपने ग्रंथ 'ख्यात' में दुहराया है।[८] डॉ.गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने ग्रंथ में इस प्रकार की कथाओं को अनैतिहासिक प्रमाणित किया है।

राठौड़ सीहा के तीन पुत्रों के वर्णन के साथ कवि ऐतिहासिक तथ्य के धरातल पर उतरता है। यहीं वह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि राव आस्थान ने खेड़ नगर पर बलपूर्वक अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया [९] एवं उसके वंशज मारु प्रदेश में खेड़ेचा राठौड़ के नाम से प्रसिद्ध हुए। नैणसी द्वारा वर्णित डाभी राजपूत प्रधान की कथा को छोड़कर खेड़नगर पर आधिपत्य की ऐतिहासिकता की पुष्टि होती है। [१०] इसके पश्चात् राव धूहड़ एवं राव रायपाल के वर्णन में नैणसी से साम्यता है। 'जसवंत उद्योत' में राव कान्हर (कन्हपाल) एवं राव जाल्हण (जालणसी) के बारे में एक नवीन सूचना मिलती है वह यह कि इनके नाम के आगे महाराउ (महाराव) विशेषण लगा है। [११] इसके बाद राव छाडा, राव सलखा एवं राव माला का संक्षिप्त वर्णन है। राव माला के वर्णन के पश्चात् उसके छोटे भाई राव वीरम के वंश वृक्ष का वर्णन प्रारम्भ हो जाता है। राव माला के वंशजों का वर्णन कवि बिल्कुल नहीं देता है। इससे यह तात्पर्य है कि काव्यकार जसवंतसिंह के शास्त्रीय पूर्वजों के इतिहास-लेखन में रुचिशील है।

वीरम के पुत्र राव चूंडा ने मंडोवर एवं नागौर पर अपना आधिपत्य स्थापित करके मारवाड़ में सुव्यवस्था स्थापित की। इसकी पुष्टि अन्य ख्यातों से भी होती है, लेकिन डॉ.ओझा के अनुसार यह सही नहीं प्रतीत होता। इसके पश्चात् नैणसी ने राव चूंडा के पश्चात् राव कान्हा एवं राव सत्ता को उत्तराधिकारी दर्शाया है जबकि दलपति मिश्र राव रणमल को अपने पिता राव चूंडा का 'टीकेत' बताता है। सिर्फ राव कान्हा और सत्ता को छोड़कर काव्यकार द्वारा दी गई राव सीहा से लेकर राव रणमल तक की वंशावली की पुष्टि नैणसी की ख्यात से होती है। यहां तक का वर्णन अत्यंत संक्षिप्त एवं तिथिविहीन है, लेकिन इससे सम्पूर्ण वर्णन निरर्थक प्रमाणित नहीं हो जाता। इस कमी के बावजूद भी एक दो अपवाद को छोड़कर ऐतिहासिक क्रमबद्धता काफी विश्वसनीय है।

II

अन्तिम भाग के वर्णन में दस्तावेजों के समतुल्य तथ्यात्मकता एवं सत्यता दृष्टिगोचर होती है। इस भाग में कवि घटनाओं का तिथिवार वर्णन करता है एवं तिथियों की सत्यता की तरफ भी सजग नज़र आता है। यहां शायद ही उसने कोई तिथि कल्पना के आधार पर लिखी हो। इसी से कवि द्वारा दस्तावेजों के उपयोग का अनुमान लगाया जा सकता है।

दलपति मिश्र ने राव जोधा का जन्म संवत् १४७२ का माधव मास दर्शाया है। जिसकी पुष्टि अन्य स्त्रोतों से भी होती है। अपने पिता राव रणमल की हत्या का बदला लेने के लिए चित्तौड़ के विरुद्ध युद्ध अभियान करके मेवाड़ के राणा कुंभा को विचलित करने का प्रयास किया जो ऐतिहासिक कसौटी पर सही नहीं उतरता। [१२] इसके पश्चात वि.सं.१५१५ को राव जोधा ने अपने नाम पर जोधपुर नामक गांव बसाया जिसकी पुष्टि समकालीन स्त्रोतों से होती है। इसी प्रकार 'जसवंत उद्योत' में दर्ज राव जोधा की मृत्यु की तिथि वि.सं.१५४५ भी बिल्कुल सही है।

राव जोधा के चौदह पुत्रों की सूचना किसी अन्य समकालीन स्त्रोत में न होने से इसकी महत्ता बढ़ जाती है। उनके एक पुत्र राव बीका ने अपने नाम पर बीकानेर नामक शहर बसाया एवं

एक अन्य दूदा द्वारा मेड़ता बसाने की भी जानकारी मिलती है ।

राव जोधा के वर्णन के साथ ही तिथियों को दर्ज करने की ओर दलपति की सजगता निरन्तर बढ़ती चली जाती है । रावल सातल, राव सूजा एवं राव गांगा की जन्म, राज्यारोहण एवं स्वर्गवास की तिथियों की सत्यता से पुष्टि होती है । कवि ने जोधपुर के इन शासकों के बारे में अत्यंत संक्षिप्त सूचनाएं दर्ज की हैं ।

'जसवंत उद्योत' के लेखक ने राव मालदेव के बारे में तुलनात्मक रूप से अधिक विस्तार से वर्णन किया है । राज्यारोहण (वि.सं.१५८८/१५३२) के पश्चात् उसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के साक्ष्यों का वर्णन अत्यन्त मूल्यवान है । कवि राव मालदेव के अधीन क्षेत्रों (धरती की विगती) की सूची देता है जिसमें मुख्यत: वही परगने हैं जिनका वर्णन दूसरे स्त्रोतों में दिया है । [१३] इन विजित क्षेत्रों की सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मालदेव ने राठौड़ राज्य का काफी विस्तार किया । इतना विस्तार किसी अन्य राजा के समय में नहीं हुआ । इसी से प्रभावित होकर कवि उन्हें चक्रवर्ती राजा एवं महाराव जैसे विशेषणों से सुशोभित करता है ।

इस वर्णन में राव मालदेव द्वारा अपने पिता की हत्या के संकेत की अनुपस्थिति इस बात को उजागर करती है कि वह अप्रिय घटनाओं के वर्णन से अपने आपको बचाता है । [१४]

शक्तिशाली होने के कारण राव मालदेव ने ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकारी के सिद्धांत की अवहेलना करके अपने तृतीय पुत्र चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । [१५] इस निर्णय ने अन्तर्कलह को जन्म दिया एवं परिणामस्वरूप मुगलों को आन्तरिक मामलों में दखल देने का अवसर मिला । इसके पश्चात् कवि यहां फिर संक्षिप्त हो जाता है और जोधपुर पर मुगल आधिपत्य (खालिसा) हो जाने की बात को पूर्णत: दबा देता है ।

राठौड़ राज्य एवं मुगल प्रभाव:-

मुगल सम्राट अकबर ने वि.सं.१६४०/१५८३ ई.में जोधपुर का राज्य राव चन्द्रसेन के बड़े भाई एवं राव मालदेव के द्वितीय पुत्र उदयसिंह को देकर [१६] मुगल राठौड़ सम्बन्धों की नींव रखी । कवि के अनुसार राव उदयसिंह के सब तरह से मोटा अर्थात स्थूलकाय होने के कारण से अकबर ने उसका मोटा राजा नाम रख दिया । कवि ने अकबर द्वारा प्रदत्त मन्सब एवं जागीरों का वर्णन नहीं दिया है । सिरोही पर आक्रमण एवं राजा उदयसिंह की सन्तानों के वर्णन के साथ ही आगे बढ़ जाता है ।

मुगल राठौड़ सम्बन्धों की स्थापना के पश्चात् मुगलों द्वारा आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप की प्रवृत्ति बढ़ती चली जाती है । मोटा राजा के स्वर्गवास के पश्चात् राज्यसिंहासन पर कई पुत्रों के अधिकार की अवहेलना करके अकबर द्वारा छोटे पुत्र सूरसिंह को सं.१६५२/१५९५ ई.में जोधपुर का टीका देने के रूप में हमारे सामने आता है । [१७] महाराजा ने सुचारू रूप से राज्य प्रबंध किया एवं बादशाह की आज्ञा से दक्षिण की मुहिम में हिस्सा लिया । महाराजा सूरसिंह की मृत्यु के उपरान्त ज्येष्ठ पुत्र गजसिंह सिंहासनारूढ़ हुआ । कवि ने महाराजा की बाग लगाने एवं कुए व तालाब

बनवाने की रुचि का संकेत दिया है ।[१८] लेकिन अनारा नामक प्रीतिपात्री के वर्णन से अपने आपको बचाया है जिसके कहने पर ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह को राज्यसिंहासन से वंचित करके जसवंत को उत्तराधिकारी घोषित किया ।[१९] कवि ने मुगल दरबार में अमरसिंह एवं सलावत खां के मध्य विवाद को रेखांकित किया है ।

महाराजा जसवंतसिंह एवं जसवंत उद्योत

ग्रंथ की रचना का मुख्य उद्देश्य महाराजा जसवंतसिंह की प्रशंसा का रहा है, इसलिए कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं की अपेक्षा महाराजा के अलंकारिक वर्णन को अधिक महत्व दिया है । जन्म एवं राज्यसिंहासन की तिथियों के अतिरिक्त शाहजहां द्वारा कुंवर जसवंतसिंह को जोधपुर का टीका देने की जानकारी कवि देता है । इससे मुगल राठौड़ सम्बन्धों का पता चलता है । इसके अतिरिक्त कन्धार की लड़ाई में सम्मिलित होने का वर्णन भी करता है । संवत १७०७/१६५० ई.में शाहजहां ने पोकरण महाराजा को दिया और इस पर अधिकार हेतु भेजी गई सेना का वर्णन कवि ने किया है । इस अभियान में सम्मिलित उन सेनानायकों के नाम भी दर्ज किए हैं जिनके नेतृत्व में पोकरण अभियान किया गया था ।[२०] ऐसा प्रतीत होता है कि पोकरण अभियान का वर्णन तुलनात्मक रूप से अन्य स्त्रोतों की अपेक्षा कुछ नवीन साक्ष्य देता है । इसके अतिरिक्त वंशानुगत रूप से भक्ति दर्शाने वाले पंचोली बली को दीवान बनाने की कवि द्वारा सूचना दी गई है[२१] जबकि नैणसी जैसे प्रभावशाली अधिकारी का संकेत तक नहीं है जो कई परगनों के हाकिम रह चुके थे । उपर्युक्त घटनाओं के अतिरि्क्त कवि का वर्णन घोड़ों, हाथियों, नायिकाओं एवं अन्त:पुर से सम्बन्धित है जिसका राजनैतिक इतिहास लेखन की दृष्टि से महत्त्व नगण्य है । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जसवंतसिंह के राज्यकाल का वर्णन अधूरा है । उसके काल का लगभग अठाईस वर्षों का इतिहास इस ग्रंथ से अछूता रहा है क्योंकि इसका वर्णन १६५०-५१ ई. तक का ही है जबकि जसवंत सिंह ने १६७८ ई.तक शासन किया था ।

ग्रंथ के अंत में कवि लिखता है कि वह 'जसवंत उदोते वंशावली' प्रकरण समाप्त करता है । सही अर्थों में यह जसवंत सिंह के पूर्वजों की वंशावली ही है ।

III

राठौड़ खांपों का उद्भव एवं ठिकानों की स्थापना :

दलपति मिश्र ने एक महत्वपूर्ण सूचना का संकलन किया है जो राठौड़ खांपों के उद्भव के अध्ययन के लिए अत्यन्त मूल्यवान है । अन्य स्त्रोतों में इस प्रकार के साक्ष्यों के अभाव के कारण इसमें संकलित सूचना का महत्त्व बढ़ जाता है । राव रणमल के चौबीस पुत्र थे । इन पुत्रों एवं पौत्रों से राठौड़ों की कई खांपें निकली जिसमें मंडणोत, कुंपावत, नाथावत, डूंगरोत, करणोत, रूपावत, चांपावत, पातावत, वालावत, कांधलोत एवं खेतसियोत आदि सम्मिलित हैं ।[२२] इसके अतिरिक्त अन्य खांपों का भी उद्भव इस समय में हुआ था जिसका स्पष्ट वर्णन इस काव्य ग्रंथ में नहीं मिलता अपितु अन्य स्त्रोतों में उपलब्ध है ।[२३]

राव जोधा के पुत्रों से भी नई खांपों ने जन्म लिया जिन्होंने नए नए क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इसमें बीका, मेड़तिया, कर्मसीहोत, रायपालोत, वणवीरोत, बीदावत, भारमलोत एवं वरसिंघोत आदि मुख्य हैं। बीका ने बीकानेर नामक शहर बसाया और राजस्थान के उत्तरी मरुप्रदेश पर अपना वर्चस्व स्थापित किया। दूदा ने मेड़ता बसाया एवं उससे मेड़तिया खांप का उद्‌भव हुआ। इन विभिन्न खांपों के मरुप्रदेश में विभिन्न स्थानों पर बस जाने की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है ।[२४] इस सूचना के आधार पर विभिन्न राठौड़ खांपों के विस्तार एवं उनके द्वारा स्थापित ठिकानों का अध्ययन किया जा सकता है । यह अध्ययन मारवाड़ में राठौड़ों के राजनैतिक एवं सामाजिक वर्चस्व को वैज्ञानिक आधार पर व्याख्यायित कर सकेगा। इन विभिन्न राठौड़ों की खांपों के मुख्यालय को राजस्थानी में बसी, ठिकाना एवं उतन (फारसी वतन) कहा जाता था। इन पर इन खांपों के वंशजों का पैतृक अधिकार होता था। उपर्युक्त साक्ष्यों की पुष्टि सतरहवीं शताब्दी में संकलित एक स्रोत से होती है ।[२५]

दलपति मिश्र का उपर्युक्त ग्रंथ निश्चित ही एक इतिहास ग्रंथ है और इसके आधार पर राठौड़ वंश का कालक्रमानुसार इतिहास लिखा जा सकता है, लेकिन अत्यंत संक्षिप्तता इसकी सबसे बड़ी कमजोरी है । दूसरा काव्य तत्वों के अधिक हावी हो जाने के कारण उसके वर्णन में ऐतिहासिक सत्यता पृष्ठभूमि में चली जाती है । तीसरी कमजोरी यह है कि वह उन घटनाओं का संकेत तक नहीं देता जिससे उनके नायक के वंश पर किसी प्रकार की आंच आ सकने का किंचित् सा भी अंदेशा हो। चौथी कमजोरी पौराणिक कथाओं का विस्तार से वर्णन उसके ग्रंथ को पूर्ण इतिहास ग्रंथ बनने में बाधा उत्पन्न करता है । पांचवीं कमजोरी राव जोधा के पूर्व के इतिहास वर्णन में तिथियों की अनुपस्थिति एवं लोक विश्वासों पर आवश्यकता से अधिक विश्वास करके सत्य मानकर अपने ग्रंथ में स्थान देना । इन कमजोरियों के अतिरिक्त, उसकी उल्लेखनीय विशेषता राठौड़ वंश के वर्णन की उल्लेखनीय निरन्तरता है। दूसरा कवि अपनी आकर्षक काव्य शैली के माध्यम से पाठक को राठौड़ वंश का पूरा इतिहास सम्प्रेषित कर देता है ।

इतिहास विभाग
अली गढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

संदर्भ

१. यूनानी इतिहास के विस्तृत अध्ययन के लिए दृष्टव्य, जे.डब्ल्यू थोम्पसन, हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग I (न्यूयार्क १९४२), पृ.२१-४०

२. असंख्य डिंगल गीत जो व्यक्ति केन्द्रित हैं सम्पादित होकर प्रकाश में आ चुके हैं। दृष्टव्य, दुरसा आढा ग्रंथावली, सं.भूपतिराम सांकरिया (उदयपुर, १९८३) केसोदास गाडण, गजगुण रूपक बंध, सं.सीताराम लालस, (जोधपुर, १९६८), परिशिष्ट १ में जोधपुर राजवंश के गीत संकलित हैं, पृ.२४४-३४४

३. दलपति मिश्र, जसवंत उद्योत (बीकानेर संवत २००६) सं.अगरचंद नाहटा। ग्रंथ के तीन नाम हैं: जसवंत उद्योत, जसवंत विलास एवं जसवंत उदोत वंशावली

४. वही, पृ.७९

५. बी.एल.भादानी, 'मुहणोत नैणसी: सत्रहवीं सदी का सांख्यिकीवेत्ता', मध्यकालीन भारत, सं.इरफान हबीब, पृ.१०५-६

६. दृष्टव्य, जसवंत उद्योत, पृ.१-४५ इन पृष्ठों में पौराणिक कथाओं का संकलन किया गया है।

७. वही, पृ.४९-५१

८. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खंड (अजमेर वि.सं.१९९५), पृ.१५०-५१

९. मुहणोत नैणसी, ख्यात, सं.बद्रीप्रसाद साकरिया (जोधपुर १९६२), II पृ.२६५-७५

१०. जसवंत उद्योत, पृ.५२

११. ख्यात, II, पृ.२७६-७९

१२. जसवंत उद्योत, पृ.५३-४

१३. गौरी शंकर हीराचंद ओझा ने इस आक्रमण के बारे में नकारात्मक रुख अपनाया है और इसे अविश्वसनीय बतलाया है। दृष्टव्य जोधपुर राज्य का इतिहास, उपर्युक्त, २३९-४०

१४. जसवंत उद्योत, पृ.६५

१५. विस्तार से वर्णन के लिए, दृष्टव्य, ओझा, उपर्युक्त पृ.२८०-८१

१६. जसवंत उद्योत, पृ.६६

१७. उपर्युक्त, पृ.६८

१८. वही, पृ.६९

१९. वही, पृ.७१

२०. ओझा, उपर्युक्त, पृ.४१२

२१. जसवंत उद्योत, पृ.८०

२२. वही

२३. वही, पृ.५७-८

२४. ओझा, उपर्युक्त पृ.२२५-२६

२५. जसवंत उद्योत, पृ.६१

२६. इस स्रोत में उन सब वतन का ज़िक्र है जिस पर विभिन्न राजपूत खांपों का अधिकार था, दृष्टव्य मारवाड़ि माहें राठौड़ राजपूत रावतां रा उतन सी.६०, राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथ, एशियाटिक सोयायटी, वी.बी.त्रिवेदी, I (कलकत्ता, १९५७)

कवि कुंभकर्ण कृत रतनरासो और उसका ऐतिहासिक महत्व

डा.मनोहरसिंह राणावत

रतन रासो के रचयिता कुंभकर्ण का जन्म मारु चारणों की सांदू खांप में हुआ था। सांदू से कोई नवीं पीढ़ी में सांदू गोविन्द चांगावत हुआ। वह मारवाड़ के शासक राव गांगा (१५१५-१५३२ ई.) का समकालीन था और गांगा के लिये युद्ध में मारा गया।[१] उसके पुत्र उदयकरण ने भी इस युद्ध में वीरता दिखाई और घायल होने के बाद भी युद्ध करता रहा। अत: राव गांगा ने सांदू घराने को विशेष महत्त्व दिया और सांदू उदयकरण को कविराज की उपाधि दी। यही सांदू उदयकरण १५४४ ई.में शेरशाह और राव मालदेव के मध्य हुए सुमेल के युद्ध में राव मालदेव की ओर से लड़ता हुआ मारा गया।[२]

उदयकरण का पुत्र सांदूमाला भी मारवाड़ के शासक मोटा राजा उदयसिंह की सेवा में रहा और उसने अनेक युद्धों में भाग लिया। मोटा राजा उदयसिंह ने उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर सं.१६४० वि.में परगना जोधपुर टप्पा लवेरा का खुडाला[३] गांव जागीर में दिया।[४] सांदूमाला ने 'झूलणा अकबर पातसाह जी रा', 'झूलणा दीवाण प्रतापसिंघ जी रा', 'झूलणा अचला तिलोक कछवाहा रा', 'झूलणा महाराज रायसिंघजी रा' आदि की रचना की थी।[५]

मोटा राजा उदयसिंह की मृत्यु के बाद राजा सूरसिंह से भी सांदूमाला का निकट सम्पर्क बना रहा और राजा सूरसिंह ने परगना मेड़ता के टप्पा देघाणा रु.४०० की वार्षिक आय का तथा ११६२ बीघे रकबा गुंदीसर खुर्द गांव[६], जागीर में दिया था। सांदू माला का अधिकांश जीवन बीकानेर के शासक रायसिंह के यहां बीता था। रायसिंह ने १५७२ ई.में नागौर परगने का गांव भदौरा जागीर में दिया था।[७] मोटा राजा के चौथे पुत्र दलपत का भी माला से घनिष्ट संबंध रहा था। अत:

माला की पुत्री के विवाह के अवसर पर दलपत ने उसकी आर्थिक सहायता की ।[८]

सांदू माला के चार पुत्र-जसवंत, सांवतसी, ईश्वरदास और आसकरण थे ।[९] रतन रासो के रचियता कुंभकर्ण माला के पुत्र ईश्वरदास का पुत्र था । रतन रासो के प्रमुख नायक रतनसिंह का समकालीन था और उसने रतनसिंह का यश वर्णन भी किया ।[१०]

ईश्वरदास के पुत्र कुंभकर्ण का नागौर परगने के भदौरा गांव में जन्म हुआ था । कुंभकर्ण के जन्म सम्वत् शिक्षा कहां हुई आदि प्रारंभिक जीवन की जानकारी नहीं मिलती है । रतनरासो के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुंभकर्ण का अध्ययन बहुत ही विस्तृत और गंभीर था ।

रतलाम के शासकों के साथ कवि कुंभकर्ण का अति घनिष्ठ संबंध रहा अत: उसने स्वयं सोचा कि-

जिय पाये रतलाम पुर जालंधर साँचौर ।
अधिकौ रतन महेस तै अधिक कहूँ कहँ और ॥

अत: उसने रतन रासो[११] की रचना की । रतन रासो की रचना का कार्य १६७३ ई.के लगभग प्रारंभ हो गया होगा और पूरे १२ वर्ष तक वह चलता रहा है ।

रतन रासो की रचना करने में अपने ध्येय का उल्लेख करते हुए कवि कुंभकर्ण ने स्वयं उसमें लिखा है कि ऋषियों द्वारा वर्णित राजनीति का प्रबंध-काव्य में चित्रण करने तथा उमंग सहित संगीत-मय भाषा में वीर-काव्य का गान करने को वह समुत्सुक था । ऐसे वीर काव्य में उनके जीवन और गुणों का वर्णन करने के लिए महेशदास और रतन सिंह से बढ़ कर और कौन व्यक्ति हो सकते थे, अतएव उसने अपने इस काव्य में उनके चरित्रों का गान किया है । रतनसिंह के उस अतुलित पराक्रम को उसने इस सुन्दर रासो द्वारा अमर कर दिया । जाज्वल्यमान तेज वाले अपने इष्ट को प्रसन्न करने के लिए कवि ने अपने इस काव्य को हर तरह से सुन्दर बनाया ।

कवि के अनुसार 'रतन रासो' को रचना कर जहां उसने राठौड़ वंश की ख्याति फैलाई तथा पवित्र धर्म और पितरों को तृप्त किया, वहीं उसके द्वारा तीन कार्य भी एक ही साथ सिद्ध किये-उसने अपने जन्म को सफल किया, अपने चारण कुल-धर्म को काव्य-रचना में रह कर उसे पूरी तरह निबाहा और गंगा तट पर वास कर उसने विविध प्रकार से ब्रह्म भक्ति की ।

'रतन रासो' का ऐतिहासिक महत्व-

'रतन रासो' एक ऐतिहासिक काव्य है । इसमें अनेकानेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया गया है । यद्यपि रतनरासो में सन्, संवत् और तिथि माह का कोई उल्लेख नहीं है फिर भी इसका महत्व कम नहीं है ।

'रतनरासो' का ऐतिहसिक विवरण अन्य सम सामयिक आधार ग्रंथों से प्राप्त जानकारी के समान है या भिन्न, ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण लिखते समय कवि ने कल्पना मात्र का आधार तो नहीं लिया है ?

कवि ने अपने ऐतिहासिक उल्लेख में कहीं ऐसी कोई भूलें तो नहीं कीं जिसके कारण उसके काव्य ग्रन्थ की विश्वसनीयता पर आघात लगे ऐसी कौन सी जानकारी है जो प्रथम बार में विशेष रूप से प्राप्त हो रही है। ग्रंथ में उपलब्ध ऐतिहासिक जानकारी के संभावित आधार क्या हो सकते हैं ? इन सब बातों का विवेचन यहां किया जा रहा है जिससे उसका ठीक ठीक ऐतिहासिक महत्व निर्धारित किया जा सके।

'रतनरासो' के लेखक ने सर्वप्रथम अपने पूर्वज कविचंग से लेकर स्वयं तक अपने वंश का विवरण लिखा है। कविचंग का पुत्र सांदू गोविन्द मारवाड़ के शासक राव गांगा का समकालीन था तथा तब से ही जोधपुर राज्य के राजघराने के साथ कवि के वंश का विशेष सम्पर्क रहा था जो आगे दलपत और उसके वंशजों के साथ भी बना रहा। कुंभकर्ण के पितामह माला का अधिकांश जीवन बीकानेर के शासक रायसिंह के साथ व्यतीत हुआ था।

अपने वंश का वर्णन लिखते समय कवि कुंभकर्ण ने अपने पूर्वजों के इन संरक्षक शासकों आदि से संबंद्ध कई एक घटनाओं का उल्लेख किया है।

'रतन रासो' में कुंभकर्ण ने राव गांगा के शासनकाल से लेकर शाहजहां के समय हुए धरमाट के निर्णायक युद्ध (१६५८) तक मारवाड़ के इतिहास से सम्बद्ध कुछ विशेष घटनाओं का विवरण दिया है। रतनरासो में कवि कुंभकर्ण ने महेशदास और रतनसिंह के जीवन काल की प्रमुख घटनाओं का विस्तृत विवरण दिया है तथा महेशदास के पूर्वज दलपत से मालदेव तक का अति संक्षेप में उल्लेख किया गया है।

कवि कुंभकर्ण ने अपने काव्य ग्रन्थ में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं किया कि अपने ग्रंथ में उल्लेखित ऐतिहसिक घटनाओं का विवरण उसने कहां से प्राप्त किया। कुंभकर्ण के वंशजों का मारवाड़ बीकानेर और रतलाम के राजघरानों से गहरा संबंध रहा था। डॉ.रघुबीरसिंह के अनुसार कुंभकर्ण के वंशजों के निजी ज्ञान अथवा इन कौटुम्बिक संबंधों के फलस्वरुप उन्हें प्राप्त ज्ञानकारी के अनुसर ही बहुत से विवरण कुंभकर्ण को उत्तराधिकार में मिले थे, उनमें अपने व्यक्तिगत सम्पर्कों और प्रयत्नों द्वारा ही कुंभकर्ण ने पर्याप्त वृद्धि की होगी।[१२]

मुगल इतिहास की चार महत्वपूर्ण घटनाओं का रतनरासो में विस्तृत विवरण है, वे हैं-१६२५ ई.का बुरहानपुर का घेरा, १६३३ ई. में दौलताबाद के किले का घेरा और विजय, १६४७ ई.में बल्ख पर चढ़ाई और १६५८ ई. को हुआ धरमाट का निर्णायक युद्ध।

'रतनरासो' के अनुसार खुर्रम (शाहजादा शाहजहां) ने बुरहानपुर में अपने पिता जहांगीर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। तब बूंदी के हाड़ा राव रतन को उसके विरुद्ध भेजा गया था।[१३] तब कन्हीराम भी राव रतन के साथ था। कन्हीराम के साथ शार्दूल, गोपाल, बल्लू चौहान और अचला थे। शाहकुली खां ने बुरहानपुर नगर में घुस कर उस पर अधिकार कर लिया। शाहकुली की सेना में २० हजार सवार थे। कन्हींराम ने रतनसिंह से घोड़ा लेकर युद्ध किया और किले में घुसकर शाह कुली खां को पराजित किया। इस युद्ध में कन्हीराम और उज्जा चौहान मारे गये।राव रतन की

विजय हुई और बादशाह जहांगीर ने हिन्दू वीरों की प्रशंसा की।[१४] कन्हीराम और अज्जा सावंतसिंहोत चौहान का कोई उल्लेख फारसी आधार ग्रंथों में नहीं है, परन्तु उदयभाण चांपावत की ख्यात[१५] और नैणसी की ख्यात में कन्हीराम और सांचोरा चौहान अज्जा का युद्ध में भाग लेना और मारे जाने का उल्लेख है । परंतु खाद्यान्न की कमी के कारण इस युद्ध के समय कन्हीराम और अज्जा द्वारा एक-एक माह का व्रत रखने की बात कवि कुंभकर्ण ने जो लिखी है वह अतिशयोक्तिपूर्ण ही है ।

रतनरासो में दौलताबाद के ऐतिहासिक युद्धाभियान का सविस्तार विवरण है-बादशाह शाहजहां दक्षिण विजय करना चाहता था । अत: सर्वाधिक योग्य महावतखां को मानकर उसे दक्षिण अभियान का सेनापति बनाया । इसी सेना में महेशदास और उसके भाई थे । कुंभकर्ण के अनुसार देवगिरि का दुर्ग अभेद्य और अजेय था । रासो में देवगिरि का घेरा (१६३३ ई.) और महावत खां की युद्ध की व्यूह रचना का विशद वर्णन है । सेना के हरावल भाग में वह स्वयं रहा । हरोल में मिर्जा और महेशदास, महेशदास के बांई और सांचोरा चौहान बलू राव और दाहिनी ओर गोपाल, सावंतसिंह और सूजा थे । सम्मुख राजसिंह, जुझारसिंह, चन्द्रभान, रघुनाथ और जगन्नाथ थे ।[१६]

लगभग साढ़े तीन महिने तक दौलताबाद किले का घेरा रहा । कई भीषण आक्रमण और घमासान युद्धों के फलस्वरुप ही उस किले पर मुगलों का आधिपत्य हो सका था ।[१७]

रासो में यह विवरण कि दक्षिण की इस सेना में चार लाख घुडसवार, चार हजार हाथी, अनंत तोपें, राम चंगी, मंत्र वाण आदि युद्धोपकरण हैं, अतिशयोक्तिपूर्ण है । रासो के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि कवि कुंभकर्ण को दौलताबाद के शासक (फतेह खां) का नाम ज्ञात नहीं था ।[१८]

महावतखां द्वारा देवगिरि का घेरा लगाये जाने के बाद फतेहखां द्वारा दक्षिण के अन्य राज्यों की सहायता प्राप्त करने के लिये जो प्रयास किये और दक्षिण से आने वाली सेना का जो विवरण दिया उसमें ऐतिहासिक तथ्य बहुत ही कम हैं । पुर्तगाली सैनिकों का उल्लेख तथ्यपरक नहीं है । रासो में जगन्नाथ भाटी का दौलताबाद युद्ध में मारे जाने का उल्लेख सही नहीं है, क्योंकि शाहजहांनामा के अनुसार जगन्नाथ भाटी मार्च २८, १६३३ ई. में ही मारा गया था ।[१९]

रासो में वर्णित तीसरा ऐतिहासिक युद्धाभियान (१६४७ ई.) बल्ख पर मुगल चढ़ाई है ।[२०] महेशदास की मार्च, १६४७ ई.में मृत्यु हो गयी, तब उसका उत्तराधिकारी रतनसिंह इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिये मई १६४७ ई.में शाही दरबार में पहुँचा और जून में मिर्जा राजा जयसिंह के साथ बल्ख भेजा गया परन्तु उसके पहुँचने तक बल्ख का युद्ध समाप्त हो गया था ।[२१] बल्ख से वापस लौटते समय अक्टूबर ८, १६४७ को गजनियाक की घाटी के निकट अलमानों ने शाही सेना पर आक्रमण कर दिया था । रतनसिंह और उसके साथियों ने वीरतापूर्ण लड़ाई की और उन्हें मार भगाया ।[२२] परंतु रतनरासो में वर्णित इस युद्ध विवरण से ऐसा ज्ञात होता है कि बल्ख के इस द्वितीय अभियान के अंतर्गत युद्ध का वर्णन करते समय कुंभकर्ण ने प्रथम ब्यौरे के समय अगस्त २५, १६४७ ई. को हुए शाहमीर के युद्ध का वर्णन लिख दिया, जिसमें रतनसिंह ने उल्लेखनीय वीरता और साहस

का प्रदर्शन किया था ।[२३]

रतनरासो में मुगल इतिहास संबंधी विवरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण धरमाट के युद्ध संबंधी वर्णन हैं । कवि कुंभकर्ण ने युद्धाभियान और युद्ध की घटनाओं का सविस्तार वृतान्त लिखा है ।[२४] यद्यपि इस युद्ध में रतनसिंह के अद्वितीय पराक्रम और अनुपम बलिदान का वर्णन करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य रहा है ।[२५] परंतु धरमाट के इस निर्णायक युद्ध की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के लिये तब मुगल साम्राज्य में उत्पन्न सारी राजनैतिक परिस्थितियों की जानकारी दी है । शाहजहां के वृद्धावस्था और बीमारी के कारण मुगल साम्राज्य में सर्वत्र उत्पन्न भय, आतंक, घबराहट और राजनैतिक अनिश्चितता का बहुत ही सही और सजीव वर्णन रतनरासो में मिलता है ।[२६]

तीनों विद्रोही शाहजादों की सैनिक तैयारियाँ और दाराशिकोह के विरुद्ध आपसी मंत्रणा का उल्लेख भी रतन रासो में है । धरमाट के युद्धाभियान का वर्णन करते हुए कुंभकर्ण का मुख्य केन्द्र बिन्दु रतनसिंह ही था, परन्तु उसने शाही सेना के मुख्य सेनापति महाराजा जसवंतसिंह की सभी कार्यवाहियों, युद्ध की व्यूह रचना, सेना संचालन और उसके स्वयं युद्ध करने के बारे में पर्याप्त प्रकाश डाला है ।[२७] अत: रतन रासो का यह वर्णन इतिहास के लिए प्राथमिक आधार सामग्री बन गया है ।

फारसी आधार ग्रंथ मुख्यतया औरंगजेब के दृष्टिकोण से ही लिखे गये थे । अत: उनके आधार पर लिखा गया इस युद्ध का विवरण भी एक पक्षीय हो गया और अपूर्ण भी । केवल डा.रघुबीरसिंह ने ही रतलाम के इतिहास में प्रथम बार रासो और वचनिका का आधार ग्रंथ के रूप में उपयोग किया है ।

फारसी ग्रंथों के आधार पर ही यदुनाथ सरकार ने 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' में रतनसिंह की मृत्यु शाही सेना के प्रथम आक्रमण के समय ही बतायी है और महाराजा जसवंत सिंह के युद्ध क्षेत्र छोड़ने के बाद शाही सेना के बाकी रहे विरोध का अंत हो गया ।[२८] परंतु रतन रासो के अनुसार युद्ध क्षेत्र छोड़ने के पूर्व ही जसवंतसिंह ने रतन सिंह को शाही सेना का सेनापति बना दिया था और उसने युद्ध जारी रखा और वीरतापूर्ण शाहजादों की सेना का सामना करता हुआ अन्त में वीरगति को प्राप्त हुआ ।[२९] यों फारसी आधार ग्रंथों की खटकने वाली बड़ी कमी रतन रासो से कई अंशों में पूरी होती है । फिर भी कवि कुंभकर्ण से धरमाट युद्ध के विवरण में कुछ भूलें भी हुई हैं, उनका उल्लेख भी यहां आवश्यक प्रतीत होता है । रतन रासो में शाही सेना का प्रस्थान दिल्ली[३०] से बताया जो सही नहीं है । शाही सेना आगरा से रवाना हुई थी ।[३१]

कवि कुंभकर्ण का यह कथन कि धरमाट का युद्ध मध्याह्न में प्रारंभ हुआ ।[३२] और धरमाट के युद्ध से भागने वालों की सूची में खेलोजी[३३] भोंसले का उल्लेख नहीं है । फारसी आधार ग्रंथों के अनुसार युद्ध सूर्योदय से दो-अढ़ाई घण्टे बाद प्रारंभ हुआ था और 'खेलोजी' नहीं परसोजी ही युद्ध क्षेत्र से भागे थे ।

रतनरासो में रतन सिंह की दो राणियों के सती होने का उल्लेख भी सही नहीं है, क्योंकि वचनिका के अनुसार चारों राणियाँ सती हुई थीं । यों यत्र-तत्र भ्रमवश कई भूलों के बावजूद दलपत

और उसके वंशजों, मुगल इतिहास से जुड़े तीनों युद्धों के लिए रतन रासो प्राथमिक महत्व का ऐतिहासिक आधार ग्रंथ है ।

रतन रासो का रचयिता कवि कुंभकर्ण स्वयं सुशिक्षित था । राजस्थानी, संस्कृत और विभिन्न शास्त्रों का उसने गहन अध्ययन किया था । तत्कालीन समाज, संस्कृति और प्रचलित परम्पराओं की उसे विस्तृत जानकारी थी । अत: उचित अवसर पाकर उसने रतनरासो में तत्कालीन शिक्षा-दीक्षा, अध्ययन कार्यक्रम, आचार-विचार, धा।मर्क मान्यताओं, परम्पराओं, दिचचर्या, रहन-सहन, वन्य पशु-पक्षी, वस्त्राभूषण, दुर्ग और नगर की भौगोलिक स्थिति आदि का बहुत कुछ वर्णन किया है । अत: मुगल इतिहास और जोधपुर तथा जालोर रतलाम के राठौड़ राजघराने संबंधी विभिन्न राजनैतिक घटनाओं के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक और शैक्षणिक परिस्थितियों की जानकारी भी रतनरासो में मिलती है ।

यों सारे विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल की अनेक राजनैतिक घटनाओं, युद्ध की व्यूह रचना और युद्धोपकरण, सामाजिक परम्पराओं, सांस्कृतिक गतिविधियों, धार्मिक मान्यताओं, आर्थिक और भौगोलिक स्थिति संबंधी विविध प्रकार की जानकारी के लिए रतनरासो प्राथमिक महत्व का एक बहुत ही उपयोगी आधार ग्रंथ है ।

सन्दर्भ सूचि

१. रतन रासो, चतुर्थ छंद सं.४, बांकीदास की ख्यात, पृ.१७९
२. रतन रासो, चतुर्थ, छंद संख्या ५-२३
३. खुडाला गांव खींवसर में १२ कि.मी.दक्षिण-पश्चिम में और भदौरा से २७ कि.मी.पश्चिम में है ।
४. मारवाड़ रा परगना री विगत, १, पृ.३४९
५. रतन रासो, प्रथम खण्ड , पृ.७०-७१
६. मारवाड़ रा परगना री विगत, २, पृ.१९७
७. रतन रासो, पृ.७१
८. रतन रासो, प्रथम खण्ड, पृ.७१
९. बांकीदास की ख्यात, पृ.१७९
१०. रतनरासो, चतुर्थ छंद सं.७७, उज्जैन समय छंद सं.८५
११. रतन रासो के अतिरिक्त कवि कुंभकर्ण के कनवजपति जयचन्द अष्ट पातसाह गुन समइ अथवा 'जयचंद रासो' (४५२ छंद) और राठौड़ दुर्गादास के दो गीतों की रचना का उल्लेख मिलता है ।

१२. रतन रासो, पृ.११८
१३. जहांगीरनामा, पृ.५०३-५०४ (सीतामऊ टाइप प्रति)
१४. रतन रासो, छंद सं.१३२-१५२
१५. कविराजा ग्रंथ सं.१००, पत्र ९४ क (संस्थान) नैणसी की ख्यात, (सं.डा.मनोहर सिंह राणावत), पृ.१९३
१६. रतन रासो, छंद सं.१९२-९३ (संस्थान, टाइप प्रति, पृ.६२) (राजसिंह और जुझारसिंह महेशदास के भाई थे। रघुनाथ और जगन्नाथ महेशदास के मामा भाटी जोगीदास के पुत्र और भाटी गोविन्ददास के पौत्र थे।)
१७. रतन रासो, पृ.४४-१०९ (सीतामऊ टाइप प्रति)
१८ रतन रासो, छं सं.२०४-२०५ (पृ.७४)
१९. शाहजहां नामा (सं.डा.रघुवीरसिंह, डा.मनोहर सिंह राणावत) पृ.१०२
२०. रतन रासो, छं सं.११८-१२६ (पृ.१९०-१९३ टाइप प्रति)
२१. शाहजहां नामा, पृ.२३०, २३५, रतन रासो, पृ.७६-७९ (सीतामऊ प्रति), रतलाम पृ.७४
२२ रतलाम, पृ.७५
२३ रतलाम, पृ.८२-८३
२४. रतन रासो, उज्जैन समय, छं.१-२०४ (पृ.१९८-३४४)
२५. रतन रासो, छं.सं.२००
२६. रतन रासो, उज्जैन समय, छं.सं.१७-२५
२७. रतन रासो, उज्जैन समय, पृ. सं.२६-१५३
२८ हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, २, पृ.२१
२९. रतन रासो के विवरण का समर्थन वचनिका (भूमिका पृ.८५-८६) के लेखक ने भी किया है जो युद्ध के समकालीन था।
३०. रतन रासो, उज्जैन समय, छं.सं.६०
३१. जोधपुर हुकूमत री बही पृ.१५
३२. रतन रासो, उज्जैन समय, छं.सं.१४६
३३. रतन रासो, उज्जैन समय, छं.सं.१४६ (यह १६३३ ई.में दौलताबाद युद्ध के समय शाही सेवा छोड़कर पुनः निजाम के साथ जा मिला, शाहजहां के हिन्दू मनसबदार, पृ.५८)

कवि काशी छंगाणी कृत छत्रपता रासो

डा. विक्रम सिंह राठौड़

राजस्थानी साहित्य का अधिकांश भाग ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर सृजित हुआ है। प्रबंध और स्फुट दोनों ही रूपों में यहां बड़े पैमाने पर ऐतिहासिक काव्य रचे गये। इतिहास को आधार बनाकर यहां जो राजस्थानी काव्य कृतियां लिखी गई उनमें रूपक, रासो, प्रकाश, विलास, वेलि, वचनिका, छंद और चरित्रसंज्ञक रचनाएं प्रमुख हैं। इन रचनाओं में यहा का इतिहास रूपायित है। इसलिये यहां के साहित्य को भलीप्रकार से हृदयंगम करने के लिये यहां के इतिहास का ज्ञान आवश्यक हैं। बिना इतिहास की जानकारी के राजस्थानी साहित्य का अनुशीलन अधूरा ही रहेगा। इसका कारण यह है कि अधिकांश राजस्थानी साहित्य ऐतिहासिक घटनाक्रम के समसामयिक रचनाकारों द्वारा लिखा गया है तथा कई रचनाकार तो उस घटनाक्रम के साक्षी ही नहीं, सहभागी भी रहे हैं। अतः उनका ऐतिहासिक महत्व स्वतः ही बढ जाता है। यहां यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा की ये ऐतिहासिक काव्य हैं, विशुद्ध इतिहास नहीं। इसमे प्रशस्ति, वस्तुपरकता और अतिरंजना व काव्यात्मक आनन्दानुभूति के लिये कल्पनात्मक वर्णन भी होता है और इन सबके बीच से ऐतिहासिक तथ्य एवं प्रामाणिक सत्य खोजने हेतु पैनी दृष्टि अनुभव और सतत सावधानी बरतने की आवश्यकता है। ऐसे ही भाषाकाव्यों में ऐतिहासिक महत्व का एक काव्य है - छत्रपतिरासो।

कवि काशी छंगाणी कृत छत्रपति रासो का संबन्ध बीकानेर के इतिहास से है और इसका रचनाकार बीकानेर का शासक अनूपसिंह का समकालीन था जिसने यह रचना वि.सं.१७४० में लिखी। कवि के सम्बन्ध मे अद्यावधि और कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। यह कृति राजस्थानी शोध संस्थान से प्रकाशित हो चुकी है। (परम्परा अंक ९०-९१)

छत्रपतिरासो (महाराज अनूपसिंह कुल वर्णन) का प्रारंम्भ काव्यकार ने बीकानेर के संस्थापक राव बीका से किया है । प्रबन्ध काव्यों की परम्परानुसार ग्रंथ के प्रारम्भ मे मंगलाचरण के कवित्तों में गणेश, सरस्वती, शिव हरि, ब्रह्मा, शक्ति आदि को वंदन करने के बाद सूर्यवंशी राठौड़ों का वर्णन करते हुए बीकानेर के संस्थापक राव बीका के संबन्ध में संक्षिप्त वर्णन दिया है जिसमें बीका द्वारा बीकानेर की स्थापना और विविध स्थानों पर प्रभुत्व स्थापित करने का संकेत दिया गया है । कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं ।

सूरजवंशी जोरवर हूव कमंध हाथाळ ।
देस देस चा देसपत ज्यां जिता भूपाळ ॥ ६ ॥
ज्यां कुल बीको जनमियो कंमधापत कुळमोड़ ।
पिता छते प्राझो हूवो रायजादो राठौड़ ॥ ७ ॥
पन्हरे से गुणतीस मझि कमधज आप सकत ।
बेठो पाट महाबळी पिता छते छत्रपत ॥ १० ॥

दो कवित्तों में बीका की उपलब्धियों को काव्यकार ने जिस प्रकार से समेटकर ऐतिहासिक प्रसंगों को सहेजा है, उसका उदाहरण देखिये और निर्णय कीजिये, इसमें कितना इतिहास कविता के माध्यम से उजागर होता है -

पिता छते छत्रपत कमंध वीकाण वसायौ ।
भुज भाड़ंग चा भंज उलटि देरावर आयौ ।
मोमण वाहण मार पुरो देपाल पछाड़े ।
सरसों नरहड़ सझि अवर हंसार उपाड़े ।
पुरफतै झीझणू नागपुर दिल्ली तख टंडोलीयो ।
बीके नरेन्द जोधे तणे परवाड़ा इण विध कीयो ॥ ११ ॥
धर नाग धकधूण भिड़े दिलावर भंजे ।
पातसाह बहलोल गरब तस खगा गंजे ।
जुध जी पे अजमेर बळें पड़ताल विडडव ।
इळि पड़ तेज अपार जिसों अर्जुन भड पड़व ॥
वरसंघ अने सेखो बिना भाटी बंद छोड़ावियो ।
बीके नरेंन्द जोधे तणे परवाड़ा एता कीया ॥ १२ ॥

इसके बाद कर्णसिंह तक जो शासक बीकानेर की राजगद्दी पर बैठे, उनके राज्यारोहण की तिथि व उपलब्धियों का संक्षेप में कवि ने वर्णन किया है । लूणकरण, कल्याणमल, रायसिंह, राजा सूरसिंह, व कर्णसिंह के राज्यारोहण की तिथियां इसमें उल्लेखित की गई हैं, वे इतिहास सम्मत हैं

पन्हरे से चोपन समें लूणकरण कुल भांण ।
खोड़ेचो बेठो तखत सुजसो रोड़ि नीसांण ॥ १३ ॥

पन्हरे से निन्याणवे कंमधराव कल्यांण ।
प्रबलो पाट प्रतापीयो भीमभुजो कुळिभाण ॥ १८ ॥
सोलहे से तीसे सम्मत रायसंघ नरेश ।
बैठो पाट महाबळी सुजसो जाणि सुरेस ॥ २१ ॥
सोळेसे सतर संमत भीमभुजो भूपाल ।
रासे पाट बिराजियो राजा सूरजमाळ ॥ २४ ॥
सोळे से अठयासिये रासा हरो नरेस ।
राजा पाट विराजियो कमधापत करनेस ॥ २७ ॥

उपर्युक्त शासकों के वर्णन के पश्चात् कवि ने कर्णसिंह का वर्णन विस्तार से किया है, जो वि.सं. १६८८ में बीकानेर की गद्दी पर बैठा और सर्वाधिक विस्तार जिस ऐतिहासिक प्रसंग को कवि ने दिया है वह है, जाखणियां गाँव को लेकर कर्णसिंह और नागौर के राव अमरसिंह राठौड़ की सेनाओं के बीच हुआ युद्ध है जिसे "मतीरे री राड़" के नाम से भी जाना जाता है।

इस घटना प्रसंग का उल्लेख करते हुए कवि ने पूरा ब्यौरा प्रस्तुत किया है कि बीकानेर और नागौर के बीच जाखणियां गाँव को लेकर किन कारणों से युद्ध हुआ। कहने को तो यह "मतीरे री राड़" कही जाती है पर इसके पीछे कारण कुछ और ही था जिसका उल्लेख कवि ने किया है और वह उपयुक्त भी लगता है और वह कारण था अमरसिंह राठौड़ द्वारा जाखणियां गाँव अखे मंडणोत को पट्टे देना।

सहिजहां पतसाह रीझि नागौर समपे ।
देवाराव उदराव अमरेसर थपे ।
ताम्रपटा बांटीय अमर मोटे छत्रपति ।
अधिपति रीझि अळाय दीधी भोपत भूपति ।
तिणवार अखे मंडणोत ने ले जाखणियों पटे दीयौं ।
कलह रो बीज अमरे कमध उण वेला आरोपियौं ॥ ३३ ॥

अखे मंडणोत ने वर्षा होने पर जाखणियां गाँव में हल चलवाये। बीकानेर के मंत्री रामचंद और गोपाल के मना करने पर भी वह नहीं माना। तब दोनो ने कर्णसिंह को सारा विवरण लिख भेजा। कर्णसिंह बहुत ही स्वाभिमानी था उसने क्रोधित होकर रामचंद्र और गोपाल अपने दोनों मंत्रियों को परवाना भेजा कि "मत टळो जोध भड़ माहरा, जुध करज्यो भारथ जिसो" अर्थात् मेरे वीर योद्धाओं, पीछे नहीं हटना, इसके लिये युद्ध करना। बीका बीदावत, मंडला, रावत इत्यादि खांप के जो वीर योद्धा युद्ध करने के लिये एकत्र हुए उन वीरों को नामोल्लेख भी कवि ने किया है।

जाखणियां गाँव के खेतों में फसल पकने पर अखे मांडणोत ने बाजरी के सिट्टे काटकर शामिल किये थे, उन सिट्टों को बीकानेर वालों ने जला दिया।

वास्तव में जाखणियां गाँव के पास आपसी सीमा विवाद के कारण छुटपुट लड़ाईयां कई बार होती रहीं। पहली बड़ी लड़ाई वि.सं. १६९९ आसोज सुद चौदस को हुई जिसमें बीकानेर के पक्ष की हार हो गई। तब इन्होने सिट्टे जलाकर जीत की खुशी मनाई तो अमरसिंह के लोगों ने शीघ्र बदला लेने हेतु अपने योद्धा तैयार किये। युद्ध विषयक तैयारी का वर्णन व प्रत्येक पक्ष के योद्धाओं का खांपवार नामोल्लेख किया गया है। और अमरसिंह और कर्णसिंह के पक्ष के जो लोग इस युद्ध में काम आये, उनका बाकायदा अलग अलग विवरण दिया है। काव्यकार ने जैसे पूरी ऐतिहासिक फेहरिस्त लिखी हो, उस प्रकार का वर्णन किया है।

अतरा भड अमरेसरा पिड़ पडीया अणभंग।
पंडव कुर जिव परस्पर जोधा मचावे जंग ॥ १३७ ॥
दूहा सोरठा अतरा बीकानेर रा
बाळू कर खेगाळ करनाजल साजे कटक
पडीय भड़ पंचाळ रिंण ऐता उमराव नर ॥ १५१ ॥

वि.सं.१६९९ के काती वद ग्यारस को यह दूसरा या निर्णयक युद्ध हुआ जिसमें दोनों पक्षों के कई वीर खेत रहे और विजय कर्णसिंह के पक्ष की हुई -

सोल्हेसे नंन्याण मास काती वद ग्यारस।
अमरे करन अधिपदळां मातो वीरा रस ॥
जाणि दुजोण जुधिष्ठ कमंधन लडीया खित कारण।
पडीयो जोध्य अपार हुई भैभीत आहरण।
रिण पड़ी सेन अमरेस री जुड़ी कायर भजे गया।
जीतो कमध राजा करनचंद जेम नामा कीया ॥ १६१ ॥

वि.सं. १७१४-१५ में शाहजहां अस्वस्थ हुआ, उस समय दाराशिकोह उसके पास था। शाहजहां की बीमारी का समाचार सुनकर दूसरे शहजादे भी गद्दी प्राप्ति हेतु लालायित होकर दिल्ली की और रवाना हुए तो कर्णसिंह को भी सेना सहित साथ चलने को कहा परन्तु कर्णसिंह ने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और बीकानेर बिना आज्ञा ही प्रस्थान कर दिया। इस प्रसंग को काव्यकार ने बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

सतरे से चवदोतरे शाहिजहां पतिसाह।
असुरापत अरधंग हुय रहे दिसा दसराह ॥१६७ ॥
धूध मचे सारी धरा हींदू मुसलमाण।
साहिजादा भड़ि सझीया प्रबलो पांणो पांण ॥ १६८ ॥
धर पूरब सूजो धणी। महि गुजरात मुराद।
दारो भड़ि दिल्ली तपे नरपत साहानाद ॥ १६९ ॥
धर दखण औरंग धणी रहै फकीरां रीत।

सहि सोबा निज बस कीया नूरभुखे भैभीत ।
औरंग ऐअे कहावीयो राजा सुण करनेस ।
मो सुं मिल मारु कमंध दिया वधारा देस ॥ १७२ ॥
इभ करना जळ ऊचरे सुण अवरंग समरथ ।
हूँ चाकर पतसाह रो काय न बीजी कथ ॥ १७३ ॥

अन्त में उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब जब सफल होकर गद्दी पर बैठता है तो इस घटना को भूलता नहीं और वि.सं.१७१७ में अमीर ख्वाफी खाँ को कर्णसिंह पर सेना सहित बीकानेर भेजा । ओझा ने बीकानेर के इतिहास में पहला भाग पृ० २४३ लिखा है कि अमीरखाँ ख्वाफी के सीमा पर पहुंचते ही कर्णसिंह समर्पित हो गया ओर उसने दरबार में हाजरी दे दी । जबकि इस काव्य का काव्यकार इस प्रसंग को विस्तार से वर्णित करते हुए तथ्य उजागर करता है कि औरंगजेब ने कर्णसिंह को बुलाने के लिये कई बार बुलावा भेजा परन्तु उसने औरंगजेब के फरमानों की कोई परवाह नहीं की, कवित्त-२०६-७ फिर अन्त में औरंगजेब ने स्वयं कर्णसिंह पर चढाई की धमकी दी तो कर्णसिंह भी युद्ध के लिये सुसज्जित हो मुकाबले के लिये तैयार हुआ । परन्तु राजा जयसिंह की समझाइश से मामला शांत हुआ । फरमान अनूपसिंह के नाम के भेजे, तब कर्ण सिंह दरबार में हाजिर हुआ ।

कर्णसिंह के पश्चात् काव्यकार ने उसके पुत्र अनूपसिंह का वर्णन किया है, जो सं.१७२६ में गद्दी पर बैठा । काव्यकार अनूपसिंह का आश्रित रहा होगा, तभी ओरंगाबाद कर्णपुरा में रचित कवि की एक रचना "महाराजा अनोपसिंह का बारहमासा" मिलती है । कवि काशी छंगाणी ने अपने ग्रन्थ नायक की विजयों ओर चढाई अभियानों पर विस्तार से प्रकाश डाला है । इस क्रम में वि.सं.१७२९ की नासिक विजय, वि.सं. १७३० में शिवाजी की सोवन पीठ पर विजय, वि.सं.१७३१ में पाटण में मरहठों से संघर्ष , वि.सं. १७३७ मे बीजापुर की चढाई वि.सं.१७३८ में औरंगपुर की चढाई में सम्भाजी की सेना को परास्त करना, वि.सं. १७३९ मे आजम के साथ सम्भाजी पर चढाई, वि.सं. १७४० में कोंकण के मानेरी गढ पर विजय करना प्रमुख है । इस प्रकार काव्यकार ने वि.सं.१७२९ से वि.सं.१७४० तक के विजय अभियानों का वर्णन किया है ।

इस कृति के काव्यकार ने अपनी रचना में जो ऐतिहासिक प्रसंग संजोये हैं, वे बड़े प्रभावी बन पड़े हैं । काव्य में इतिहास को इस तरह से समायोजित करना राजस्थानी काव्यकारों की परम्परा रही है, किन्तु छत्रपता रासो में साहित्यिकता के साथ जो ऐतिहासिक तथ्य उद्घाटित किये हैं, वे विश्वसनीय प्रतीत होते हैं ।

राजस्थानी शोध-संस्थान,
चौपासनी, जोधपुर

राठौड़ रतनसिंह री वेलि: इतिहास का स्रोत

-रामदत्त थानवी

राजस्थानी साहित्य में वेलि का विशेष स्थान रहा है। वीर क्षत्रियों की किसी पराक्रम की एक खास घटना को साहित्यिक रूप प्रदान कर प्रशस्ति की जाती है। इसी प्रकार किसी राजा के सम्पूर्ण शौर्य जीवन की साहित्यिक गाथा 'रासो' कहलाती है। १७वीं सदी में वेलि काव्य का सृजन ज्यादा हुआ। यों तो जैन रचनाकारों की वेलियों में भक्ति, धर्म आदि का अधिक प्रभाव दिखता है, लेकिन चारण कवियों के वेलि साहित्य में वीर रस प्रधान रहा है और साथ में अनेक रसों का भी समावेश रहा है।

आलोच्य ग्रन्थ 'राठौड़ रतनसिंह री वेलि' भी उत्कृष्ट वीर रस प्रधान वेलि मानी जाती है। इसी के साथ 'रतनसी खींवावत री वेलि भी जिसका रचनाकाल वि.सं.१६१४ के आसपास है तथा जिस वेलि के रचयिता दूदा, विसराल हैं, उपलब्ध है। उस वेलि में ६३ छंद हैं, जैसा कि राजस्थानी शोध संस्थान के संग्रहालय में उपलब्ध राठौड़ रतनसिंह री वेलि में ६२ साणोर छन्द हैं। यह वेलि 'परम्परा' त्रैमासिक में छप चुकी है।

दोनों वेलियों की कथा एक ही नायक की है तथा घटना का वर्णन भी एक ही है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि सभी छन्द एक ही हैं, केवल कुछ शब्दों की लिखावट का अन्तर अवश्य उनमें दिखाई देता है। रतनसी खीवांवत री वेलि में जो छन्द संख्या १७,१८,१९,२० है वह राठौड़ रतनसिंह री वेलि में २०,२१,२२,२३ है जैसे —

विकट अणि नख कूंत वधारे, भुजि वलश भाला भालोड़।
खाफर फौज दाघरी खड़िया, जैतारणि उपरि जस जोड॥

इस तरह इस छन्द में खाफर खापर पाघरी-पाधरा, जैतारणि-जैतारण लिखा है अन्यथा चारों पाद समान हैं ।

वर्णन है — भालों की अणि मानो विषकन्या के तीखे नाखून हों । भालों की एक साथ चमक मानो दुल्हिन के चूड़े के जड़े हुए रत्न चमक रहे हों, इस प्रकार मुसलमानी फौज बड़े वेग से जैतारण पर चढ़ आई मानो दुल्हिन बार की जोड़ पाने को उन्मत होकर चल रही हो ।

काव्य के लिहाज से उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक अलंकार इस काव्य में हैं, वयणसगाई की चमत्कार भाषा वर्णन में स्पष्ट दिखता है और शृंगार बीभत्स, भयानक तथा रौद्र रस इस काव्य में दिखाई देते हैं ।

'राठौड़ रतनसिंह री वेलि' में जैतारण के ठाकुर रतनसिंह के जैतारण युद्ध को विवाह का रूप दिया है और वह भी सांगरूपक है । दुल्हिन, दूल्हा, शृंगार, विवाह, मण्डप, झाभरे और प्रणयलीला के बाद वीर दुल्हे का प्रेयसी से एकाकार तथा विजयी दुल्हिन का घर लौटना अच्छे प्रसंग हैं जिससे वीररस की निष्पत्ति पूर्ण रूप से होती है । कवि की कल्पना सांस्कृतिक परम्परा से अनुरंजित रहती हिन्दु विवाह का सफल चित्रण कर पाई हैं । इतना ही नहीं चारण काव्य की परम्परा का भी सही निर्वाह इस वेलि में हुआ है । कवि ईश्वर वन्दना करताहै, अपनी कथा के नायक की विशेषता का गुण बताना नहीं भूलता, कथा वर्णन के पश्चात् नायक की प्रशस्ति करना नहीं भूलता और काव्य ग्रन्थ के उपसंहार में पुन: नायक की कीर्त्ति का गान करता है जैसे—

वन्दना- भांति अनामति देय भवानी,
भणिजै भल गुण सुजस भणु ।
रिण चाचर परणीजै रतनो,
तुंग बखाण खेम तण ॥

उपसंहार- खाफर धड़ सुं साहे खांडो,
रावौ चाड़ कनवजे राव ।
रिणि चढि अचल मेर सूं रतनो (द्रू (ध्रुव)) ।
जुग जासी पिण नाम न जाय ॥

एक छोटी सी युद्ध की घटना का इतना विशाल वर्णन करना साहित्यिक कला का दिग्दर्शन ही है । फौज का आक्रमण अस्त्रों शस्त्रों से सजी विशाल मुगल सेना, जैतारण के थोड़े से वीर, इस स्थिति में राठौड़ रतनसिंह का भयंकर युद्ध शत्रुदल का नाश, अकस्मात् तीर लगने से मृत्यु, युद्धभूमि में प्राणोत्सर्ग, क्षत्रिय का धर्म-यह सब रूपक में चित्रित हैं, यही इस वेलि की उत्कृष्टता का प्रमाण है ।

वैसे राजस्थानी भाषा काव्य में इतिहास के स्रोत अन्यान्य काव्यों में अथवा काव्यांशों में उपलब्ध हैं । सागर में गागर का एक छोटा दृष्टान्त यह दोहा है-जैसे

जोध बसाई जोधपुर, ब्रज कीनी ब्रजपाल ।
दिल्ली, वासी, लखनऊ, मांन नूरी नैपाल ॥

राव जोधा ने जोधपुर बसाया, महाराजा विजयसिंह ने वैष्णव धर्म का प्रसार किया व महाराजा मानसिंह ने राजनीति, संस्कृत, संगीत व नाथ धर्म का केन्द्र बनाया । इसी तरह इस वेलि में इतिहास इस प्रकार छुपा है कि अकबर ने मालदेव से नाराज होकर अजमेर पर भारी भरकम सेना से आक्रमण किया तो हाजी खाँ सूबेदार बिना सामना किये ही गुजरात भाग गया । तब मुगल सेना जैतारण पर चढ़ आई । जैद्वारण के ठाकुर रतनसिंह ने जोधपुर नरेश राव मालदेव से सहायता मांगी पर वह नहीं मिली । तब अपनी छोटी सी फौज से ही उस तूफानी फौज का मुकाबला करने का दृढ निश्चय कर राठौड़ रतनसिंह युद्ध करने लगा । रतनसिंह और उसका साथी किशनसिंह बड़ी वीरता से मुगल सेना पर शस्त्र प्रहार करने लगे जिसके कारण विशाल मुगल सेना में भगदड़ मच गई और युद्ध की स्थिति ही बदलती दिखने लगी । यकायक एक तीर रतन सिंह के सिर पर लगा और वह भाला हाथ में लिये ही रणखेत रह गया। यह जैतारण का युद्ध ऐतिहासिक घटना है जो वि.सं.१६१४-१५ में घटी थी और यह 'राठौड़ रतनसिंह की वेलि' इस इतिहास का स्त्रोत ग्रन्थ है ।

अत: यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि राजस्थान में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश काव्य ग्रंथों में जो दिखने में भाषा काव्य दिखते हैं परन्तु उनमें प्रमाणिक इतिहास के स्त्रोत छुपे हुए हैं । 'प्रबंध काव्यों' के अलावा फुटकर गीतों में भी यह इतिहास शोधकर्ताओं को अवश्य उपलब्ध होगा, जिससे न केवल राजनीति की जानकारी मिलती है अपितु तत्कालीन समाज, संस्कृति और लोकजीवन की परम्परा की भी जानकारी हमें मिल जाती है ।

एम. ए., साहित्य रत्न
सुमेर प्रेस, जोधपुर

'राजरूपक' की ऐतिहासिकता

— डा. सद्दीक मोहम्मद

डिंगल ग्रन्थों में इतिहास की अनमोल सामग्री छिपी हुई है । चारण कवि स्वयं अपने आश्रयदाताओं के साथ युद्धों में भाग लिया करते थे, इस कारण उनके लिखे हुए ग्रंथों की ऐतिहासिकता में किसी भांति के शकसूबे की गुंजाइश नहीं है । डिंगल के ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में वीरभाण रतनू कृत 'राजरूपक' का महत्वपूर्ण स्थान है । महाराजा अभयसिंह की अहमदाबाद विजय पर विरचित कविराजा करणीदान कविया के 'सूरजप्रकाश' काव्य और कविवर बख्ता खिड़िया के 'अहमदाबाद झगड़ा रा कवित्त' के स्थान पर वीरभाण का राजरूपक काव्य कहीं अधिक ऐतिहासिक महत्त्व का है ।

दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह की आज्ञानुसार महाराजा अभयसिंह अपने छोटे भाई बख्तसिंह के साथ अहमदाबाद गये । गुजरात के तत्कालीन सूबेदार सेर बुलन्द खां (जो कि गुजरात के पटेल की सहायता प्राप्त करके स्वतन्त्र शासक बन बैठा था) से घोर युद्ध हुआ, जिसमें सेर बुलंद खां बुरी तरह परास्त हुआ और महाराजा अभयसिंह की विजय हुई । इस युद्ध का सविस्तार वर्णन राजरूपक में हुआ है । 'राजरूपक' अभयसिंह के लिए रचा जाने पर भी उसके पिता महाराजा अजीतसिंह का सम्पूर्ण इतिहास प्रस्तुत करने में सक्षम है । अजीतसिंह का जन्म, दुर्गादास, सोनंग, तेजसिंह, मोहकमसिंह, अर्जुनसिंह, प्रभृति राठौड़ वीरों के युद्ध, अजीतसिंह का बाल्यकाल, शिक्षा, पहाड़ों में स्थिति, शाहजादे अकबर और राठौड़ों का आपसी समझौता, अकबर का बादशाह औरंगजेब से विद्रोह प्रभृति, छोटी-बड़ी तत्कालीन सभी घटनाओं का तिथिक्रम से कवि ने राजरूपक में वर्णन किया है ।

इतिहास की दृष्टि से कवि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने तिथि, वार, संवत्, समय आदि सब का उल्लेख इस ग्रन्थ में कर दिया है । किस युद्ध में किसकी तरफ से कितने योद्धा लड़े, वे कहां के थे, किस जाति के थे, कैसे थे, इन सब बातों का वर्णन बहुत ही बारीकी से कवि ने किया है । छोटी से छोटी घटना कवि की दृष्टि से नहीं छूटी है । राजनीति के सारे दांवपेच कूटनीति की चालें, संधि और समझौते की सम्पूर्ण घटनाओं का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है । समझौते का प्रस्ताव लेकर कौनसा दूत आया, उस समय कौन कौन सरदार और सामन्त दरबार में उपस्थित थे, किस तरह से बात चली, किस भांति बहस मुबायसा हुआ, इन सम्पूर्ण बातों का कवि ने ध्यान रखा है ।

तिथियां :— 'राजरूपक' जैसे काव्य में इतिहास की कितनी अमूल्य सामग्री है, इसकी साख तो उसमें आयी हुई चालीस के लगभग तिथियां है । जहां वीरभाण रतनू के समकालीन नामी कवि करणीदान ने 'राजरूपक' से ही बड़े अपने ग्रंथ 'सूरजप्रकाश' में नाममात्र की तिथियां दी हैं, वहीं वीरभाण रतनू ने राजरूपक में दस पांच नहीं, तकरीबन चालीस तिथियां और वार तक प्रामाणिक रूप से दिये हैं । इन तिथियों की प्रामाणिकता ऐतिहासिक ग्रन्थों से परखी जाएँ तो यह बात साबित होती है कि ग्रंथ में आयी हुई कई तिथियाँ तो प्रमाणिक रूप से खरी हैं थोड़ी बहुत तिथियाँ जिनका उल्लेख इतिहास के ग्रन्थों में नहीं मिलता है उनको प्रामाणिक मानना ही पड़ेगा क्योंकि वीरभाण रतनू जैसा इतिहास की घटनाओं का जानकार जानते हुए गलत क्यो लिखे ।

'राजरूपक' में वर्णित कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियों की प्रामाणिकता के बारे में उल्लेख इस प्रकार है ।

महाराजा जसवंतसिंह का देहान्त संवत् १७३५ में पौष वदि १० गुरुवार को हुआ । 'राजरूपक' में यही तिथि वर्णित है , यथा —

सतरै सँमत पोस पैंत्रीसै ।
दशमी वार ब्रहस्पत दीसै ।
सुर धर छत्र जसौ महाराजा ।
सुरपुर गयौ लियां ब्रद साजा ॥ ४९ ॥[१]

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा एवं पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने भी अपने इतिहास ग्रंथों में यही तिथि स्वीकार की है । इस सम्बन्ध में श्री ओझा का कथन द्रष्टव्य है — "वि. स. १७३५ पौष वदि १० (ई. सं. १६७८ ता. २८ नवम्बर) को महाराजा जसवन्तसिंह का देहान्त जमरूद में हुआ ।"[२]

राजरूपक में महाराजा अजीतसिंह का जन्म वि. सं. १७३५ चैत्र वदि ४, बुधवार को लाहौर में होना वर्णित है, यथा —

पहला दळ पेशोर थी, खड़ आंया लाहौर ।
जनम हुवौ अगजीत रौ, सु प्रसन संकर गौर ॥ १० ॥

पैंत्रीसै रा चैत वद, चउथ अनै बुधवार ।
पुत्र हुवौ जसराज रै, भांजण दुख संसार ॥ ११ ॥[३]

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा एवं पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने भी अपने इतिहास ग्रन्थों में महाराजा अजीतसिंह के जन्म की यही तिथि दी है । इस सम्बन्ध में ओझा जी लिखते हैं — "अनन्तर जोधपुर के सरदारों ने दोनों राणियों के साथ जमरूद से प्रस्थान किया । अटक नदी पर पहुँचने पर उनके पास शाही परवाना न होने के कारण अफसरों ने उन्हें रोका । तब उनसे लड़ाई कर राठौड़ दल अटक को पार कर लाहौर पहुँचा । वहाँ दोनों रानियों के कुछ घड़ियों के अन्तर से वि. सं. १७३५ चैत्र वदि ४ (ई. स. १६७९ ता. १९ फरवरी) बुधवार को क्रमश: अजीतसिंह और दलथंभन नाम के दो पुत्र हुए ।"[४]

राजरूपक में वर्णित है कि महाराजा अजीतसिंह के घर में महाराजा अभयसिंह का जन्म वि. सं. १७५९ मार्गशीर्ष वदि १४ को हुआ , यथा —

"संमत मेक सपत्त मिळे गुणसठौ छमच्छर
xx xx xx
तिथ चतुरदसी सनवार तव रयण पहर वीतां अरध
अगजीत ग्रह जनम्यौ अभौ, बांण वेद हरखे विबुध ॥ ७४ ॥[५]

ओझाजी एवं पं. रेऊ ने भी महाराजा अभयसिंह के जन्म के बारे में राजरूपक में वर्णित तिथि ही स्वीकार की है । इस सम्बन्ध में ओझाजी का कथन द्रष्टव्य है —

"वि. सं. १७५९ मार्गशीर्ष वदि १४ (ई. स. १७०२ ता. ७ नवम्बर) शनिवार को महाराजा अजीतसिंह की चौहान रानी के उदर से कुंवर अभयसिंह का जन्म हुआ ।"[६]

राजरूपक में यह वर्णित है कि जयपुर महाराजा जयसिंह की कन्या से महाराजा अभयसिंह का विवाह मथुरा में संवत् १७८१ के भादों वदि ८ को हुआ । काव्य की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं —

"सिर आयौ इकयासियौ, वरसे मुकट विचार ।
xx xx xx
पधरावण परणायबा, श्री दुलह अभसाह ।
मथुरा मांडह मंडियौ, जिमि कूरम जैसाह ॥५७ ॥
आदि पक्ख अष्टमी मास, नभ सुभ गुण मंडित ।
सपति पुरी मणि मुकट, खेत्र मधुपुरी अखंडित ॥"[७]

ओझाजी अपने इतिहास ग्रंथ में महाराजा अभयसिंह के विवाह से सम्बन्धित 'राजरूपक' में वर्णित तिथि को स्वीकार करते हुए लिखते हैं, यथा — "अभयसिंह के दिल्ली में रहते समय ही उसके पास महाराजा जयसिंह की पुत्री के साथ विवाह करने का संदेशा आंबेर से आया । इस विषय में अपने पास रहने वाले भंडारी रघुनाथ तथा अन्य सरदारों आदि से सलाह की । उन्होनें कहा कि पहले आप जोधपुर चलें, फिर आंबेर जाकर विवाह करें, परन्तु उसने

यह सलाह न मानी और मथुरा जाकर पहिले आंबेर नरेश की पुत्री से भाद्रपद वदि ८ (ता. १ अगस्त) को विवाह किया ।"[८]

इस प्रकार 'राजरूपक' में जन्म और मृत्यु, लड़ाई और झगड़ा, सुलह और सफाई, विवाह और शादी आदि सम्पूर्ण घटनाओं की तिथियां, वार और संवत् का उल्लेख इतिहास लिखने वालों के लिए बहुत उपयोगी है । यह निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि टाड, ओझा, रेऊ, गहलोत आदि इतिहासकारों ने अपने इतिहास ग्रन्थों में राजरूपक का सहारा लेकर संवत् तिथियां दी हैं ।

घटनाओं की प्रामाणिकता

वीरभाण रतनू ने जोधपुर के राजवंश की उत्पत्ति के इतिहास का प्रारम्भ से वर्णन किया है । यह वर्णन इतिहास के ग्रन्थों से पूरी तरह प्रमाणित है । जहां कहीं थोड़ा बहुत फेरबदल है वहाँ कवि की असावधानी न होकर ख्यातों में अन्तर के कारण है ।

जोधपुर राजवंश की उत्पत्ति के बाद जोधपुर राज के जितने राजाओं का उल्लेख राजरूपक में हुआ है उनमें से बहुत से तो इतिहास से प्रमाणित हैं । जहां कही थोड़ा फर्क है उनका मूल कारण ख्यातों में फर्क का ही है । पर इस बात को तो मानना ही पड़ेगा कि महाराजा जसवंतसिंह, महाराजा अजीतसिंह और महाराजा अभयसिंह के काल की घटनाएँ तो पूरी तरह से प्रामाणिक हैं ।

महाराजा अभयसिंह का तो कवि आश्रित और समकालीन था । अहमदाबाद के युद्ध में भी वह लड़ाई में शामिल था । इस कारण से उस युद्ध की घटनाओं के वर्णन में भी पूरी प्रामाणिकता है ।

यहाँ कुछ 'राजरूपक' में आयी महत्वपूर्ण घटनाओं की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के बारे में विवेचन किया जा रहा है ।

'राजरूपक' में आये विवरण के अनुसार महाराजा जसवंतसिंह का देहान्त जमरूद में हुआ । उनके पीछे उनकी दो रानियां नरुकी व जादम सती होना चाहती थी । पर वे दोनों ही गर्भवती थीं । इस कारण धीरसिंह के पुत्र उदयसिंह ने रानियों को सती होने से रोका यथा —

"जळबा काज नरुकी जादम ।
धुर ऊठी पतिवरत तणै ध्रम ॥
xx xx xx
रांणी जळती ऊदै राखी ।
सुख नव कोट किया जग साखी ॥ ५२ ॥"[९]

इस घटना का लगभग ऐसा ही विवरण ओझा एवं पं. रेऊ ने अपने इतिहास ग्रन्थों में दिया है । ओझाजी ने रानियों को जलने से रोकने वाले सरदारों के कुछ अधिक नाम जरूर गिनाए हैं । इस घटना के बारे में पं. रेऊ लिखते हैं, यथा — "जिस समय जमरूद में महाराजा जसवंत सिंह की मृत्यु हुई, उस समय उनकी नरुकी और जामदन (वंश की) दो रानियां गर्भवती थीं । इसी से महाराजा के साथ के सरदारों ने इन्हें सती होने से रोक लिया ।"[१०]

'राजरूपक' में महाराजा अजीत सिंह के जन्म की घटना के सम्बन्ध में उल्लेख है कि पेशावर से राठौड़, राजा की रानियों सहित रवाना होकर लाहौर आये जहां जादम रानी के उदर से महाराजा अजीत सिंह का जन्म हुआ यथा —

"पहला दल पेशोर थी, खड़ आया लाहौर ।
जनम हुवौ अगजीत रौ, सुप्रसन्न संकर गौर ॥१० ॥"[११]

ओझा व पं. रेऊ ने भी अपने इतिहास ग्रंथों में महाराजा अजीत सिंह के जन्म का यही विवरण दिया है । पं. रेऊ का कथन द्रष्टव्य है —

"इसके बाद इनके लाहौर पहुँचने पर वि. सं. १७३५ की चैत्र वदि ४ (ई.स. १६७९ की १९ फरवरी) बुधवार को दोनों रानियों के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए । इनमें से बड़े राजकुमार का नाम अजीतसिंह और छोटे का दलथंभन रक्खा गया ।"[१२]

महाराजा अजीतसिंह को आबूपहाड़ की तलहटी में गुप्त रूप से रखने की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है । राजरूपक में इस घटना के बारे में यह वर्णन है कि दुर्गादास ने सोनंग से कहा कि तेरे खड़े रहते महाराज कुमार अजीतसिंह पर बादशाह की घात न हो । यही अपना कर्त्तव्य है । खीची शिवदास और मुकनदास राजा की रक्षा के लिए नियत हुए । अर्बुद पहाड़ में महाराज कुमार गुप्त रहे । या तो दुर्गादास या चांपावत सोनंग या खीची मुकनदास को महाराजकुमार की खबर है । सबको इतना ज्ञात है कि राजा गुप्त है । काव्य की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं —

"पबे अरबद्द देव ग्रह, सिव ची सेव प्रतीत ।
बादळ सा कानै दळां, छानै रहै अजीत ॥३१० ॥
कै सोनागिर कै दुरंग, कै खीची मुकनेस ।
अै जांणै छल सांम रौ, जिण थळ रहे नरेस ॥ ३११ ॥[१३]

ओझा एवं पं. रेऊ ने भी महाराजकुमार अजीतसिंह को सिरोही के पहाड़ों में ही गुप्त रूप से रहना बताया है । साथ ही साथ उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि महाराजकुमार अजीतसिंह को सिरोही के पहाड़ों में पुष्करणा ब्राह्मण जयदेव की स्त्री के पास गुप्त रूप से रखा गया था । इस सम्बन्ध में पं. रेऊ का कथन द्रष्टव्य है —

"परन्तु वास्तव में बालक महाराजा अजीतसिंह जी दिल्ली से चांदावत ठाकुर मोहकम सिंह की ठकुरानी के साथ बलूंदे भेज दिये गये थे । उस समय खीची मुकनदास भी इनके साथ था । इसके बाद वहां पर बालक महाराज का सुरक्षित रहना असंभव समझ राठौड़ वीर दुर्गादास और मुकुनदास इन्हें लेकर सिरोही पहुँचे और वहां पर उन्होने स्वर्गवासी महाराजा जसवंत सिंह की रानी देवड़ी जी की सलाह से इनको कालिंद्री के पुष्करणे ब्राह्मण जयदेव की स्त्री को सौंप दिया ।"[१४]

राजरूपक के अनुसार एक दिन दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह ने दरबार किया । सत्तरखान और बहत्तर उमरावों को बुलाया । बादशाह ने सबके सामने कहा कि सेर विलंद पर जाने का बीड़ा लो । परन्तु किसी ने बीड़ा नहीं लिया । तब बादशाह ने महाराजा अभयसिंह को बुलाया और कहा कि सेर विलंद हुक्म नही मानता है । उस पर जाने के लिए तुम्हें बीड़ा देता हूँ । तुम

जाओ । यह कह कर बीड़ा दिया और उसके साथ गुजरात के सूबे का पट्टा दिया और नकद आदि देकर विदा किया । महाराज मारवाड़ की तरफ चले । मार्गशीर्ष में महाराजा मेड़ते से जोधपुर आये । संवत् १७८६ चैत्र सुदि १० को प्रातःकाल महाराजा जोधपुर से चढ़े ।

उक्त विवरण से मिलता जुलता ही विवरण ओझा और पंडित रेऊ ने अपने इतिहास ग्रन्थों में दिया है ।

अहमदाबाद के युद्ध के पश्चात् सेर बुलंद खां और महाराजा अभयसिंह के मध्य साध हुई । यह भी एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है । राजरूपक में इस संधि का विवरण यों आया है । सेर बुलंदखां ने संधि के लिए अमर के पास अपना दूत भेजा । संधि का प्रस्ताव मिलने पर अमर सिंह महाराजा के पास गया । उसने कहा कि आपकी विजय हो गई है । आपने यश उपार्जन कर लिया है । उधर मुगल आप से संधि करना चाहते हैं और गुजरात का देश अर्पण करते हैं । मेरी राय में संधि करना भला है । महाराज ने अपने हित की बात समझ कर उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया और कहा कि तुम्हीं जाकर संधि की बात करो जिससे मुगल मदहीन होकर चला जाय और गुजरात अपने हाथ आ जाए । काव्य की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

"अभौ कहै रींझै अमर, वैगी कीजै बात ।
मिच्छ सिधावै हीणपद, ग्रह आवै गुजरात ॥" [१५]

ओझा एवं पं. रेऊ ने राजरूपक में वर्णित नीबांज ठाकुर ऊदावत अमरसिंह द्वारा महाराजा अभयसिंह व सेर बुलंद खां के बीच संधि करवाने की बात स्वीकार करते हुए इसमें तय हुई शर्तों को भी उजागर किया है । इस सम्बन्ध में पं. रेऊ लिखते हैं —

"इसके बाद ही नींबाज ठाकुर उदावत अमरसिंह आदि के द्वारा बातचीत तय होकर महाराज और सेर बुलंद के बीच संधि हो गई । इससे गुजरात का सूबा उसने महाराज को सौंप दिया और इसकी एवज में महाराज ने उसे उसकी सेना के वेतन आदि के लिए एक लाख रुपये नकद और वहां से जाने के समय भार बरदारी की गाड़ियां और ऊंट देने का वायदा किया ।" [१६]

इस प्रकार यह बात ठोस रूप से कही जा सकती है कि 'राजरूपक' में कोरी कल्पना का उपयोग कवि ने नहीं किया है । राजरूपक में काव्य और इतिहास का अनूठा संगम है ।

राजरूपक में आये हुए नामों की प्रामाणिकता

राजरूपक में हजारों नामों का उल्लेख है । हिन्दू और मुसलमान, पुरुष और स्त्रियाँ, सिपाही और सेनापति, राजा महाराजा, ठाकुर और साधारण वीर अनेक लोगों के नाम राजरूपक में आये हैं । इनमें से बहुत से पात्रों का उल्लेख इतिहास ग्रंथों में आया है । वीरभाण रतनू ने छोटी सी घटना में हिस्सा लेने वाले लोगों के इतने नाम गिनाए हैं कि इतिहास ग्रंथों में तो उनका उल्लेख हो ही नहीं सकता है ।

इतिहास ग्रंथों में राजा-महाराजा, शहंशाह, सेनापति आदि के नाम तो मिलते हैं परन्तु फौज में लड़ने वाले योद्धाओं के नाम ऐसे ग्रन्थों को छोड़कर ख्यातों में भी बड़ी मुश्किल से मिलते हैं । वीरभाण रतनू ने तो फौज में लड़ने वाले कौम कौम के सिपाहियों और योद्धाओं के नाम दिये

हैं । चौहान, भाटी, कूंपावत, जैतावत, ऊदावत, चांपावत, जोगावत, रूपावत, सोमावत, बीजावत, पातावत, धांधल-पड़िहार, गहलोत-मांगलिया, इंदा-लुभाण, मेड़तिया-करणोत, तुंवर-खीची आदि जाति जाति के योद्धाओं के सैकड़ों नाम 'राजरूपक' में आये हैं । इन सब की गिनती गिनाना बहुत ही कठिन काम है । चारण भंडारी, पुरोहित-पंचोली गूजर -कायस्थ आदि न जाने कितनी जाति के योद्धाओं के नामों का वर्णन इस ग्रंथ में आया है । यही नहीं मुसलमान योद्धाओं के नामों की भी गिनती सैकड़ों में है ।

वीरभाण ने स्त्रियों में अधिकतर राजकुमारियों और रानियों के नामों का ही उल्लेख किया है । रानियों के अतिरिक्त दूसरे नाम तो नाम मात्र के आये हैं । राजकुमारियों और रानियों के नामों में भी अमुक स्थान की कंवरी और अमुक की रानी के रूप में ही वर्णन हुआ है । महाराजा अजीतसिंह की रानियां लालकंवर, राजमती और मिरघावती की भाँति नाम तो बहुत कम आये हैं ।

'राजरूपक' में महाराजा अभयसिंह की तरफ से युद्ध में लड़कर वीरगति को प्राप्त करने वाले योद्धाओं के नाम इस प्रकार है — पहली अनी में चांपावत करणसिंह पाली का स्वामी किसन जसावत, कल्याण सिंह गोरधनोत । कूंपावत रामसिंह सबलावत, सुरताण सामंत सिंघोत, दुरजो पद्मावत । जोधा हठमल, उसका पुत्र गुमानसिंह, नाहर खां । मेड़तिया भोमसिंह, कुसल सिंघोत, गुलाबसिंह हठमालोत, वैरीसाल भैरुदासोत । करणोत - चतुरसिंह फतावत । चौहान दुर्जणसाल, अखैसिंह । भाटी केसरी सिंह मानसिंहोत । सोनिगरा दला हरिसिंहोत । खीची केसरीसिंह फतैसिहोत, भगवानदास और नरहरदास मुकनदासोत । गूजर मायाराम सामसिंहोत । पुरोहित केसरी सिंह अखैसिंहोत । रणछोड़ जैदेवोत ।

ओझा जी ने अपने इतिहास ग्रन्थ में राजरूपक में वर्णित कुछ योद्धाओं के नाम दिये हैं । इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं — " फारसी तवारीखों में इस लड़ाई में महाराज की तरफ के मारे जाने वाले व्यक्तियों का उल्लेख नहीं मिलता, अतएव हम तत्सम्बन्धी हाल बांकीदास के ऐतिहासिक बातें नामक ग्रन्थ से उद्धृत करते हैं । वह लिखता है — वि. सं. १७८७ आश्विन सुदि १० (ई. स. १७३० ता. १० अक्टूबर) शनिवार को बड़े सवेरे नवाब (सरबुलंदखां) ने शेरसिंह (सरदार सिंहोत) के मोर्चे पर आक्रमण किया । अभयकरण और चांपावत करण उस शेरसिंह की सहायता को गये । बड़ी लड़ाई हुई जिसमें मुसलमानों के तीन सौ आदमी और महाराजा की सेना के चांपावत करण (पाली), मेड़तिया भोमसिंह (सरासणा), जोधा हठीसिंह जोगीदासोत, धांधल भगवानदास (बूटेलाव) और पुरोहित केसरीसिंह मारे गये । वे आगे लिखते हैं — "जोधपुर राज्य की ख्यात में लड़ाई का प्रारम्भिक वृत्तान्त तो ऐसा ही है परन्तु आगे चलकर कुछ विस्तृत वर्णन दिया है, जो इस प्रकार है — आश्विन सुदि १० की लड़ाई में महाराजा की सेना के चांपावत किशनसिंह जसवन्तोत (नारवड़ी), चांपावत रामसिंह सबलसिंहोत (रामासणी), चांपावत सुल्तानसिंह सावन्तसिंहोत, चांपावत उर्जनसिंह पद्मसिंहोत, मेड़तिया शुभनाथ गोवर्द्धनोत, मेड़तिया सरदार सिंह जोरावरसिंहोत, माधोदासोत, जोधा गुमानसिंह हठीसिंहोत, जोधा जोरावरसिंह कुशलसिंहोत, चांपावत हरीसिंह भाव सिंहोत (नोखा) आदि कितने ही सरदार काम आये ।"[१७]

राजरूपक में सेर बुलंद खां की तरफ से लड़ने वाले योद्धाओं के नाम भी आये हैं यथा बक्षी, कायम खां, अबदल अली एवंजखां, अहमद अली, उमां, जुमां, मुहम्मद, अलियारखां, अबदल सैयद आदि आदि ।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि वीरभाण रतनू ने राजरूपक की रचना काव्य के साथ ही शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से भी की है । तिथि, वार, संवत्, मिति आदि सब का उल्लेख राजरूपक में हुआ है । घटनाओं और व्यक्तियों का वर्णन भी इतिहास की कसौटी पर खरा है । राजस्थान का उस समय का इतिहास लिखने में बड़े बड़े इतिहासकारों ने राजरूपक की भरपूर सहायता ली है । इस दृष्टि से राजरूपक का दूसरे डिंगल काव्य ग्रन्थों की तुलना में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । थोड़े से तथ्यों को छोड़कर पूरा राजरूपक इतिहास के सत्यों का वास्तविक उद्घाटन है । वस्तुतः राजरूपक के लेखक के रूप में वीरभाण रतनू राजस्थान का एक इतिहासकार कवि था ।

सम्पादक, राजस्थानी शब्द कोश
चौपासनी, जोधपुर

सन्दर्भ सूची :-

1. पं. रामकर्ण, सम्पादक, राजरूपक पृ. १७
2. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड पृ. ४६७
3. राजरूपक पृ. २६, ४. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड , पृ. ४७८
4. राजरूपक, पृ. ३७१, ६. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ. ५२२
5. पं. रामकर्ण, सम्पादक, राजरूपक, पृ. ५९७-९८
6. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास द्वितीय खण्ड पृ. ६०५-६०६
7 . प. रामकर्ण, सम्पादक, राजरूपक, पृ. १७-१८
8. पं. विश्वेश्वर नाथ रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. २४८
9. पं. रामकर्ण, सम्पादक, राजरूपक पृ. २६
10 . पं. विश्वेश्वर नाथ रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. २४८
11. पं. रामकर्ण, सम्पादक, राजरूपक, पृ. १८१
12. पं. विश्वेश्वर नाथ रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग पृ. २५५
13. पं. रामकर्ण, सम्पादक, राजरूपक, पृ. ८२३
14. पं. विश्वेश्वर नाथ रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग पृ. ३४०
15. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ. ६१७

'सूरजप्रकाश' और 'राजरूपक' का ऐतिहासिक तुलनात्मक विवेचन

— डा. राजकृष्ण दूगड़

डिंगल के समस्त प्रबन्ध काव्यों में ऐतिहासिक तत्वों की प्रधानता है । यही वैशिष्ट्य उदात्त चरित्र की अभिव्यक्ति में कमनीय काव्य बन गया है । डिंगल भाषा के प्रौढ प्रांजल और परिनिष्ठित रूप में इन काव्यों की रचना हुई है । विषय की दृष्टि से भी ये सभी काव्य वीर रसात्मक प्रसंगों का ऐसा रोमांचक चित्र प्रस्तुत करते हैं कि पाठक के हृदय में वीररस की स्रोतवाहिनी वेगवती बन कर हृदय को उत्साह से आपूरित कर देती है । ऐतिहासिक विस्तृत वर्णनों से ओतप्रोत ये प्रबन्ध काव्य वीर रस के साथ ही जीवन के सभी रंगीन पक्षों की रुचिर झांकिया प्रस्तुत करते हैं । इन प्रबन्ध काव्यों में ऐतिहासिक सूक्ष्म तत्वों की बहुलता के साथ ही साहित्यिक सौष्ठव एवं भाषागत प्रांजलता विशेष रूप से प्रदर्शित हुई है । यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि डिंगल के ये प्रबन्ध काव्य अन्य किसी भी भाषा में रचित ऐतिहासिक काव्यों की तुलना में इतिहास एवं काव्य दोनों दृष्टियों से अत्यधिक सुन्दर एवं श्रेष्ठ हैं ।

ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों की रचना की दृष्टि से मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य का स्वर्णयुग है । ये महाकाव्य प्राय: चरित काव्यों की कोटि में आते हैं । किसी राजवंश के उदात्त चरित्र के कार्यकलापों का विस्तृत वर्णन और उसके माध्यम से वीररस की श्रेष्ठ व्यञ्जना तथा ऐतिहासिक घटनाओं एवं तथ्यों का सटीक एवं सजीव चित्रण इन प्रबन्ध काव्यों की महती विशेषता है ।ऐतिहासिक ठोस आधार पर कल्पना की रंगीन रेखायें इन प्रबंध काव्यों की ऐसी विशेषता है जो हिन्दी के वीरकाव्यों के रुखे ऐतिहासिक वर्णनों से एकदम अलग अपनी पहचान बनाते हैं । वीर रस के हिन्दी के प्रबन्ध काव्य ग्रन्थ केशव का वीरसिंहदेवचरित, मान का राजविलास, भूषण का शिवराज भूषण, लाल का

"छत्र प्रकाश" एवं सूदन का "सुजान चरित" / सूची परिगणन कृत्रिम भाषाप्रयोग एवं अतिरंजना पूर्ण वर्णनों की भरमार आदि दुर्बलताओं से तो बोझिल हैं ही, उसमें वीर रस की उतनी उत्कृष्ट व्यंजना भी नहीं है । हिन्दी वीर काव्य निश्चित रूप से राजस्थानी वीरकाव्यों का निम्न स्तर का अनुकरण मात्र प्रतीत होते हैं । उन्होनें इन ग्रन्थों की रचना मात्र अपने ग्रन्थों की सूची विस्तार अथवा अपने आश्रयदाता को खुश करने हेतु की है । अनुभूति के अभाव एवं अतिशयोक्ति के अन्धाधुंध प्रयोग ने इन रचनाओं को अत्यन्त शिथिल एवं नीरस बना दिया है ।

'सूरजप्रकाश' के रचियता कविया करणीदान और 'राजरूपक' रचियता वीरभाण रतनू दोनों मध्यकाल के श्रेष्ठ प्रबंध काव्यों के रचियता हैं । ये दोनों महाराज अभयसिंह के आश्रित कवि थे , दोनों कलम एवं तलवार के धनी थे, एवम् अहमदाबाद के युद्ध में सम्मिलित थे, अत: उन दोनों ने उस युग की घटनाओं का ऐतिहासिक विवरण बहुत सच्चाई के साथ किया है । अहमदाबाद के युद्ध के पश्चात् जब दोनों कवि अपने अपने ग्रन्थ 'सूरजप्रकाश' और 'राजरूपक' लेकर महाराजा के सम्मुख उपस्थित हुए, तो महाराजा ने उन ग्रन्थों का विस्तार सुनकर उन्हे संक्षिप्त करने का आदेश दिया । कविया करणीदान ने तो अपने ग्रन्थ के सार के रूप में 'विरद सिणगार' नामक स्वतंत्र काव्य की रचना करके महाराजा से प्रभूत पुरस्कार, जागीर, लाख पसाव आदि प्राप्त कर लिए परन्तु वीरभांण रतनू के सामने गंभीर समस्या थी । उनका काव्य ग्रन्थ अधिकांश रूप से ऐतिहासिक घटनावली एवं तत्सम्बन्धी तथ्यों से पूर्ण था, वे किसको छोड़े और किसको रखें । अत: उन्होनें महाराजा से अर्ज की "अन्नदाता मुझे क्षमा करें । यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा । मैनें अपने ग्रन्थ का एक भी शब्द फालतू नहीं लिखा है, जिससे इसमें काट छांट की गुंजाइश ही नहीं हैं । अपनी कविता की निर्दय हत्या मैं किसी भी हालत में नही कर सकता हूँ । क्या समुद्र का जल भी एक कुलिया में समा सकता है ? मुझे क्षमा कीजिए । " और वीरभांण रतनू सब पुरस्कार एव सम्मान से वंचित हो गये, जिसके भागी कविया करणीदान हुए थे । वैसे इस सारी घटना की प्रामाणिकता संदिग्ध है, परन्तु जो भी हो यह तो निस्संकोच कहा ही जा सकता है कि, राजरूपक में ऐतिहासिक घटनावली एवं तथ्यों का अकूत भंडार है ।

राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल के ये दोनों ग्रन्थ राजस्थानी वीर काव्य ग्रन्थों में शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं । इन काव्य ग्रन्थों में इतिहास एवं कल्पना के मेल से विषय वस्तु को अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं सजीव बना दिया गया है । कल्पना का पुट तो केवल उतना ही है, जितना काव्य की कमनीयता की वृद्धि हेतु आवश्यक है । शेष आधारभूत तथ्य पूर्णतया इतिहास सम्मत है । अभी तक हिन्दी के विद्वानों में यह भ्रम बना हुआ है कि ये सारे के सारे ग्रन्थ अतिरंजना पूर्ण वर्णनों एवं ऐतिहासिक तथ्यों से हीन हैं । परन्तु इधर जो शोधकार्य इन ग्रन्थों पर हुए हैं, उनसे यह तथ्य बखूबी सामने आ गया है, कि इन ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों की अधिकतर घटनायें पूर्णतया प्रामाणिक एवं इतिहास सम्मत हैं । राजरूपक एवं सूरजप्रकाश इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं । राजरूपक तो ऐतिहासिक दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण है कि राजस्थानी इतिहास के प्रमुख विद्वान् टाड, ओझा, आसोपा, गहलोत एवं रेऊजी ने इसी ग्रन्थ को आधार बनाकर अपने इतिहास को विविध तथ्यों से

सजाया है ।

इन दोनों चरितकाव्यों की विषयवस्तु का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि, दोनों कवियों ने प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् सूर्यवंशियों की उत्पत्ति आदि का वर्णन करके राठौड़ों की वंशावली का विस्तृत वर्णन किया है । राजरूपक में पौराणिक प्रसंगो का उल्लेख मात्र कर दिया है, वही सूरजप्रकाश में सूर्यवंश से सम्बंधित रामायण आदि प्रसंगों का विस्तार से वर्णन कर दिया है । सूरजप्रकाश में रामचन्द्र जी के पुत्र कुश से लेकर राजा पुंज तक की पीढ़ियों की समस्त नामावली प्रस्तुत की गई है । इसमें कई राजाओं से सम्बन्धित संक्षिप्त टिप्पणियां भी अंकित की गई हैं ।

'सूरजप्रकाश' में राजा पुंज के तेरह पुत्रों, जिनमें राठौड़ों की तेरह शाखायें बनी, का विस्तार से वर्णन है । इसमें यह भी विस्तार से वर्णित है कि ये तेरह शाखायें दानेश्वर, अभयपुरा, कपालिया, कुरहा, जलखेड़िया, बुगलाणा, अहर, राठौड़, पारकेस, चंदेल, वीर वरियावरा, खेरवढ़ एवं ज८.वैत किस कारण से कहलाई । यह वृतान्त अत्यन्त रोचक एवं कवि की बहुज्ञता के सूचक हैं । परन्तु ये इतिहास की कोटि में न आकर पौराणिक अथवा काल्पनिक ही अधिक ठहरता है । ।

सूरजप्रकाश में राजा जयचन्द का विस्तार से वर्णन है । राजा जयचंद की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है, परन्तु सूरजप्रकाश में वर्णित सारी घटनायें पूर्णतया कवि कल्पित हैं । राजा जयचंद द्वारा अटक के पार आठ मुस्लिम शासकों का वर्णन ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा प्रमाणित नहीं होता । अटक के पार जाने के लिए उसे पृथ्वीराज चौहान का राज्य पार करना पड़ता और पृथ्वीराज उसका शत्रु था । अतः ऐतिहासिक तथ्यों से भी यह सिद्ध नहीं है । राजरूपक में वीरभाण रतनू ने ऐसी अनैतिहासिक घटनाओं का वर्णन नहीं किया है ।

राजरूपक में वीरभांण रतनू ने कहीं भी कवि कल्पना को खुली छूट देकर इतिहास का गला नही घोटा है । उन्होने जो भी वर्णन किया, वह पूर्णतया इतिहाससम्मत एवं प्रामाणिक है । इतिहास की जमीन पर निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टि से राजरूपक की बेल फली फूली है । वंशावली उल्लेख के पश्चात् ही कवि इतिहासज्ञ का बाना पहिन लेता है ।

'सूरजप्रकाश' की तुलना में राजरूपक में वीरभाण रतनू ने तिथि, वार, संवत् समय आदि सबका ब्यौरे वार उल्लेख किया है । किस युद्ध में किस तरफ से कितने योद्धा लड़े, वे कहा के थे ? किस जाति के थे, कैसे थे ? इन समस्त बातों का उल्लेख कवि ने अत्यन्त विस्तार एवं सूक्ष्मता से अंकित किया है । राजनीति के समस्त दावपेच, कूटनीति की चालें, संधि और समझौते की समस्त घटनाओं का वर्णन कवि वीरभाण रतनू ने अत्यत विस्तार से किया है । यहां तक कि समझौता प्रस्ताव लेकर कौन दूत आया ? उस समय कौन कौन सामन्त और दूत दरबार में उपस्थित थे ? किस तरह से बातें प्रारम्भ हुई ? किस तरह बहस मुबाहिसा हुआ ? इन समस्त बातों का वर्णन राजरूपक में प्रस्तुत किया गया है । वस्तुत राजरूपक इतिहास का अध्ययन करने वालो के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है ।

राजरूपक में इतिहास की कितनी अनमोल सामग्री है । इसका अनुमान तो उसमें चालीस के लगभग आई हुई तिथियाँ हैं । इसके विपरीत सूरजप्रकाश में नाम मात्र की चार पांच

तिथियों का ही उल्लेख है । राजरूपक में आई तिथियों की प्रामाणिकता भी असंदिग्ध है । इस प्रकार इस ग्रन्थ में जन्म मरण, लड़ाई-झगड़े, सुलह-सफाई, ब्याह-सगाई, आदि घटनाओं की तिथियों, वार, समय और संवत् का उल्लेख सचमुच आश्चर्यजनक है और ऐतिहासिकता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

राजरूपक और सूरजप्रकाश दोनो ग्रन्थों में सहस्त्रों नामों का उल्लेख है । हिन्दू और मुस्लमान, पुरुष और स्त्रियों, सिपाही और सेनापति, राजा और महाराजा, जमीदार और ठाकुर न जाने कितने लोगों के नाम इन दोनों ग्रन्थों में आये हैं । इनमे से प्रमुख व्यक्तियों के कई नाम तो इतिहास ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, परन्तु कविया करणीदान और वीरभाण रतनू दोनों ने छोटी से छोटी घटना में हिस्सा लेने वाले इतने लोगों के नाम गिनाये हैं कि इतिहास ग्रन्थों में उनका उल्लेख हो ही नही सकता ।इतिहास ग्रन्थों में राजा महाराजा, शहंशाह और सेनापति आदि के नाम तो मिलते हैं परन्तु फौज में लड़ने वाले योद्धाओं के नाम इतिहास ग्रन्थों में तो क्या ख्यातों में भी बहुत कम मात्रा में उपलब्ध हैं । दोनों ग्रन्थों में युद्ध में लड़ने वाले कोम कोम के सिपाहियों एवं योद्धाओं के नाम दे दिए हैं । चौहान और भाटी, कूंपावत और जेतावत, ऊदावत और चांपावत, जोगावत और रुपावत, सोमावत और बीजावत, कहलावत और पातावत, महेचा और धवेचा, अछत जेतपाल और मेड़तिया, करणोत, ईंदा, लुभाण और बारहट- देवड़ा, धांधल परिहार और गहलोत मांगलिया, तुंवर और खींची आदि जाति-जाति के योद्धाओं के सैकड़ो नाम इन दोनों ग्रन्थों में आये हैं । चारण-भंडारी, पुरोहित-पंचोली, कायस्थ-गूजर, राजपूत-जाट आदि न जाने कितनी कौमों के योद्धाओं का उल्लेख इन दोनों ग्रन्थों में हुआ है । यही नहीं मुसलमान योद्धाओं की गिनती भी सैकड़ो में है, नामों का ऐसा जखीरा न किसी इतिहास ग्रन्थ में संभव है न बातों एव ख्यातों में ।

दोनों ग्रन्थों में स्त्रियों के नामों का उल्लेख केवल राजवंश एवं परिवार से ही संबंधित है । इनमें भी रानियों एवं राजकुमारियों के व्यक्तिगत नामों का उल्लेख न होकर अमुक स्थान की राजकुमारी या अमुक राजा महाराजा की रानी-पटरानी के रूप में ही उल्लेख है सिवाय अजीतसिंह की रानियों के अन्य नाम तो दोनों ही ग्रन्थों में नहीं है ।

इतिहास की दृष्टि से एक कमी तो दोनो ग्रन्थों मे समान रूप से विद्यमान है । महाराजा अजीतसिंह जी की हत्या उनके द्वितीय पुत्र बखतसिंह द्वारा की गई । राजरूपक में इस हत्या के तथ्य को अंकित न करके भवितव्यतावशीभूत मृत्यु का संवत् एवं वार दे दिया है । सूरजप्रकाश में भी कवि ने महाराजा अजीतसिंह जी के जोधपुर में स्वर्गवास होने का उल्लेख मात्र किया है । वस्तुतः दोनो कवियों ने अपने आश्रयदाता के राठौड़ कुल की मान मर्यादा को ध्यान में रखते हुए इस इतिहास प्रसिद्ध घटना से आंख मूद ली है ।

इस प्रकार सूरजप्रकाश एवं राजरूपक दोनों ग्रन्थों में अपनी ऐतिहासिक बहुज्ञता का परिचय देते हुए बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री का समावेश किया है । जैसा कि कर्नल टाड ने लिखा है । "कविया करणीदान ने अपने तथ्य राजकीय अभिलेखों से अवश्य एकत्र किये होंगे ।" इसी प्रकार वीरभाण रतनू ने भी अपने राजरूपक का आधार ख्यातों एवं पूर्वलिखित इतिहास ग्रन्थों को

बनाया है । ख्यातों में विशेष रूप से मुंहता नैणसी री ख्यात, मारवाड़ री ख्यात आदि एवं इतिहास ग्रन्थों में गजगुणरुपक, गुणभाषा चरित्र आदि प्रमुख हैं । सूरज प्रकास में कविया करणीदान ने इनके अतिरिक्त जनसाधारण में प्रचलित लोक कथाओं एवं किवदंतियों को भी आधार बनाया है । राजा पुंज के तेरह पुत्रों का वर्णन कल्पना प्रसूत होने के साथ ही जन साधारण में प्रचलित लोक कथाओं पर आधारित है । इसके विपरीत वीरभाणं रतनू ने इस प्रकार की प्रचलित कथाओं और किंवदंतियों को आधार न बनाकर शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों को ही आधार बनाया है ।

इस प्रकार इतिहास तत्वों की दृष्टि से सूरजप्रकाश एवं राजरूपक में आधार की अत्यधिक समानता होते हुए भी वीरभांण रतनू की ऐतिहासिक दृष्टि से सारा अन्तर आ गया है । कविया करणीदान का सूरज प्रकाश इतिहास एवं कल्पना दोनो का अपूर्व सामंजस्य है जबकि वीरभांण रतनू के राजरूपक में इतिहास आधार और कल्पना न्यूनप्राय है ।

५७, गोल्फ कोर्स,
जोधपुर (राज.)

डिंगल का ऐतिहासिक काव्य 'सूरज प्रकाश'

— डा. प्रतापसिंह राठौड़

राजस्थान के चारण कवियों ने अनेक ऐतिहासिक काव्यों की रचना की है । ये कवि कलम के साथ तलवार के धनी रहे हैं जिन्होंने स्वय युद्धों में भाग लिया है । सूरज प्रकाश के रचियता कविया करणीदान, राजरूपक के वीरभांण रतनू, अभयसिंहजी रा कवित्त के रचयिता बखता खिड़िया, तीनों अहमदाबाद युद्ध (१७३०ई) में मौजूद थे । इसी प्रकार अचलदास खींची री वचनिका के कवि शिवदास गाडण, वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री महेसदासोत री का कवि खिड़िया जग्गा भी युद्धों में साथ थे । इन सभी कवियों ने युद्धों का आंखों देखा हाल लिखा है । अत: काव्य ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है ।

'सूरज प्रकाश' कविया करणीदान जी रचित विशाल काव्य ग्रंथ है जिसमें साढ़े सात हजार छंद हैं । श्री सीताराम लालस द्वारा इसका सम्पादन किया गया है जो राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर द्वारा तीन भागों में प्रकाशित है । सूरज प्रकाश डिंगल का सुप्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ है, जिसका वर्ण्यविषय अहमदाबाद के सूबेदार सर बुलंदखां पर महाराजा अभयसिंहजी जोधपुर की चढ़ाई एवं विजय का वर्णन करना है । युद्ध से लौटकर १७३१ ई. के आसपास ही यह काव्य रचा गया था ।[१] मंगलाचरण के रूप में प्रारम्भ में गणेश, सरस्वती, शिव सूर्य व नारायण की स्तुति है । फिर सूर्यवंश, श्रीराम के पुत्र कुश से पुंज तक की वंशावली का उल्लेख है । पुंज से चली राठौड़ों की तेरह शाखाओं — दानेश्वर, अभयपुरा, कपालिया, कुरहा, क्रमघज, बुगलाण, पारकेश, चंदेल, वीर, वरियावर, खैरवदा, जलखेड़िया, जयवंत, अहर का वर्णन है । इनका पौराणिक आख्यानों एवं इतिहास के आधार पर विवेचन किया गया है । पुंज के १३ वे पुत्र कन्नौजनरेश जयचंद से लेकर महाराजा

अभयसिंह तक की वंशावली का संक्षिप्त उल्लेख किया है । राव सीहा, धूहड़. चूंडा, रिणमल, जोधा, सूजा, मालदेव, सूरसिंह, गजसिंह, जसवंतसिंह, अजीतसिंह के वीर कृत्यों, उनकी दानशीलता एवं धर्मप्रियता का विस्तार से वर्णन किया है । जयचंद कन्नौज के शूरवीर नरेश थे । उन्हीं के पुत्र वरदायी सेन थे जिन के पुत्र सीहा विशाल सेना के साथ कन्नौज से द्वारका की यात्रा पर चले । उन्होंने लाखा फूलाणी को मारा — 'करि मदत चावड़ां अचड़ कीध ' । लखपत फूलाणी मार लीध ।----- । मुंहता नैणसी री ख्यात भाग - २ (पृष्ठ २७३) में भी सीहाजी द्वारा लाखा के मारने का लिखा है । रेऊजी ने भी भाई सेतराम का बदला लेने पाटण में लाखा को मारने का लिखा है । [२]

सीहाजी के ज्येष्ठ पुत्र आस्थानजी ने खेड पर अधिकार किया जो इतिहास सम्मत है । कवि ने वीरम के शौर्य और जोइयों को मारने का उल्लेख किया है । यथा वीरम सलखावत खगां वाग । जोइयां बाढ़ि बिढ़ियो व्रजाग । १/७६ । वीरवांण (ढाढीबादर) काव्य में भी इसका विस्तृत वर्णन है । नैणसी री ख्यात में भी इसका विवेचन है । [३] आल्हा कृत 'वीरमायण' में भी वीरमजी व चूंडाजी की वीरता, युद्धों व दानशीलता का उल्लेख है । 'चरु सुकाल' विरुदधारी चूंडा से रायधवल ईंदा ने अपनी पुत्री की शादी करके मंडोर दहेज में दी थी । सोरठा प्रसिद्ध है —

ईंदा रो उपकार, कमधज मत भूलो कदे ।
चूंडौ चंवरी चाढ़, दी मंडोवर दायजे ॥

इन्होनें नागौर, सांभर, डीडवाना पर अधिकार किया था । सात 'सांसण' करने का भी संकेत है । रेऊजी ने बडेली, चावंडा, बाड़िया, हिंगोला, कालाऊ, सीयांदा, गडवाड़ा, चारणों को देने का लिखा है । [४] इनके १४ पुत्र थे सभी राव कहलाये । राव रणमल ने नाडोल फतह किया । चाचा व मेरा ने मोकलजी को मार डाला तो स्मरण करते ही मामा ने कुंभा की मदद की । राव रणमल ने प्रण किया कि 'मेरो'र चाचौ मारऊं, धड़ सीस पर पग धारऊं ।' और 'मेरो'र चाचौ मारिया । सह अवर दुसह संघारिया ।' धड़ सीस पग धरि खग धरै । कमधज्ज सांचौ पण करै ।

इतिहासों से प्रमाण पुष्ट है कि सं. १४९० में महाराणा लाखा के पासवानिये पुत्रों चाचा-मेरा ने मोकल को धोखे से मारा था । हत्या की तिथि १४९५, १४९६ व १५०० वि. भिन्न भिन्न भी मिलती है । राव रणमल ने उन्हें मारकर बदला लिया । पर मेवाड़ के सरदारों व महपा पंवार आदि के बहकाने से कुंभा के आदेश से १७-१८ आदमियों ने महलों में सोते रणमल को मार डाला । दासी भारमली ने उन्हें पलंग से बांध दिया था । वीर विनोद व नैणसी की ख्यात के अनुसार राव रणमल ने खाट समेत खड़े हो अनेक लोगों को मार डाला व वीरगति प्राप्त की । कविया करणीदान ने अठारह लोगों को मारने का लिखा है । एक डोम ने संकेत दिया —

चूंडा अजमल आविया, मांडू हूं धक आग ।
जोधा रणमल मारिया, भाग सकै तो भाग ॥

राव जोधा का कुंभा के चाचा चूंडा से भीषण युद्ध हुआ । सात सौ वीरों में से छः सौ खेत रहे । शेष सौ के साथ जोधा काहुनी गांव (जांगलू) की तरफ चले गये । चूंडा ने मंडोर पर अधिकार किया । फिर जोधा ने मंडोर छीना, चित्तौड़ के किले के कपाट जला दिये । गाडण पसाइत

ने गुण जोधायण में इसका उल्लेख किया । कुंभा ने अंत में संधि कर ली । ओझाजी ने इनका वर्णन किया है ।[५]

राव जोधाजी ने जेठ सुदी ११ शनिवार को १५१५ वि. में जोधपुर दुर्ग का निर्माण प्रारम्भ कराया —

पन रैसे समेत पनरोतड़े, सूदी जेठ ग्यारस सनढ़ ।
अवगाढ़ जोध रचियौ इसौ, गाढ़पूर जोधाण गढ । १/१२०

'सांसण पसाव कीधा सतरि, राव जोध रिणमल रै' के अनुसार राव जोधाजी ने सत्तर गांव व लाख पसाव आदि प्रदान किये थे । रेऊजी ने भी ब्राह्मणों, पुरोहितों व चारणों को प्रदत्त कंवलिया, खराड़ी, मथाणिया, तिवंरी, बासणी, खाराबेरा आदि दो दर्जन गांवों का उल्लेख किया है ।[६]

राव सूजा द्वारा सिंध के अमीर घुड़ले खां व अजमेर के सूबेदार मल्लूखां को मारकर सात वीसी तीजणियों को छुड़ाने का काव्य में उल्लेख है । किन्तु रेऊजी ने यह घटना सातलजी के समय की मानी है ।[७] सारंगदे खींची (सेनापति) के तीरों से वे मरे थे । राव मालदेव गांगावत प्रसिद्ध वीर शासक थे जिनके पास एक लाख अस्सी हजार घुड़सवार, हाथी समूह व अपार पैदल सेना थी । इन्होनें राव जैतसी से बीकानेर छीन लिया व मुगलों से अजमेर, मेड़ता, डीडवाना, सांभर, जहाजपुर, मसूदा, रैवासा, खाटू, शेखावटी, चाटसू आदि पर अधिकार कर लिया । उनका इतना आतंक था कि हाक जिण आंण सुणि हिरण खोड़ा हुवै । मालदेवजी के युद्धो एवं विशाल साम्राज्य का उल्लेख रेऊजी व ओझाजी आदि सभी ने किया है ।

जैता, कूंपा, अखैराज सोनगरा जैसे सुभट उनके सेनापति थे । गिरी सुमेल युद्ध (५ जनवरी, १५४४ ई.) में शेरशाह को कहना पड़ा था " एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता ।" रेऊजी के अनुसार राव मालदेव ने बावन युद्ध किये थे । इनका ५८ परगनों पर अधिकार था ।[८] सोजत, मेड़ता, अजमेर, बदनोर, नागौर, टोंक, पाली, जालौर, बीकानेर, जोधपुर, झुंझुनू, बाड़मेर, नारनोल आदि इनमें मुख्य थे । मालदेव का राजस्थान में ही नहीं भारतीय इतिहास में अनुपम स्थान है । यदि वे वीरमजी, जयमलजी, मेड़ता एवं राव जैतसी बीकानेर से न उलझते तो शेरशाह को भी पराजित होना पड़ता ।

ग्रन्थ में महाराजा शूरसिंह के अकबर के आदेश से अहमदाबाद के मुजफ्फर पर आक्रमण करने और सिरोही के राव सुरताण से बैर लेने का उल्लेख है । १५९६ ई. अकबर ने गुजरात का भार शेरसिंह को सौंपा था । सिरोही के पास इन्हें रायसिंह चन्द्रसेनोत के बैर का ख्याल आ गया क्योकि राव सुरताण ने उन्हें १५८३ ई. में नैश आक्रमण में मारा था एवं सुरताण ने हारकर रुपये भेंट किये । मुजफ्फर का उपद्रव शांत कर उसके पुत्र बहादुर को भगा दिया । अकबरनामा भाग ३ पृ. ७२५, रेऊ. मारवाड़ का इतिहास पृ. १८२-८३ से इसकी पुष्टि होती है । इस छप्पय में सूरसिंहजी की दानशीलता का वर्णन किया है ।

प्रथम लाल समपियौ कवीवर संकरकर ।
लखपति बारठ लाख दीध दूजौ करि उंबर ॥
तीजौ लख तिणवार, अजा भादा कर अप्यै ।
भण ताराचन्द भाट, भौज लख चवथ समायै ।
पात नाम भट गोप, करे जस प्रकट सकाया ।
मौज लाख पांचमौ, जेण बगसे महाराजा ।
पट्ट सूर करे रूपक परख, वरे कुरब वह क्रीत वर ।
छत्रपती लाख दीधो छठौ, कविया भानीदान कर ताराचंद ॥२०२ ॥

इस प्रकार बारहठ शंकर, लखा, अजा भादा, तारचंद भाट, गोपभट्ट, भानीदान कविया को छः लाख पसाव दिए । गुजरात विजय के साथ शूरसिंह ने दक्षिण में अमर चंपू तथा जालौर के बिहारी पठानों पर विजय पाई । इनके पुत्र गजसिंह का पिता की मृत्यु के बाद बुरहानपुर में राज्याभिषेक हुआ । बादशाह की ओर से दौराब खां ने तलवार बांध उपहार भेंट किए । जहांगीर ने इन्हे दलथंभण की उपाधि दी । इन्होनें शाहजादा खुर्रम की ओर से लड़ने वाले मिर्जा राजा जयसिंह के सेनापति सीसोदिया व खुर्रम को हराया । बादशाह ने इनका बड़ा सम्मान किया । ये बड़े दानवीर थे । हरावल में सेनापति रह कर इन्होनें ५२ युद्ध किये थे । इन्होंने राजसी अखावत, राजसी पतावत, दुरसा व किसना आढा, केसवदास गाडण, खेम दधिवाड़िया, खेतसी, लालस, हेम सामौर, महडू, जाड़ावत, हरिदास सिंढ़ायच आदि को चौदह लाख पसाव दिए । [९] ख्यातों व इतिहास से इन घटनाओं की पुष्टि होती है । [१०]

गजसिंहजी के बड़े पुत्र अमरसिंह को शाहजहां ने राव की पदवी व नागौर प्रदान किया । बादशाह के साला सलावतखां के गंवार कहने हेतु गँ कहते ही इन्होनें कटार भौंक दी । बादशाह भागकर हरम में घुस गया । अर्जुनगौड़ ने इन पर वार कर दिया । मरते समय इस वीर ने कटार के वार से गौड़ का कान काट डाला । राव जी के वीर बलू चांपावत व भाऊ कूपांवत ने अनेक लोगों को आगरा के किले में मारकर रावजी का बदला लिया । उनकी रानियां सती हो गईं । महेसदास राव ने राव अमरसिंह के साका में इन घटनाओं का वर्णन किया है । दोहे साक्षी हैं —

उण मुख ते गग्गो कह्यो, इण कर लेइ कटार ।
वार कइण पायो नहीं, जमघर हो गइ पार ॥
धड़ हूं सीस विघट्ता राव गही जमदड्ड ।
ठोकि चलाई अजणये, कान बराबरि कड्ड ॥

यह घटना २५ जुलाई १६४४ ई. की है । रेऊजी ने भी इसका उल्लेख किया है । महाराजा गजसिंह के बाद नीतिज्ञ एवं धर्मवीर जसवंतसिंह के गद्दीनशीन होने का वर्णन है । बादशाह के बीमार होने पर शाहजादों में उत्तराधिकार-युद्ध प्रारम्भ हो गया । महाराजा जसवंतसिंह औरंगजेब का दमन करने उज्जैन पहुँचे । धरमत के युद्ध में सरदारों ने घायल महाराजा को जोधपुर लौटने को बाध्य किया । राठौड़ रतनसिंह रतलाम ने युद्ध भार संभाला । अंत में भीषण संहार कर उस वीर ने

भी वीरगति पाई । औरंगजेब दिल्ली पहुंचकर बादशाह बन गया, महाराजा को बुलाकर भी सम्मान किया । ये बड़े दानवीर और विद्वान् का आदर करने वाले थे । इन्होनें चार हाथी, आठ ग्राम और चालीस लाख पसाव आदि दिये थे । करणीदान कविया का दोहा द्रष्टव्य है —

चत्र गज सांसण दूंण चत्र, दस चत्र लख दन दीध ।
व्रवि रीझां अणपार विण ,क्रमध जसै जस कीध ॥ २/२७

इतिहास ग्रन्थों में धरमत के युद्ध का उल्लेख है । वचनिका राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोतरी में भी वर्णन है । उज्जैन से कोई १४ मील दक्षिण पश्चिम में गंभीरी नदी के पूर्वी तट पर धरमतगांव के सामने १६ अप्रैल १६५८ ई. को यह युद्ध हुआ था ।[१२] वंशभास्कर, वीर विनोद, सरकार, ओझा, रेऊ, डा. रघुवीरसिंह गहलोत आदि के इतिहास ग्रन्थों से भी इस घटना की पुष्टि होती है ।[१३] रेऊजी ने १६ ग्राम दान देने का उल्लेख किया है ।[१४] सूरजप्रकाश ने नरहरिदास, किसना आढ़ा, खेम दधिवाड़िया, हरिदास सिंढायच, बलू, महडू, नाथा सांदू, महेश आढा को १४ लाख पसाव देने का वर्णन है । षष्ठम प्रकरण में म. जसवंतसिंह के काबुल में देहांत, अजीतसिंह के जन्म, वीर दुर्गादास के नेतृत्व में दिल्ली युद्ध व कुमार अजीत की रक्षा का वर्णन है । औरंगजेब का इन्द्रसिंह (अमरसिंह के पौत्र) को जोधपुर देने व राठौड़ों द्वारा उसे परास्त करने, मारवाड़ पर यवनों के हमले व भीषण मारकाट का उल्लेख है । औरंगजेब की मृत्यु होते ही अजीतसिंह का पुनः जोधपुर पर अधिकार हो गया । औरंगजेब के बाद बहादुरखां से भीषण युद्ध हुआ ।उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र जहांदारशाह भाइयों को मार गद्दी पर बैठा । फिर सैयद बंधुओं की मदद से फर्रुखसियर बादशाह बना । अंत में सैयदों ने फर्रुखसियर को कैद किया और मार डाला । अजीतसिंह की मदद से मुहम्मदशाह तख्त पर बैठा । सभी घटनाएं इतिहास सम्मत हैं । वि. सं. १७३५ पौष वदी १० को जमरुद में जसवंत सिंह का देहांत हुआ था । चैत वदी ४ सं १७३५ को अजीतसिंह दलथंभनका लाहौर में जन्म हुआ था । सं १७७३ में अजीतसिंह ने नागौर पर विजय पाई थी । फिंर १७८८ वि. में अभयसिंह ने इन्द्रसिंह को हराकर नागौर लिया था । अभयसिंह का दिल्ली में पूरा सम्मान था ।

सप्तम प्रकरण में म. अजीतसिंह के देहांत के बाद दिल्ली में बादशाह मुहम्मद शाह के हाथ से अभयसिंह के राज्याभिषेक व उपहार देने का वर्णन है । फिर महाराजा मारवाड़ लौट आए । मारवाड़ में विधिवत् राज्याभिषेक हुआ । अनुज बखतसिंह को राजाधिराज पद देकर नागौर का स्वामित्व सौंपा । बादशाह ने गुजरात का उपद्रव दबाने सर बुलंदखां को भेजा पर वह स्वतंत्र शासक बन बैठा । तब मुहम्मदशाह ने सरबुलन्द खां के खिलाफ बीड़ा फेरा पर किसी की हिम्मत उठाने की न हुई । अंत में अभयसिंह ने बीड़ा उठाकर उसे बादशाह के कदमों में झुकाने का प्रण किया ।

सिर विलंद खांन साहूं सहित, आसंग हुवै सु आवसी ।
असमान पड़ै थामैं अडर औ नर पान उठावसी ॥
मो तखत लाज महमद मुणै, अभा भरोसै आपरै ।
अभय अहमदाबाद हुंता असुर, एक दिवस मझि ऊथंल ।
विण पत्रां रुख जिम जिम सिरविलंद, करे दिली दिस मोकलू ॥

बादशाह ने अजमेर के साथ गुजरात सूबे की शासन सनद अभयसिंह जी को दी । मुकुट-सिरपेच, कीमती खंजर, कटार, तोपे, बंदूके, सेना व ३१ लाख रुपये देकर विदा किया । वे आमेर नरेश जयसिंह से मिले । फिर मेड़ता में बखतसिंह से मिलकर जोधपुर गये । सारे सामंतो को सरबुलंद पर चढाई करने के संदेश भेजे । फिर प्रयाण किया । सिरोही पर हमला किया तो देवड़ा नरेश ने कन्या का विवाह कर सन्धि कर ली । सरबुलंद को पत्र लिखा पर उसने बादशाह के सामने झुकने से मना कर दिया । विभिन्न राजपूत वंशों के सुभट्टों सहित आगे बढे । सभा कर जोशीला भाषण दिया । सभी वीरों ने लड़ने मरने का दृढ प्रण किया । साबरमती के तट पर मोजिर गांव में सेना का डेरा किया । तीन दिन तक दोनों ओर से गोलाबारी होती रही । फिर मैदान में लड़े । दूसरे दिन ही सर बुलन्द ने अभयसिंह जी के डेरे पर जाकर आत्मसमर्पण कर दिया । नींबाज ठाकुर उदावत अमरसिंह ने मध्यस्थता कर संधि करवाई । फिर पीलूजी-कंथाजी आदि मरहठों को हराया, महाराजा के वकील अमरसिंह भंडारी से विजय की सूचना पाकर बादशाह ने महाराजा की खूब प्रशंसा की । महाराजा के लिए बादशाह ने रत्नजड़ित सिरपेच, कलंगी, एक हाथी व खिलअत आदि भेजे ।[१५] महाराजा की १७८७ वि. विजयदशमी शनिवार को विजय हुई थी । काव्यानुसार —

सत्रैसै समत सत्यासियै, विजै दसमी सनि जीत ।
वदि कातिक गुण वरणियौ, दसमी वार अदीत ॥

विरदसिणगार में भी करणीदानजी ने विजयादशमी के दिन ही विजय का लिखा है ।

सतियास बरस संव्रत सत्रास, महमंत सरद आसोज मास ।
सन विजयदशम विधयो संग्राम । धिखियो अहमदपुर धामधाम ॥

ओझाजी एवं रेऊजी ने विजय की तिथि २० अक्टूबर १७३० लिखी है, ।[१६] किन्तु राजरूपक में भी विजयादशमी (१० अक्टूबर १७३० ई) का ही उल्लेख है । अत: यही मान्य है ।

सतरै समंत सत्यासियौ, आसू उज्जवल पक्ख ।
विजै दशम भागा, विचित्र, अभै प्रतिग्या अक्ख ॥

बांकीदास री ख्यात (पृ. ३९) में भी विजयादशमी को ही अभयसिंह की विजय होने का उल्लेख है । अहमदाबाद युद्ध एवं अभयसिंहजी की विजय का ख्यातों एवं इतिहासों में वर्णन है ।रतनसिंह भंडारी को सूबे का प्रबन्ध सौंपकर बखतसिंह जी के साथ महाराजा जालौर होते हुए जोधपुर लौटे थे ।

सूरज प्रकाश में युद्ध में भाग लेने वाले अनेक योद्धाओं के नाम भी दिए गये हैं अभयसिंह, बखतसिंह चांपावत, माधवसिंह, कुशलसिंह, करणीसिंह, किसनसिंह, हरिसिंह, सइसमल तेजसिंह, उम्मेदसिंह, मोहकमसिंह, राजसिंह, अमरसिंह, फतहसिंह, नाहरसिंह, मानसिंह, जोरावरसिं आदि सैकड़ों वीरों के नाम आए हैं । सम्पादक लालस जी ने सूरज प्रकाश भाग ३ की भूमिका अम्बरचंपू, अकबर, अर्जुन गौड़, अफगान खां, अमरसिंह राठौड़, औरंगजेब, इन्द्रसिंह, उम्मेदसिं किशनसिंह, खुर्रम, मिर्जा राजा जयसिंह, जहांगीर, दुर्गादास, बालू मुहम्मद शाह, सरबुलंद आदि अने ऐतिहासिक पात्रों का विस्तृत परिचय दिया है ।[१७]

निश्चय ही सूरज प्रकाश एक ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें मध्ययुगीन राजनीति व रणकौशल का सजीव चित्रण है । बादशाहों, राजाओं, सामन्तों की महत्वाकांक्षा, छलछद्मभरी राजनीति का मार्मिक वर्णन है । युद्धों की भीषण मारकाट, संधि-विग्रह अन्य राजा को दंडित करने एवं उसकी पुत्री से विवाह करके बैर भांजने का काव्य में जगह जगह उल्लेख है । उस साम्राज्यवादी युग में युद्धों में दमन हेतु कूटनीति का सहारा लिया जाता था । साम्राज्यवादी आकांक्षा के कारण उत्तराधिकार के लिए अन्तर्कलह एवं युद्ध सामान्य बात थी । व्यक्तिगत शौर्य के कारण वीरों को सम्मानित किया जाता था । मनसब या जागीरें प्रदान की जाती थी । मातृभूमि रक्षा, स्वतंत्रता, गौ रक्षा, बैरशोधन, धर्म, दानप्रवृत्ति जैसे जीवन मूल्यों का विशिष्ट महत्त्व था । सूरजप्रकास में तत्कालीन समाज, संस्कृति, इतिहास एवं राजनीति का सांगोपांग विवेचन है । इसमें शूर-धर्म की प्रतिष्ठा के साथ असंख्य हिन्दू मुस्लिम वीरों के त्याग बलिदान की गाथाएं अंकित हैं । राष्ट्र रक्षा के लिए ये गाथाएं आज भी प्रेरक व प्रासंगिक हैं ।

हिन्दी विभाग, शारदा सदन कालेज
मुकुन्दगढ़ (राज.)

संदर्भ ग्रन्थ

1. डा. जिज्ञासु - चारण साहित्य का इतिहास भाग ७ पृ. २३९
2. रेऊ - मारवाड़ का इतिहास भाग १ पृ. ३९
3. साकरिया - मुंहता नैणसी री ख्यात भाग २ पृ. २९९-३०५
4. रेऊ - मा. इ. भाग २ पृ. ६५-६६
5. ओझा - उदयपुर राज्य का इतिहास, पहली जिल्द पृ. २८७-९२
6. रेऊ - मा. इ. भाग १ पृ. १०३
7. वही - पृ. १०६
8. वही - पृष्ठ १४२
9. सूरज प्रकास भाग २ पृ. ९-१०
10. मा. इ. पृ. २०८
11. मा. इ. भाग २ पृ. ६५४
12. वचनिका - भूमिका प. ८४
13. डा. प्रतापसिंह राठौड़ - राजस्थानी वीराख्यान पृ. २४०
14. रेऊ - मा. इ. पृ. २४५
15. ओझा - रा. इ. भाग २ पृ. ६२८, सूरज प्रकास भाग ३ पृ. ३६
16. वही - पृ. ६१५, मा. इ. भाग १, पृ. ३३८
17. लालस - सूरज प्रकास भाग ३ भूमिका पृ. ४३-८२

मानजसोमंडण : बांकीदास आसिया

—डा. के.एस. सक्सेना

राजस्थान का कवि सरस्वती एवं रणचंडी की समान रूप से उपासना करता रहा है । इन कवियों की कविताएं, आत्म-सम्मान एवं राष्ट्रीयता का बोध कराती हैं ।इसलिए कहा भी गया है—

सूधो रजवट परखणौ, अे रजवट ओहनाण ।
प्राण जठे रजवट नहीं, रजवट जठे नहं प्राण ॥

बांकीदास आसिया (१७८१-१८३३ ई.) जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह (१८०३-१८४३) के काव्य गुरु थे । इनकी रचनाएं इस तथ्य का प्रतीक हैं कि वे केवल राजस्थानी भाषा के महान् कवि ही नहीं अपितु इतिहासवेत्ता भी थे । प्रत्येक कवि अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है, जो उसके काव्य में परिलक्षित होती हैं । महाकवि बांकीदास भी इन परिस्थितियों से प्रभावित हुए, जो उनकी रचनाओं में स्पष्ट झलकता है । उनके प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों की कुल संख्या ४१ मानी जाती है । इन ग्रन्थों में 'मान जसो मंडण' अथवा 'मान जयो मंडण' एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जो ऐतिहासिक महत्ता एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से विशेष स्थान रखता है । इसमें कुल २३२ दोहे, सोरठे हैं— यह स्फुट दोहों का संकलन है जो कवि की सबसे बड़ी कृति है । निःसंदेह इस ग्रंथ में कविराजा बांकीदास ने अपने आश्रयदाता जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह के प्रति बारम्बार आभार एवं कृतज्ञता ज्ञापित की है, परन्तु इसके साथ ही तत्कालीन राजनीतिक स्थिति विशेषतः अंग्रेजों एवं मरहठों के साथ महाराजा मानसिंह के संबंधों का भी वर्णन किया है, जो इस ग्रंथ को ऐतिहासिक महत्ता प्रदान करता है । बांकीदास उस युग के कवि थे , जब मुगल सत्ता का सूर्य अस्त हो रहा था और ब्रिटिश सत्ता भारत में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए कुटिल चालें चल रही थी । राजस्थान की देशी रियासतों के राजा छोटी-छोटी बातों पर आपस

में ही लड़कर अपनी शक्ति गंवा रहे थे। कवि बांकीदास देश की इस स्थिति से काफी क्षुब्ध थे, वे विदेशी सत्ता के विरोधी थे, इसीलिए वे कह उठे—

आयो अंग्रेज मुलक रै ऊपर, आहंस लीधा खैंचि उरा।
धणिया मरै न दीधी धरती, धणियां ऊभां गयी धरा॥

अतः राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए ऐसा मार्मिक उद्गार करने वाले कवि बांकीदास के 'मानजसो मंडण' का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना समीचीन होगा। यह कृति महाराजा मानसिंह की मरहठों एवं ब्रिटिश सत्ता के तत्कालिक संबंधों के प्रति उनकी नीति एवं दृष्टिकोण को रेखांकित करती है। 'मान जसो मंडण' में वर्णित निम्नलिखित दोहे, इस ओर इंगित करते हैं[१]—

पेसकसी दीधी प्रगट, सारां कीधी संध।
फांटौ नहीं फिरंग रौ, कांटौ सबळ कमंध ॥२८॥
कला नीत गुण धरम क्रम, सबद अरथ रस सार।
जाणौ तूं जोधाणवें, अइ इन्द्र अवतार ॥२९॥
सूर प्रतापन सितलता, हिम मयूख तप हीण।
तप सीलता सहित तूं, सूर हरा सुकुलीण ॥३०॥

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि तात्कालिक समय में मरहठों एवं पिडारियों ने राजस्थान को लगभग एक शताब्दी तक जी भरकर लूटा और जनता पर अनगिनत अत्याचार किये। इसीलिए रियासतों के राजा तथा जनता इन्हें "दिखणी गनीम" कहकर अपने कट्टर शत्रु के रूप में देखती रही। राजाओं की इस असहाय स्थिति एवं विवशता का अंग्रेजों ने भरपूर लाभ उठाया, जिसकी अंतिम परिणति १८०३ और १८१८ में ब्रिटिश सत्ता के साथ की गई विभिन्न संधियों में हुई।[२] जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक नयी रणनीति तैयार की। उनका लक्ष्य भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बढ़ते कदमों को रोकना था, अतः राष्ट्र के व्यापक हित में मरहठों से मित्रता और ब्रिटिश सत्ता का प्रतिरोध करना विवेकपूर्ण था, इसीलिए महाराजा मानसिंह ने राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए इंदौर के स्वाधीनता प्रेमी एवं ब्रिटिश विरोधी महाराजा जसवन्तराव होल्कर की सहायता की एवं उन्हें अपने यहां शरण दी। 'मान जसो मंडण' के निम्नलिखित दोहों में यह परिलक्षित है[३] —

दिषण प्रभंजण सुष दियण, वण धण सुमन विकास।
जसवंत हरौ जसवंत जिम, वरणै बांकीदास ॥१०६॥
कींग इन्द्र जिम कोपियौ, जसवंतौ मैणाक॥
सरण राषियौ समंद ज्यूं, यह मानै दिल पाक ॥१०७॥
वैण मान मुष रा जिकै, राम धनुष रा बांण।
अहल न जाय अमोघ अै, वसुधा प्रगट वखाण ॥१०८॥
घनकर समल घटा धरा, सिर ऊपर सोहंत।
जै जगमग दीसै जिका, भूप मान रवि भंत ॥१०९॥

गहिरौ महणारंभ गुणां, राजा आरंभ राम ।
चित मांझल जे चींतवै, करै नाथ सिध काम ॥११० ॥

अतः 'मानजसोमंडणा' एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें न केवल तात्कालिक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर ही प्रकाश डाला गया है, अपितु ऐतिहासिक घटनाओं एवं तथ्यों को भी समाविष्ट किया गया है, इसीलिए इस कृति को ऐतिहासिक ग्रंथों की श्रेणी में सूचीबद्ध किया जा सकता है ।

आलोच्य दृष्टि से 'मानजसोमंडण' मूलतः जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह का प्रशस्ति पत्र है, जिसमें राजकवि बांकीदास ने अपने आश्रयदाता के प्रति बारम्बार आभार एवं अनुराग अभिव्यक्त किया है, यथा[४]—

मानसिंह महाराज मिस, सत जुग धरम सनेह ।
मारवाड़ मंडल मही, दीपै धरियां देह ॥१७१ ॥

इस महाकवि का महाप्रयाण सावन कृष्णा तृतीया वि.सं. १८९० (१८३३) को जोधपुर में हुआ । अपने काव्यगुरु के निधन का समाचार सुनकर महाराजा मानसिंह के मुख से निम्न शब्द श्रद्धांजलि के रूप में निकल पड़े—[५]

सद्विद्या बहु साज, बांकी थी बांका बसु ।
कर सूधी कविराज, आज कठीगौ आसिया ॥
विद्या कुल विख्यात, राज काज हर रहसरी ।
बांका ! तौ विण वात, किण आगल मन री कहां ॥

अतः निर्ष्कषात्मक रूप में कहा जा सकता है कि कविराजा बांकीदास रचित 'मानजसोमंडण' एक ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें तत्कालीन विभिन्न स्थितियों के दिग्दर्शन के साथ ही तत्कालीन राजनैतिक एवं ऐतिहासिक घटनाएं भी परिलक्षित होती हैं ।

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

---

1. मानजसो मंडण, महाकवि बांकीदास आसिया ग्रन्थावली, (द्वितीय खंड) दोहा संख्या २८-३०, सम्पादक : सौभाग्यसिंह शेखावत
2. के. एस. सक्सेना : दि पोलिटिकल मूवमेन्टस एंड अवेकनिंग इन राजस्थान (१८५७-१९४७), एस. चांद एण्ड कम्पनी, न्यू दिल्ली, १९७१, पृ. ६
3. मानजसो मंडण महाकवि बांकीदास आशिया ग्रन्थावली (द्वितीय खंड) दोहा संख्या १०६-११० पृ. संख्या १५. सम्पादक : सौभाग्यसिंह शेखावत
4. दोहा संख्या १७१, मानजसो मंडण, महाकवि बांकीदास अशिया ग्रन्थावली (द्वितीय खण्ड), सम्पादक : सौभाग्यसिंह शेखावत, पूर्व उद्धृत, पृष्ठ संख्या ३०.
5. चारणवाणी : भंवरणिंह सान्दू, त्रैमासिक अंक १-२ जनवरी-जून १९८६ पृ. २८

१८५७ के विप्लव में आउवा ठा. खुशालसिंह चांपावत की भूमिका

— डा. रामसिंह सोलंकी

राजस्थान के इतिहास विषयक किसी भी भाषा काव्य में १८५७ के विप्लव का सांगोपांग इतिवृत्त नहीं पाया जाता है । सूर्यमल मीसण (१८१५-१८६५) कृत २८८ दोहों युक्त वीर सतसई के सृजन की पृष्ठभूमि में १८५७ का विप्लव अवश्य है, परन्तु इसमें प्रारंभ के ४, ५, ६ दोहों को छोड़कर उस युगान्तकारी घटना का कोई उल्लेख नहीं है । इसका प्रतिपाद्य विषय १८५७ का स्वाधीनता संग्राम नहीं, बल्कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में देश के सुप्त पौरुष को जागृत करना है ।[१]

१८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से संबंधित विभिन्न चारण कवियों द्वारा रचित स्फुट दोहों और गीतों के संकलन एवं काव्य और इतिहास में अंकित मारवाड़ में १८५७ के विप्लव में आउवा ठा. खुशालसिंह की भूमिका का विवेचन शोध पत्रिका 'परम्परा' के 'गोरा हटजा' अंक में बखूबी मिलता है ।

ब्रिटिश परमोच्च सत्ता की स्थापना

भारत में ब्रिटिश परमोच्च सत्ता की स्थापना की प्रक्रिया गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली (१७९८-१८०५) की सहायक संधि प्रथा से प्रारंभ होती है । राजपूताने में गवर्नर जनरल लार्ड हैस्टिंग्स (१८१३-१८२३) के शासन काल में १८१८ ई. में ब्रिटिश सत्ता ने जोधपुर, बीकानेर, जयपुर और उदयपुर के राजाओं के साथ सतत मित्रता, गठबंधन और हितों की एकता की संधियां करली थीं ।[२] परिणामस्वरूप उनकी स्थिति अंग्रेजों के अधीनस्थ सहयोगी के समान हो गई ।गवर्नर जनरल राजपूताने में ब्रिटिश परमोच्च सत्ता का प्रयोग अजमेर स्थित ए.जी.जी. (A.G.G) के माध्यम से करता

था। उसका प्रमुख उत्तरदायित्व इस प्रदेश में शांति और व्यवस्था बनाए रखना था। १८५७ के विप्लव के समय कर्नल सेंट पैट्रिक लारेन्स (जून १८५७ से ब्रिगेडियर जनरल) कार्यवाहक ए.जी.जी. था। इस समय जोधपुर का पॉलिटिकल एजेन्ट कैप्टिन माक मैसन था।[३]

अंग्रेज सत्ता विरोधी भावनाएँ

यद्यपि अपने सामन्ती तथा राजनीतिक हितों की रक्षार्थ राजपूताने की रियासतों के शासकों ने अंग्रेज सत्ता की अधीनता स्वीकार करली थी, परन्तु सामान्य जनता की वाणी को स्वर प्रदान करने वाले तत्कालीन चारण कवि एवं लोक जीवन में प्रचलित दोहे-गीत ब्रिटिश सत्ता के विरोधी थे। उदाहरणार्थ, जोधपुर नरेश मानसिंह (१८०३-१८४३) के दरबारी कवि बांकीदास (१७८१-१८३३) का 'चेतावणी रो गीत' उल्लेखनीय है। इस गीत की कुछ पंक्तियां निम्न हैं :[४]

आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर, आहंस लीधा खैंचि डरा।
धणियां मरे न दीधी धरती, धणियां ऊभां गई धरा ॥
राखो रे कींहिक रजपूती, मरद हिन्दू की मुस्सलमांन ॥
पुर जोधांण उदैपुर जैपुर, पहु थांरा खूटा परियांण।
आंके गई आवसी आंके, बांके आसल किया बखांण ॥

पश्चिमी राजस्थान में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र अभियान प्रारंभ करने का श्रेय शेखावाटी के डूंगजी जवाहरजी को है। पाश्चात्य इतिहासकार तथा उनके भारतीय संस्करण डूंगजी जवाहरजी को डकैत-लुटेरा कहते हैं, परन्तु राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ यह है कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र अभियान के संचालन में सरकारी कोष लूटना पड़ता है। अपने जीवनकाल में ही दोनों योद्धाओं के अंग्रेज सत्ता विरोधी संघर्ष की लोक कवियों ने मुक्त स्वर से प्रशंसा की। समकालीन कवियों— गिरवरदान कविया, करणीदान दधवाड़िया, बुधा आसिया, गंगादान सांदू, संकरदान सामोर, मेडु राजाराम आदि द्वारा उनके संघर्ष की गौरव गाथा को अपने काव्य की विषय वस्तु बनाना इस तथ्य का प्रमाण है कि १८५७ से पूर्व जनता में अंग्रेज सत्ता विरोधी आक्रोश व्याप्त था।[४] १८४७ ई. में उनके आत्म समर्पण के साथ पश्चिमी राजस्थान में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध सैन्य अभियान का प्रथम चरण समाप्त होता है।[५]

मारवाड़ में विप्लव

१० मई १८५७ को मेरठ में प्रज्जवलित विद्रोह की अग्नि २८ मई को नसीराबाद तथा ३ जून को नीमच छावनी में पंहुची। मारवाड़ में अंग्रेजों के विरुद्ध विप्लव की कहानी २१ अगस्त को जोधपुर लीजन की एक टुकड़ी द्वारा माउन्ट आबू में अंग्रेज सैनिकों की बैरकों और जोधपुर लीजन के कैप्टिन हॉल के निवास स्थान पर आक्रमण के साथ प्रारंभ होती है। इस हमले में ए.जी.जी. जनरल लारेन्स का पुत्र ए. लारेन्स घायल हो गया था।[६]

विप्लव की सूचना जोधपुर लीजन के मुख्यालय एरिनपुरा पहुंच गई और २२ अगस्त को विद्रोही सैनिकों ने स्टेशन तथा छावनी को लूटते हुए अजमेर की ओर कूच किया, परन्तु पाली से

अपना मार्ग बदल कर आउवा पहुंच गए। आउवा के ठाकुर ने उन्हें अपनी सेवा में रख लिया।[७] खुशालसिंह अपने सामन्ती हितों की रक्षा के संदर्भ में जोधपुर नरेश तख्तसिंह (१८४३-१८७३ ई.) तथा अंग्रेजों से असन्तुष्ट था। अतः उसने अनुकूल परिस्थितियों में जोधपुर दरबार तथा ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।[८] इस प्रकार आउवा ठाकुर द्वारा अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध विप्लव में भाग लेने के कारण राजस्थान में ब्रिटिश विरोधी उत्तेजना चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई।

युद्ध भूमि में आउवा की भूमिका

विद्रोही जोधपुर लीजन के २५ अगस्त १८५७ को आउवा पहुंचने पर आउवा ठा. खुशालसिंह चांपावत ने विद्रोह का मानस बना लिया था। इसके अलावा आसोप के ठाकुर शिवनाथसिंह कूंपावत, गूलर ठाकुर बिशनसिंह मेड़तिया और आलनियावास के ठाकुर अजीतसिंह भी अपने सैन्य बल के साथ आउवा पहुंच गए।[९] आउवा ठाकुर के अन्य सहयोगियों में जोधपुर राज्य के लाम्बिया, बांता, भींवालिया, रड्डावास और बाजावास तथा मेवाड़ राज्य के सलूम्बर, रूपनगर, लासाणी, आसीन्द आदि के सरदार थे। इस प्रकार उनकी सैन्य शक्ति में छह हजार के लगभग सैनिक हो गए।[१०]

८-९ सितम्बर १८५७ को जोधपुर दरबार की फौज तथा आउवा के मध्य बिठौड़ा के निकट भयंकर संघर्ष हुआ। जोधपुर फौज का सेनापति किलेदार अनाड़सिंह मारा गया तथा सामरिक परामर्शदाता लेफ्टिनेंट हीथकोट युद्ध मैदान से भाग गया।[११] युद्ध में पराजय और किलेदार अनाड़सिंह के मारे जाने के समाचार से दुखी जोधपुर नरेश ने राजप्रासाद में दोनों समय बजने वाली नौबत में से एक समय की नौपत को बन्द रखा।[१२] किलेदार अनाड़सिंह की मौत का वर्णन निम्न लोकप्रिय छावली गीत में अंकित है[१३]—

छावली

शारदा भवानी थनैं वीनवूं, लागूं गुरां रै पाय
गढ़ जोधाणा सूं भेजिया परवाणा रे, जाय मोकळै दीजौ
अबकै भळांवण पाली कोट री ओ जी !..........
चढियौ अनाड़सिंग अभैसिंग रौ, घुड़लां घूमर घालै
डावी भुजा माथै बोलै कोचरी, जीमणौ पलाऊ पालै
सूरां नै मरदां री अमर छावली ओ जी ।.........
आगड़धी आगड़धी थारै वाजिया नगारा नै फौज फिरंगी दोळी
अनाड़सिंगजी अभैसिंग रा थांरा गोडा भांगगी गोळी
आउवै गयौड़ा नर पाछा नीं बावड़ै ओ जी......... ।
दोनूं ई कान माथै चढ़ी रै टोपियां घणा सोर री धाई
इण सगतसिंग सिणली रै चांपावत अनाड़सिंग रै वाई
मोतियां री माळा तो रण में राखगा ओ जी........ ।

धारी बगलां री थारै लागी दुनाळी रे, लागी रै दड़ी रै जांणै दोटी
अनाड़सिंग अभैसिंगजी रा गया लटकती चोटी
काळां रो झगड़ौ तो याद रेला ओ जी......... ।

आउवा पर द्वितीय आक्रमण १८ सितम्बर १८५८ को ए.जी.जी. लारेन्स ने किया । युद्ध में जनरल लारेन्स की भीषण पराजय हुई तथा जोधपुर के पॉलिटिकल ऐजेन्ट का वध करके उसका सिर किले की प्राचीर पर विद्रोहियों ने टांग दिया ।[१४] जनता की ब्रिटिश विरोधी भावनाओं को देखते हुए अंग्रेज भक्त जोधपुर नरेश उसके शोक में नौपत बजाना बन्द नहीं करा सके ।[१५]

लोकगीत में लोकमानस को रेखांकित किया जाता है । आउवा ठाकुर तथा उनके सैनिकों के शौर्य एवं कैप्टिन माक मैसन के वध तथा उसके सिर को किले की दीवार पर टांगने का चित्रण होली के अवसर पर गाए जाने वाले निम्न लोकगीत में किया गया है[१६]—

लोकगीत

वाणिया वाळी गोचर मांय कालौ लोग पड़ियौ औ
राजाजी रै भेळा तो फिरंगी लड़ियौ औ
काळी टोपी रो !
हां रै काळी टोपी रो ! फिरंगी फैलाव कीधौ औ
काळी टोपी रो !
बारली तोपां रा गोला धूड़गढ़ में लागै औ
मांयली तोपां रा गोला तंबू तोड़े औ
झल्लै आऊवौ !
हां रे झल्लै आऊवौ, आऊवौ धरती रौ थांबौ औ
झल्लै आऊवौ !
मांयली तोपां तो छूटै, आडावलौ धूजै औ
आऊवा वालौ नाथ तो सुगाली पूजै औ
झगड़ौ आदरियौ ।
हां रै झगड़ौ आदरियौ, आऊवौ झगड़ा में बांकौ औ
झगड़ौ आदरियौ ।
राजाजी रा घोड़लिया कालां रै लारै दोड़ै औ
आऊवै रा घोड़ा तौ पछाड़ी तोड़ै औ
झगड़ौ होवण दौ ।
हां रै झगड़ौ होवण दौ, झगड़ा में थांरी जीत व्हैला औ
झगड़ौ होवण दौ ।
अर मांयनै सूं आवण वाळा गोळा बारली फौज रौ खैगाळ काढ़ता ।

बारली तोपां रा गोळा धूड़ कोट में लागै औ
मांयली तोपां रा गोळा तंबू तोड़ै औ........ झल्लै आऊवौ ।
आऊवौ मुलकां में चावौ औ..........झल्लै आऊवौ ।
ढोल बाजै, थाली बाजै, भेळो बाजै बांकियौ
अजंट नै मार नै दरवाजै नाखियौ
जूंझै आऊवौ ।
हां रै जूंझै आऊवौ, आऊवौ मुल्कां में चावौ औ
जूंझै आऊवौ ।

अंग्रेजी सत्ता से दुःखी तथा आऊवा के शौर्य से प्रभावित जेतराम के निम्न स्फुट दोहे इस संदर्भ में प्रासंगिक हैं [१७]—

हुआ दुखी हिंदवाण रा, रुकी न गोरां राह ।
विकट लड़ै सहियौ विखौ, वाह आऊवा वाह ॥
फजरां नेजा फरकिया, रजरां तोपां गाज ।
नजरां गोरां निरखियां, अजरां पारख आज ॥
फिटा पड़ भागा फिरंग, मेसन अजंट मराय ।
घालै डोली घायलां, कटक घणै कटवाय ॥

आऊवा ठाकुर विषयक घोषणा

दिल्ली पर अंग्रेजों की विजय (१४-२० सितम्बर, १८५७) और १६ नवम्बर को नारनोल में जोधपुर लीजन की भीषण पराजय से आऊवा ठाकुर की राजपूताना में ब्रिटिश आधिपत्य समाप्त करने की योजना पर पानी फिर गया । [१८] ए.जी.जी. ने सर्वप्रथम २१ अक्टूबर १८५७ तथा पुनः ६ जनवरी १८५८ को घोषणा की कि आऊवा ठाकुर को शरण देने वाले को ब्रिटिश सरकार तथा जोधपुर दरबार का शत्रु समझा जायेगा तथा उसके विरुद्ध सैनिक कानून के अन्तर्गत कार्यवाही की जायेगी । [१९]

आऊवा पर तृतीय आक्रमण (जनवरी १८५८)

अंग्रेज सत्ता ने कर्नल होम्स के नेतृत्व में आऊवा पर तृतीय आक्रमण किया । युद्ध २० से २४ जनवरी १८५८ तक जारी रहा । पहला हमला गांव से तोप दाग कर किया गया । [२०] ठा. खुशालसिंह २३ जनवरी को किला छोड़कर मेवाड़ की ओर चले गये, अंग्रेज सेनापति ने रिश्वत देकर किले के दरवाजे खुलवा दिये । [२१] अन्ततः आऊवा हार गया । आऊवा के महल, किला, परकोटा और भवन नष्ट कर दिये गए तथा ग्रामीणों को यातनाऐं दी गई । [२२]

समर्पण एवं क्षमादान

गांव-गांव और पहाड़ों की गोद में छिपते हुए छापामार योद्धा को कोठारिया (मेवाड़) के जागीरदार रावत जोधसिंह चौहान ने अपने यहां शरण दी । उसकी प्रशंसा में अज्ञात कवि ने लिखा

है[२३]—

जोध भलां ई जनमियौ, सत्रुवां रै उरसाल ।
रावत सरणै राखियौ, कमधां तिलक कुसाल ॥

अन्ततः ८ अगस्त १८६० को ठा. खुशालसिंह ने नीमच में ब्रिटिश सरकार के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया तथा १० नवंबर १८६० को उन्हें बिना शर्त क्षमादान दे दियां परन्तु उनकी जागीर रूपये में से दस आने (६२ प्रतिशत) जब्त करली गई । उनके अदम्य साहस ने जोधपुर नरेश के लिए प्रशासन चलाना असंभव कर दिया था ।[२४]

शौर्य का वर्णन

२५ जुलाई १८६४ को ठा. खुशालसिंह का देहान्त हो गया । उनके विद्रोही जीवन की गाथा काव्य का शाश्वत स्वर बन गई । कवि बिशनदान बारहठ ने निम्न डिंगल गीत में जोधपुर दरबार की फौज बनाम आऊवा के बीच ७ सितम्बर १८५७ के युद्ध का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है ।

गीत (बिसनदास बारहठ कृत) [२५]

जबर अभंग जुध सुभट अंग कड़ां जरदां जड़ै ।
प्रगट हद राग जांगड़ौ हाका पड़ै ॥
धाक सुण डरां प्रसणां दिल धड़हड़ै ।
खाग कर तांण कित पमंग खाथा खड़ै ॥१ ॥
खिमै कूंतां अणी गजां लंगर खळळ ।
भांणकर प्रगट अत तेज तन में भळळ ॥
दधचतै प्रलयकज बाहुलै अतर दळ ।
कवण सिर आज री रीस दूजा कुसळ ॥२ ॥
फबै दळ कुंजरां सीस झंडा फरक,
तुरंगां, हांफरड़ सधर त्रंबक त्रहक ।
थयो रज तिमिर दिगपाळ फब्बै थरक,
रीस री झाळ किण माथ कमधा अरक ।
मन घणौ सोच पड़ विमुख पुळ मठांनर
अंग उछरंग लग, अरस सूरां अतर ।
चढ़ी गैणाक अणपार आमंखचर
अछर वेवांण नभ बीच अड़िया अधर ।

सूर्यमल मीसण (१८१५-१८६५) ने द्वितीय युद्ध (१८ सितम्बर १८५७) में मारे गये कैप्टिन मॉक मैसन विषयक निम्न डिंगल गीत लिखा है—[२६]

लोहो करंतो झाटका फणां कंवारी घड़ा रो लाडौ
आऊऔ जोधाण सूं खेंचियौ वहै अंट ।
जंगी साल हुता हिंदवाण रा आवगौ जीं नै
आऊऔ खायगौ फिरंगांण रौ अजंट ॥
रीठ तोपां बंदूकां जुम्रबां नालां पेड़ रोपै,
बलै चंडी जै जै रुद्र पियारा वाखांण ।
मारवा काज सो वज्र हियारा भूरिया माथै ।
कुसल्लेस आयौ हाथां लियां रे कैवाण ॥
भागै भीच गोरां सिधां परां रा जिहांन भालो,
दावो तेगां झाट दे उतालौ दसूं देस ।
तीसूं नींद न आवै औ कंपनी लगाड़ै ताला
कालौ हियै न मावै अगंजी कुसल्लेस ॥
डांण ठेलै तूं मातंगां भड़ां डाचरां उबाड़ डाकी
मूंछां तांण पेलै तूं कंपनी गजै माल ।
काट थांणौ रेलै तूं सयांणां जमीं जोस खाथै ।
खसंतो खपांणां माथै झेलै तूं खुसाल ॥

तिलोकदान बारहठ ने अपने निम्न गीत में आऊवा के सैनिकों के शौर्य तथा शत्रुओं की कायरता का वर्णन किया है[२७]—

गीत

कळह दगौ कर आऊवै जेट आया करण,
भेट रण रचण आखेट भाई ।
विदेसा नेट मिळिया प्रसण बुलाया,
थेट सिरकार लग फतै थाई ॥
आदरत ओट खळ चाल अड़िया अडर
दुझल खग चाल से लोट देता ।
वैरहर जठै पगवाळ खग बजावै,
कंठ खुसियाळ खुसियाळ केता ॥
इतै सुण सबद समरा भड़थ ऊठिया,
वसू विखियात कीरथ वदीती ।
घात झड़ सोरसा बात कह घेरिया,
वात करंतां इतै रात बीती ॥

चोळ चखचूर वीरां मनां चाविया,
धीट वतळाविया हियै धरिया ।
सुत वगत प्रबल तपतेज सरसाविया,
मारवा आविया जिकै मरिया ॥
कायरां चेत उड प्रेत जोगणं किळक,
उप्रवट भूभट विरदैत अड़िया ।
जैतहर जीत पाई समर जीतियो,
पांच अर असी जुध खेत पड़िया ॥

गिरवरदान बारहठ (१८२१ में बासणी (जैतारण) में जन्म) ने निम्न छप्पय में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि ठा. खुशालसिंह ने विद्रोह करने से पूर्व अपने मित्रों के परामर्श से जोधपुर नरेश को अंग्रेजों की मदद नहीं करने तथा इस झगड़े से दूर रहने की प्रार्थना की । जब राजा ने उनकी अर्ज को नहीं माना, तब युद्ध किया । गिरवरदान बारहठ रचित डिंगल गीत निम्न हैं [२८]—

बरती चवदह बरस पड़ै इलबेध अपारा ।
विकट लोग बदळियौ, सोच लागौ उर सारां ।
कांनी कांनी कलह, दाय कंपनी उर दीधौ ।
खोज खजानौ खास, लूट एरणपुर लीधौ ।
बजराग झाट लागै वहै, धके दिली दिस धाउवे ।
महाराज खीज लेवा मदत, आचर रुपिया आऊवे ॥
कालां बांधी कमर, कमर बांधी कुसियालै ।
विसना सिव सावलै, भड़ां ज्यां जोगण भालै ।
लाग सिंधवां ललक, खलक हक बक धूजै खित ।
करण टूक केवियां रूक रण हत्थ करतं रित
बजराग झाट बेड़ा बधै, घाट चमूं दिस घेरणां ।
कवादी लोक लोह लाटकर, फजर फाटकां फेरणां ।
सुण चांपै रच सला मित्र परधांनां मेलै
खामंद बखसौ खून, बंधो मत दुसहां बेलै ।
सहमंत्री मिळ सला, थाप जुध करण थटाई,
होणहार ज्यूं होय, मिटे किण भांत मिटाई ।
भरोसे खुसाल सकती भिड़ण, संभियौ सगळां साथ रे,
आजाद हिंद करवा उमंग, निडर आऊवा नाथ रे !

जेतराम कवि द्वारा क्रमबद्ध वर्णन[२९]

आऊवा के वर्तमान ठाकुर नाहरसिंह ने जेतराम कवि द्वारा रचित दोहों का संकलन किया है । इसमें परम्परागत काव्य शैली के अतिशयोक्ति अलंकार से हटते हुए कवि ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध का वर्णन तथ्यों के आधार पर किया है ।

वणी गदर री वात सूं, घणी कमध.रे धेक ।
कालां सूं वधियौ कलह, लिखिया मिटै न लेख ॥
ऊसस मेली फौज अत, जोड़ै नृप जोधांण ।
बीठोड़े डेरा किया, अकड़ जांण आपांण ॥
जाणी हलकारां जरां, अरजी कीधी आण ।
माझी छेडे महपती, जंग मचावण जाण ।
गढ़ आऊवौ थेह गण, वीर भूप जित वाग ।
नवहत्थौ सूतौ निडर, नोंज छेडियौ नाग ॥
सिंघ ऊठियौ जसज ह्वै क्रोधीलौ कुसियाल ।
समर करण हाथल सजै, अग्राजत अरिसाल ॥
फजर हुकम वौ फौज नै, सूर चढ़ौ सह साथ ।
आज विठौड़ा ऊपरां, भिड़सां अरि भाराथ ।
कसियां दल बखतर कडां, कर पाखर केकांण ।
तोपां तुपक त्रंबांगलां, नादां, खुल नीसांण ॥
जोरावर चढ़िया जुड़ण, मूंछां मरद मरोड़ ।
बिन माथै खग वाहणा, रण रसिया राठौड़ ॥
आभ खेह लागी उडै, खेगां री खुरताल ।
रंगड़ां हकिया राड़ में, कड़की खाग कराल ॥
घर अंबर धक धूजिया, लचक सेस फुण नाग ।
खेलत खागां खांगड़ा, फागण डींडां फाग ॥
प्रसणां काटै पाड़िया, भागल रिपु गा भाग ।
लूट डेरा तोपां लियां, वलिया पाछा वाग ॥
इसी बात सुण नृपत उर, आयौ सोच अपार ।
यूं बरसां लग आऊवै, पाऊं न लड़ियां पार ।
तद गोरां नै तेड़वा, तखत करी तदबीर ।
लड़ै आऊवौ लेण रौ, औ उपाय अकसीर ।
लिखिया रुक्का लागणा, अंगरेजां अजमेर ।
ऊभौ बदलै आऊवौ, फतै न होवै फेर ॥

घुटिया सुण अंगरेज घण, भुटिया रंगवां भंग ।
उठिया दाबण आऊवौ, जुटिया करवा जंग ॥
गोळां रीठां गोळियां, झड़ रण खाग झपट्ट ।
खाळां लोही खळकतां, वीरां हाक विकट्ट ॥
भुजां आभ लागा भड़ां, जुड़ियां भारत जाय ।
हारे भागा हूरिया, लालन गयौ लुकाय ॥
अजंट इतै जो आवियौ, ताता खड़े तोखार ।
काळा भिड़िया कड़कनै, धीबलियौ खगधार ॥
फीटा पड़ भागा फिरंग, मेसन अजंट मराय ।
घालै डोळी घायलां, कटक घणौ कटवाय ॥
लालन मिळ लारेंस सूं, सला विचारी सार ।
जीतां जुध कुसियाळ जुड़, लाख फौज ले लार ॥
फौजां मरुधर फिरंगियां, तोपां घटकर त्यार ।
सबळौ दळ आया सजै, भेळण गढ़ ले भार ॥
भड़ां आज वेजौ भला, अखै कुसाळौ एम ।
राखां आउवौ जीत रण, को तज जावां केम ॥
गहरा कोरा गाळमा, लिया अमल लंकाळ ।
झगड़ण गोरां झाट दे, वट मूंछां वंकाळ ।
मारू अड़िया मोरचां, रड़ियां सिंधव राग ।
लालन लड़ियौ लाग सूं, अंबर झड़ियौ आग ॥
कुपिया भड़ कुसियाळ रा, गोरां सीस गजब्ब ।
पड़ै अेक दस पाड़ नै, अरि इण खेत अजब्ब ॥
कटियां सिर कुसियाल रा, खेत वीर झड खाग ।
धर पड़िया, मुख धाकलै, लख उर रिपुवां लाग ॥
वाहता खग माथा बिना, धड़ लोही धकधक्क ।
धुकै सीस पड़िया धरा, हुआ अरी हकबक्क ॥
हिमती गोरा नहं हटै, केम मुंडै कुसियाल ।
धुकत वीर लोटत धरा, घण मूंछां कर घाल ॥
आठ दिवस लग अेकसी, धड़ां उडी घमरोळ ।
किलकत तोपां काळका, झड़ खग सेल झबोळ ।
असवागां खग ऊपड़ी, वजी हाक वजराग ।
जीत ऊभौ कुसियाल जुध, भिड़ वैरी गा भाग ॥
कवायदी कुसियाळ रां, चखरत मूंछां चोळ ।

वोळ ऊभा दळ वैरियां, छकिया रण रंग छोळ ॥
दिल्ली पत डोळौ दियौ, हार खाय जुध हेर ।
उण दिन वरवण आऊवै, घड़ा वरि अरि घेर ॥
फतै झंडा फरकाविया, वाजै डंका वेर ।
गढ़ां सिरोमण अेणगत, हुवौ आऊवौ हेर ॥
आगै ओ गढ़ आऊवौ, जीतौ सगळा जंग ।
कुण लड़िया लीधौ कहां, दीधां गयौ दुरंगा ॥
कुसळ गयौ लेवा कटक, भार पृथी दे भ्रात ।
मोळी सला दी मंत्रियां, रचं जाळ इण रात ॥
अंगरेजां सूं लड़ अबै, पाणौ मुसकल पार ।
पाछौ ले लेसां पछै, आपां देख उवार ।
बस भावी उण निसवणै, दुरग खाली कर दीध ।
वळगा सह आडावळै, लारै गढ़ अरि लीध ॥
माठी वात न मानता, जूंझत दो दन जूट ।
आय कुसाळौ आऊवै, काढ़त सत्रुवां कूट ॥
जपियौ गढ़ तज जावतां, सुणजौ धणियां सार ।
म्हनै दोस दीजौ मती, सिर कलंक सिरकार ॥
उगणीसौ चवदा अखूं, खत्रियां उगटै खार ।
यूं गढ़ भिळियौ आउवौ, सुद नभ मा सनिवार ॥
अंगरेजां किम अंजसौ, जाजा धणी जोधांण ।
अबकै छूटौ आऊवौ, जिकौ लेख-विध जांण ॥
माधव राजा मान नै, दीधौ मरुधर देस ।
जुध अरियां सूं फेर जुड़, बचा लिया वगतेस ॥
तिको पाट तोने तगत कमधज दियौ कुसाल ।
गयौ भूल नृप सरब गुण, सहजग करै सवाल ॥
कर दिखात सच कोल नै, कमध लड़ै कुसियाल ।
अमल गोरां उठ जावतौ, नृप हिंद होत निहाल ॥
दिली तगत तो देवतौ, दळगोरां रण दोट ।
सामी राजन बिन समझ, चांपा सूं की चोट ॥
करत मदत कुसियाल री, लड़ भारत ले लेत ।
जस आतो जोधांण नै, राज हिंदवां रेत ॥
हुती अेकता हिंदवां, काढ़त गोरां कूट ।
आय पड़ी विधि अंक सूं, फेरूं आडी फूट ॥

१८५७ के विप्लव में आऊवा ठाकुर की भूमिका

ठाकुर खुशालसिंह की प्रथम स्वाधीनता संघर्ष में भूमिका को जानने के लिए हमें चार प्रश्नों का समाधान खोजना होगा। प्रथम, उस समय अंग्रेजी सत्ता के प्रति जन भावना क्या थी ? द्वितीय, विद्रोह का नेतृत्व करने वाले योद्धाओं का अंग्रेजों के प्रति दृष्टिकोण क्या था ?; तृतीय, जनता ने किस सीमा तक विद्रोह में भाग लिया और चतुर्थ ब्रिटिश संसद में विद्रोह के कारणों तथा स्वरूप के बारे में पूछे गये प्रश्नों तथा वादविवाद का निष्कर्ष क्या था ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर विद्रोह में आऊवा ठाकुर की भूमिका की प्रकृति शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

तत्कालीन कवियों की रचनाओं और लोकगीतों में अंग्रेज सत्ता विरोधी भावनाएँ सशक्त शब्दों में मुखरित हुई हैं। विद्रोह का नेतृत्व करने वाले अथवा सामन्तवादी तत्वों का दृष्टिकोण अंग्रेजों की सत्ता के विरुद्ध था। न केवल मेरठ में विप्लव का सूत्रपात करने वाले भारतीय सैनिकों का बल्कि नसीराबाद, नीमच, एरिनपुरा और डीसा के भारतीय सैनिकों का दृष्टिकोण भी ब्रिटिश सत्ता विरोधी था। डीसा छावनी के विद्रोही सैनिकों ने १३ सितम्बर १८५७ को एक अपील जारी की थी, जिसमें उन्होंने बताया कि हिन्दू तथा मुसलमान सैनिक अपने धर्म की रक्षार्थ लड़ रहे हैं और मारवाड़ तथा मेवाड़ के सामन्त उनके साथ हैं।[३०] विद्रोह के दमन के लिए ब्रिटिश सरकार ने न केवल विद्रोही सैनिकों को बल्कि जनता को भी निर्दयतापूर्वक कुचला। आम नागरिकों का भी अंग्रेज सैनिकों ने वध किया। ब्रिटिश संसद में विद्रोह को भारतीय जनता के असन्तोष का अभिव्यक्ति बताया गया जिसका नेतृत्व सैनिक वर्ग ने किया।

सामन्तवादी व्यवस्था में राष्ट्रवाद का स्वरूप प्रादेशिक होता है तथा विद्रोह का नेतृत्व सैनिक अथवा सामन्त करते हैं। जनता की सहानुभूति विद्रोहियों के साथ होती है। १० अगस्त, १८५७ को रात में जोधपुर के किले के भूमिगत गोला-बारूद के भण्डार में भयंकर विस्फोट को मारवाड़ की जनता ने अंग्रेज समर्थक महाराजा तख्तसिंह के प्रति दैवी प्रकोप बताया।[३१]

यह सत्य है कि विद्रोह का क्षेत्र तथा उसमें जन सहभागिता की मात्रा सीमित थी। परन्तु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि मारवाड़ में १८५७ का विद्रोह तथा उसके नेता ठा. खुशालसिंह की भूमिका अंग्रेज सत्ता विरोधी थी जिसे व्यापक जन समर्थन प्राप्त था। हम इसे भारत के सामरिक राष्ट्रीयता के प्रारंभिक चरण की संज्ञा दे सकते हैं।

---

1. परम्परा, भाग— ३०-३१ (राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर) पृ. ३४
2. सी.यू. एचीसन, कलेक्शन आफ ट्रिटीज, एंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्स, भाग ३ (राजकीय मुद्रणालय, भारत सरकार, कलकत्ता १९२८) में ब्रिटिश सरकार द्वारा राजपूताने के राजाओं के साथ की गई संधियों का विस्तृत विवरण दिया गया है।
3. के.एस. सक्सेना, दी पॉलिटिकल मूवमेन्टस एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान (१८५७ - १९४७)

पृ.४८ (एस.चन्द कम्पनी,नई दिल्ली १९७१)

4. बांकीदास री ख्यात (राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,जोधपुर १९८९),पृ.३-४
5. विस्तृत वर्णन के लिए देखिये,सौभाग्यसिंह शेखावत (सं.) स्वतंत्रता सेनानी डूंगजी जवाहरजी (राजस्थानी शोध संस्थान,जोधपुर १९७३)
6. जबरसिंह,दी ईस्ट इंडिया कम्पनी एण्ड मारवाड़ (पंचशील प्रकाशन,जयपुर,१९७३) पृ.११३
7. नाथूराम खड़गावत,राजस्थान्स रोल इन दि स्ट्रगल ऑफ १८५७ (राजस्थान सरकार,जयपुर १९५७) पृ.२७
8. आर.पी.व्यास,रोल आप नोबिलिटी इन मारवाड़ (जैन ब्रदर्स,जोधपुर १९६९) पृ.११९-१३४
9. क्रमांक ६,पृ.१२६
10. जगदीशसिंह गहलोत,राजस्थान के राजवंशों का इतिहास (हिन्दी साहित्य मंदिर,जोधपुर) पृ.११२
11. क्रमांक ६,पृ.१२७, १२.क्रमांक ७,पृ.१८०
13. नृसिंह राजपुरोहित, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थानी कवियां रौ योगदान (स्वतंत्रता सेनानी मथुरादास माथुर,जयपुर,१९८८) पृ.१५२
14. क्रमांक ३,पृ.६०
15. क्रमांक ७ पृ.१८०-१८१
16. (क) क्रमांक १३,पृ.१३७-१३८,१४३-१४५
    (ख) क्रमांक १०,पृ.११३
    (ग) क्रमांक ७,पृ.५४
17. क्रमांक १३,पृ.१३९,क्रमांक ७,पृ.११८
18. विजयकुमार वशिष्ठ,राजपूताना एजेन्सी : १८३२-१८५८ (आलेख पब्लिशर्स,जयपुर) पृ.२७३
19. क्रमांक ७,पृ.१५२-१५३
20. गोपीनाथ शर्मा,ऐतिहासिक निबन्ध : राजस्थान हिन्दी साहित्य मंदिर,जोधपुर १९७०,पृ.१५३
21. क्रमांक ८,पृ.१३८,क्रमांक ३, पृ.६३
22. क्रमांक ८,पृ.१३९
23. परम्परा,गोरा हटजा अंक,१५ अगस्त १९५६,पृ.१११
24. क्रमांक ७,पृ.१७६-७७,५३
25. क्रमांक ७,पृ.११९
26. क्रमांक ७,पृ.५५-५६ एवं १२१-२२
27. क्रमांक ७,पृ.१२०-२१
28. क्रमांक ७,पृ.५५
29. क्रमांक १३,पृ.१५३-१५६
30. क्रमांक ७,पृ.१५२
31. क्रमांक ७,पृ.१०-११

बलवद्विलास : एक अध्ययन

— श्रीमती (डा.) उषा राठौड़

राजस्थान का साहित्य ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बना कर लिखा गया है, अत: राजस्थान के इतिहास का अध्ययन यहां के काव्य ग्रन्थों के बिना अधूरा है । राजस्थान में ऐसे अनेक प्रसिद्ध रचनाकार हुए हैं जिन्होंने काव्य ग्रन्थों के साथ साथ ऐतिहासिक ग्रंथों का भी सृजन किया है, इनमें महाकवि सूर्यमल्ल मीसण का नाम प्रथम पंक्ति में लिया जा सकता है । सूर्यमल्ल मीसण ने वंश भास्कर जैसा ऐतिहासिक ग्रंथ महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया तथा वीर सतसई, राम रंजाट और बलवद् विलास जैसे काव्य ग्रन्थों का सृजन किया । कवि को यश भी इन्हीं चार रचनाओं से प्राप्त हुआ । वंशभास्कर चम्पू महाकाव्य कहा गया है जिसमें विविध छन्दों, विषयों एवं वृत्तान्तों का अत्यन्त रोचक वर्णन हुआ है ।

उपर्युक्त चार रचनाओं के अतिरिक्त कुछ विद्वान् कवि की अन्य तीन रचनाओं धातु रूपावली, छन्दोमयूख और सती रासो का भी उल्लेख करते हैं ।

कविवर सूर्यमल्ल मीसण का सर्वाधिक प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य बलवद् विलास है जिसमें कवि ने ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं को आधार बनाकर अपने युग का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है । इस ग्रन्थ में वेद, उपनिषद्, पुराण, कला, दर्शन, धर्म, शास्त्रज्ञान, विद्या आदि का आधार लेकर इसे प्राचीन काव्य परम्परा से भी जोड़ा गया है । बलवद् विलास की रचना शैली, वर्णनक्रम, विषय और छंद विधान में वंश भास्कर का अनुसरण दिखाई देता है ।

बलवद् विलास की रचना कविवर सूर्यमल्ल मीसण ने भिणाय के तत्कालीन महाराजा बलवन्तसिंह के देशप्रेम, शौर्य, काव्य, अनुराग, अतिथिसत्कार, संस्कृति, प्रेम जैसे उदात्त गुणों से प्रभावित होकर किया था । यह रचना काल्पनिक नहीं अपितु यथार्थ पर आधारित है । स्वयं कवि ने महाराजा बलवन्त सिंह के व्यक्तित्व को अत्यन्त समीप से देखा था तथा उनके जीवन में घटित

महत्त्वपूर्ण घटनाओं के वह स्वयं साक्षी रहे हैं । कवि उनके परम मित्र थे, इसलिए उनकी वर्णन शैली अत्यन्त मार्मिक, तथ्यपरक तथा प्रभावशाली बन सकी है । इस ग्रन्थ की रचना कविवर ने महाराजा बलवन्तसिंह की अभ्यर्थना पर की थी ।भिणाय में तेरह दिन रहने के पश्चात् वापस लौटकर बलवद् विलास ग्रन्थ का लेखन, वंश भास्कर के निर्माण को स्थगित करके प्रारम्भ किया था ।

बलवद् विलास का नामकरण एवं रचनाकाल

भिणाय के नरेश श्री बलवन्तसिंह के जीवन वृत्त पर आधारित होने के कारण इस प्रबन्ध काव्य का नामकरण भी बलवद् विलास किया गया । कवि अनेक भाषाओं तथा विषयों के सुजान थे जिससे बलवद् विलास में अनेक विषयों का वर्णन भी हुआ है । बलवद् विलास की रचना संवत् १९१५ की राधा अष्टमी के दिन प्रारम्भ की । कवि ने स्पष्ट किया है ।

जहं सक विक्रम राज को, सर ससि नव कु समान ।
तीजी उज्वल राज तिथि, इहि प्रबन्ध उत्थान ॥[२]

बलवद् विलास की कथा वस्तु —

बलवद् विलास की कथावस्तु को मैंने दो भागों में विभक्त करके उसका अध्ययन प्रस्तुत किया है । प्रथम खण्ड में राजा बलवन्तसिंह के पूर्वज राठौड़ राजवंश का संक्षिप्त ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रस्तुत किया है तथा द्वितीय खण्ड में राजस्थान के अजमेर मेरवाड़ा भू-भाग में स्थित भिणाय संस्थान (ठिकाने) के शासक राजा बलवन्त सिंह राठौड़ के पूर्ववर्ती शासकों का संक्षिप्त परिचय तथा उनके जन्म, शिक्षा, विनोद, भ्रातृस्नेह, सती के प्रसंग पर अजमेर में नियुक्त ब्रिटिश रेजीडेंट कर्नल सर सदरलेन एवं कर्नल जार्ज लारेन्स की आपत्ति और फिर अंग्रेज अधिकारियों के मेल मिलाप प्रभृति घटनाओं का वर्णन हुआ है । इसके अतिरिक्त राजा बलवन्त सिंह का विवाह, उनेक अनुज बख्तावरसिंह और जोरावर सिंह का पाणिग्रहण, उनकी संतति, गयादि तीर्थों की यात्रा, बख्तावर सिंह का निधन और उसकी धर्मपत्नी के सहगमन आदि विविध घटनाओं का अत्यन्त रोचक एवं तथ्यपरक लेखन इस प्रबन्ध काव्य में हुआ है । इतिहास की इस घटना के आधार पर कि बलवन्त सिंह मारवाड़ के शासक राव चन्द्रसेन के वंशज थे, कवि ने काव्य रूप में इन घटनाओं का बड़े प्रामाणिक ढंग से उल्लेख किया है । अत: इतिहास एवं काव्य का साहचर्य इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता है ।

बलवद् विलास के प्रथम खण्ड के ऐतिहासिक काव्य प्रसंग —

इस प्रबन्ध काव्य का प्रारम्भ कवि ने भारतीय परम्परानुसार मंगलाचरण से किया है । काव्य के गुणों के उत्कर्ष एवं दोषों के शमन के लिए शिव, गणपति, सरस्वती, महर्षि वेदव्यास, पतज्जलि, कपिला जैमिनि और गौतम की वंदना करते हुए अन्य देवी, देवताओं, अपने माता-पिता एवं गुरुवर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है । तदनन्तर कुशस्थल का उत्तराधिकारी राजा पुज्ज के तेरह पुत्रों तथा उनसे प्रचलित राठौड़ों की तेरह शाखाओं यथा दानेसरा, अभैपुरा, कपालिया, कुरहा, जलखेड़िया, बुगलाणा, अहर, पारक, चंदेल, वीर, वरियावर, खैरोंद एवं जयवंत का उल्लेख हुआ है ।[३]

इसके पश्चात् कवि ने मारवाड़ के शासकों का वंशवृक्ष प्रस्तुत करते हुए राजा कुश से राव चन्द्रसेन तक प्रत्येक राजा के जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाओं, उनके विवाह एवं संतति आदि का उल्लेख किया है । चूंकि इन सभी राजाओं एवं उनसे सम्बन्धित घटनाओं का सम्बन्ध भिणाय के शासक राजा बलवन्त सिंह के पूर्वजों से है अत: उन पर विचार करना आवश्यक है । कवि द्वारा प्रस्तुत वृत्तान्त समकालीन विद्वानों की रचनाओं से कहीं पुष्ट होता है तथा कहीं अनेक स्थान पर विद्वान् उनकी बातों से असहमत हैं । इस कारण इस काव्य ग्रन्थ के अध्ययन में मेरे सामने भ्रान्ति उत्पन्न हुई है जिसे मैं यहा स्पष्ट करना चाहती हूं ।[४]

(१) सूर्यमल्ल मीसण ने धर्मब्रह्म का पुत्र अजयचंद्र को तथा अजयचन्द्र का पुत्र अभयचन्द्र का होना सिद्ध किया है ।

यद्यपि कविया करणीदान जी ने भी अपने काव्य ग्रंथ 'सूरजप्रकाश' में सूर्यमल्ल जी की भांति अजयचंद्र को धर्मब्रह्म का पुत्र तथा अभयचंद्र को अजयचन्द्र का पुत्र बताया है ।[५] किन्तु इतिहास के अन्य ग्रन्थों से इसकी पुष्टि नहीं होती । मेरी यह मान्यता है कि विजयचन्द्र के पितामह तथा पिता का नाम काल्पनिक है । उनके स्थान पर क्रमश: मदनपाल तथा गोविन्दचन्द्र का उल्लेख होना चाहिये क्योकि मारवाड़ इतिहास के पुरोधा इतिहासकार पं. रामकरण आसोपा, जगदीश सिंह गहलोत एवं रोमा वियोगी ने भी अपने ग्रन्थों में इन्हीं नामों का उल्लेख किया है ।[६]

(२) इसी प्रकार विजयचन्द्र के पुत्र जयन्द्र से सेतराम तक के राजाओं के वंशवृक्ष से अधिकांश इतिहासकारों की सहमति है । जयचन्द्र के पुत्र का नाम सूर्यमल्ल मीसण ने बलवद् विलास में वरदाईसेन दिया है यथा —

चतुर भयो जयचंद्र के सुत वरदाईसेन ।
सेतराम तस सुत सुपहु तन्यों अवनि जस तेन ॥[७]

इस 'वरदाईसेन' नाम की पुष्टि अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी होती है । जोधपुर राज्य की ख्यात में भी सेतराम कंवर के पिता का नाम वरदाईसेन दिया गया है । किन्तु इस ख्यात के संपादक रघुवीरसिंह सीतामऊ उसे प्रामाणिक नहीं मानते हैं ।[८] ख्यात में पाद टिप्पणी सात में लिखा है "राजा जयचंद्र गाहडवाल अथवा उसके उत्तराधिकारी पुत्र हरिश्चन्द्र के साथ वरदाईसेन के किसी सम्भावित सम्बन्ध के कोई विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं ।"[९] इसका कारण संभवत यह हो सकता है कि हरिश्चन्द्र का उपनाम वरदाईसेन माना गया है । मेरा यह विश्वास है कि इसी कारण डा. रघुवीरसिंह सीतामऊ को भ्रान्ति हो गई होगी क्योंकि जब वरदाईसेन तथा हरिश्चन्द्र दोनों एक ही व्यक्ति के नाम व उपनाम है तो उसके सम्बन्ध में अन्यत्र प्रामाणिक उल्लेख कहां से मिलेगा । मारवाड़ राज्य के प्रसिद्ध इतिहासकार रामकरण जी आसोपा, प. विश्वेश्वरनाथ रेऊ एवं जगदीश सिंह गहलोत ने हरिश्चन्द्र के उपनाम वरदाईसेन की पुष्टि की है ।[१०]

(३) तीसरा विवादास्पद प्रसंग है कि सीहा एवं सेतराम के सम्बन्ध को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है । सूर्यमल्ल मीसण ने बलवद् विलास में लिखा है —

'सेतराम नृप सुनु सिंह प्रकटिय रिपु सासन'[११] किन्तु इस पंक्ति से उनके आपसी

सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होते हैं । कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रन्थ में सीहा को कही जयचन्द का पुत्र, कहीं भतीजा और कहीं पौत्र तथा सेतराम का भाई लिखा है ।[१२] पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने सेतराम व सीहा को भाई बताया है ।[१३] जगदीश सिंह गहलोत एंव गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने इतिहास ग्रन्थों में इन दोनों को पिता-पुत्र होना सिद्ध किया है ।[१४] जोधपुर राज्य की ख्यात में वरदाईसेन के दो पुत्रों का नामोल्लेख हुआ है - सेतराम एवं थिरपालदेव ।[१५] सेतराम सीहा के पिता थे । इससे सम्बन्धित एक दोहा भी मिलता है —

चेतराम सम्राट के, पुत्र अष्ट महावीर ।
जिसमें सिहा जेष्ठ सुत, महारथी रणधीर ॥[१६]

इसके अतिरिक्त सीहा के समय का संवत् १३३० के शिलालेख में जो गांव वीठू में उपलब्ध है जिसमें सेतराम को सीहा का पिता लिखा है ।[१७] इसकी पुष्टि करता हुआ एक और शिलालेख संवत् १६५० का बीकानेर के राजा रायसिंह का है जिसमें सीहा को जयचन्द का प्रपौत्र बताया है ।[१८] अत: प्राप्त सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष है कि सीहा सेतराम का ही पुत्र है । इतिहास ग्रंथों के साथ साथ सीतामऊ राज्य के कुलगुरु कवि लालजी के एक सोरठे से भी इस बात की पुष्टि होती है जिसमें सेतराम के दो पुत्र बताये हैं —

कीरतजुत कमधेश सेतराम सुत दो भये ।
सियोज मरुधर देश, धनराज दषिन गयो ॥

अर्थात् कांतियुक्त राठौड़पति सेतरामजी के दो पुत्र हुए जिनमें (सीहाजी) तो मारवाड़ देश में गये जिनके वंश में जोधपुर, बीकानेर, सीतामऊ, सैलाना आदि राज्य हैं और दूसरे पुत्र धनराज जो दक्षिण में गये जिनके वंशधर धनगर और बाद में होलग्राम में वास होने से होलकर कहलाये ।[१९] यह तथ्य इतिहास-सम्मत नहीं है - सम्पादक

(४) चतुर्थ प्रसंग सीहा से सम्बन्धित है जिसमें सीहा के कान्यकुब्ज देश का त्यागकर द्वारकानाथ के दर्शनार्थ पश्चिमी दिशा में गमन का वृत्तान्त लिपिबद्ध है । बलवद् विलास में सीहा द्वारा द्वारिका कीं यात्रा के पूर्व पल्ली (वर्तमान पाली) में विश्राम लेने तथा वहां के निवासियों की रक्षा हेतु प्रार्थना करने पर दस्यु दलों के उन्मूलन का आश्वासन देने का उल्लेख हुआ है । सीहा ने वापस लौटकर पाली परिजनों को अपने वचन के अनुसार उन्हे अभय किया ।[२०]

उपर्युक्त घटना प्रसंग के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है । सीहाजी कन्नौज प्रान्त से निकलकर द्वारका यात्रा के निमित्त सोरठ देश को जाते हुए मारवाड़ देश में आये । इसमें तो किसी का मतभेद नहीं है परन्तु मारवाड़ के किस किस प्रान्त में आये, इसमें मतभेद है । कर्नल जेम्स टोड ने तो सीहा का मारवाड़ में कोलूमठ मे जो बीकानेर से २० मील पश्चिम में है, सोलंकी राजा के पास ठहरने और वहां से पाली जाने का उल्लेख किया है ।[२१] जोधपुर राज्य की ख्यात में यह लिखा है कि सीहा जी का मुकाम पुष्करजी के समीप था, उस समय भीनमाल के ब्राह्मणों ने, जो पुष्कर यात्रा को गये थे , सीहा जी से रक्षा की प्रार्थना की । सीहाजी ने उनकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझ कर मुसलमानों को पराजित किया । प. विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने भी इस वृत्तान्त की पुष्टि की है । सूर्यमल्ल

जी ने भीनमाल का वृतान्त नहीं दिया है । मेरी यह मान्यता है कि ख्यात में लिखा वृत्तान्त कल्पित है क्योंकि ख्यात में यह लिखा हुआ है कि "भीनमाल री धरती पाछी ब्राह्मणा ने दे कन्नौज गया ।[२२] भीनमाल ब्राह्मणों को देने का प्रश्न ही नही उठता है क्योकि सीहा का समय अर्थात् वि. सं. १३०० से १३३० तक भीनमाल में चौहान राजा उदयसिंह और उसका पुत्र चाचिगदेव राज्य करते थे और उसके पीछे भी बहुत वर्षों तक वहां उनके वंशजों का राज्य रहा था ।[२३]

इसी प्रकार राव सीहा के पल्लीनगर में जाने तथा वहाँ के निवासियों को आश्वासन देने तथा रक्षा करने का प्रसंग बलवद् विलास व इतिहास ग्रन्थों में समान रूप से मिलता है । इस प्रसंग में मेरी यह धारणा है कि पल्ली का वृत्तान्त इतिहास सम्मत है ।

(५) सीहा के जीवन से सम्बन्धित एक और विवादास्पद प्रसंग कच्छ नरेश राजा लक्षराज (लाखा) के वध से सम्बन्धित है । बलवद् विलास में सीहा का द्वारकागमन के समय गुर्जराधिपति की राजकुमारी के साथ परिणय तथा कच्छ नरेश लाखां को धराशायी करने का उल्लेख हुआ है ।[२४] इसकी पुष्टि विभिन्न ख्यातों से होती है । कर्नल जेम्स टॉड भी इसकी पुष्टि करते हैं ।[२५] किन्तु मारवाड़ के प्रसिद्ध इतिहासकार पं. रामकरण आसोपा एवं पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ इससे सहमत नहीं है ।[२६] उनके अनुसार लाखा फुलाणी कच्छ का राजा था किन्तु उसका समय वि. की ११ वी शताब्दी है और वह अणहिलवाड़े के सोलंकी राजा मूलराज प्रथम के हाथ से मारा गया था । इस तरह लाखा राव सीहा से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व हुआ था, इस बात की पुष्टि जैन सूरी हेमचन्द्राचार्य के द्व्याश्रय काव्य[२७] से भी होती है जिसमें चालुक्य राज (मूलराज) प्रथम ने लोहे की सांण से लाखा को मारा लिखा है । इसी प्रकार महाकवि सोमेश्वर रचित (वि. सं. १२७७ से १२९२ के मध्य) कीर्ति कौमुदी नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ, जैन सूरि मेरुतुंगाचार्य रचित (ई. सन् १३०५) प्रबन्ध चिन्तामणि आदि ग्रन्थों से इस तथ्य की पुष्टि होती है । इतिहासकार गौरी शंकर हीराचन्द ओझा इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं "मूलराज ने सोरठ के राज गृहरिपु पर जब चढाई की, उस समय (गृहरिपु) की सहायता के लिए लाखा गया था और वहीं मारा गया ।"[२८]

इसी प्रकार लाखा के वध के प्रसंग में सूर्यमल्ल जी ने राव सीहा का विवाह गुर्जराधिपति की राजकुमारी के साथ होना लिखा है ।[२९] ख्यातों एवं मारवाड़ की अधिकांश इतिहास पुस्तकों में सीहा की स्त्री सोलंकनी लिखा मिलता है । किन्तु अणहिलवाड के सोलंकी मूलराज की कन्या का विवाह सीहाजी के साथ लिखकर उसके साथ सीहाजी के प्रसंग में लाखा फुलाणी की कथा जोड़ दी गई है । जिससे वह सोलंकिनी मूलराज प्रथम की कन्या सिद्ध होती है । जो सर्वथा कल्पित है । जिसका खण्डन ऊपर किया जा चुका है ।मुंहता नैणसी सीहाजी की सोलंकिनी स्त्री को सोलंकी मूलराज की कन्या नहीं अपितु सोलंकी सिद्धराज जयसिंह की कन्या लिखता है ।[३०] इस प्रकार काव्य की घटनाओं तथा इतिहास की घटनाओं में मूलभूत अन्तर दृष्टिगत होता है । इतिहास के उल्लेखों से सीहा के मूलराज की कन्या से विवाह होना पुष्ट नहीं होता है । उक्त समस्त लेखों में से नैणसी का लिखना सर्वथा यथार्थ प्रतीत होता है क्योंकि पाटण के स्वामी सोलंकी सिद्धराज जयसिंह दूसरे का जिसका दूसरा नाम जयन्तसिंह भी था, ताम्रपत्र संवत् १२८० का मिला है । यह सीहाजी का समकालीन

होने से उसकी पुत्री के साथ सीहा जी का विवाह सम्बन्ध सम्भव है ।

(६) बलवद् विलास में एक प्रसंग ऐसा है जिसका उल्लेख सूर्यमल्ल मीसण द्वारा न किये जाने पर मुझे आश्चर्य हुआ । यह प्रसंग वीरमदेव के मृत्यूपरान्त उनकी पत्नी मांगलियाणी का सती होने का है । सूर्यमल्ल जी ने वीरमदेव की मृत्यूपरान्त उनकी पत्नी मांगलियाणी का अपने पुत्र चूंडा को लेकर कालाऊ ग्राम में आल्हा चारण की देखभाल में रहने का लिखा है ।[३१] जोधपुर राज्य की ख्यात में भी बलवद् विलास के वृत्तान्त की पुष्टि हुई है ।[३२] मारवाड़ इतिहास के जानकार पं. रामकरण आसोपा ने दला के पुत्र हरिदास द्वारा चूंडा को धाय द्वारा आल्हा चारण के यहां पहुंचाकर चूंडा की माता जसहड़ तथा मांगलियाणी दोनों के सती होने का वृत्तान्त लिखा है । मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी सती होने का उल्लेख है ।[३३]

सूर्यमल्ल जी सती उपासक कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं । उनकी वीर सतसई ऐसे ही प्रसंगों से भरी पड़ी है किन्तु उनके वीरमदेव की पत्नी मांगलियाणी के सती होने का वृत्तान्त न लिखना तथा चूंडा की माता का नामोल्लेख करना एक संशय उत्पन्न करता है । परन्तु मारवाड़ इतिहास के जानकार पं. रामकरण जी आसोपा व नैणसी दोनों ने जो वृतान्त दिया है उसके आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंची हूं कि वीरमदेव की दोनों पत्नियाँ जसहड़ तथा मांगलियाणी सती हुई थीं ।

(७) एक अन्य प्रसंग जो चूंडा के मंडोर पर आधिपत्य से सम्बन्धित है । सूर्यमल्ल जी ने बलवद् विलास में चूंडा के बालिग होने पर इंदा क्षत्रियों की कन्या के साथ विवाह का तथा सैनिक सहायता देकर राजा हम्मीर पड़िहार को परास्त कर मंडोर पर अधिकार करने का वृत्तान्त लिखा है ।[३४] कर्नल जेम्स टॉड ने भी पड़िहार राजा को मारकर मंडोर पर अधिकार करने की पुष्टि की है ।[३५] किन्तु वीर विनोद एवं जोधपुर राज्य की ख्यात में इंदा द्वारा स्वयं मण्डोर जीत कर उसकी रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण वह प्रदेश चूंडा को दहेज में देने को लिखा है ।[३६] इतिहासकार पं. विश्वेश्वर रेऊ एवं जगदीश सिंह गहलोत ने भी इसी बात की पुष्टि की है ।[३७] चूंडा ने हम्मीर पड़िहार को परास्त कर मंडोर पर अधिकार किया ऐसा प्रामाणिक उल्लेख ही नही मिलता है । दहेज में देने का वृत्तान्त अधिकांश इतिहासकारों के साथ ख्यातकारों ने भी एक सा ही दिया है ।

पं. रामकरण जी आसोपा लिखते हैं कि ईंदा जाति के पड़िहारों को मुसलमानों को मारकर मन्डोर लेने में चूंडाजी की मदद लेनी पड़ी थी ।[३८] इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि ईंदा और चूंडा दोनो ने मिलकर मंडोर लिया था परन्तु एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती, इस न्याय को विचार कर चूंडा को प्रबल देखकर दहेज में मंडोर उसे दे दिया ।

बलवद् विलास के दूसरे खण्ड के ऐतिहासिक काव्य प्रसंग

सूर्यमल्ल मीसण ने अपने इस प्रबन्ध काव्य के दूसरे खण्ड में बलवन्त सिंह के पूर्ववर्ती भिणाय के शासकों का वृतान्त प्रस्तुत करते हुए बलवन्त सिंह के व्यक्तिगत एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला है । मुझे इतिहास में बलवन्त सिंह जी से सम्बन्धित वृत्तान्त कहीं उपलब्ध नहीं हुआ । शायद इसका कारण भिणाय जैसे छोटे रियासत के शासक का उल्लेख सम्भव न हुआ हो । बलवद् विलास

के नायक के कृतित्व एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित तथ्यों की पुष्टि हेतु मैंने यथा सम्भव समकालीन सामग्री तथा बाद के इतिहास ग्रन्थों के आधार पर पुष्ट करने का असफल प्रयास किया । मुझे आश्चर्य हुआ कि सूर्यमल्ल मीसण जैसे इतिहास लेखक ने जिस बलवन्त सिंह को महानायक मानकर एक समूचा ग्रंथ रच डाला, उसके सम्बन्ध में अन्य साधन सर्वथा मौन हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ का सर्वाधिक महत्व इसी तथ्य में निहित है कि इस भिणाय शासक के कृतित्व की जानकारी उपलब्ध कराने वाला एक मात्र साधन है । इसकी कमी भी यही है कि इस ग्रन्थ के तथ्यों को अन्य साधनों से परिपुष्ट नहीं किया जा सकता है । इस परिस्थिति में वंशभास्कर जैसे इतिहास ग्रन्थ के लेखक महाकवि सूर्यमल्ल मीसण द्वारा लिखित तथ्यों को ज्यों का त्यों स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है ।

वलवन्त सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व —

ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य बलवद् विलास के नायक भिणाय के राजा बलवन्त सिंह हैं । कवि ने बलवन्त सिंह के जन्म से लेकर उनके अन्तिम समय तक का वर्णन आद्योपान्त सशक्त काव्य शैली के माध्यम से प्रस्तुत किया है । राजा बलवन्त सिंह का विक्रमाब्द १८१३ में जन्म हुआ ।[३९] प्रारम्भ में कवि ने बलवन्त सिंह के जन्म ग्रहों, जन्म कुंडली एवं उनके जन्मोत्सव आदि का कई पृष्ठों में वर्णन किया है । इन वर्णनों में तत्कालीन सामन्ती संस्कृति, वहां की सांस्कृतिक परम्पराएं एवं रीति-रिवाजों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत हुआ है ।

बलवन्त सिंह के पिता सूरजभानु का स्वर्गवास वि. सं. १८८१ में हो गया जिसके कारण बलवन्त सिंह को भिणाय का शासन मिला । अल्प आयु में प्राप्त शासन को बलवन्तसिंह ने अपने दरबार के योग्य व्यक्तियों से मंत्रणा करके सुचारु रूप से संचालित किया । कवि ने बलवन्त सिंह की राज्य व्यवस्था का वर्णन करते हुए आर्य धर्म, उसके चारों वर्ण, उनके विहित कर्म, चारों आश्रमों तथा राजधर्म पर प्रकाश डाला है ।

तत्कालीन राज्य व्यवस्था के साथ सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सास्कृतिक वातावरण का भी ऐतिहासिक सन्दर्भों से युक्त वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है । बलवन्त सिंह वीर योद्धा, प्रजापालक शासक, भारतीय संस्कृति में आस्था रखने वाले क्षत्रिय के रूप में चित्रित किये गये हैं । एक ओर राजा बलवन्त सिंह भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक हैं तो दूसरी ओर संगीत, आखेट, अश्वारोहण, शस्त्र संचालन, शास्त्राध्ययन तथा संध्यावंदन में पूर्ण आस्था रखकर आचरण करने वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित हुए हैं । पन्द्रह वर्ष की आयु में बलवन्त सिंह द्वारा पितृश्राद्ध करने के लिए गयापुरी की यात्रा तथा मथुरा, वृन्दावन, गोकुल और गिरिराज यात्रा करने का भी विस्तार से आलेखन हुआ है । कथित वय में उनका विवाह खंगारोत कछवाह सुमेरसिंह की कन्या अमरकुंवरी के साथ हुआ था । इसका उल्लेख भी इस ग्रन्थ में हुआ है ।

राजा बलवन्त सिंह धर्म तथा स्थापत्य कला के अनुरागी के रूप में भी चित्रित हुए हैं । उन्होनें अपने राज्य में सूर्यदेव का भव्य मंदिर बनवाया और अपने पिता की स्मृति में कलात्मक छत्री बनवाई । राज्य के प्रत्येक ग्राम में केशवराय भगवान के मंदिरों का निर्माण कर अपने कोश से

उनकी सेवा पूजा का प्रबन्ध किया । प्रजा के लिए धर्मार्थ प्याउएं प्रारम्भ की । अपने राज्य की आय वृद्धि, प्रजारंजन और राज्य कर्तव्य की पूर्ति के लिए घांतोल, चांपानेरी, गोवर्द्धनपुरा और कैरिया आदि अनेक स्थानों पर जलाशयों का निर्माण करवाया । वे एक प्रजापालक शासक के रूप में उभर कर सामने आते हैं । उनके द्वारा करवाये गये निर्माण कार्य हमारे लिए ऐतिहासिक धरोहर हैं ।

बलवद् विलास में यद्यपि युद्ध वर्णन का कोई सीधा प्रसंग उपलब्ध नहीं था फिर भी भिणाय के व्रजवल्लभ ब्राह्मण की भार्या । राव बख्तावर सिंह की सहगामिनी रानी कमलावती के चितारोहण और कथित अन्य प्रसंगों को लेकर राजा बलवन्त सिंह की अजमेर चढाइयों का वर्णन युद्ध और वीर चरित्र की झांकी प्रस्तुत करते हैं ।

भिणाय के ब्रजबल्लभ ब्राह्मण की भार्या जब सती हुई थी उस समय अंग्रेज प्रशासक जार्ज लारेंस था तथा उनके अनुज बख्तावरसिंह जी की पत्नी कमलावती के समय कर्नल सदरलेन रेजीडेन्ट था । बलवन्त सिंह जी द्वारा समझाने पर भी जब वे दोनों सती होने की बात पर अडिग रही तब उन्होंने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी । इस प्रसंग से क्रोधित होकर जब बलवन्त सिंह को दोनों बार अजमेर बुलाया गया तब उन्होने निर्भय होकर वस्तु स्थिति का उल्लेख किया जिससे प्रभावित होकर दोनो बार रेजीडेन्ट को शान्त होना पड़ा ।

इस प्रकार कवि ने बलवन्त सिंह के साहस, निर्भयता, धर्मनिष्ठा जैसे उदात्त गुणों का बड़े ही प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है । उस युग में सम्पूर्ण राजस्थान में बलवन्त सिंह के तुल्य प्रजापालक शासक, साहस तथा शौर्य का प्रतीक अन्य कोई क्षत्रिय कविवर सूर्यमल्ल मीसण को दिखाई नहीं दिया । इसलिए उन्होनें बलवन्त सिंह के महान् चारित्रिक गुणों से प्रभावित होकर उसकी यश गाथा को एक ऐतिहासिक काव्य प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया ।

यद्यपि महाकवि सूर्यमल्ल ने इस काव्य में उदारमना क्षत्रियोचित गुणनिधि राजा बलवन्तसिंह की सुकीर्ति का बहुविधगान किया है तथापि वह अपने आश्रयदाता बूंदीनरेश रामसिंह हाड़ा की कृपा एवं स्नेह का स्मरण कर कृतज्ञता प्रकट करना नही भूला है । बलवद् विलास के अन्त में कविवर ने रामसिंह के प्रति निवेदन किया है —

हडुवतिय पति हडुवीर दुंदिय बसुधावर ।
रामसिंह अधिराज राव राजेन्द्र धर्मधर ॥
सब गुन स्वगति समेटि अहो रक्खिय सेसन अब ।
वेदन मस्तक वाक्य सोधि जो हुत प्रणहि सब ॥
जनु कर्ण जुधिष्टर नल जनक इक बमि बुंदिय अवसरन ।
रविमल्ल नाथ अर्णव गहिर सोहु मुदित बलवंत सैन ॥[४४]

साररूप में कह सकते हैं कि बलवद् विलास में वैदिक संस्कृति मध्यकालीन इतिहास, आधुनिक ब्रिटिशकालीन नीतियां तथा कवि के युग की जनजीवन की चेतना उद्घाटित हुई हैं जिससे यह काव्य बड़ा महत्वपूर्ण बना है । विद्वानों ने उसे सती रासो की संज्ञा दी है, यह असंगत हैं क्योकि इस काव्य में केवल सती प्रथा का वर्णन ही नहीं है अपितु अनेकानेक इतिहास, दर्शन, धर्म, कला और

बलवन्त सिंह के जीवन चरित्र को चित्रित कर राजस्थान के सांस्कृतिक जीवन इतिहास, ब्रिटिश सत्ता तथा हमारी प्राचीन परम्पराओं व मान्यताओं को भी प्रस्तुत किया गया है । मेरी यह मान्यता है कि भिनाय के राजा बलवन्त सिंह अवश्य एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र हैं । कवि सूर्यमल्ल जी ने अपनी ओर से इस ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ को इतिहास पुष्ट सामग्री से परिपूर्ण करने का प्रयास किया है । अत: काव्य सत्य के रूप में इन उल्लेखों का एक विशेष महत्व है । बलवन्त सिंह के पूर्वजों का जो उल्लेख हुआ है , वह बलवद् विलास एवं इतिहास ग्रन्थों में करीब समान रूप से ही मिलता है । किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस वीरवर बलवन्त सिंह का कहीं उल्लेख नहीं मिलता । राजस्थान के अधिकांश ऐतिहासिक पात्रों के साथ यही हुआ है । मैं अपने अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंची हूं कि इसका कारण राजस्थानी भाषा के ऐतिहासिक काव्यों का प्रकाशन न होना अथवा इतिहासकारों को उनकी प्राप्ति न होना मुख्य है । जब ऐसे ऐतिहासिक गन्थों का शोधपरक अध्ययन नहीं होगा तब तक राजस्थान का इतिहास अधूरा ही माना जायेगा ।

राजस्थानी शोध संस्थान
चौपासनी, जोधपुर

सन्दर्भ सूची –

1. बलवद् विलास, संपा. सौभाग्य सिंह शेखावत पद सं. ५८२-५८४ पृ. ७४
2. वही, पद सं. ५, पृ. १.
3 वही, पद सं. ८-१४ पृ. २-३
4. वही , पद सं. १६, पृ. ३
5. सूरजप्रकास भाग १ भूमिका, संपा. सीतराम लालस पृ. १२
6. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास , प. रामकरण आसोपा, पृ. ३६ मारवाड़ राज्य का इतिहास, जगदीश सिंह गहलोत, पृ. ६५, हिस्ट्री आफ डाइनेस्टी रोमा नियोगी , पृ. ६५
7. बलवद् विलास, पद सं. १८ पृ. ३
8. जोधपुर राज्य की ख्यात, संपा. रघुवीर सिंह, मनोहरसिंह राणावत, पाद टिप्पणी सं. ८, पृ. १४
9. वही , पृ. १४
10. मारवाड़ राज्य का संक्षिप्त इतिहास, पं. रामकरण आसोपा, पृ. ३९, मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ पृ ३१, मारवाड़ राज्य का इतिहास, जगदीश सिंह गहलोत, पृ. ६८
11. बलवद् विलास, पद सं. १९, पृ. ३
12. एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज आफ राजस्थान, जिल्द २, कर्नल जेम्स टॉड, पृ. १३-१६
13. मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग. पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ , पृ. ३३
14. मारवाड़ राज्य का इतिहास , जगदीश सिंह गहलोत , पृ. ६८, राजपूताने का इतिहास चौथी जिल्द पहला भाग गौरीशंकर हीराचन्द ओझा पृ. ११५
15. जोधपुर राज्य की ख्यात : सम्पादक रघुवीर सिंह, मनोहर सिंह राणावत, पृष्ठ १४
16. राठौड़ वंश का इतिहास ; तेजसिंह राठौड़; पृ. १
17. मारवाड़ का इतिहास, पंडित रामकरण आसोपा, पृ. ४३

18. "तस्माद्विजयचन्द्रोभूज्जय चन्द्रस्ततोड भवत् ।
वरदायीसेन नामा तत्पुत्रोडतुल विक्रम ॥
तदात्मजः सीतरामो राम भक्ति परायण ।
सीतरामस्य तनयो नृपश्चैक शिरोमणी ॥
राजासीह इतिख्यात शौर्यवीर्य समन्वित ॥
(बंगाल ए. सो. ज. और प्रो. सन् १९२० वो. १६ पृ. २७६)
19. बलवद् विलास, पद सं. २०-२३, पृ. ३-४
20. एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, कर्नल जेम्स टाड, पृ. १५
21. जोधपुर राज्य की ख्यात, सम्पादक रघुवीर सिंह, मनोहर सिंह राणावत, पृ. १६
22. वही, पृ. १६
23. एपिग्राफिया इंडिका, जि. ११, पृ. ७८ के सामने का वंश वृक्ष
24. राजपूताने का इतिहास, चौथी जिल्द पहला भाग, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृ. १५३, मारवाड़ राज्य का इतिहास, जगदीशसिंह गहलोत, पृ. ७०, मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, पं. रामकरण आसोपा, पृ. ४७.
25. बलवद् विलास, पृ. ४
26. जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ. १९
27. एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, पृ. १६
28. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ५९, मारवाड़ का इतिहास, पृ. ३७
29. कुन्तेन सर्वेसारेणावधील्लक्ष चलुक्यराट् (द्वयाश्रय महाकाव्य, सर्ग ५,१२८)
30. सपत्राकृतशत्रूणां संपराये स्वपत्रिणाम् ।
महेच्छकच्छभूपालं लक्षं लक्षी चकार यः ॥
कीर्ति कौमुदी , सर्ग २,४
31. प्रबन्ध चिंतामणि (बंबई का ई. सं. १८८८ का संस्करण) पृ. ४७
32. राजपूताने का इतिहास, चौथी जिल्द- पहला भाग, गौ.ही.ओझा, पृ. १५१
33 बलवद् विलास, पद संख्या २४, पृ. ४
34. मुंहणोत नैणसी की ख्यात, जि. २, पृ. ५-५५ और ५८
35. बलवद् विलास, पृ. ९
36. जोधपुर राज्य की ख्यात, संपा. रघुवीरसिंह, मनोहरसिंह राणावत, पृ. ३६
37. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, प. रामकरण आसोपा, पृ. ९०
38. मुंहणोत नैणसी की ख्यात, जि. २, पृ. ८२-७
39. मारवाड़ का इतिहास- प्रथम भाग, प. विश्वेश्वरनाथ रेऊ, पृ. ६१, मारवाड़ का इतिहास, जगदीश सिंह गहलोत पृ. ८२
40. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, प. रामकरण आसोपा, पृ. २५
41. बलवद् विलास, पद सं. ७७, पृ. ११
42. दि रूलिग प्रिंसिज चीफ्स एण्ड लीडिंग पर्सोनल्स इन राजपूताना एण्ड अजमेर, पृ. १९५-६ (ई. सन् १९३१ का संस्करण)
43. मारवाड़ का इतिहास, पृ. १५२, मारवाड़का संक्षिप्त इतिहास, पृ. २८५
44. बलवद् विलास, पद सं. ७९, पृ. ११.

'ऊदावत रूपसिंघ री झमालः एक अनुशीलन'

भवानीसिंह पातावत

राजस्थान एक वीर प्रदेश है, जहां पग-पग पर थर्मापली जैसी घटनाएं घटित हुई हैं । राजस्थान के इतिहास की ज्ञात-घटनाओं पर सहस्रों ग्रंथ उपलब्ध हैं, फिर भी अनेक अज्ञात ग्रंथ अभी तक प्रकाश में आने बाकी हैं ।

जोधपुर के हस्तलिखित संग्रहालयों - राजस्थानी शोध-संस्थान चौपासनी, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान आदि में ऐसे अनेक ग्रंथ हैं जिनमें राजस्थान के इतिहास की अज्ञात अथवा अल्पज्ञात घटनाओं का उल्लेख मिलता है । इसी श्रेणी की एक लघु ऐतिहासिक काव्य-कृति 'ऊदावत रूपसिंह री झमाल' इन्हीं दिनों मेरे देखने में आई है, जिनके रचनाकार जोधपुर के प्रसिद्ध ख्यातकार कविराजा बांकीदास हैं ।

प्रस्तुत ऐतिहासिक काव्यकृति डिंगल के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय छंद 'झमाल' में आद्योपांत रचित होने के कारण इसका शीर्षक झमाल संज्ञक रखा गया है । 'झमाल' राजस्थानी छंदशास्त्र का एक बहुत ही प्रसिद्ध छंद माना जाता है , जो दोहा एवं चंद्रायणा छन्दों के योग से बनता है । डिंगल के प्रसिद्ध रीतिग्रन्थ रघुनाथ रूपक (मंछाराम सेवग कृत) में झमाल का रचना विधान इस प्रकार दर्शाया गया है ---

दूहै पर चन्द्रायणौ, धरै उजालौ धार ।
गीतां रूप झमाल गुण, बरणै मंछ विचार ॥

अर्थात् पहले एक दोहा और उसके पश्चात् चन्द्रायणा छंद दोहे का चौथा चरण पुनः उलटाया जाकर चन्द्रायणा का प्रथम चरण बनता है । चन्द्रायणा के प्रत्येक चरण में २१ मात्राएं तथा ११,१० पर यति होती है । जैसा कि झमाल की उपर्युक्त परिभाषा में 'गीतारूप झमाल' कह कर इस छंद की श्रेष्ठता व्यक्त की गई है । यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि, राजस्थान के लघु वीर काव्यों में किसी एक ऐतिहासिक घटना से सम्बन्धित प्रशस्तिपरक काव्य की अधिकांश रचनाएं 'झमाल'

शीर्षक से ही मिलती हैं, यथा - पोकरण देवीसिंघजी री झमाल, जोरजी चांपावत री झमाल, बुलिदानजी भाटी री झमाल, राव इन्द्रसिंह री झमाल, प्रतापसिंघ भाटी री झमाल इत्यादि ।

प्रस्तुत आलोच्य काव्य 'ऊदावत रूपसिंघ री झमाल' ठिकाना रायपुर (जिला पाली) के ठाकुर रूपसिंह ऊदावत के शौर्य एवं कुशल प्रशासन की प्रशास्ति में रचित है । जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी (१८६०-१९०० वि.) के समय में पिंडारी अमीरखां जो टोंक का नवाब था और राजस्थान की ख्यातों में मीरखां पठान के नाम से प्रसिद्ध है, उसके द्वारा रायपुर ठिकाने पर भीषण आक्रमण किया गया था । उसी का विस्तृत वर्णन इस झमाल में किया गया है ।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि मीरखां पठान अपने जमाने का एक दुर्दान्त एवं लुटेरे किस्म का व्यक्ति था, जो पैसे के लोभ में किसी के भी पक्ष या प्रतिपक्ष में ससैन्य जा मिलता था । इस व्यक्ति ने ही मित्रता का नाटक कर ठा. सवाईसिंह पोकरण को (सं. १८६५ चैत्र शुक्ला द्वितीया के दिन) धोखे से मूंडवा गांव में मार डाला था । इतना ही नहीं पोकरण ठा. सवाई सिंह के साथ कई अन्य सरदारों - ठाकुर ज्ञानसिंह (पाली) , ठा. केशरीसिंह (बगड़ी) , ठा. बक्षीराम जी (चंडावल) आदि को भी तंबू की डोरियाँ काटकर तोपों के गोले दागकर मरवा डाला था और उनके सिर काटकर ऊँट के बोरे में डालकर जोधपुर नरेश मानसिंह के पास भिजवा दिये थे ।

उसी मीरखां ने मारवाड़ में अपना आतंक फैलाकर विविध ठिकानों से बड़ी रकम प्राप्त करने के उद्देश्य से संवत् १८७३ में अनेक जगह आक्रमण किये थे । उसी श्रृंखला में रायपुर के दुर्ग पर तोपों से ससैन्य हमला किया था । ख्यातों के आधार पर हमला सं. १८७३ मार्गशीर्ष कृष्णा १३ (त्रयोदशी) के दिन किया गया था । स्थापत्य कला की दृष्टि से रायपुर का कोट इतना सुदृढ़ था कि शत्रु सेना के हमले से उसका कुछ भी न बिगड़ सका । साथ ही रायपुर के ठाकुर रूपसिंह जी के वीर सैनिकों ने कुशल मोर्चाबन्दी करके ऐसा अद्भुत शौर्य दिखाया कि मीरखां की सेना वहां से खिसक गई । ऐतिहासिक दृष्टि से यह युद्ध इसलिए विशेष महत्त्व रखता है कि मीरखां जैसा आतंककारी व्यक्ति जिसे जोधपुर, जयपुर, उदयपुर आदि राज्यों के नरेश भी विवश होकर लाखों रुपये देकर अपना पिंड छुड़ाते थे, वही व्यक्ति एक ठिकाने रायपुर के साथ युद्ध में हार का मुँह देखकर चलता बना ।

इस झमाल के रचयिता कविराजा बाकीदास हैं, जो बचपन में रायपुर की हवेली, जोधपुर में रहकर विविध विद्वानों के पास पढ़े थे । बांकीदास जी के व्यक्तित्व निर्माण में रायपुर के विद्यानुरागी ठाकुर अर्जुनसिंह जी का बहुत बड़ा योगदान रहा है । कवि ने उस उदारमना काव्य प्रेमी ठाकुर अर्जुनसिंह का उल्लेख दोहों - सोरठों में किया है , यथा —

माळी ग्रीखम माहि, पोख सुजळ द्रुम पाळियौ ।
जिणरौ जस किम जाहि, अत घण वूंठा ही अजा ॥
रवि रथ चक्र गणेश रद, नास अलंकृत नार ।
यूं हिज इक़ इळ पर अजौ, दियै सूरदातार ॥

उपर्युक्त दोहे में कहा गया है कि सूर्य के रथ का चक्र, गणेश का रदन और नारी के आभूषण एक ही होते हैं, उसी प्रकार ठा. अर्जुनसिंह जी भी अपने समय में वीरता एवं उदारता के क्षेत्र में एक मात्र श्रेष्ठ उदाहरण था । उन्हीं अर्जुनसिंह जी के स्वर्गवासी होने पर संवत् १८७० में उनके पीछे सलूंबर के ठाकुर गुलाब सिंह की पुत्री चूंडावत ठकुरानी सती हुई थी, जिनकी स्मृति में कविराजा बांकीदास जी ने एक गीत सांणोर रचा था । चार दुहालों के उस गीत की अंतिम पक्तियां इस प्रकार हैं —

सती उजवाळिया रायपुर सळूंबर,
पास जांमण मरण तणी पाली ।
हाथ दीधौ भलां कमध रा हाथ में,
हाथ नाळैर ले साथ हाली ॥

इन्हीं ठाकुर अर्जुन सिंह जी के निस्संतान देहावसान पर ऊदावत राठौड़ रूपसिंह रायपुर की गद्दी पर बैठा । इसी रूपसिंह के समय में महाराजा मानसिंह (जोधपुर) के रुष्ट होने पर टोंक के नवाब अमीरखां ने रायपुर पर चढ़ाई कर उसे घेर लिया था । ठाकुर रूपसिंह ने कई दिनों तक रायपुर की रक्षा की और अमीरखां का दुर्ग पर अधिकार नहीं होने दिया । कवि ने उक्त घटना का वर्णन २१ झमाल छन्दों में किया है । घेरे के समय का वर्णन देखिये —

रायांठौ डेरा किया, जवन करेवा जंग ।
तै मूंछा वळ दीध तद, रुपा तोनूं रंग ॥
रूपा तोनूं रंग, वळा रा राजिया ।
विळ कुळियों जुध काज, नगारा वाजिया ॥
तोपां भुरजां फाब, सिपाहत तक्ख रौ ।
फाटक न दिया फैल, देखि पर फौज रौ ॥

इसी प्रकार तोपों के धमाके और पृथ्वी के कंपायमान होने का उल्लेख भी द्रष्टव्य है —

धरा थरर तोपां धरर, भुरजां सोर भळक्क ।
विचि जळ भरिया बादळा, वीजां जांणि वळक्क ॥

कवि ने रायपुर ठिकाने की सुरक्षात्मक व्यवस्था तथा इस उदावत वीर के शौर्य का बहुत रोचक वर्णन किया है । उसके शब्दों में —

अहि मुख कुण दै आंगळी, रीसाड़ै कुण रुद्र ।
ऊपाड़ै कुण अनड़ नूं, नर कुण तिरै समुद्र ।

रायपुर के दुर्ग के चारों और गहरी खाई में जल भरा था जिसमें मगरमच्छ तैरते थे । ऊपर बुर्जों में वीर सैनिक तीर लिये बैठे निगरानी करते थे । इसीलिए कवि ने कहा है —

सुधराई खाई सुजळ, मगर हिलोळा लेह ।
त्यार भुरजां तीरकस, जाणि बणाया वेह ।

इस घेरे और युद्ध के बाद अन्त में आतंककारी अमीरखां की फौज को हार खाकर रायपुर से जाना पड़ा और रायपुर के ठाकुर रूपसिंह की विजय हुई थी । यह विजय इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है कि विशालसेना वाले प्रतिपक्षी के साथ युद्ध में स्वल्प साधनों वाले किसी अधिपति की जीत बहुत कठिन होती है । जिस प्रकार बीकानेर के राव जैतसी द्वारा कामरांन की विशाल सेना को हराकर सं. १५९१ में मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्थी शनिवार को विजय प्राप्त होने पर कवि सूजा वीठू ने 'छन्द राउ जइतसी रउ' जैसे गौरवशाली ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की थी, उसी प्रकार कविराजा बांकीदास ने रायपुर के ठाकुर ऊदावत रूपसिंह द्वारा टोंक के नवाब अमीरखां की विशाल सेना पर सं. १८७१ में विजय प्राप्त करने पर 'झमाल ऊदावत रूपसिंघ री ' की रचना की थी । प्रसिद्ध इतिहासकार एवं महाकवि बांकीदास जी ने इस विजय का स्पष्ट उल्लेख इस प्रकार किया है —

खरची खाइ गमाइ पण, मुगल पठाण मराइ ।
मुँह काळौ करि मीरखां, घरां गयौ घबराइ ॥

समग्र रूप में यही कहना उचित होगा कि यह रचना ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

सोढा जाति का संक्षिप्त इतिहास

— *रतनलाल कामड़*

सोढ़ायण काव्य परिचय—

'सोढ़ायण', 'डिंगळ भाषा' का ऐतिहासिक वीर काव्य है, जिसे वंश भास्कर, सूरजप्रकाश, राजरूपक आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है । इन प्रबन्ध काव्यों का स्वरूप शास्त्र-सम्मत प्रबन्ध काव्यों से कुछ भिन्न अवश्य है ।[१] डिंगळ साहित्य का अपना निजी रीतिशास्त्र है, उसी प्रकार प्रबन्ध काव्यों का स्वरूप भी अपनी विशिष्ट विधाओं को धारण किये हुऐ हैं । राजस्थानी के प्रबन्ध काव्यों में अनेक राजाओं अथवा वीरों की गाथाएं होती हैं, फिर भी एक वीर प्रमुख होता है, जिसका चरित्र अपेक्षाकृत, अधिक विस्तार से चित्रित किया जाता है । प्रबन्ध काव्य, राजस्थान के चारण कवियों ने डिंगळ और पिंगळ दोनों भाषाओं में रचे हैं । डिंगळ भाषा में ऐसे ग्रंथों में प्रस्तुत ग्रंथ 'सोढ़ायण' भी आता है ।

प्रसिद्ध ग्रंथ 'सोढ़ायण' श्री चिमनजी कविया [२] रचित है । इस ग्रंथ का संपादन डा. शक्तिदान कविया ने किया है । 'सोढ़ायण' ग्रंथ का प्रकाशन, पद्मश्रीमुनिजिनविजय जी महाराज के पुण्य प्रताप से सुस्थापित राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान व राजस्थान पुरातन ग्रंथ माला के पुष्पमाला क्रमांक चौरसी (८४) का सुकमल है ।

प्रस्तुत शोध लेख में 'सोढ़ायण' में प्रस्तुत सोढ़ा जाति के इतिहास पर चर्चा की जा रही है ।

सोढ़ाण प्रदेश—

सोढ़ाण प्रदेश[३] में थार और पारकर दो जिले आते हैं। यही प्रदेश सोढ़ा-राजपूतों का प्रमुख केन्द्र है। इस प्रदेश के सोढ़ा प्रायः वीर एवं दानी होते आये हैं। यह विशिष्टता उस प्रान्त की ही रही कि जहां इतनी औदार्य की क्षात्र-परम्परा प्रतिष्ठित हुई थी। जिस समय, वर्तमान सोढ़ाण प्रदेश पर सोढ़ों का साम्राज्य था उस समय थार एवं पारकर का एक ही क्षेत्र था। पारकर शहर उमरकोट से ८०. कोस दूर है। शहर तो मैदान में बसा हुआ है, किन्तु पास में एक छोटी-सी पहाड़ी पर चांदन सोढ़े का बनवाया हुआ गढ़ है। उस गढ़ में अनेक सुन्दर इमारतें तथा एक बावड़ी है।

सोढ़ों की दूसरी शाखा उमरकोट[४] या घाट के सोढ़ों के नाम से प्रसिद्ध है। उमरकोट को हमीरकोट भी कहते हैं, जिसका अपभ्रंश रूप 'हमरोट' है। इसी हमरोट नाम को लेकर कविराजा श्री बांकीदासजी ने 'हमरोट-छत्तीसी' काव्य भी रचा है। उमरकोट क्षेत्र के मुख्य शहर मिट्टी, छाछरौ, नगर, दीपलौ, सामारौ, सांघड़, दिगरी, जेमसाबाद व मीरपुरखास आदि हैं। किसी युग में उमरकोट भारत के प्राचीन शहरों में से एक प्रसिद्ध नगर था। इसको उमर सूमरे ने बसाया था। आवड़देवी के समकालीन अर्थात् विक्रम की ९वीं शती में उस समय सिंध पर उमर सूमरे का राज्य था। उमर सूमरा के नाम को ख्यातों के लेखकों ने संस्कृत का जामा पहिनाकर 'हमीर' लिखा है।[५] इसलिए उमरकोट को हमीर कोट भी कहते थे, जिसका अपभ्रंश रूप 'हमरोट' है।

सोढ़ा जाति का संक्षिप्त इतिहास—

सोढ़ा क्षत्रिय शुरू से ही अत्यन्त उदार एवं पराक्रमी होते आये हैं, कुछ वीर तो मनमौजी, मस्त, सांस्कृतिक इतिहास पुरुष रहे हैं। जगप्रसिद्ध दानवीर विक्रमादित्य, भोज, जगदेव आदि क्षत्रिय परमार ही थे। किसी समय में भारत पर परमारों का ही सर्वाधिक बोलबाला था। इनकी प्रसिद्ध राजधानियां उज्जयिनी, आबू एवं धारा नगरी थीं, इस विषय का एक राजस्थानी सोरठा स्मरण दिलाता है—

प्रथवी बड़ा पंवार, प्रथवी परमारां तणी।
एक उजीणी, धार, बीजौ आबू बैसणौ॥

इन्हीं परमारों की एक शाखा सोढ़ नाम से प्रसिद्ध हुई जिस पर श्री चिमनजी ने 'सोढ़ायण' काव्य की रचना की है।

प्राचीन काल में मारवाड़ की सीमा अत्यन्त विस्तृत थी। पूरा मारवाड़ मुख्य नौ कोटों में बंटा हुआ था और इन्ही नौ कोटों से मारवाड़ प्रान्त 'नौकोटी मारवाड़' कहलाता था। इन नौ कोटों में किराड (बाड़मेर के समीप), घाट (उमरकोट क्षेत्र), पारकर (उमरकोट से आगे का प्रदेश), पुगल (बीकानेर), मंडोर (जोधपुर), लुद्रवा (जैसलमेर), आबू (अर्बुद), जालोर (जाबालिपुर) और अजमेर थे। इस प्रकार मारवाड़ की सीमा में जोधपुर, जैसलमेर, सिरोही, बीकानेर, जालोर, बाड़मेर, अजमेर, उमरकोट तथा पारकर आदि क्षेत्र आ जाने से यह वर्तमान राजस्थान के लगभग आधे भू-भाग के बराबर वृहद् राज्य था। उक्त नौ कोटों की राजधानी परमारों के समय किराड तथा परिहारों के समय

में मंडोर अल्प अवधि के लिए अवश्यमेव रही है ।[६]

किराड (किरात कूट, किरात कूप) उस समय में स्थापत्य एवं मूर्तिकला का भव्य नगर था, वहां के खण्डहरों के अवशेष उसके ठोस प्रमाण हैं । इसी किराडू में सं. १२१८ वि. के एक शिलालेख से, जो परमार सोमेश्वर के समय का है, सिंधु राज परमार का मरुदेश का राजा होना सिद्ध होता है ।[७] उसी किराडू पर बहुत प्राचीन काल में राजा बाहड़राव परमार ने राज्य किया था, जो इतिहास में धरणीशाह के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुआ । इस बाहड़राव के छाहड़राव नामक पुत्र था । बाहड़राव (जिसका प्राचीन नाम वाग्भट सुनने में आता है ।) के नाम से बाहड़मेर (वाग्भटमेरु) शहर बसा और उसके पुत्र छाहड़ के नाम से छाहड़र (छाहड़सर) नामक गांव बसा, जो आज भी बाड़मेर क्षेत्र में चौहटन के पास स्थित है । इस छाहड़राव के दो पुत्र हुए, सोढ़ा और सांखला । सांखला के लिए मुंहता नैणसी की ख्यात मैं 'बाघ परमार' अथवा सांखली बाघ नाम भी आते हैं । सोढ़ा शब्द संस्कृत के 'सोढ़'से हुआ है जिसका तात्पर्य वीर, सहिष्णु, समर्थ वाचक अर्थ है । दूसरे भाई बाघ (व्याघ्र) का नाम भी नाहर-स्वरूप शौर्य वाचक है । सं. १३८१ वि. के एक संस्कृत शिलालेख में सांखलों के लिए 'शंखकुल' शब्द मिलता है । सांखला महीपाल का पुत्र रायसी बीकानेर राज्य के जांगलू प्रदेश में विक्रम की १२वीं के आसपास वहां जाकर रहने लगा ।[८] इससे बाघ सांखले का समय और भी अधिक प्राचीन सिद्ध हो जाता है । मुंहता नैणसी की ख्यात के अनुसार बैरसी बाघावत का पुत्र राणा राजपाळ हुआ और राजपाळ के तीन पुत्र— छोहिल, महिपाल और तेजपाल थे । इसी महिपाल का पुत्र रायसी था ।[९] जिसका उपर्युक्त वर्णन श्री ओझाजी ने किया है । उपर्युक्त संवत् के आधार पर रायसी से छह पीढ़ी पूर्व बाहड़राव (धरणीशाह) का समय ठहरता है । उक्त बाहड़राव के पुत्र छाहड़ ने अपनी राजधानी कोहिलापुर (किराडू के पास ही) बसाई । कोहिला नामक एक पर्वत[१०] पर आदि शक्ति हिंगुलाज का स्थान है और इसी कारण यह आदिशक्ति कोहिलाराय[११] कहलाई । इस कोहिलापुर पर करीब ५० वर्ष राज्य करने के बाद, छाहड़राव का देहावसान हो गया ।[१२]

छाहड़राव के देहान्त होने पर सोढ़ा और सांखला के विषय में मुंहता नैणसी की ख्यात में (पृ. ३३८-३९) इस प्रकार वर्णन किया है— छाहड़राव के समय में उससे यह धरती छूट गई। राज्य छिन जाने के बाद से वह रामधणपुर के पास झाझना नामक गांव में जाकर रहने लगा । वहां से उसका बड़ा पुत्र सोढ़ा तो सिंध में सूमरों के पास चला गया । वहां सूमरों ने उसे 'रातोकोट' दिया । छोटा पुत्र बाघ (सांखला) मारवाड़ में पडिहारों (प्रतिहारों) के पास आया और बाघोरिया गांव में अपनी बुआ सुन्दर (पड़िहार मैचन्द की पत्नी भी) के पास रहने लगा । कुछ दिनों के बाद लोगों ने मैचन्द (मयचन्द) पड़िहार को भड़काया कि ये परमार संगठित होकर तुम्हारी भूमि पर कब्जा कर लेंगे, इनके षड्यन्त्रों से ऐसा प्रतीत होता है । यह सलाह उसने (मैचन्द) मानकर अपनी फौज बाघ सांखले पर आक्रमण हेतु भेजी । उस युद्ध में बाघ सांखला मारा गया । उन दिनों बाघ की पत्नी जो गर्भवती थी, जिसे भेजकर मुंहता सुगणा अजमेर पहुंचा । वहां पर वैरसी बाघावत का जन्म हुआ ।

जब वैरसी बड़ा हुआ तो मुंहता सुगणा उसे अजमेर स्वामी के समक्ष लेकर पहुंचा। कई दिनों तक वैरसा ने अजमेर के स्वामी भी सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर एक दिन अजमेर पति ने

उसे मनोवांछित पुरस्कार मांगने को कहा। वैरसी ने कहा— "महाराज ! मैचन्द पड़िहार ने मेरे पिता को निरपराध मार दिया है, अतः मैं उससे बदला लेना चाहता हूं, सो फौज देकर मेरी मदद कीजिए।" उसकी यह विनति स्वीकार हो गई, तब उसने अपनी आराध्य शक्ति जगदम्बा श्री सचियाय माता का ध्यान किया और कहा कि यदि वह अपने पितृहन्ता को मारने में सफल हो गया तो ओसियां जाकर देवी के सम्मुख कमळ पूजा (मस्तक भेंट) करेगा। रात्रि के समय स्वप्न में दर्शन देकर देवी ने कहा— "काले रंग का वागा (वस्त्र विशेष) एवं टोपी पहने हुए व रथ के बैलों पर काली झूळ डाले जो व्यक्ति सामने आये, उसे मार देना, वही मैचन्द पड़िहार होगा।" स्वप्न में प्राप्त आज्ञा को ध्यान में रखकर दूसरे दिन तड़के ही अपने लश्कर सहित वैरसी आगे बढ़ा। मारवाड़ के मूंदियाड़ गांव के पास मैचन्द उसी काले वेश में दिखाई पड़ा और वैरसी शेर की भांति उस पर टूट पड़ा। दोनों ओर से घमासान युद्ध होने पर मैचन्द मारा गया।

अपना मनोरथ पूर्ण हुआ देखकर वैरसी वाघावत देवी की यात्रा करने ओसियां पहुंच कर ज्योंहि अपना सिर काटना चाहा तो देवी ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया। सचियाय माता ने कहा—मैं तेरी सेवा-पूजा से प्रसन्न हुई, तुम्हें सिर बख्शीश करती हूं। अपने सिर की जगह सोने का मस्तक बनाकर चढ़ा देना। इतना कहते हुए देवी ने अपने हाथ का शंख वैरसी को दे दिया और कहा कि यह शंख बजाओ और सांखला कहाओ।"[१३] इस प्रकार (वह) देवी का आशीर्वाद प्राप्त कर वैरसी मारवाड़ के रुणवाय नामक गांव में आया और वहां पर रुणकोट बनवाया। इस तथ्य का संकेत प्रसिद्ध इतिहासकार डा. गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा ने इन पंक्तियों में किया है— "सांखलों को वि.सं. १३८१ के लिखे एक संस्कृत शिलालेख में 'शंखकुल' शब्द लिखा है। उनकी एक शाखा रूण (जोधपुर राज्य) में निवास था, जिससे वे रुण के सांखले[१४] भी कहलाने लगे।"

बाघ (सांखला) परमार का अग्रज सोढ़ा अपने सिपाहियों के साथ सिंध-प्रदेश की ओर बढ़ा और छह दिन के बाद सातवीं रात्रि को सहसा रताकोट पर धावा बोल दिया। रताकोट का स्वामी 'रता' उस मुठभेड़ में मारा गया तथा वीर सोढ़ा का झंडा वहां पर फहराने लगा।[१५] रताकोट, उमरकोट से चौदह कोस तथा खिपरे के गोठ से ६ कोस उत्तर की ओर था। इस प्रकार सिंध में सोढ़ा का अधिकार हुआ और कैलाश के दुर्ग पर उसने अपनी राजधानी बनाई तथा निरन्तर राज्य-विस्तार करता रहा। सिंध-प्रदेश में सोढों का राज्य अनुमानतः विक्रम की १२वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। क्षत्रियों के गोत्र अथवा शाखाएं प्रसिद्ध वीरों के नाम से चली हैं। इस प्रथा के अनुसार 'वीर सोढ़ा' के वंशज भी सोढ़ा कहलाये। सोढ़ों का मुख्य क्षेत्र वर्तमान पश्चिमी पाकिस्तान में उमरकोट तथा थार पारकर के इलाके हैं, जो 'सोढ़ांण' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

वरिष्ठ शोध सहायक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

संदर्भ सूची

(1) (अ) कविया चिमनजी रचित 'सोढ़ायण' राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (सम्पादक डा. शक्तिदान कविया), १९६६ ई.

(2) श्री चिमनजी कविया का जन्म १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में जोधपुर जिले के शेरगढ़ तहसील के बिराई गांव में हुआ। ये कविया गोत्र के चारण कुल के थे।इनके पिता का नाम श्री लुद्रदान व पितामह का श्री करनीदान था। संवत् १८९० वि. में श्री चिमनजी का जन्म हुआ था।

(3) द्रष्टव्य : सोढ़ायण काव्य, भूमिका पृ. २४ से २७ तक।

(4) द्रष्टव्य : वही, पृ.सं. २६

(5) श्री किशोरसिंह चारण अंक, ७-८, पृ. १८९।

(6) किराड पर धरणीशाह परमार का अधिकार था, तब नौ कोट उसके अधिकार में रहे थे, ऐसा एक प्राचीन छप्पय से ज्ञात होता है।

(7) श्री विश्वेशरनाथ रेउ, मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग पृ १०

(8) डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताने का इतिहास- बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम पृ. ७२।

(9) 'मुंहता नैणसी री ख्यात' प्रथम भाग, पृ. ३४४।

(10) इस पर्वत के नाम पर प्राचीन जैन ग्रंथों में गीत की तर्ज जानने के लिए प्रसिद्ध लोकगीत की एक पंक्ति उपलब्ध भी होती है—
"कोहिलो परबत घूंघलो रे लोय।"

(11) 'कोहला पर्वत' कन्दरा की निवासी निखिलेश्वरी, श्रीशंकरदान जेठी भाई देथा 'देवियाण' श्री हिंगलाल देवी नी स्तुति पृ. ७४।

(12) पड़ियौ जद चाहड़राव प्रथी। 'सोढ़ायण' पृष्ठ सं. ३

(13) मुंहता नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ. ३३९

(14) डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताने का इतिहास - बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, पृ. ७२।

(15) सोढ़ायण पृष्ठ सं. ४।

सुजान चरित्र

डा. ओंकार नारायण सिंह

सुजान चरित्र माथुर ब्राह्मण सूदन विरचित भरतपुर राज्य के संस्थापक सूरजमल, जिसका अपर नाम सुजानसिंह[१] भी था, का प्रशस्ति काव्य है। ग्रंथ की विषयवस्तु पूर्णतया ऐतिहासिक घटनाक्रम (१७४५ ई. से १७५४ ई. तक) पर आधारित होने पर भी वर्णन के स्वरूप प्रकृति से पौराणिक परिप्रेक्ष्य युक्त प्रतीत होती है। इसके अन्तर्गत आठ जंगों का वर्णन अनेक अंकों में सम्पन्न हुआ है।

काव्य का समारम्भ मंगलाचरण के अनन्तर कवि के वंश परिचय[२] तथा राजवंश की वंशावली से होता है जिसके अनुसार राजवंश का संबंध श्रीकृष्ण (यदुकुल) से संबद्ध करते हुए भूरेसिंह से आरंभ किया गया है।[३] भूरेसिंह के वंश में क्रमशः रौरिया सिंह, पचेसिंह, सचेसिंह, मदू सिंह, पृथ्वीराज, मकनसिंह, खानचंद, ब्रजराज, भावसिंह का नामोल्लेख हुआ है। भावसिंह के दो पुत्र बदनसिंह[४] एवं रूपसिंह[५] निर्दिष्ट किये गये हैं। बदनसिंह के पुत्रों में सूरजमल और प्रतापसिंह सहोदर थे। इसी प्रकार जोधसिंह, देवीसिंह, उम्मेदसिंह, भवानीसिंह, लालसिंह, उदयसिंह भी सहोदर थे। अन्य अखैसिंह, सुल्तानसिंह सभाराम, बलसिंह, गुमानसिंह, दलेलसिंह, वीरनारायण, रामकृष्णसिंह, बलरामसिंह, खुशालसिंह, छत्रसाल इत्यादि अपनी माताओं के इकलौते पुत्र बताए गये हैं।[६] सूरजमल के अनुज प्रतापसिंह का शौर्य निजाम उल मुल्क के संग भूपालगढ़ के युद्ध में पेशवा बाजीराव प्रथम से विजय द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।[७] इसके पुत्र बहादुर सिंह को राजनीति का ओक(आश्रय स्थल) कहा गया है।[८] राजनीति में दक्ष होने के साथ ही उसे समर-कुशल भी निर्दिष्ट किया गया है।[९] सूरजमल के पांच पुत्र क्रमशः जवाहरसिंह, नाहरसिंह, रतनसिंह, नवलसिंह तथा हरीसिंह (रणजीत सिंह) बताए गये हैं।[१०]

ग्रंथ में वर्णित आठ जंगों के माध्यम से न केवल सूरजमल का प्रशस्ति गान ही किया गया है अपितु उसके राज्य-विस्तार का क्रम भी निर्दिष्ट हुआ है। इसके अन्तर्गत सूरजमल द्वारा सर्वप्रथम मेवात विजय तदनन्तर मांडोगढ़ जीतने एवं गृह युद्ध में जयपुर के कछवाहा शासक ईश्वरीसिंह

की सहायता का उल्लेख प्राप्त होता है ।[११]

प्रथम जंग के अन्तर्गत अगहन १८०२ वि. (नवंबर १७४५ ई.) में मुगल बादशाह मुहम्मद शाह के शासन में कोइल (अलीगढ़) के नवाब साबित खां के उत्तराधिकारी फतेहअली द्वारा सूरजमल के पास बेदखल करने आ रहे शाही अफगान सरदार असद खान के विरुद्ध दूत भेजकर सहायता मांगने का उल्लेख है । तब नौंह झील के निकट शिकार हेतु पड़ाव डाले सूरजमल ने ईखू में फतेह अली से भेंट की ।[१२] तत्पश्चात् फतेहअली के संधि प्रयास असद खान के पास दूत भेजने के बावजूद विफल हो जाने पर[१३] असद खान व राव बहादुर सिंह बड़गूजर की क्रमशः आठ हजार तथा एक हजार की सम्मिलित सेना के विरुद्ध सूरमजमल के पांच हजार[१४] एवं फतेहअली के दो हजार सैनिकों द्वारा लड़े गए युद्ध में असद खान वीर गति को प्राप्त हुआ ।[१५]

द्वितीय जंग के अनुसार श्रावण १८०४ वि. (जुलाई १७४८ ई.) में जयपुर नरेश ईश्वरीसिंह ने अपने अनुज माधोसिंह द्वारा मल्हार राव होल्कर की सहायता से गद्दी पर अधिकार करने के प्रयास के विरुद्ध बदनसिंह के पास पत्र प्रेषित कर सहायता चाही ।[१६] सूरजमल ने पिता के आदेशानुसार दस हजार अश्वारोही, दो हजार पदाति एवं दो हजार बर्छेबाज सेना सहित कुम्हेर से कूच किया ।[१७] ईश्वरी सिंह से भेंट[१८] के उपरान्त मराठों के विरुद्ध मोती डूंगरी के युद्ध में बढ़त प्राप्त करने[१९] के बाद बगरूके निर्णायक संग्राम में सूरजमल ने ईश्वरीसिंह को यशस्वी सफलता दिलाई ।[२०] संधि के अनुसार माधोसिंह को दो परगने प्रदान किये गये तथा सूरज मल का विशेष सम्मान किया गया ।[२१]

तृतीय जंग के अन्तर्गत पौष१८०५ वि. (नवंबर १७४९ ई.) में मुगल बादशाह अहमदशाह के मीर बख्शी सलावत खां ने रुस्तम खां, हकीम खां, अली कुली, फतेह अली आदि के साथ पंद्रह हजार अश्वारोहियों तथा तोपखाने सहित जाटों के विरुद्ध प्रयाण किया ।[२२] सूरजमल द्वारा भेजे गये जाट वकील मोहनसिंह के शांति- प्रस्ताव[२३] को सलावत खां के ठुकरा दिये जाने और असद खान के वध का अपराधी बताए जाने[२४] पर संघर्ष अनिवार्य हो जाने से सूरज मल ने छह हजार अश्वारोहियों के साथ कूच किया ।[२५] तुमुल समर के अन्तर्गत अली कुली एवं फतेह अली भाग गए[२६] तथा हकीम खां और रुस्तम खां ने वीरगति पाई ।[२७] मुगल सेना में भगदड़, भय एवं आतंक व्याप्त हो जाने पर सलावत खां को विवशतः सूरजमल के पास वकील भेजना पड़ा ।[२८] सूरजमल की इच्छानुसार जवाहरसिंह को मीर बख्शी की सेना में हरावल दस्ता प्रदान किया गया ।[२९]

चतुर्थ जंग के अनुसार भाद्रपद १८०६ वि. (अगस्त-सितम्बर १७५० ई.) में वजीर सफदर जंग के दस हजार अश्वारोही, बारह हजार पदाति, तीन सौ हाथी तथा तोपखाने के साथ फर्रुखाबाद जाने के दौरान अहमद खान बंगश द्वारा नायब नवलराय के वध का समाचार मिलने पर वजीर ने जाट वकील दयानाथ को बंगश के विरुद्ध सूरजमल की सहायता प्राप्त करने हेतु भेजा ।[३०] सूरजमल ने पिता से मंत्रणा के पश्चात् पंद्रह हजार सवारों के साथ कोइल में पड़ाव किए वजीर[३१] की ओर प्रस्थान किया ।[३२] वजीर से भेंट होने पर[३३] खिलअत[३४] प्राप्त करने के बाद दोनों की सम्मिलित सेनाएँ बंगश की दस हजार सवारों वाली रुहेला सेना के[३५] सामने जा डटीं । बंगश द्वारा सूरजमल

के पास नकीब भेजकर "जमींदार से जमींदार के युद्ध" के औचित्य को प्रमाणीकृत न करने के आग्रह[३६] को सूरजमल द्वारा अस्वीकार कर दिये जाने पर[३७] युद्ध आरंभ हो गया ।[३८] युद्ध में सेनापति रुस्तम खां आफरीदी के वीरगति पा जाने पर[३९] भी बंगश ने उसके मारे जाने को छुपाए रखकर दस हजार रुहेलों के साथ प्रत्याक्रमण प्रबलता से किया ।[४०] इधर वजीर के पलायन[४१] के बावजूद सूरजमल रण क्षेत्र में डटा रहा और पठानों से अपराजित रहकर ही लौटा ।[४२] वजीर ने मल्हार राव होल्कर को पचास हजार सवारों सहित बुलाया सूरजमल को भी पुनः आमंत्रित किया गया ।[४३] युद्धोपरान्त प्राप्त भूमि को वजीर मल्हार राव तथा सूरजमल द्वारा बराबर ($^{१}/_{३}$)बांट लिया गया ।[४४]

पंचम जंग के अन्तर्गत माघ १८०९ वि. (जनवरी १७५३ ई.) ई. में सूरजमल द्वारा घासहरा (घासेड़ा) के राव बहादुर सिंह बड़गूजर के विरुद्ध घेरे का वर्णन है । वजीर सफदरजंग ने राव द्वारा बंगश का साथ दिये जाने के कारण सूरजमल को मार्च १७५२ ई. में दिल्ली बुलाकर बादशाह द्वारा उसे राव के विरुद्ध नियुक्त कराया ।[४५] गढ़ की दुर्गमता के कारण[४६] सूरजमल ने जवाहरसिंह को बुलाकर घेरा डाल दिया ।[४७] प्रथम मुठभेड़ में घायल हो जाने पर साथियों को गंवाकर राव किले में वापस लौट गया ।[४८] कड़ी घेराबंदी से विवश होकर राव ने अपने भाई जालिम सिंह को संधि-वार्ता हेतु प्रस्थित किया[४९] सूरजमल की दस लाख रु. नकद एवं युद्ध प्रसाधनों सहित समर्पण की मांग राव द्वारा पूर्ण रूप से न माने जाने पर जालिमसिंह ने आत्महत्या कर ली ।[५०] सूरजमल के वकील अमरसिंह के समझाने पर[५१] राव ने अपने माल-असबाब को दिल्ली पहुंचाकर उसके रहन के बदले हुंडी से मराठा वकील बाबूराय के माध्यम से दस लाख रु. अदा करने का कपट-स्वांग रचा, इससे वाकिफ सूरजमल ने घासेड़ा दुर्ग का घेरा जारी रखा ।[५२]

षष्ठ जंग के अनुसार वैशाख कृष्ण ६ वि. १८१० (२३ अप्रैल, १७५३) को जाट सेना ने दुर्ग प्राचीर तोड़कर नगर में प्रवेश कर लिया ।[५३] राव की दो पत्नियों ने जौहर किया, हताश राव ने पुत्री तथा अन्य नारियों का वध कर[५४] समरांगण में एक सौ सैनिकों के साथ प्राणोत्सर्ग किया ।[५५]

सप्तम जंग के अन्तर्गत मुगल दरबार के ईरानी तूरानी द्वंद्व के क्रम में वजीर सफदर जंग एवं बख्शी इन्तिजामुद्दौला के मध्य संघर्ष का वर्णन है । बादशाह अहमदशाह को बख्शी द्वारा वजीर के विरुद्ध भड़काए जाने पर शाह द्वारा वजीर को अवध जाने हेतु विदा कर दिया गया ।[५६] वजीर द्वारा बुलवाए जाने पर सूरजमल ने घासेड़ा युद्ध के तुरंत बाद प्रस्थान कर पंद्रह हजार सवारों के साथ फरीदाबाद में डेरा डाला ।[५७] सूरजमल ने पदच्युत मीरबख्शी सलावत खां के साथ वजीर से मर्मान्तिक बातें करते हुए प्राणपण से युद्ध कर अयोग्य बादशाह के स्थान पर किसी योग्य शहजादे के अभिषेक की सलाह दी ।[५८] वजीर से कामबख्श के पौत्र को अकबर अदल के नाम से बादशाह घोषित कर[५९] उसके नेतृत्व में दिल्ली को घेर लिया ।[६०] वजीर से आदेश मिल जाने पर जाट सेनाओं ने दिल्ली को बुरी तरह लूटा एवं आगजनी भी की ।[६१] बादशाह ने इसी दौरान व्याकुल होकर इंतिजामुद्दौला को वजीर तथा इमाद-उल- मुल्क को बख्शी बना दिया ।[६२] तूरानी ने वजीर रुहेलों की सहायता प्राप्त कर संघर्ष जारी रखा ।[६३] युद्ध में जाट सेना के राजेन्द्र गिरि गोसाईं[६४] और गोकुल राम गौड़[६५] के वीर गति पाने पर सूरजमल ने तिलपत में पड़ाव किया ।[६६] इधर जवाहरसिंह का

कोइल पर अधिकार हो गया, जहां से गंगा स्नान कर वृंदावन होते वह भी गृह युद्ध में सम्मिलित हो गया। युद्ध में मोहकम सिंह के शहीद हो जाने पर भी बल्लू चौधरी ने वीरतापूर्वक इमाद की प्रगति को रोका।[६७] तूरानी ने पत्र भेजकर मल्हार, जयप्पा सिंधिया तथा माधोसिंह कछवाहा की सहायता चाही[६८] माधोसिंह दस हजार सेना सहित आया, उसके प्रयासों से दोनों पक्षों में संधि हो गई।[६९] जिसके अनुसार सफदर जंग ने अवध को प्रस्थान किया। सूरजमल ब्रज को लौटा एवं जवाहरसिंह ने होडल में मुकाम किया।[७०] माधोसिंह ने बदनसिंह से भेंट हेतु डीग प्रस्थान किया।[७१] वहां से सूरजमल के आमंत्रण पर वह भरतपुर भी गया और मराठों से सतर्क रहने का निर्देश देकर जयपुर लौट गया।७२

अष्टम जंग के अन्तर्गत अगहन १८१० वि. (नवंबर-दिसम्बर १७५३ ई.) में इमाद तथा मल्हार की युक्ति के कारण इमाद के प्रधान सलाहकार एवं सेनापति अकीबत महमूद के बख्शी सैनिकों द्वारा वल्लभगढ़ के चौधरी बलराम (बल्लू) की वार्ता के बहाने गढ़ से बाहर बुलाकर धोखे से हत्या करके गढ़ पर अधिकार कर लिया गया।[७३] बल्लू चौधरी के परिजन और सैनिक भागकर बरसाना पहुंच गये।[७४] सूरजमल ने उपर्युक्त समाचार प्राप्त होने पर डीग में जवाहरसिंह के पास संदेश भेजा। जवाहरसिंह ने बदनसिंह से आवश्यक निर्देश प्राप्त कर बरसाना को ससैन्य कूच कर दिया।[७५] सूरजमल ने ठंडे दिमाग से संभावित समर की तैयारी शुरु कर दी।[७६] दूसरी ओर मल्हारराव होल्कर साठ हजार सवारों के साथ जयपुर पहुंच गया,[७७] जहां उसे माधवसिंह से १२ लाख रुपये प्राप्त हुए।[७८] सूरजमल ने मराठा गतिविधियों का परिचय प्राप्त करने हेतु पंडित रूपराम कटारा को जयपुर भेजा, वहां उसकी रघुनाथराव, जयप्पा सिंधिया और मल्हार से भेंट हुई।७९ मल्हार द्वारा सूरजमल से दो करोड़ रुपये नकद की मांग करने पर रूपराम ने सूरजमल के यश प्रताप का वर्णन करते हुए अपने पास से चार लाख रुपये देने की बात कही।[८०] साथ ही भरतपुर दुर्ग की दुर्भेद्यता[८१] एवं भरतपुर राज्य की सुरक्षित स्थिति का वर्णन किया।८२ इधर मल्हार का पुत्र खांडूराव पिता के बुलाने पर दिल्ली से प्रस्थान कर मेवात को लूटते हुए चार हजार सवारों सहित विध्वंस करने लगा।[८३] जहां उसकी अक़ीब्त महमूद से होडल पर आक्रमण के संबंध में मंत्रणा हुई।[८४] सूरजमल दीर्घकालीन गूढ़ एवं व्यापक रणनीति के अन्तर्गत जवाहरसिंह को शांत करने का निर्देश देकर अपनी सुरक्षा व्यवस्था दृढ़ करने में लगा रहा।[८५] संभावित मराठा आक्रमण को दृष्टिगत रखते हुए बदनसिंह ने डीग में विशाल युद्ध परिषद की बैठक आयोजित की। जिसमें मराठों के विरुद्ध समस्त सामंतों तथा गणमान्य प्रजाजनों ने एक जुटता प्रदर्शित की।[८६] मोहन मोदी ने चार लाख सैनिकों की दो वर्ष तक रसद व्यवस्था का एवम् भज्जू चौधरी ने गोला बारूद तथा शस्त्रास्त्र आपूर्ति का वचन दिया।[८७] जवाहरसिंह ने अपने दादा की कमान में डीग दुर्ग की सुरक्षा व्यवस्था संभाली। जहां एक लाख कलमी बंदूकची तैनात थे।[८८] सूरजमल ने वैर गढ़ की सुरक्षार्थ अपने भतीजे बहादुर सिंह को निर्देश दिए और स्वयं डीग से भरतपुर जाकर कुम्हेर पहुंचा।[८९] वहां की सुरक्षा व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि नगर प्राचीर एवं बुर्जों पर रखी अनगिनत छोटी बड़ी तोपें परस्पर इस प्रकार सटीं थीं कि मध्य में तनिक भी स्थान रिक्त नहीं था।[९०] दूसरी ओर मल्हार राव होल्कर ने बादशाह के आमंत्रण तथा राव

बहादुरसिंह बड़गूजर के वध को अपने आगमन का कारण बताते हुए जाटों के विरुद्ध प्रयाण कर दिया।[९१]

रूपराम कटारा द्वारा भरतपुर राज्य और गढ़ की अपराजेयता का[९२] पौराणिक परिप्रेक्ष्य में वर्णन किये जाने के क्रम में श्रीकृष्ण की गोवर्धनधारण कथा[९३] एवं कालयवन-मुचुकुन्द की कथा के दौरान ही ग्रंथ का समापन हो जाता है।[९४] इस प्रकार अष्टम जंग का अपूर्ण विवरण ही उपलब्ध होता है।

जंगों के उपर्युक्त वर्णन से न केवल सूरज मल के शौर्य तथा राज्य-विस्तार का प्रत्युत नीति कुशलता, समर संचालन और समय के सदुपयोग की योग्यता का भी परिचय प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त युद्धों की पृष्ठभूमि, घटनाक्रम एवं परिणाम से संबद्ध ऐतिहासिक विषय वस्तु पर भी प्रामाणिक रूप से प्रकाश पड़ता है। जिसका यथार्थ तथ्यात्मक शोध की दृष्टि से अनुसंधित्सुओं हेतु विशिष्ट महत्त्व स्वयंसिद्ध है।

ग्रंथ के माध्यम से सूरजमल के व्यक्तित्व की इष्ट (हरिदेवजी) के प्रति श्रद्धा[९५], पितृभक्ति[९६], मित्रों का निश्छल समर्थन सहयोग[९७], वीरता तथा व्यवहार कुशलता[९८] आदि विशेषताएँ निर्दिष्ट होती हैं। साथ ही उसके पिता बदनसिंह की राजनीतिक योग्यता, जिसके बल पर उसने सवाई जयसिंह की अनुकम्पा प्राप्त कर[९९] अपनी स्थिति क्रमशः सुदृढ़ करते हुए कालान्तर में व्रजराज एवं महेन्द्र की उपाधियां अर्जित कर लीं।[१००]

रणनीति कौशल, जो डीग की सुरक्षा व्यवस्था से स्पष्ट होता है, विलास प्रियता, जो उसके पुत्रों की बड़ी संख्या से प्रकट है इत्यादि व्यक्तिगत विशेषताएँ भी प्रकाशित होती हैं।[१०१] अहमद शाह द्वारा जवाहर सिंह को नौबत प्रदान किये जाने का भी उल्लेख है।[१०२] सुजान चरित्र काव्य के माध्यम से मध्यकालीन भारतीय इतिहास विशेषतः मुगल इतिहास के वंश क्रम की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। इस संदर्भ में सप्तम जंग के अन्तर्गत महाभारत युगीन शांतनु से आरंभ कर जनमेजय तक इसी क्रम में पृथ्वीराज चौहान, शहाबुद्दीन, मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन खिलजी के नामोल्लेख हैं।[१०३] पृथ्वीराज का वर्णन पृथ्वीराज रासो के समान प्रायः है।[१०४] मुगल वंश का उल्लेख तैमूर के भारत पर आक्रमण से आरंभ होता है। तत्पश्चात् क्रमशः किरान शाह, सुल्तान मुहम्मद, उमरशेख, बाबर, हुमायूं, शेरशाह, सलीम शाह, अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब, बहादुरशाह मौजदी (जहांदार शाह) फर्रुखसियर, फील दर जाति (रफी उद दारा जात) शाहजहां द्वितीय, मुहम्मद शाह तथा अहमद शाह के नाम और अकबर से शासकों की शासनावधि का भी उल्लेख हुआ है।[१०५] हुमायूं की शेरशाह से हार के अतिरिक्त अकबर की विजयों का अतिशयोक्ति पूर्ण आलंकारिक विवरण भी प्राप्त होता है।[१०६]

उपर्युक्त ऐतिहासिक जानकारी के साथ ही तद्युगीन भरतपुर राज्य की प्रामाणिक भूराजनीतिक विवेचना भी ग्रंथ के अन्तर्गत संपन्न हुई है। इस क्रम में राज्य की सुरक्षित भौगोलिक स्थिति[१०७] नामकरण की पृष्ठभूमि,[१०८] दुर्ग की दुर्भेद्यता[१०९] आदि की विशद चर्चा समुपलब्ध होती है। समीपस्थ वैर नगर की बसावट[११०] तथा सुरक्षा प्रबंधों पर भी इससे प्रकाश पड़ता है।[१११]

सारांशतः सुजान चरित्र काव्य के अन्तर्गत भरतपुर राज्य के जाटों की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सैनिक व्यवस्था का व्यापक, बहुरंगी एवं प्रामाणिक चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त वहां की लोक सांस्कृतिक परंपरा एवं इतिहास संबंधी तथ्यों को भी यथार्थ रूप से निरूपित किया गया है। सूदन को सूरजमल का चारण मात्र कहना दुराग्रह[११२] ही प्रतीत होता है। उसका विवरण आलंकरिकता अथवा काव्यात्मक अतिशयोक्ति के अतिरिक्त अतिरंजित नहीं माना जा सकता। सूदन का स्वाभिमान, निर्भीकता एवं स्पष्ट कथन इसी तथ्य से स्पष्ट है कि उसने बदनसिंह के, सवाई जयसिंह से मिलकर अपने चाचा चूरामन के दमन हेतु किए गये प्रयासों जैसे कटुसत्य को भी व्यंग्योक्ति के माध्यम से प्रकट कर दिया है।[११३]

वरिष्ठ शोध सहायक
प्रभारी अधिकारी
राज. प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
भरतपुर

सन्दर्भ सूची

१. ता कों कुवांर सुजान सिंघ सु करै पर उर पीर। सुजान चरित्र (लिपिकाल १८८० वि. लिपिकर्ता धनीराम) ह.ग्र.६१५, राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर, पृ.३ छंद १३

२. वही— पृ.२ छंद ४ से पृ.३ छंद १०

३. जदुकुलन मै भयौ भूरे भूप। वही, पृ.३/१३

४. वही— पृष्ठ ३-४/१३ ताकों सुत भयौ रौरिया— बदनेस नाम नरेस। इतिहासकारों एवं जगाओं की पोथी के अनुसार पृथ्वीराज मदू का पुत्र न होकर मदू के पुत्र सिंधुराज का पुत्र था।

५. रूपसिंह तेरा चचा और अली सहादत खान। है सलूक दरपुस्त से दूना किया सुजान। वही— पृ. ४५/२८

६. वही, पृ.४/१३ से पृ.५/२६

७. संग निजावन मुलक कै गढ़ भूपाल मझार। जीत्यों बाजीराव सों सिंघ प्रताप कुंवार। वही पृ.४/१५

८. रह्यो वहादर सिंघ सुत राजनीति को ओक। वही पृ.४/१६

९. वही पृष्ट १६५/६१

१०. त्योंही सिंघसुजान के प्रथम जवाहर जानि। नाहर रतन उभैसुर नवल हरी मानि। वही पृ.५/२८

११. हुकम मानि बदनेस कौ सूरजमल्ल कुंवार। प्रथम मारि मेवात कौ बहुत कियौ अधिकार॥ पुनि मांडो गढ़ मालुवें जीत्यों सिंघ सुजान। कूरम की रक्षा करी निज कर गहि किरवान॥वही पृ.५/३१

१२. वही पृ.६/६-१३ पृ.८/१४ से ९/२१

१३. वही पृ.१०/१३ से १२/२९

१४. वही पृ.१३/२९-३२
१५. पृ.१७/९
१६. पृ.१९/४-६
१७. पृ.१९/७-१०,पृ.२१/१-३
१८. पृ.२१/३
१९. पृ.२२/८ से पृ.२४/२१
२०. पृ.२४/६ से २६/१०,मीसण सूर्यमल्ल-वंश भास्कर,पृ.३४९३-३५२५,जोधपुर
२१. पृ.२७/१२-१४
२२. पृ.२८/३
२३. पृ.२९/३
२४. पृ.२९/६-७
२५. पृ.३१/१०-१२
२६. पृ.३४/९
२७. पृ.३७/३,पृ.३८/७
२८. पृ.३९/१
२९. पृ.३९/५-८
३०. पृ.४०/५ से पृ.४१/१०,
३१. पृ.४१/१०,
३२. पृ.४१/१० से पृ.४२/२४,
३३. पृ.४३/५
३४. पृ.४४/१२,
३५. पृ.४९/१६,
३६. पृ.५१/३८-३९
३७. पृ.५२/४१,
३८. पृ.५४/१ से पृष्ठ ५८/१९
३९. पृ.६०/१०,कानूनगो के.आर हिस्ट्री ऑव दि जाट्स वो.प्रथम,पृ.८१,१९२५ ई.
४०. पृ.६७/१७ से पृ.६८/२६,
४१. पृ.६२/१०
४२. पृ.६८/२६ तारीख ए अहमदशाही (अनु.सरकार जदुनाथ) पृ.२६ ब.सीतामऊ संग्रह
४३. पृ.६८/२-४
४४. पृ.७१/१४ तीन भाग भुव करी एक मनसूरहि दीनी। एक दई मल्लार एक अपनी करिलीनी।
४५. पृ.७२/३-८,
४६. पृ.७६/३-४
४७. पृ.७६/१८,
४८. पृ.७६/४ से पृ ८६/१६
४९. पृ.८७/१७,

५०. पृ.८७/१८-२५
५१. पृ.८७/२७ से पृ.९०/४२
५२. पृ.८२/१ से पृ.९०/४७
५३. पृ.९१/१ से पृ.१०४/५२
५४. विलोकिय भौन पतिव्रत नारि। वधु दुहिता संग राजकुंवारि॥
किये उनि जौहरु वीर भुलाई। तिहूं तिय के दिय सीस उड़ाई॥पृ.१०२/४८
५५. पृ.१०३/५ से पृ.१०४/५२
५६. पातसाहि अहमद कै भौ वजीर मनसूर। पोता मुलक निजाम कौ भौ बकसी मगरूर॥१५॥
तूरानी बकसी भयौ ईरानी सुवजीर। नाचाखी दोऊन मैं दिल्लीपति के तीर॥१६।।
पृ.१०८/१५-१६ तथा पृ.११०/१७ छंद निसानी
५७. घास हरै कौ कुंवर भी फरचा करि आया। पृ.११०/१७
५८. पृ.१११/२२-२४
५९. फेरि आइ मनसूर नै कीनौ भेद उपाइ। पोता काम बकसी कौ लीनौ गुपत मगाइ॥१॥
ताहि तखत बैठारि धारि सिर छत्र जटित जर। चंवर मोरछलु टारि किर
सूरज सहार मनसूर नै थप्यौ अकबर अदल। पृ.११२/१-२
६०. अकबर अदल साहि करि आगै। सफदरजंग जंग अनुरागै॥ पृ.१०२/३
६१. पृ.११४/१० से पृ.१२४/४६
६२. अरजी बकसी की सुनत साहि अहमद साहि। पोता मुलक निजाम कौ कियौ वजीर सराहि।
सुनि अहमद साहि गाजदीषां की अरजी। तव ही उन दोऊन कौ सिरोपाव समसेर— पृ.११३/६-७
६३. पृ.१२७/५ से पृ.१३९/५३
६४. तव ही अचानक राजेन्द्र गिरि लगि गोली तन छुड्यौ। पृ.१३३/७
६५. पृ.१३६/१८,
६६. वही,
६७. पृ.१३९/५३ से पृ.१४८/३५
६८. पुनि गाजद्दीषांन चिंतियौ चित्त मैं। माधोसिंह बुलाइ करौ निज हित मैं॥ आपा और मलार बेगि बुलवाइयै॥पृ.१४८/१
६९. पृ.१४८/२ से पृ.१५६/२८
७०. चल्यौ अवधि के मुलक कौ दर कूचन मनसूर। सूरज हूकौ सीख दै पठ्यौ व्रजहि जरूर॥ सिंघ जवाहर सौ कह्यौ होडिल करि मुकामु॥ पृ.१५६/३२-३३
७१. पृ.१५६/३५
७२. पृ.१५७/३-४ करि मिलाप वदनेस सौ कूरम सिंघसुजान देषि भरतपुर देव कौ बहुर्‌यौ कियौ पयान॥
७३. पृ.१५८/५-१३,
७४. पृ.१५८/१४
७५. पृ.१५८/१५-१९,
७६. पृ.१५९/२०.

७७. पृ.१५९/२२
७८. द्वादश लाष रुपैया दै कै माधव नृप भाषी । पृ.१५९/२५
७९. पृ.१५७/४, रग्घू औ आपा मलार मिलि रूपराम सुष पावत । पृ.१५९/२१
८०. पृ.१५९/३१ से पृ.१६०/३३,३६
८१. पृ.१६४/६१ से पृ.१६६/६२
८२. पृ.१६६/६३ से पृ.१६७/६६
८३. धरि सीस आइस वापुकौ । दल साजि खंडू आपुकौ । किय कूंच संग वहार सौ । असवार चाहि हजार सौ ॥ खंडू आयौ भूमि मेवात आयौ । लूट्यौ कूट्यौ मेव देसै भगायौ ॥ पृ.१६८/५,७
८४. तब खंडू मेवाति खूंदि के चल्यौ संधि कौं आयो । सो सुनिकै महमूद आखबत मिलिकै यह ठहरायौ । आपुन करौं कूच होडिल कौ मै मेवन पै आयौ ॥ प.१६८/९
८५. त्योहीं सिंध जवाहरै लिख्यो सिंघ सुजान ।पृ.१६८/९
८६. तवै जवाहर सिंघ दीध मै आइयौ । उत ते सिंघ सुजान व्रजेस बुलाइयौ ॥१५ ॥
दीरघ मैं दीरघ सभा के चारि डूगन की बैठ्यौ व्रजराज बदनेस महाराज है ॥१६ ॥
सभा मध्य औ उचर् यौ व्रजरोज कर्यौ वह चारिऊ डूंग प्रमान ॥पृ.१६९/१५-१७
८७. पुनि महाराजाधिराज बदनेस बिचारिय ।मोहन मोदी वोलि ताहि निजु बचन उचारिय ॥
यौ सुनत स् गंगाराम सुत चारि लाख नर नित कही । दै बरस लरौ मल्लार सौ खान पान मौ पर सही ॥ पृ.१७१/२९
८८. बुर्ज्ज बुर्ज्ज धरी तोप मोटी । एक मोटी तहां दोइ छोटी ॥लाष बंदूक तौ लेखनी की । त्यार जानौ अनीकै वनीकी ॥ वही,पृ.१७३/३७
८९. बहादुर सिंघ करि गाढौ । फिरयौ कुंभेरि हौ ठाढौ ॥ वही पृ.१६५/६१ से पृ.१६९/१५-१७
९०.. पृ.१७३/३७ से पृ.१७५/४६
९१. कछु उमाह्यौ हौ हमै कछू बुलाये साहि । बड़गूजर कौ मारिवौ सुनि आए मुअगाहि ॥
९२. तुम्हारे नृपजिधरनि ते पारे व्रजराज ।पृ.१७३/३ से पृ.१७५-७६/४६-६२
दस हजार भट आपसौ चाहत समर समाज ॥ चारि लाष बदनेस कै है दल
पैदल त्यार । किलेदार गिरिवर धरा ताकी सैन अपार ॥पृ.१६६/६३-६४
९३. पृ.१६०/३६ से पृ.१६४/६०
९४. पृ.१७६/६४ से पृ.१८२/९०
९५. दियौ हरिदेव हमैं यह राज । पृ.१६९/१७ जो राखन हरिदेव है तौ तिनुकी भै मानि ।
विजै हरिदेव दे है । पृ.१७०/२६ देव देव हरिदेव जहां है । पृ.१७४/४०/ पृ.१७०/२२
९६. इक प्रीति श्री हरिदेव कै पिता के पद मांहि । पृ.४/१३
९७. वजीर सफदर जंग का अन्त तक साथ निभाना, द्रष्टव्य-चतुर्थ जंग से सप्तम जंग तक । इसी प्रकार प्रथम तथा द्वितीय जंग में क्रमशः फतेहअली एवं ईश्वरीसिंह की प्राणपण से सहायता करना ।

९८. जंगों में शौर्य प्रदर्शित करने के अतिरिक्त मराठों के प्रबल आक्रमण के विरुद्ध निर्भीकता पूर्वक कुशल मोर्चाबंदी कर दृढ जनसमर्थन भी अर्जित कर लेना । द्रष्टव्य— अष्टम जंग

९९. ज्यों जैसाहि नरेस करतु कृपा बदनेस पै ।
त्यों व्रजेस बदनेस करत रहौ हम पर कृपा ॥पृ.२७/१५
१००.है बदनसिंघ महेन्द्र महि पर धर्म धुरंधर धीर ।पृ.४/ १३
१०१.मोदी औ दीवान की अरज सुनत महाराज़ । रहौ जवाहर के निकट यहै तुम्हारौ काज ।
दुग्ग दीघै महाराज साज्यौ । बैठि दीवान मै फेरि गाज्यौ । पृ.१७३/३७ पृ.१७१/३१
१०२.सुल्तान अहमद साहि आपु सराहि नोवति दीन्हा । और राजा राइ ते पदवीं सवाई कीन्हा । पृ.४/१३
१०३.पृ.१०६/४ से पृ.१०७/१२,१०४.पृ.१०७/११
१०५.पृ.१०७/१२ से पृ.१०८/१४,
१०६.पृ.१०७/१३
१०७.घनौहि घनौ— नीर मंदाकिनी रूप रैल्यौ ॥पृ.१६५/६१
१०८.थप्यौ तासतै जोजनै तीन पूरौ । धर्‌यौ नाम ताकौ भरथ वासु रूरौ ॥पृ.१६५/६१
सुजानै सीख मैं दैयै । भरथगुर वैहि कौ जैयै । पृ.१७१/२८
बदनसुत चाइकै, भरथपुर जाइकैं । पृ.१७३/३९ भरथपुर साजि जहै अरथपुर राषियौ पृ.१७४/३१
करी चौकस पुर भरत की कह्यौ ब्रजेस कुमार । पृ.१७४/४२
१०९.भाजि देस इत कौ उत आयौ । ताहि बास बन बीच बसायौ । बीच-बीच अटवी चहुंधाई । जोरि मोरचन बुर्ज बनाई ॥ नम्र रूप सब कानन कीनौ । आसपास परिखा करि दीनौ ॥ फेरि दुग्ग सरदार सु थापै । थान थान तिनकै करि आपै ॥पृ.१७४/४०

११०.लिखि पठ्यौ गढ़ वैरि कौ—कर्‌यौ कूंच कुंभेरि कौ साजन सुभट समाज ॥१७४/ ४२-४६
१११. वही पृ.१७४/४२ से पृ.१७५/४६ वसै भूपकै पूत कौ पूत वंकौ ।पृ.१६५/६१
११२.राम पांडे— भरतपुर अप टू १८२६, पृ.४५ उद्धत : शर्मा उपेन्द्र नाथ—ब्रजेन्द्र बहादुर महाराजा सूरजमल जाट पृ.११६,मंगल प्रकाशन,जयपुर,१९८६ ई.
११३.ज्यौं चूड़ामनि के मिले आगै जाइ मलार । त्यौं काहूं के जाइवौ सो क्यों करे अवार । पृ.१६९/१५
द्रष्टव्य : शर्मा,उपेन्द्रनाथ जाटों का नवीन इतिहास,पृ.३१५-१६ मंगल प्रकाशन जयपुर १९७७ ।

लछिमनगढ़ रासा में ऐतिहासिक तथ्य

— डॉ. जगदीश प्रसाद गुप्त

प्राचीन काल में "मत्स्य" क्षेत्र से जानी जाने वाली भूमि पर नरुवंशीय राव प्रताप सिंह ने २५ नवम्बर, १७७५ ई. को अलवर राज्य भरतपुर के जाट शासक से प्राप्त कर स्वतंत्र राज्य की स्थापना की ।[१]

अलवर राज्य के उस समय पड़ौसी राज्य दिल्ली, भरतपुर एवं जयपुर थे । जिसका वर्णन जाचिक जीवन कवि के ऐतिहासिक काव्य "प्रताप रासो" में किया गया है । प्रतापरासो का रचनाकाल वि.सं.१८३७ है । यह काव्य राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से सन् १९६५ में प्रकाशित हो चुका है । इसमें लछिमनगढ़ युद्ध का संक्षेप में वर्णन भी है । इसी के साथ खुषाल कवि का "लछिमन गढ़ रासा" वि.सं.१८७३ का लिखा हुआ प्रकाशित हुआ है । इसमें गत वि.सं.१८३४ के लछिमन गढ़ युद्ध का वर्णन विस्तार से हुआ है । कवि ने काव्य के अन्त में लछिमन गढ़ युद्ध का समय इस प्रकार लिखा है :-

संवत दस वसु सत वरस चौतिस अब्द प्रमान ।
लछमनगढ के षेत में भयो जुद्ध बलवान ॥ [२]

यह युद्ध लछिमनगढ़ की भूमि पर दिल्ली के शाह आलम द्वितीय के सेनापति नजफ खाँ और अलवर के राव प्रतापसिंह के बीच हुआ । डा. एस. एल. नागौरी ने भी राज्य अभिलेखागार बीकानेर के अभिलेखों के आधार पर यह युद्ध ईस्वी सन् १७७८ में होने की पुष्टि की है ।[३] जगदीश सिंह गहलोत ने भी ईस्वी सन् १७७८ में नजफखाँ द्वारा लछमनगढ़ को घेरे जाने की पुष्टि की है ।[४]

जाचिक जीवन के ऐतिहासिक काव्य प्रताप रासो से भी इसकी पुष्टि होती है। इस काव्य की प्रामाणिकता में भी संदेह नहीं है क्योंकि इसमें वर्णित व्यक्ति, घटनाएँ, विवरण, संवत् सभी इतिहास द्वारा प्रमाणित हो चुके हैं। इस दृष्टि से यह काव्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।[५] इस काव्य में १२९ दोहे एवं कुछ कवित भी हैं। कवि ने इस काव्य में अपना नाम खुषाल लिखा है। और राजा विनयसिंह के शासनकाल में यह लिखा गया है। ये कवि राजा विनयसिंह के राज्याश्रित थे। इससे अधिक कवि ने अपना परिचय इस ग्रन्थ में नहीं दिया है। इनके परिचय का दोहा ग्रन्थ में इस प्रकार है।

विनयसिंह महाराज नै कीनी कृपा बिचारि।
सो प्रतापरासो सरस, दीजे सुधर सुधारि।
महाराज बलवन्त हैं गुरुवे गुन गंभीर।
कही खुसाल दयाल व्है, बरनि कहो सुभ बीर॥[६]

लछिमनगढ़ रासा ग्रन्थ में युद्ध के प्रारम्भ होने के संक्षिप्त अंश इस प्रकार हैं। राव प्रतापसिंह को एक पत्र नवाब नजफखां की तरफ से प्राप्त हुआ इसका हाल इस प्रकार था :-

प्रथम लिखो कागद सुकर, नजफषान नवाब।
अलवर गढ़ खाली करो, तुव प्रताप महाराज।
निबल जान नवलेश की, लई भूमि सब दाबि।
जो सबरी यह दीजिये, कागद बांचत आवि॥[७]

इस प्रकार का पत्र पढ़कर रावराजा प्रतापसिंह को अपनी वीरता का पुन: आभास होता है। नवाब नजफखाँ को अपना उत्तर प्रेषित करते हैं। युद्ध के बिना यह कार्य सम्भव नहीं है। रावराजा युद्ध की तैयारी करते हैं। उधर नवाब नजफखाँ अपनी फौजों को युद्ध भूमि में जाने हेतु रवाना करते हैं। इसका वर्णन लछिमनगढ़ रासा में इस प्रकार है :-

नजबषान नवाब की, चमु चली चतुरंग।
बांके बांके वीर बहु, रंग भरे बहुरंग॥
नजबषान आयो सही, दोनों द्वंद मचाय।
राजा राव प्रतापै, सीताराम सहाय॥[८]

राव राजा प्रतापसिंह सीता और राम के परम भक्त थे। उन्होंने सीताराम के नाम का सुमिरन कर अपने सभी विशिष्ट मंत्रियों की बैठक बुलाई। उसमें यह निर्णय लिया गया कि अलवर के किले को बचाने के लिये युद्ध ही एक रास्ता है। इस युद्ध में भाग लेने के लिये अलवर के विशिष्ठ योद्धाओं को बुलाया गया। इनमें कुँवर मंगल सिंह भी थे :-

मंगलसिंह सुबोल गरज घन घोर घमंडिये।
लक्ष्मनगढ़ हो रहो जंग जग में जुझ मंडिये।
यह जानु राव मन में सुघरुगढ ने देउ जीवत कबै॥[९]

"प्रताप रासो" ग्रन्थ के षष्ठ प्रभाव के २५१ वें छप्पय में भी इनका नाम आया है।

सभा सुघ सब हुकम दिय हैं, लायक मंगल कवर॥

नजफखाँ की फौज ने टोडे के मैदान में आकर पड़ाव किया। अपना संदेश राव प्रतापसिंह को जुल्फिकार के माध्यम से भेजा। उत्तर में रावप्रताप सिंह ने लिखा की यह कार्य बिना युद्ध के संभव नहीं है। काव्य में इसका उल्लेख इस प्रकार है-

अलवर गढ़ तो कठिन अति, विकट पंथ है ठौर ।
लछिमन गढ तो देखि कै जब भाषों मुष और ॥[१०]

राव प्रतापसिंह का यह जवाब सुनकर नजफखाँ को गुस्सा आया। ५८ वें छन्द में इसका वर्णन इस प्रकार आया है। "मैने पर्वत के समान जाटों को उखाड़ दिया, जिसमें जवाहर सिंह जैसे वीर थे, रुहेलों के गर्व को चूर कर दिया, ये कौन हैं, जो रण क्षेत्र में मुझसे जवाब कर रहा है।" सभी प्रयासों से विफल होकर नंवाब नजफखाँ युद्ध के मैदान की ओर बढे। इसका वर्णन इस प्रकार है -

पठानै रुहेले मुगल्ले चढे जू।
लरैं फौज मांती हकारैं कढ़ै जू॥
घने घोरि लीने दिसा के सु नाके।
चहूँ ओर जानैं घटासी सु हांके॥[११]

प्रतापरासो छंद २, ३, ६ में यह वर्णन इस प्रकार आया है। इससे इसकी पुष्टि होती है।

खुरासान मुलतान कासि षंदार मीर भर।
सैयद मुगल पढारा सेष भारथ अभंगिय।
तिलगु रुहैला तेस देस कत—फिरंगय॥

इसमें विशेष बात यह है कि, किसी हिन्दू योद्धा का नजफखाँ की ओर होना नहीं पाया जाता। यह देखकर राव प्रतापसिंह का हिन्दुत्व जाग्रत होता है। रावप्रतापसिंह की सेना के वीरों का परिचय इस प्रकार है।

जादौ हाडा धाकरे, और नरुकाकार।
सीर करवार सिसोदिया, कछवाहै परिवार॥
खींची बैस पवार बहु, और चंदेल आन।
किलो नौतरा गौड़ अरु, निरधर के चहुवान॥[१२]

युद्ध भूमि में काम आये अस्त्रों का वर्णन इस प्रकार है -

छंद भुजंगी चलै बान पै बान च्यारों दिसातैं।
जमूला जजालैं तमंचा उभातै॥
करैं वीर घातैं महामोद माते।

चलैं तीर तेगा कटारी जनाते ॥[१३]

युद्ध का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है —

गढ़ पै से गोला परै, ज्यों बरसत है मेह ।
मानस की कह बात को, पंछी पंष न देह ॥[१४]

इस काव्य के युद्ध परिणाम इस प्रकार हैं -

पैंजी रही परताप की, और हिन्द की लाज ।
नजबषान जीत्यो नहीं, जीत्यो श्री महाराज ॥[१५]

काव्य का अंत कवि ने कवित्त से किया है -

मुगल पठान सब मींजि के मरोर डारे,
राम के भरोसै एक काहू सौं न डरिवौ ।
आगरे दिल्ली के बीच बिजै राव राजाजी,
हाथिन के दान पातिसाहिन सौं लरिवौ ॥[१६]

इस विजय से राव प्रतापसिंह का मान आगरा और दिल्ली के बीच भी बढ़ गया । लछिमनगढ़ की भूमि पर इसके बाद दो बार युद्ध हुए हैं । इसका विस्तृत वर्णन प्रताप रासो काव्य में दिया गया है । इस काव्य में राव प्रताप सिंह की वीरता निसंदेह है । यह रासा काव्य ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण है ।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
शाखा कार्यालय, अलवर

सन्दर्भ सूची —

१. राजस्थान का इतिहास - वी.एल. पानगडिया प्रथम संस्करण १९८२ पृ.सं.२०३, प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।
२. लछिमनगढ़ रासा, खुशाल कवि, दोहा न. १२९ प्रकाशक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर प्रथम संस्करण ।
३. अलवर राज्य का इतिहास, डा. एस. एल. नागौरी, पृष्ठ सं.६७ संस्करण १९८४ ।
४. राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग (जयपुर व अलवर राज्यों का इतिहास) लेखक जगदीश सिंह गहलोत, प्रकाशक हिन्दी साहित्य मंडल, मेड़ती दरवाजा, जोधपुर ।
५. राजस्थान के इतिहास व अलवर के इतिहास से मिलान कर यह पंक्तियां लिखी गई हैं ।
६. लछिमनगढ़ रासा खुशाल कवि, दोहा - १६-१७
७. लछिमनगढ रासा खुशाल कवि, दोहा - १८-१९
८. वही, दोहा - २६-२७

९. वही, दोहा-४३
१०. वही, दोहा-५६
११. वही, दोहा-६९,
१२. वही, दोहा ९५-९६,
१३. वही, दोहा १०६,
१४. वही, दोहा ११५,
१५. वही, दोहा १२५,
१६. वही, दोहा १२७

प्रतापरासो : इतिहास एवं संस्कृति

— *डॉ. जीवनसिंह*

'प्रतापरासो' का संबंध एक ऐसे राजनीति-नायक से है, जिसने अपनी राजनैतिक सूझबूझ, साहस, सही समय पर सही निर्णय लेने और उसे क्रियान्वित करने के कौशल, दृढ़ता, अत्यधिक सक्रियता और व्यवहार कुशलता से अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान राजस्थान के पूर्वी अंचल में एक नए राज्य अलवर की स्थापना एवं निर्माण किया, इस नायक का नाम है राव राजा प्रतापसिंह। इन्हीं के साहसिक एवं सूझबूझ पूर्ण कृत्यों और प्रमुख राजनैतिक घटनाओं तथा अन्य सहयोगी और अवरोधक व्यक्तियों के कृतित्व को आधार बनाकर जाचीक जीवण नामक कवि ने 'प्रतापरासो' के नाम से डिंगल-पिंगल मिश्रित भाषा काव्य की रचना की। काव्य की दृष्टि से भले ही इस कृति को बहुत महत्व नहीं मिला हो, किन्तु अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दिल्ली के निकट दक्षिण में और आगरा, भरतपुर, अलवर और जयपुर तथा शक्तिशाली मराठा-शक्ति और अपनी राज्य सत्ता का विस्तार करती नयी एवं आधुनिक ब्रिटिश साम्राज्य की ताकत से जुड़ी राजनैतिक हलचलों के काव्यात्मक इतिहास की दृष्टि से इस काव्येतिहास का ऐतिहासिक महत्व है। आज जब हम अपने समय के नए एवं निरन्तर बदलते हुए राजनैतिक संबंधों की दृष्टि से अपने अतीत को देखते हैं तो उसकी बहुत-सी घटनाओं में मनुष्य का छल, कपट, धोखा, क्रूरता, चालाकी, अहम्मन्यता, दम्भ आदि स्पष्ट नजर आते हैं। इसके साथ आदमी की दृढ़ता, कुशलता और कुछ नया निर्माण करने की अपूर्व क्षमता का बोध हुए बिना नहीं रहता। यह अनदेखी करने की बात नहीं है कि अनेक बड़ी राजनैतिक शक्तियों के बीच कोई एक व्यक्ति अपनी सूझबूझ और संगठन-क्षमता के कौशल से एक नए राज्य का निर्माण कर दे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऐसा काम किया राव राजा प्रतापसिंह ने। इस राज्य निर्माता ने अपने नाम से किसी नए राज्य का निर्माण नहीं किया बल्कि पहले से चले आ रहे राज्यांचलों के

बीच उन्हीं को नया स्वरूप प्रदान कर अलवर को नयी राजनैतिक पहचान प्रदान की । इस इतिहास से हमें आज भी मनुष्य की निर्माण और ध्वंस करने की अपूर्व क्षमता का बोध हुए बिना नहीं रहता । इतिहास का सही बोध हमारे वर्तमान को सजाने-संवारने और भविष्य की दिशा निश्चित करने में हमारा सहयोगी बनता है । यह अलग बात है कि इतिहास में से कौन क्या चुनता है ? यह एक ऐसा सागर है, जिसमें डुबकी लगाने से किसी को मोती हाथ लगता है तो किसी को घोंघा, सीपी भी । इतिहास, मनुष्य की विध्वंस क्षमता को भी उतनी ही सटीक अभिव्यक्ति देता है, जितना कि निर्माण क्षमता को । यह अलग बात है कि विजयी व्यक्तित्व को निर्माण का सेहरा बांध दिया जाता है और पराजित शक्ति के विध्वंस का । जबकि इतिहास का नैतिक सच इससे भिन्न होता है । बहरहाल यहां पर हमारा प्रयोजन जाचीक जीवण कृत 'प्रतापरासो' के आधार पर अलवर राज्य के इतिहास एवं संस्कृति का अवलोकन करना है ।

'प्रतापरासो' में वर्णित है कि इस इतिहास काव्य की रचना विक्रम संवत् १८३७ पौष कृष्ण तीज गुरुवार को आरंभ हुई । विक्रम संवत् १८४७ यानी १७९० ई. तक की घटनाओं का इसमें चित्रण होने के कारण इसका रचना काल लगभग दस वर्ष की अवधि तक फैला हुआ है । इस कृति में कुल नौ प्रभाव हैं, जिनमें अलवर राज्य के संस्थापक रावराजा प्रतापसिंह की एक नए राज्य के निर्माता के रूप में वीरगाथा पूर्ण कार्यों का वर्णन किया गया है । जैसा कि हम जानते हैं कि किसी राज्याश्रित कवि या इतिहासकार को अपने ही आश्रयदाता के व्यक्तित्व कृतित्व को तटस्थ दृष्टि से देख कर उसका चित्रण या वर्णन करने की स्वाधीनता नहीं होती । वह अपने आश्रयदाता के केवल सुपक्ष को ही देखता है और लोभ लालच एवं राजयश-राजप्रशंसा और अनुग्रह के प्रलोभन से यत्किंचित घटनाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तो करता ही है, अपने नायक के पक्ष में उन्हें तोड़ता मरोड़ता भी है । इस दृष्टि से 'प्रतापरासो' एक आश्रित कवि की रचना है किन्तु अलवर नामक एक नए राज्य का निर्माण अठारहवीं सदी के अंतिम २५-३० वर्षों में हुआ और उस राज्य की संस्थापना एवं बुनियाद रखने वाले थे, तत्कालीन जयपुर रियासत के अन्तर्गत माचाड़ी के राव प्रतापसिंह जो अलवर राज्य के निर्माण के पहले तक केवल ढाई गांव के एक सामान्य जागीरदार थे । यह किसी एक व्यक्ति के संदर्भ में असाधारण बात ही मानी जायेगी कि एक व्यक्ति अपनी सूझबूझ, निड़रता, साहस, संघर्षक्षमता, दृढ इच्छाशक्ति और सही निर्णय कर उसे क्रियान्वित करने की योग्यता से कई बड़े और प्रभावशाली राज्यों के बीच एक नए राज्य का निर्माण कर ले । इसे कुछ लोग मौके का फायदा उठाना भी मान सकते हैं । किन्तु रावराजा प्रतापसिंह जैसा योजनाकार कोई सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति नहीं हो सकता, जो किसी ऐसे मौके का फायदा उठा ले, जिसमें एक नए राज्य के निर्माण की गुजांइश हो । माचाड़ी के राव प्रतापसिंह नरुका की व्यावहारिकता और सूझबूझ की प्रशंसा इतिहासविद् जदुनाथ सरकार ने भी इन शब्दों में की है— "वह बड़ा महत्वाकांक्षी, व्यावहारिक और सूझबूझवाला व्यक्ति था ।" यहां उल्लेखनीय है कि जब एक नयी रियासत अलवर का जन्म हुआ, तब जयपुर रियासत की स्थिति बहुत शोचनीय हो गई थी । ६ मार्च १७६८ ई. को जयपुर नरेश माधोसिंह का देहान्त हो गया था और उनके बड़े पुत्र पृथ्वीसिंह उस समय मात्र पांच वर्ष के थे । उनको अपनी

माता चूंडावतजी का संरक्षण प्राप्त था । इससे अनेक कछावा सरदार असंतुष्ट थे । इन असंतुष्टों के एक गुट का मुखिया रावराजा प्रतापसिंह था । यह प्रतापसिंह एक बार पहले माधोसिंह का कोपभाजन बन चुका था और जयपुर राज्य छोड़कर भरतपुर के शासक सूरजमल की सेवा में चला गया था, परन्तु भरतपुर के शासक जवाहरसिंह की जयपुर पर आक्रमण करने की योजना से रुष्ट होकर पुनः जयपुर नरेश माधोसिंह की सेवा में लौट आया था । फरवरी १७६८ ई. में मांवड़े-मढोली का युद्ध माधोसिंह और जवाहरसिंह की सेना के बीच हुआ । इस युद्ध में माचाड़ी का राव प्रतापसिंह नरूका जयपुर के पक्ष में लड़ा । इस युद्ध में जयपुर की विजय हुई । इस विजय का बहुत कुछ श्रेय प्रतापसिंह को मिला । इससे प्रसन्न होकर जयपुर नरेश माधोसिंह से प्रतापसिंह को न केवल अपनी जागीर वापस मिली बल्कि माचाड़ी के समीप राजगढ़ में दुर्ग बनाने की सहर्ष अनुमति भी मिली । इस तरह एक महत्वाकांक्षी और व्यावहारिक बुद्धि वाले एक सामान्य जागीरदार के राजा बनने की स्थिति का बीज वपन हुआ । उसकी दूरदर्शिता, इरादे की दृढ़ता और अतिसक्रियता ने न केवल उस बीजांकुर की रक्षा और पोषण किया बल्कि उसके वृक्ष बनते चले जाने की परिस्थितियों का एक से एक बढ़कर निर्माण किया ।

'मुगल साम्राज्य का पतन' के लेखक और इतिहासकार जदुनाथ सरकार व डा. रघुवीरसिंह जैसे इतिहासकारों ने लिखा है कि माचाड़ी के जागीरदार प्रतापसिंह नरूका ने तत्कालीन जयपुर राज की प्रशासकीय अव्यवस्था का पूरा पूरा लाभ उठाया । उसने अपनी जागीर से सटे हुए शेखावटी, मेवात व भरतपुर राज्य के कई स्थानों पर अधिकार कर लिया और वहां दुर्गों का निर्माण कराया । इन इतिहासकारों ने माना है कि अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु कभी वह जाट राजा के पक्ष में और कभी उसके विरोधी नजफखां (शाही फौज) के साथ रहता था । उसकी कुशल कूटनीति और सैनिक प्रतिभा से मुगल बादशाह भी प्रभावित हुआ और उसको रावराजा की उपाधि से विभूषित कर तथा शाही मनसब प्रदान कर औपचारिक रूप में जयपुर नरेश से स्वतंत्र एक नए शासक के रूप में मान्य कर लिया था । रावराजा प्रतापसिंह के अतिघटना-संकुल जीवन में अनेक बार ऐसी स्थितियां बनीं जो उसके लिये जीवन-मरण का प्रश्न बन गई थीं । इन घटनाओं को आधार बनाकर 'प्रतापरासो' की रचना की गई है । इस ग्रंथ के आरंभ में कृति-नायक प्रतापसिंह का पौराणिक व ऐतिहासिक वंश वर्णन है, जो भगवान राम से चलकर नरूजी तक आता है । इसी नरूकुल में प्रतापसिंहके पिता मोहब्बतसिंह हुए । इस संबंध में कवि का कथन है—

धजबंधी ध्रम धारिये, जोरावर जग जाप ।
उपजे मोहबतसिंह सुत, तप-पूरण परताप ॥

यहीं पर कवि प्रतापसिंह की वीरता की प्रशंसा करता हुआ आमेरपति माधोसिंह के दरबार में प्रतापसिंह के सम्मान का उल्लेख करता है—

तप पूरण परताप भोमवर रच्यो विसंभर ।
अरनि कंस रविवंस पाटपति नरू नृपति नर ॥

बलनि भीम बलवान कहर किरवान स डंडन ।
करण स्याम के काम सीस सत्रुन के खंडन ॥
प्रतापराव राजा तिलक जानि नृपति चाहत चित ॥
आमेरधणी रघुवंशपति, पूजत भुज माधव नृपत ॥

जयपुर राज्य की सेवा करते हुए राव प्रतापसिंह नरूका ने उणियारा और रणथंभौर की ऐतिहासिक विजय दिलाकर इनको जयपुर राज्य का अंग बनाया। इन दोनों विजयों का उल्लेख 'प्रतापरासो' में एक क्रम में किया है। ये घटनाऐं सन् १७६१ ई. व सन् १७६२ ई. की मानी जाती हैं।[१] कवि ने लिखा है—

कर सर उनियारो किलो, माधव नृपत सुनाम ।
आये अपदल राखि कै, रणतभंवर गढ़ ठाम ॥

प्रतापसिंह के साहसिक एवं सूझबूझपूर्ण कार्यों से मिली विजयों के फलस्वरूप जयपुर नरेश माधोसिंह के मन में उनकी धाक जम गई। उन्होंने प्रतापसिंह को पूरा सम्मान दिया। जाचीक जीवण ने इस संबंध में लिखा है कि— "भुजा दाहिनी भूप की वैसत पातिलराव।"[२] किन्तु इससे उन राजपूत सरदारों को ईर्ष्या होने लगी, जो प्रतापसिंह के सामने महत्वहीन होने लगे थे। इस संबंध में कवि ने नाथावत सरदार रतनसिंह का उल्लेख किया है, जिसने प्रतापसिंह को जयपुर राज्य से बाहर करवाने में बड़ी भूमिका अदा की। इस तरह प्रतापसिंह को जयपुर छोड़ना पड़ा। किन्तु यह सब प्रतापसिंह के लिए इस रूप में वरदान साबित हुआ कि उनको दूसरी जगह जाकर जीवन के बड़े अनुभव हुए और राज्यसत्ता के दांवपेच और राजनैतिक कुशलता में वह और अधिक दक्ष होते चले गये। उनकी वीरता और रणकौशल के किस्से अब तक आसपास की अन्य रियासतों जैसे भरतपुर व दिल्ली तक पहुंच चुके थे। उनके वीरतापूर्ण और साहसिक कार्यों की धाक जम चुकी थी। इसलिए भरतपुर रियासत के तत्कालीन शासक महाराजा सूरजमल ने उनको अपने पास आदर के साथ रखा। 'प्रतापरासो' के 'द्वितीय प्रभाव' में राव प्रतापसिंह का भरतपुर राज्य की सेवा में जाना और सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह की जयपुर पर आक्रमण करने की योजना से रुष्ट होकर पुनः जयपुर-नरेश माधोसिंह की सेवा में आ जाने तक की घटनाओं का उल्लेख है।

'प्रतापरासो' के द्वितीय प्रभाव में वर्णित घटनाओं से पता चलता है कि भरतपुर-नरेश सूरजमल के जीवित रहने तक राव प्रतापसिंह नरूका का उनके दरबार में सम्मान था। महाराजा सूरजमल स्वयं उनकी वीरता व राजनैतिक सूझबूझ का लोहा मानते थे। महाराजा सूरजमल आगरा पर अधिकार कर हरियाणा-विजय के बाद जब दक्षिण दिल्ली में नजीब से युद्ध करने के लिए गया था और दिसम्बर १७६३ ई. की यह लड़ाई उसकी अन्तिम लड़ाई साबित हुई थी। 'प्रतापरासो' से पता चलता है कि इस लड़ाई में माचाड़ी के पूर्व राव-प्रतापसिंह भी उसके साथ थे। इसके अलावा अन्य संग्रामों में भी महाराजा सूरजमल का साथ राव प्रतापसिंह ने दिया था। इस बारे में कवि जाचीक जीवण ने लिखा है—

किते कोट अटके कटक, किते किये रण जंग ।
सूरजमल ब्रजराज के, जित-जित पातिल संग ॥

सूरजमल के अंतिम दिल्ली युद्ध का उल्लेख इसी वजह से 'प्रतापरासो' में किया गया है कि इसमें प्रतापसिंह उनके साथ थे । 'प्रतापरासो' के रचियता ने इसे 'कुरुक्षेत्र की राड' कहा है । इस युद्ध में महाराजा सूरजमल के साथ थोड़ी सी सेंना थी । जब महाराजा सूरजमल चारों ओर से शत्रुसेना के बीच घिर गए तो उनके भाव को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

कटै सूर सावंत महमंत भारी ।
घरी नाहि पछै टरै नाहि टारी ॥
यसी जानि कै आप सूजा स बोले ।
है रे कोऊ या वार यों बैन बोले ॥
सितावी खबर फौज में जाय दै हो ।
बली राव परताप है बेग लै हो ॥[३]

किन्तु वहां कौन किसकी सुनने वाला था । सूरजमल का शत्रु ने अन्त कर दिया । यहां पर इस तरह प्रतापसिंह के उल्लेख का महत्त्व यही है कि वह सूरजमल का भी विश्वासपात्र था और सूरजमल जैसा योद्धा भी प्रतापसिंह की वीरता को मानता था । सूरजमल की मृत्यु के बाद जवाहरसिंह भरतपुर के शासक बने । कुछ समय तक प्रतापसिंह इनके काल में भी डीग (भरतपुर) में रहे । किन्तु, आमेर-नरेश माधोसिंह पर जवाहरसिंह और मारवांड़ के शासक विजयसिंह की आक्रमण की योजना से वे जवाहरसिंह से रुष्ट होकर आमेर चले आए । आमेर के प्रति प्रतापसिंह का बंधुत्व भाव उजागर हो गया । कवि ने यहां प्रतापसिंह के भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

हमें जानियों बंधु आमेर वारे ।
तमें देखनो ठाम सो ही विचारे ॥

कवि जाचीक जीवण कहता है कि एक ओर तो पुष्कर में जवाहरसिंह, मारवाड़ नरेश विजयसिंह से मिले और दूसरी ओर पातलि अर्थात् प्रतापसिंह आमेरपति माधोसिंह से मिले । 'प्रतापरासो' के द्वितीय प्रभाव की कथा यहीं तक है ।

जयपुर-नरेश माधोसिंह ने, अपने पुराने जागीरदार प्रतापसिंह को अपना भाई जान कर अपनी दाहिनी ओर आसन दिया और कहा कि 'बंधु बेर तुम बंधु जनाये ।' अर्थात् भाई के काम के समय तुमने भ्रातृत्व प्रकट कर दिया है । माधोसिंह ने अपनी ओर से पूर्व मत्रियों के कहने पर सदासिव भट्ट को जवाहरसिंह की इच्छा का पता लगाने के लिए भेजा कि उसकी वास्तव में इच्छा क्या है ? जवाहरसिंह दो परगने 'कामां' और 'खोहरी' प्राप्त करना चाहता था और उन पर अपना अधिकार मानता था । इस कारण युद्ध टल नहीं सका । फलस्वरूप मावड़ा नामक स्थान पर जयपुर और भरतपुर राज्यों की सेना के बीच घनघोर युद्ध हुआ । प्रतापसिंह ने इस युद्ध में जयपुर-नरेश माधोसिंह का साथ दिया । इसके पुरस्कार स्वरूप उनको राजगढ़ में किला बनाने की अनुमति प्राप्त हुई और प्रतापसिंह को राव के साथ राजा भी बना दिया—

इसों राजसी को हुकम भूप होई ।
वरै राव प्रताप सो राज होई ॥ ४

'प्रतापरासो' के चौथे प्रभाव में रावराजा प्रतापसिंह की राज्यप्रतिभा और बढ़ती हुई शक्ति से अन्य सामन्तों को ईर्ष्या होने लगी । जयपुर के राजसिंहासन पर पृथ्वीसिंह जैसा बाल शासक था, इस कारण शासन की कोई समुचित व्यवस्था नहीं रह गई थी । उधर प्रतापसिंह के शत्रुओं की संख्या बढ़ने लगी थी, उनकी हत्या के प्रयास भी किये गये । इस कारण उन्होंने आमेर छोड़ना ही उचित समझा, किन्तु इस बीच उनकी जागीर राजगढ़ पर राजसिंह और फीरोजखां ने षड़यंत्र रचकर अपना अधिकार जमा लिया । इसके फलस्वरूप रावराजा प्रतापसिंह को पुनः युद्ध करना पड़ा । यह युद्ध कांकवाड़ी में हुआ और दो महीने तक चलता रहा । जब दोनों ओर की फौजें थक गईं तो पृथ्वीसिंह ने प्रतापसिंह को पत्र लिखा कि दोनों के बीच चल रहा युद्ध समाप्त किया जाये । हम दोनों एक ही पूर्वज की संतान हैं । इस पत्र के मिलते ही प्रतापसिंह जयपुर नरेश पृथ्वीसिंह से मिलने गये और उन्होंने प्रतापसिंह को पुनः राजगढ़ का रावराजा घोषित किया ।

इस समय तक रावराजा प्रतापसिंह की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी । दिल्ली का बादशाह भी यह इच्छा रखता था कि प्रतापसिंह उसके साथ रहे, जिससे जाट राज्य का बढ़ता उपद्रव शान्त किया जा सके । प्रतापसिंह ने दिल्लीपति का सहयोग किया । इसकी एवज में दिल्लीपति ने प्रतापसिंह को औपचारिक तौर पर राजा घोषित कर उसे राजसी चिह्न प्रदान किये ।

दये गज तेंग खिलंत दुसाल ।
दिये सिर पेच किलगी भाल ॥
सजन मांहि मुरातव लारि ।
वजन साहिब नोवति वार ॥
यसो पतिसाह कियो सनमान ।
नरु घर पातिल बड़ प्रमाण ॥

इस तरह प्रतापसिंह ने दिल्लीपति बादशाह का साथ दिया और अपने बढ़ते हुए सत्ता के प्रताप से उसने अपने राज्य का विस्तार किया । अनेक गढ़ों पर उसका आधिपत्य कायम हुआ । यहां पर कवि ने राजगढ़ की राजसी व्यवस्था का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करते हुए बतलाया है कि इस नगर में छत्तीस गोत्रीय राजपूतों के साथ-साथ शेख, सैयद, मुगल, पठान, तुर्क, आदि सभी मिलजुलकर रहते थे । सन् १७७५ ई. में अलवर के बाला किले पर राव राजा प्रतापसिंह का आधिपत्य हो जाने से न केवल इनके राज्य की सीमाओं का विस्तार हुआ बल्कि इनकी स्थिति और सुदृढ़ हो गई । इस अवधि में दिल्लीपति शाह आलम द्वितीय के सेनापति नजफखां ने इनका सहयोग लेकर भरतपुर पर चढ़ाई की और उसे परास्त किया । इस समय भरतपुर राज्य की सेनाओं से चौबीस मास तक युद्ध चलता रहा । इसके फलस्वरूप जाट राजा को आगरा का किला खाली करना पड़ा ।

'प्रतापरासो' का षष्ठ प्रभाव लछमनगढ़ की लड़ाई से संबंधित है । इस प्रभाव से स्पष्ट है कि इस समय भरतपुर की राजधानी डीग पर नजफखां का आधिपत्य था । नजफखां ने लछमनगढ़

की इस लड़ाई में रावराजा प्रतापसिंह से युद्ध किया किन्तु प्रतापसिंह के रणकौशल और वीरता के सामने नजफखां को घुटने टेकने पड़े। नजफखां की अलवर को प्राप्त करने की बड़ी इच्छा थी, वह साम, दाम, दण्ड, भेद से इसे पाना चाहता था। उसने हल्दिया-परिवार के सभी सदस्यों को अपनी तरफ कर लिया था लेकिन इस युद्ध में उसकी पराजय हुई। आठवें प्रभाव में रावराजा प्रतापसिंह और जयपुर नरेश प्रतापसिंह के बीच होने वाले युद्ध का उल्लेख किया गया है। इस युद्ध का कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में, जयपुर नरेश प्रतापसिंह को अलवर राज्य के संस्थापक राव राजा प्रतापसिंह से पुनः भाईचारे का संबंध बनाना पड़ा। 'प्रतापरासो' का नवां एवं अंतिम प्रभाव भी अलवर एवं जयपुर के बीच चलने वाले संघर्ष से संबंधित है। इस प्रभाव की घटनाओं से पता चलता है कि इस युद्ध में महादजी सिंधिया के साथ रावराजा प्रतापसिंह थे, जबकि दूसरे पक्ष में जयपुर एवं जोधपुर नरेश की सम्मिलित फौजें थीं। इस युद्ध में कई तरह के दांवपेच चले किन्तु अन्त में विजय आमेरपति प्रतापसिंह की हुई। इतने संघर्षपूर्ण इतिहास का अन्त २४ नवंबर १७९० ई. में रावराजा प्रतापसिंह की मृत्यु के साथ हुआ और अलवर के सिंहासन पर उनके दत्तक पुत्र बख्तावरसिंह बैठे।

युद्ध काव्य

इस प्रकार 'प्रतापरासो' में उन अनेक युद्धों का वर्णन किया गया है, जो अलवर राज्य के संस्थापक रावराजा प्रतापसिंह ने जयपुर, भरतपुर और दिल्ली के बीच एक नए राज्य के निर्माण के लिए लड़े। 'प्रतापरासो' एक युद्ध काव्य है, जो भरतपुर के राजकवि सूदन के 'सुजानचरित' की परम्परा में आता है। जैसे 'सुजान चरित' में महाराजा सूरजमल् के सन् १७५४ तक के पहले सात संग्रामों का आंखों देखा वर्णन विस्तार से किया गया है उसी तरह जाचीक जीवण ने भी प्रतापसिंह के जीवनकाल में देखे-सुने युद्धों का वर्णन 'प्रतापरासो' में किया है। इसके नौ प्रभावों में हरेक प्रभाव का संबंध प्रतापसिंह द्वारा लड़े जाने वाले किसी न किसी युद्ध से है। इस कृति के प्रथम प्रभाव में जयपुर के जागीरदार के रूप में प्रतापसिंह द्वारा किये गये उणियारा एवं रणथंभौर के युद्धों का उल्लेख है, जिनमें जयपुर को विजय दिलाने का श्रेय राव प्रतापसिंह को जाता है। दूसरे प्रभाव में उन युद्धों खासकर —कुरुक्षेत्र की लड़ाई का उल्लेख है, जो प्रतापसिंह ने भरतपुर-नरेश सूरजमल के सहयोगी सामंत के रूप में लड़े। तीसरे प्रभाव में मांवड़ा युद्ध का वर्णन है तो चौथे में जयपुर के साथ लड़े जाने वाले राजगढ़ कांकवाड़ी युद्ध का। पांचवें प्रभाव का संबंध नजफखां के सहयोगी के रूप में भरतपुर-विजय से है तो छठे प्रभाव में उस लछमनगढ़ की प्रसिद्ध लड़ाई का वर्णन है, जो प्रतापसिंह ने नजफ खां से लड़ी थी। सातवें प्रभाव में अलवर के उस युद्ध को दिखाया गया है, जो अलवर का किला प्राप्त करने के लिए नजफखां ने प्रतापसिंह से लड़ा था। आठवें प्रभाव में जयपुर के साथ अलवर के नए संघर्ष का उल्लेख किया गया है, जिसमें जयपुर-नरेश प्रतापसिंह की सेना अलवर के राव राजा को परास्त नहीं कर पाई और विवश होकर जयपुर को अलवर से अपने संबंध स्थापित करने पड़े। अंतिम एवं नवें प्रभाव का संबंध भी युद्ध से है, जो महादजी सिंधिया के सहयोगी के रूप में प्रतापसिंह ने जयपुर व जोधपुर की संयुक्त सेना से लड़ा। उल्लेखनीय यह है कि इन सभी युद्धों में अंतिम को छोड़कर

शेष अन्य सभी युद्धों में या तो अलवर के रावराजा प्रतापसिंह की विजय हुई या वे इस रूप में बराबरी पर रहे कि सामने वाले पक्ष को उनकी शर्तों पर उनसे समझौता करना पड़ा। कवि जाचीक जीवण ने 'प्रतापरासो' के नौ प्रभावों का विभाजन युद्धों के अनुसार ही किया है। प्रतापसिंह की मृत्यु और नए राजा बख्तावरसिंह को राजतिलक के साथ इस ग्रंथ की भी समाप्ति कर दी गई है। इस रूप में यह कृति एक ऐसी इतिहास गाथा है जो अलवर राज्य के निर्माता राव राजा प्रतापसिंह के रणचातुर्य की कहानी कहने के प्रयोजन से लिखी गई है। काव्य कला की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व नहीं है। इसका महत्व यदि कोई है तो वह अलवर के इतिहास के संदर्भ में ही है, अन्यथा इसकी भाषा भी बहुत ऊबड़खाबड़ व अटपटी है। उसमें पूर्वापर संबंध स्थापित करने का कौशल भी बहुत कम है। भाषा में बिखराव व अर्थ की अस्पष्टता भी बहुत है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का न तो डिंगल पर ही पूरा अधिकार है और न ही ब्रज पर। शब्दों को भी उसने इच्छानुसार तोड़ा-मरोड़ा है। उसकी कथन-शैली में भी प्रवाह की कमी है। काव्यत्व की दृष्टि से भी यह अत्यन्त कमजोर रचना है। किन्तु इसका महत्व इतिहास की दृष्टि से इस कारण भी है कि कवि ने इतिहास सम्मत घटनाओं में कोई खास तब्दीली नहीं की है। यद्यपि उसका स्वर अपने नायक एवं आश्रयदाता के प्रति प्रशंसात्मक है तथापि वह इतना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि उसके भार के नीचे दबकर सचाई नष्ट हो जाये।

संस्कृति

किसी भी इतिहास का भावी पीढ़ियों के लिए तभी महत्त्व है जबकि वह या तो किसी तरह की संस्कृति रचना का एक महत्वपूर्ण पड़ाव हो या फिर भविष्य के लिए कोई बहुत बड़ी सांस्कृतिक सीख देने की स्थिति में हो। इस दृष्टि से जब हम राजस्थान के इतिहास के इस छोटे से पृष्ठ का अध्ययन करते हैं तो कई बातें स्पष्ट होती हैं। पहली बात तो व्यक्ति की कर्मण्य क्षमता और दृढता से संबंधित है कि आदमी यदि कुछ करना चाहे तो क्या नहीं कर सकता। रावराजा प्रतापसिंह एक सामान्य व्यक्ति ही थे किन्तु उनकी समझ, सूझबूझ, साहस और कुछ कर गुजरने की दृढ़ इच्छाशक्ति ने ऐसा काम कर दिखलाया, जो सामान्यतया असंभव नहीं तो बहुत मुश्किल एवं चुनौतीपूर्ण होता है। मुनष्य की संस्कृति की दृष्टि से इतिहास के इस अध्याय का सबसे उज्जवल पक्ष इसकी अगाध एवं अथक कर्मण्यशीलता का है । इस कर्मण्यशीलता ने राजस्थान के पूरब में नरूका-राज्य की नींव डाली थी। जैसा कि अठारहवीं सदी के विषय में इतिहासकार मानते हैं कि यह सदी आधुनिक भारतीय इतिहास की 'अंधकारपूर्ण सदी' थी (अठारहवीं सदी के भारत के बारे में अधुनातन सिद्धान्तः एम. अतहर अलीः इतिहास - अंक १, जनवरी १९९२ पृ. १३०) इतिहासकार इरफान हबीब ने भी इस सदी को 'भारी लूटमार, अराजकता और विदेशी विजय का काल' कहा है। इसी अराजकता के चलते देश में अनेक छोटे छोटे जमींदारों-जागीरदारों का अभ्युदय हुआ और वे छोटे-छोटे राज्यों के नृपति बन बैठे। उनमें निरन्तर सत्ता-संघर्ष चलते रहे, जिसके फलस्वरूप विदेशी ब्रिटिश सत्ता को यहां अपना साम्राज्य फैलाने का सुअवसर मिल गया।

अठारहवीं सदी के भारत के बारे में अधुनातन सिद्धान्त प्रस्तुत करने वाले इतिहासकारों ने, जिनमें एम. अतहर अली प्रमुख हैं, माना है कि इस युग का भारतीय शासक वर्ग प्रौद्योगिकी और विज्ञान के क्षेत्र में यूरोपीय चुनौती का जबाब नहीं दे सका। एम. अतहर अली ने लिखा है कि "अठारहवीं सदी में भारत और यूरोप की सांस्कृतिक दूरी का बढ़ना जारी रहा, और कोई भी शासन इस दूरी को पाट सकने में समर्थ नहीं लगता था। हैदरअली और महादजी सिंधिया जैसे शासकों ने इस चुनौती को एक सैनिक चुनौती माना और उन्होंने फ्रांसीसी सहायता से आधुनिक सेनाओं के गठन के प्रयास किये। सिर्फ टीपू ने एक कदम आगे बढ़कर व्यापार और उत्पादन के विकास के प्रयास किये। मगर पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान को अपनाने की गरज से विद्यालय और संस्थाएँ स्थापित करने या अनुवादों की व्यवस्था करने की बात किसी ने भी नहीं सोची। दूसरे शब्दों में अठारहवीं सदी के शासकों ने मुगलों की प्रशासन प्रणाली को ही नहीं, बल्कि वैचारिक ढांचे को भी जारी रखा।" (इतिहास : अंक १, जनवरी १९९२, पृ. १३५) इस रूप में इस सदी के समाज और शासन व्यवस्था की एक उन्नतिशील समाज की तसवीर नहीं बनती है। यह ठीक है कि इस सदी में कई नए राजसी व्यक्तित्व उभरकर सामने आए और उन्होंने केन्द्रीय शक्ति के कमजोर होते जाने की परिस्थितियों के बीच अपने साहस, निड़रता और सूझबूझ से नए राज्यों का निर्माण कर इस धारणा को तोड़ा कि कुछ ही लोग हैं जो अपने भाग्य में राजा-महाराजा या बादशाह का लेख लिखाकर लाए हैं। राजस्थान के पूरब में जाट राज्य और अलवर में नरूका-राज्य के अभ्युदय से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि किसी भी नये और बड़े कार्य के होने और करने में संयोगों का खेल तो हो सकता है किन्तु व्यक्ति की अपनी सूझबूझ निर्णयक्षमता और सक्रियता भी किसी चुनौतीपूर्ण कार्य को करने के लिए जरूरी है। अठारहवीं सदी में भरतपुर राज्य के निर्माता महाराजा सूरजमल और उनके बाद अलवर राज्य के संस्थापक राव राजा प्रतापसिंह का सम्पूर्ण कृतित्व उक्त तथ्य को पुष्ट करता है।

वैसे कोई दो व्यक्तित्व पूर्णतः समान नहीं हो सकते किन्तु तुलना के किसी समान आधार पर राव राजा प्रतापसिंह की यदि किसी व्यक्तित्व से समानता स्थापित की जा सकती है तो वह भरतपुर के महाराजा सूरजमल से। जैसे सूरजमल का पूरा जीवन अपने राज्य के विस्तार, निर्माण एवं संग्रामों का जीवन है, वैसे ही रावराजा प्रतापसिंह का जीवन भी सत्ता संघर्षों से भरा हुआ है। युद्ध की कला और रणकौशल में ऐसे विरले ही होते हैं, जो उनकी तरह निडर और विजयश्री के संवाहक हों। महाराजा सूरजमल और प्रतापसिंह की परिस्थितियों में थोड़ा अंतर है। जब महाराजा सूरजमल भरतपुर राज्य के स्वतंत्र शासक थे, तब तक प्रतापसिंह, जयपुर रियासत के आधीन मात्र ढाई गांव के छोटे से जागीरदार थे। महाराजा सूरजमल को उनके पिता बदनसिंह ने सारी राजसी पृष्ठभूमि निर्मित कर दी थी, जबकि प्रतापसिंह को स्वयं ही सब कुछ बनाना पड़ा। इस वजह से निर्माण के नाम पर वह सामरिक महत्त्व के दुर्ग ही बनवा सका।

नटवरसिंह ने अपनी पुस्तक 'महाराजा सूरजमल' पुस्तक के बारहवें अध्याय में उनकी उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि— "भारतीय राज्य व्यवस्था में सूरजमल का योगदान सैद्धान्तिक या बौद्धिक नहीं, अपितु रचनात्मक तथा व्यावहारिक था। जाट-राष्ट्र का सृजन एवं पोषण

एक आश्चर्यनजक सीमा तक इस असाधारण योग्य पुरुष का ही कार्य था । मुसलमानों, मराठों तथा राजपूतों से गठबंधन का शिकार हुए बिना ही उसने अपने युग पर एक जादू सा फेर दिया था । राजनैतिक तथा सैनिक दृष्टि से वह शायद ही कभी पथभ्रान्त हुआ हो । कई बार उसके हाथ में बहुत काम के पत्ते नहीं होते थे, फिर भी गलत या कमजोर चाल नहीं चलता था ।" कहने की जरूरत नहीं कि इन विशेषताओं में से कमोबेश लगभग सभी रावराज प्रतापसिंह पर भी लागू होती हैं । भारतीय राज व्यवस्था में प्रतापसिंह का योगदान भी रचनात्मक एवं व्यावहारिक था । उसने भी एक नए नरूका-राज्य का सृजन एवं पोषण किया था । उसने अपनी जरूरत के अनुसार मुसलमानों, राजपूतों और मराठों सभी से समझौते किये थे और वह उनका कभी शिकार नहीं हुआ था, बल्कि अवसर के अनुरूप सभी समझौतों का लाभ उसे मिला, तभी जयपुर, भरतपुर और दिल्ली जैसे बड़े राज्यों के बीच उसका एक नवजात शिशु राज्य टिका रह सका था । इस राज्य के निर्माण और सुरक्षा के लिए उसे जयपुर, भरतपुर और दिल्ली से निरन्तर संघर्षरत भी रहना पड़ा तो कभी उनका अपना बनकर भी जब अधिकांश राजपूत राज्य मराठों से संघर्ष कर रहे थे, तब रावराजा प्रतापसिंह मराठा सरदार महादजी सिंधिया की ताकत और आधुनिक सैन्य शक्ति को भांपकर स्वराज्य को बचाने के उद्देश्य से सिंधिया के पक्ष में रहा । जयपुर राज्य के प्रति यद्यपि वह लंबे समय तक निष्ठावान रहा तथापि जब उसका अपना राज्य निर्मित हो गया, तो उसने एक स्वतंत्र शासक के रूप में निर्णय कर बर्ताव करने में कोई संकोच नहीं किया । उसका अपने नाम राशि जयपुर-नरेश प्रतापसिंह से मरते दम तक संघर्ष रहा । अपने युग पर भले ही उसका महाराजा सूरजमल जैसा जादू नहीं रहा किन्तु उसकी रणनैतिक दृष्टि और व्यूहरचना के कायल उस समय के सभी शक्तिशाली राजा-महाराजा थे । इस बात की पहचान करने में उसने शायद ही कभी कोई गलती की हो कि उसके कौन कितने काम का है ।

रावराजा प्रतापसिंह की अपने लक्ष्य के प्रति अचूक दृष्टि थी । इस लक्ष्य की सजगता उसमें इतनी थी कि उसी के अनुसार वह किसी से संबंध बनाता था या बिगाड़ता था । संबंध बनाने व बिगाड़ने में वह इतना कुशल था कि उसे धोखा दे पाना बहुत मुश्किल था । किसी से धोखा खाना जैसे उसने सीखा ही न था । वह आदमी की चाल और शक्ल देखकर इस बात का अनुमान लगा लेता था कि कौन कितने पानी में है .। राज्यहित उसके लिए सर्वोपरि था । उसे साधने में न वह हिन्दू का भेद मानता था, न मुसलमान का । उसने दिल्लीपति बादशाह के समर्थन में भरतपुर के जाट राज्य के विरुद्ध युद्ध किया । इस युद्ध में उसकी विजय हुई, जिससे भरतपुर-नरेश को आगरा का किला खाली करना पड़ा .। 'प्रतापरासो' के रचयिता ने प्रतापसिंह की राजधानी राजगढ़ का वर्णन करते हुए लिखा है कि यहां न केवल राजपूतों के ३६ वंश रहते थे बल्कि शेख, सैयद, मुगल, पठान आदि भी आनंद के साथ रहते थे । इसी तरह वह अपनी जाति का आदर करते हुए भी जातिवाद की संकीर्णताओं में बंधा हुआ नहीं था । उसने एक प्रतापी वैश्य परिवार छाजूराम हल्दिया और उसके तीन पुत्रों खुशालीराम, दौलतराम, नंदराम पर पूरा भरोसा किया । अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए वह हल्दिया-परिवार का सहयोग लेता था । इस परिवार का संबंध जयपुर राज्य से भी रहता था । किसी ने जयपुर नरेश से हल्दिया मंत्रियों की शिकायत की कि वे अलवर से मिले हुए हैं । इस बात पर

जयपुर के राजा ने उनको तुरंत कैद करने का हुकम दिया तब राजा प्रतापसिंह जो उनको हमेशा अपना समझते थे, ने कहा—

काके हलद्या कौन नृप, पड़े फंद कहां जाय ।
बालक जिमि पाले त्रहु भाई, लघुता ते मैं किये बड़ाई ॥

इससे स्पष्ट है कि आमतौर पर इस समय की जैसी सामन्ती सभ्यता और संस्कृति थी, उसी का मोटे तौर पर अनुसरण रावराजा प्रतापसिंह ने किया था । गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरित मानस' में एक जगह कहा है— "बैरी पुनि छत्री पुनि राजा, छल बल कीन्ह चहै निज काजा ।" हमारे यहां राजा, क्षत्रिय और शत्रु इनका चरित्र ही यह माना जाता है कि ये छल-बल से अपना काम पूरा किया करते हैं । इनकी कोई नैतिकता नहीं होती । छल करना और बल के भय से अपने स्वार्थ की पूर्ति करना इनके जीवन का उद्देश्य होता है । राजनीति के इस लोकमान्य और लोकव्यवहारी सिद्धान्त को मानते हुए अठारहवीं सदी के ये उभरते हुए जमींदार अपने जीवनपथ पर प्रशस्त हुए ! उस समय की बात छोड़ें, आज भी अनेक लोग इस बात को निःसंकोच कहते हुए और मानते हुए देखे जाते हैं कि राजनीति और प्रेम में सब कुछ जायज होता है । यह हमारे सम्पूर्ण समाज का सामूहिक मनोविज्ञान है । जो कई शताब्दियों से निरन्तर चल रहा है । दिल्ली, जयपुर, जोधपुर, अलवर, भरतपुर, उदयपुर, मराठा आदि सभी राज्य व्यवहार में छल-बल के सिद्धान्त को जायज मानते थे और छल बल के आधार पर विजयी व्यक्तित्वों का जनता सम्मान भी करती थी । पहले की बात जाने दें, आज भी जनता में जितना छल-बल की व्यावहारिक मान्यता है, उतनी ईमानदारी और नैतिकता की नहीं । दरअसल हमारे देश और समाज की सैद्धान्तिक और बौद्धिक संस्कृति अलग रही है और जीवन-व्यवहार की संस्कृति उससे भिन्न । सैद्धान्तिक संस्कृति तो हमारी 'त्यागपूर्वक योग करने' अर्थात् 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' की रही है किन्तु व्यवहार सामान्यतया इसके विपरीत रहा है । सिद्धान्त में हमने 'सत्यमेव जयते' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को माना है किन्तु व्यवहार में इसके उल्टा आचरण भी किया जाता रहा है । यही कारण है कि हमारे यहां के अधिकांश शासकों का जीवन भोग-विलासी और अदूरदर्शिता का रहा । इससे समाज में भाग्यवाद और अलगाव पनपा और ज्ञान विज्ञान के प्रति समाज की सामूहिक अभिरुचि समाप्त होती चली गई । जनता में अपने शासक वर्ग के लिए ऐसी-ऐसी कहावतें प्रचलित हुईं —

बाड़ करी ही खेत कूं, बाड़ खेत कूं खाय ।
राजा हो चोरी करै, न्याव कौन घर जाय ॥

इस सबका परिणाम यह हुआ है कि राजा-महाराजा अपनी जगह-भोग-विलास और झूठी अहम्मन्यता एवं मिथ्यादर्प का प्रदर्शन करते रहे और जनता अपनी जगह श्रम करते हुए भी कष्टों-पीड़ाओं और अनाचारों के जाल में फंसी रही । तर्क-वितर्क के स्थान पर अंधास्था को सदैव तरजीह मिलती रही । सब कुछ रामभरोसे छोड़ दिया गया । इसका फल यह हुआ कि व्यक्ति में कुछ नया अन्वेषण करने और जिज्ञासा-उत्सुकता की भावना ही जैसे मर गई । इस तरह की सामूहिक संस्कृति बन जाने का ही परिणाम हुआ कि देश बाहरी और विदेशी शक्तियों का गुलाम होता चला

गया। हमारा समाज भीतर से खोखला होता चला गया। फूट और विभाजन के बीजांकुरण के लिए हमारी सामाजिक-राजनैतिक भूमि बहुत उर्वर रही। आगे चलकर उन्नीसवीं सदी के नवजागरण से हमें अपनी वास्तविकता का बोध हुआ तब जाकर बीसवीं सदी के मध्य में हम विदेशी दासता से मुक्त हो सके।

१/४ अरावली विहार
अलवर (राज.)

सन्दर्भ सूची :

* यह आलेख डॉ. मोतीलालगुप्त द्वारा सम्पादित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान द्वारा १९६५ ई. में प्रकाशित, जाचिक जीवणकृत प्रतापरासो पर आधृत है।

1. जगदीश सिंह गहलोत ने रणथंभौर - विजय का का समय १७५९ ई. माना है। और उणियारा विजय को इससे भी पूर्व माना है। इस समय रावराजा प्रतापसिंह की अवस्था १८-१९ वर्ष की थी।
2. प्रतापसिंह के लिए पातिल शब्द का प्रयोग किया है।
3. 'प्रतापरासो' के द्वितीय प्रभाव में वर्णित
4. 'प्रतापरासो' के तृतीय प्रभाव में वर्णित "माँडवा युद्ध"

विनयसिंह विजय संग्रामवर्णन : एक ऐतिहासिक विवेचन

— मोतीलाल बैरवा

विनयसिंह विजय संग्राम वर्णन काव्य महाराजा विजयसिंह के आश्रित कवि खुशाल द्वारा विरचित है । जिसकी रचना माघ वदी दशमी वि.सं.१८८१ में की थी जिसका उल्लेख स्वयं कवि ने किया है ।

संवत ससि वसु अष्ट विधु पूरण जय संग्राम ।
माघ वदी दशमी सुतिथि शुक्रवार विश्राम ॥ १५०

उक्त ग्रन्थ अप्रकाशित है जो राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान अलवर हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ४९८१ पर उपलब्ध है ।

उक्त ग्रन्थ की कथावस्तु अलवर नरेश महाराजा बख्तावरसिंह की दिनांक ११-२-१८१५ को मृत्यु हो जाने के बाद सिंहासन के लिये हुए संघर्ष एवं षड़यन्त्र से सम्बन्धित है ।महाराजा बख्तावर सिंह के किसी भी रानी से पुत्र नहीं था । बख्तावर सिंह की रखैल मूसी खवास से दो संतान, एक लड़का बलवन्त सिंह तथा लड़की चाँदबाई जो ततारपुर के ठाकुर कान्हसिंह को ब्याही गई थी । महाराजा बख्तावर सिंह ने अपने भाई सलेहसिंह के लड़के बनेसिंह (विनयसिंह) को अपने पास रख रखा था परन्तु उसे विधिवत् गोद नहीं लिया गया था । राजपूत सरदार उसे गोद लिया हुआ ही समझते थे । राजपूत सरदार विनयसिंह को तथा नवाब अहमद बख्श तथा मुगल वगैरह बलवन्तसिंह को राजा बनाना चाहते थे ।

आखिर बांकावत ठाकुर अक्षयसिंह एवं रामू खवास वगैरह ने मिलकर विनयसिंह को माघ शुक्ला ३ वि. सं. १८७१ (१२-२-१८१५) को गद्दी पर बिठा दिया तथा उसके बगल में

बलवन्तसिंह को बिठा दिया ताकि तकरार न हो। इस समय बलवन्तसिंह ६ वर्ष का तथा विनयसिंह साढ़े छः वर्ष का था।

रामू खवास ठाकुर अक्षयसिंह व नवाब सालिगराम ने दिल्ली पहुँचकर मेटकाफ साहिब रेजिडेण्ट से दोनों के लिये बराबर बराबर खिलत मांगी जिसे मेटकाफ साहिब रेजिडेण्ट ने एक गद्दी पर दो खिलअत दंगा फसाद की जड़ मानते हुए मना कर दिया। लेकिन उक्त तीनों व्यक्तियों ने मेटकाफ को समझाया कि ये आपस में लड़ेंगे नहीं मिलजुल कर शासन करेंगे। मेटकाफ ने इनकी दरख्वास्त पर गौर फरमाते हुए दो बराबर-२ खिलअत देकर रावराजा का खिताब विनयसिंह को दिया और कहा कि शासन विनयसिंह के नाम से होगा तथा सारा कार्य बलवन्तसिंह करेंगे तथा ठाकुर अक्षयसिह रामू खवास व नवाब सालिगराम की सलाह पर दोनों राजाओं के होशियार होने तक राजकाज के लिये एक कमेटी का गठन किया जो निम्न प्रकार है :-

१. नवाब अहमद बख्श— वकील अलवर रियासत तथा खिदमतगार सरकार अंग्रेज।

२. ठाकुर अक्षयसिंह— मुसाहिब

३. दीवान नोनिदराम व शालिगराम— फौजबख्शी

४. दीवान बालमुकुंद— रियासत के प्रधान

५. ठाकुर शम्भूसिंह— अलवर के किलेदार

ईस्वी सन् १८२४ तक तो ये लोग राजकाज का संचालन करते रहे, दोनों के वयस्क होने तक राज्य कार्य संचालन में राज का हित रखने के बजाय ये अपने अपने दावेदारों का अधिक ध्यान रखते थे। जब दोनों राजा जवान हुए तो सत्ता के लिये तकरार शुरू हो गई। दोनों के दो खेमे बन गये। विनयसिंह के खेमें में मल्ला, खुशाल, जहाज, चेले, नन्दराम, दीवान तथा ठाकुर अक्षयसिंह वगैरह थे। तथा बलवन्त सिंह के खेमें में अहमदबख्श नवाब, प्रभु तथा टामी वगैरह थे। विनयसिंह व बलवन्तसिंह में तकरार जब शुरू हुई जब अंग्रेज रेजीडेन्ट अक्टरलानी द्वारा इनाम के तौर पर दो पेशकब्ज तथा दो पिस्तौल विनयसिंह के पास भेजीं। विनयसिंह ने पिस्तौल ही बलवन्तसिंह को दी, पेशकब्ज नहीं, यहीं से दोनों में तकरार शुरू हो गयी।

इसी बीच विनयसिंह के तरफदारों ने एक मेव को ६०००/- रुपये तथा कुछ गाँव देने का लालच देकर नवाब अहमद बख्श की हत्या के लिये तैयार किया जिसने दिल्ली में रेजिडेण्ट की मेहमानी में रह रहे अहमदबख्श पर हमला किया, नवाब घायल हो गये और बच गये। भेद खुल जाने पर मेव, मल्ला, खुशाल, जहाज चेले व नन्दराम दीवान कैद कर लिये गये।

रामूखवास ने मुंशी करम अहमद के मारफत जनरल अक्टरलानी के समक्ष अपना पक्ष प्रबल रूप से बढा लिया। जनरल अक्टरलानी ने बलवन्तसिंह को छोड़कर उसके तरफदारों को यानि राज्य में दंगा फसाद करने वालों को तबाह कर देने की इजाजत दे दी। रामूखवास ने अलवर लिख भेजा कि बलवन्तसिंह को छोड़कर उसके तरफदारों को मार डालो।

फलस्वरूप विनयसिंह के तरफदारों द्वारा बलवन्तसिंह के तरफदारों को मारने के लिये जो घटनाक्रम हुआ उसी को कवि खुशाल ने अपने ग्रन्थ "विनयसिंह विजय संग्राम वर्णन" में प्रस्तुत किया है ।

कवि ने उक्त रचना स्वयं महाराजा विनयसिंह के आदेश पर की है । कवि के शब्दों में ।

विनयसिंह महाराज ने आज्ञा करि बुलाई ।
कवि खुशाल रासो सुघरि करिये मन चित लाई ॥२६ ॥

प्रारम्भ में कवि ने छन्द ८ से २० में अलवर के नरूका वंश के सन्दर्भ में सूर्यवंशी क्षत्रियों की वंशावली दी है जिसमें मनु से इक्ष्वाकु तथा इक्ष्वाकु से सीधे आमेर नरेश उदयकरण से शुरू की है । उक्त वंशावली इतिहास से कुछ हटकर है इसलिए वंशावली नीचे दी जा रही है—

१. उदयकरण के वरसिंह	२. वरसिंह के महिराज
३. महिराज के शम्भुकुमार	४. शंभुकुमार के नरुशाह
५. नरुशाह के नरु	६. नरु के लालोजी
७. लालोजी के उदयसिंह	८. उदयसिंह के लाडखाँ/लाडसिंह
९. लाडखाँ के फतेहसिंह	१०.फतेहसिंह के राव कल्याण
११.राव कल्याण के आनन्दसिंह	१२.आनन्दसिंह के तेज सिंह
१३.तेजसिंह के जोरावरसिंह	१४. जोरावरसिंह के मुहबतसिंह
१५.मुहबतसिंह के प्रतापसिंह	१६.प्रतापसिंह के बख्तावर सिंह
१७.बख्तावर सिंह के विनयसिंह	

उपर्युक्त वंशावली कवि ने बताई है वह ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय है, क्योंकि यह इतिहास से पूर्णतः मेल नहीं खाती । पिनाकीलाल जोशी एवं एस.एल.नागोरी ने अपने अपने अलवर राज्य के इतिहासों में तथा श्यामलदास ने अपने वीर विनोद ग्रन्थ में अलवर के नरूका राजपूतों की वंशावली में आमेर के उदयकरण के वरसिंह, वरसिंह के महिराज तथा महिराज के पुत्र नरू से अलवर के नरूका वंश का उद्भव बताया है । जबकि "विनयसिंह विजय संग्राम वर्णन" ग्रन्थ के ग्रन्थकार खुशाल ने इससे एक कदम हटकर महिराज के पुत्र शम्भुकुमार, शम्भुकुमार के पुत्र नरूशाह तथा नरूशाह के पुत्र नरू से नरूका वंश का उद्भव बताया है । जो कि इतिहास के शोधकर्ताओं के लिये महत्वपूर्ण तथ्य है । इतिहास में शम्भुकुमार व नरूशाह नाम वर्णित नहीं है । इसी वंशावली में प्रताप सिंह का पुत्र बख्तावर सिंह बताया है जो कि दत्तक पुत्र था । बख्तावर सिंह का पुत्र विनयसिंह को बताया है जो भी इतिहास सम्मत नहीं है । विनय सिंह बख्तावर सिंह के भाई सलेहसिंह का पुत्र था । स्वयं कवि के शब्दों में -

बख्तावर के सुत भयो विनयसिंह महाराज ।
शूरवीर रनधीर धर सब राजनि सिरताज ॥ २० ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने झगड़े का हेतु बलवन्तसिंह को न मानकर बलवन्तसिंह के तरफदारों को माना है । छन्द संख्या ३० में कवि ने बलवन्तसिंह के तरफदारों पर षडयंत्र का दोषारोपण करते हुए नवाब जयकिशन तथा टामी पर आरोप लगाते हुए कहा है —

बहुत प्रपंच रच्यो सबनि बली प्रभू कर हेत ।
मिलि जयकिशन, नवाब अरु टामी फाटत नेत ॥
टामी फाटत नेत कियो सुख दीरधि धरके ।
राज बिगारन काज, लाज ने कोनहीं करिके ।
पौरुष बल बहुकरे ठौर ठौर मंत्रे रहत ।
रात द्यौस दुरि दुरि फिरत वक्त पूछत बहुत ॥ ३० ॥
बलवन्तसिंह को दोष नहीं इन सबहुन को जानि ।
बुद्धि कोन की थिर रही, संगति दोष प्रमान । ३१ ॥

बहुत दिनों तक इस प्रकार की मंत्रणा चलती रही उक्त बात आखिर रामू खवास को ज्ञात हुई और उसे यह विश्वास हो गया कि अब बड़ा उपद्रव होने वाला है । रामू खवास ने यह बात मन में रखी और अवलोकन करता रहा । रामू खवास ने कृष्णगढ़ व टपूकड़ा जाकर नवाब को इतिला दी इस पर नवाब को बड़ा दुख हुआ । टपूकड़ा से सारी खबर नवाब अहमद बख्श ने अलवर भेजी । प्रभु अपने साथ बहुत सी सेना लेकर टपूकड़ा पहुँचा । प्रभु ने देखा कि यहां कुछ बस चलने वाला नहीं है, बहुत उदास हुआ । रामू खवास ने चतुराई से सबको भेटपांव देकर लौटा दिया । रामू खवास अलवर आया और अलवर से दिल्ली चला गया । दिल्ली में जनरल अक्टरलानी ने नवाब अहमद बख्श और रामू खवास का बिगाड सुना तो रामू खवास को बुलाकर जनरल अक्टरलानी ने आदर सत्कार देकर समाचार पूछा । जनरल अक्टरलानी द्वारा रामू खवास को आदर सत्कार दिया जानकर नवाब अहमदबख्श के तनबदन में आग लग गयी । अहमदबख्श नबाव ने रामू ख्वास से मिलने का प्रयास किया, पर संभव नहीं हुआ । अहमद बख्श नवाब ने अलवर बलवन्त सिंह को लिख भेजा—

जब जानि नहीं मिलि है ख्वास, पछताई रहित मन में कुवास ।
सु कागज लिखि अलवर मवास, तुव करऊ उपद्रव बहु प्रवास ॥५४ ॥

बलवन्तसिंह ने कागज पढ कर अपने महलों में प्रभु, टामी, सुल्तान खान सैयद, मुगलमीर वगैरह को बुलाकर सलाह मशविरा किया—

सुमंत्र करत बहु विधि बनाय, कीनी सलाह बहुधा सुझाव ।
अब करऊ उपद्रव भाँति-भाँति, जो मन में निहचे सुहाति ॥ ५७ ॥

जब उक्त लोग उपद्रव करने लगे तो ठाकुर अक्षयसिंह ने समझाया, तब सब अपने अपने घर चले गये । ठाकुर अक्षयसिंह ने जयकिशन नवाब को बुलाकर समझाया कि उपद्रव मत करो, पर वह नहीं माना । ठाकुर झुंझलाकर बोले कि जा रे कुबुद्धि जो होनहार है सो होगा ।

ठाकुर अक्षयसिंह के यहां से जयकिशन नवाब सीधे बलवन्तसिंह के पास आगये। और युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। मीर मुगल, सुल्तान खान सैयद, उमर खाँ, रोहिल्ले, प्रभु, टामी, लक्ष्मण दीवान, इलाहीबख्श, दानसिंह जोगी आदि शूरवीर बख्तर बांध टोप पहन कर तमंचा, धनुषबाण, तलवार, बन्दूक आदि भांति-भांति के शस्त्रों से सुसज्जित होकर शोर मचाने लगे, तथा कहने लगे कि हमारा मुकाबला कौन कर सकता है । सब इकट्ठे होकर विनयसिंह के महलों के भीतर घुस गये। कनकसिंह नाम के वीर से बोले कि तुम राज काज छोड़ दो, कनकसिंह बोले कि नहीं छोड़ेंगे। जो जानो सो करो तथा दरवाजे के अन्दर नहीं आने की चेतावनी दी।कवि ने झगड़े की शुरुआत बलवन्तसिंह की तरफ से बतलाई है पर इसका ठोस प्रमाण नहीं मिलता जबकि श्यामलदास के "वीरविनोद" ग्रन्थ में तथा पिनाकी लाल जोशी व एस. एल. नागोरी के अपने अपने अलवर राज्य के इतिहासों में पहल विनयसिंह की बताई है।

अब विनय सिंह के दल की तैयारी देखिये। बलूसिंह ठाकुर अक्षयसिंह के पास आये और कहा की संसार में जीवन कितना शेष है। स्वामी धर्म की पालना के लिए तथा राजपूती भावना के तहत इसका सहज उपाय किया जाये। ठाकुर अक्षयसिंह ने हमीरसिंह व अमरसिंह दो उद्‌भट वीरों को बुलाकर सुसज्जित होने का आदेश दिया। ठाकुर का आदेश पाते ही अमरसिंह, हमीरसिंह, धोंकलसिंह, हिम्मतसिंह, मंगलसिंह, चतुरसिंह, प्रेमसिंह, हनुमंत सिंह, नाहर सिंह, जयतसिंह, रघुनाथसिंह, चित्रसिंह, सलेहसिंह, सूरसिंह तथा यदुवंशी हाडावीर, नरूकावीर, सिसोदिया, कछवाहा, खींची, परमार, चंदेले, निरधर के चौहान आदि बहुत से शूरवीर तरह तरह के हथियारों से सुसज्जित होकर तथा अपने अपने हथियारों को सम्भाल सम्भाल कर तैयार होकर युद्ध में आगये। और युद्ध करने लगे, दुश्मनों के द्वार पर जाकर ललकारने लगे।

युद्ध शुरू हो गया तब मल्लसिंह ने महाराजा विनयसिंह को ठाकुर अक्षयसिंह के घर जाने को कहा—

वर मल्लसिंह करि करि विवेक। निज़ मंत्र कहो अदभुत अनेक॥
अब आप जाऊ ठाकुर सुगेह। हों कहत बात निज करि सनेह॥ ९१॥

तथा मल्लसिंह ने गरीबों को दान देकर तृप्त किया। जिसे सबने सराहा। महाराजा विनयसिंह ठाकुर अक्षयसिंह के घर चले गये। युद्ध में मल्लसिंह ने आंतक फैलाया दुश्मनों की फौज हड़बड़ा गई स्वयं कवि के शब्दों में -

अरि सुन्दरि सब भजे त्रास ते डरि डरि के।
नैनन मूंद मलीन रोई दुख दीरधि धरि के।
मुख पंकज कुम्हलाय कहे चुप चाप रहो सब।
सेन वेन नित करे कहो किहि भाँति रहो अब।
ऐसी बिहाल उरसालं है सखि कपि सूखति सहमि।
वर नाम मल्लजी दानवर बढि प्रताप तेरो पुहमि॥ ९३॥

उक्त युद्ध का समय कवि ने सावन सुदि दसमी बताया है (विक्रमी संवत १८८० श्रावण शुक्ला दशमी १८-७-१८२३)

अब बली पंथ साइति रषाय । सुंभ श्रावण सुदि दशमी सुहाय ।
अब करत टार को नेत आहि । सुभा मस्त इक क्षत्रिय सुभाय ॥ ९५ ॥
अब युद्ध का वर्णन देखिये । बलवन्तसिंह के सैनिकों का युद्ध -
परी धुम दोऊ दिशा वीर धाये । चलावे तमंचा जजाल सुभाये ।
चले बाण पे बाण चारों दिशा से, करें वीर घातें महामोह माते ॥ ९८ ॥
करे धूम भारि, मुगिल्ले, रुहिल्ले, चलावे कटारी तेगेसुभिल्ले ।
तमंचे कटारी जजाले सुभारी, करे वीर घाते हंसे धीर धारी ॥ ९९ ॥
फिरि लरत वीर अस्त्रनि सम्हारि । वार करत कजाकी प्रभु मंझारी ।
फिरि टामी फाटनफट फटात । सब गिरत परत अरु लटपटात ॥१०२ ॥
सुरग चलत छल धरि धारि, वे मरत मुगिल्ले भारी भारी ॥ १०३ ॥
अब विनयसिंह के सैनिकों का युद्ध वर्णन देखिये—
वरविनय सिंह को हुकुम धारि । अब करत युद्ध बहुविध सम्हारि ।
अब तेग तमंचा तुषक वारि । बहु कडाविन मुगलन कुमारि ॥
वर वरछी चलावे नोंक दार ॥१०५ ॥
नहिं धीर धरे क्षत्रिय उदार । गोली बरसत बहु अपार ॥
मनु मेह परत झुकनि सुधारि । समर चमके बिजलु आहि ।
तोप तडाख घन गरज ताही ॥१०६ ॥
सुख महल बीच आये मझारि । अब क्षत्रिय धर्म राखत सुधारि ।

इस तरह दोनों पक्षों के युद्ध में कवि का महाराज विनयसिंह की तरफ झुकाव था। कवि ने युद्ध के वर्णन में भी पक्षपात किया है । तथा विनयसिंह के चुनिन्दा वीरों के गुणों व युद्ध कौशल का पृथक् पृथक् वर्णन किया है ।

धोकलसिंह उदभट उदण्ड अब करत रारि अद्‌भुत अखण्ड ॥ १०७ ॥
यह चित्रसिंह, शूरवीर सिंह करत मार अद्‌भुत गंभीर ॥
अब सिलहसिंह बहु रोष धारि । गिरि परत मरत सैयद जुझार । १०८ ।
ब्रजसिंह बहुत समर जार । जसमंत सिंह करि करि प्रहार ।
बहु सुभट मारु करि करि अनंत । यह मीर मरे मुगिलन अंत ॥१०९ ॥
अब आप युद्ध का दृश्य देखिए ।
मारु करि अति कठिन सो परी लुथ्थ पे लुथ्थ ।
मुगिल रुहिल्ले रुकटि सुंड मुंड परि जुथ्थ ॥११० ॥

उक्त युद्ध आधी रात से चल रहा था । सुबह होने पर महाराजा विनय सिंह ने हुकुम दिया कि मुल्ला बहुत हैं उन्हें तोप लगाके निकाल बहार करो । बल्लूसिंह ने तोप मंगाकर बलवन्तसिंह के महल की तरफ लगा दी । जब तोपें तडातड़ चलने लगीं तो बलवन्तसिंह के महलों में भगदड़ मच गई । महलों में उपस्थित बहुत से मुगल वीर मारे गये कुछ छिप गये और कुछ भाग गये । तथा कुछ बच गये ।

गोली गोला परत हैं ज्यों बरसा के मेह । मानस की का बात पक्षी पंख न देत ।

घेर लिए अति विकट बहु शूरवीर सामंत । मारत है कठिन है रहो कुछु नहिं अन्त । ।११६ । ।

आखिर बलवन्तसिंह के महल से बचे लोग हाथ जोड़कर निकलने लगे और अभयदान मांगने लगे । महाराजा विनयसिंह ने उनके हथियार छोड़ देने पर उन्हें अभयदान दिया, विनयसिंह की जीत हुई विजय के बाजे बजने लगे ।

दुदंभी बाजे विजय के शत्रु भये सब दीन ।

विनयसिंह महाराज की महि मंडल जस कीन ॥ १२४ ॥

छन्द १२४ से १२९ में विजय के वाद्यों एवं दान देने का वर्णन किया है तथा रामूखवास, अक्षयसिंह, बालमुकुन्द दीवान आदि के साथ ख़ुशियां मनाने का वर्णन है । छन्द सं.१३० में महाराज विनयसिंह राजनैतिक सूझबूझ का परिचय देते हुए इन शूरवीरों के साथ जयपुर गये और वहां से सम्मान प्राप्त किया ।

सुजाहि पहुँचे जयपुर सुथान, जह बसत राजराजाभिधान ।

तह मिलि ख्वास रामू सुभाई, वर अक्षयसिंह ठाकुर सुहाई ॥१३० ॥

तह राज बहुत सनमान देत । दे सिरोपाव करि करि सु हेत ।

साहिब बुलाई बहु भाँति भाँति, बहु मंत्र करत आनन्द सुहाति ॥१३१ ।

जयपुर राजा के सम्मान सिरोपाव लेकर महाराज विनयसिंह आ गये और बहुत से कवियों को दान देकर सम्मान किया ।

आगे कवि ने १३६ में रामू खवास, १३७ में ठाकुर अक्षयसिंह, १३८ में बलूदेव दीवान, १३९ से १४२ में कुंवर मल्ल जी की युद्ध में विजय के लिये प्रशंसा कर आभार व्यक्त किया है । आगे छन्द १४७ तक महाराज विनयसिंह के गुणों का बखान किया है । छन्द संख्या १४८ में मुगलवीरों की पराजय के बाद के हाल का वर्णन करना कवि नहीं भूला है ।

मुसल्ला जुरे सब हल्ला द दे और रल्ला करे बहु गल्ला बजाइके ।

पहल्ला की ढाढी ओ छल्ला करे सुपल्ला संम्हारे सु कल्ला उठाइके ।

विनयसिंह प्रताप के तेज ही सों मुल्ला नवाब भई अकुलाईके ।

अल्ला करे बहु भल्ला बचे तऊ टल्ला दिये सब गल्ला छिड़ाईके ॥ १४८ ॥

कवि खुशाल ने अपने रासो ग्रंथ को केवल एक घटना तक ही सीमित रखा है और घटना का ब्योरेवार वर्णन दिया है। जिसका इतिहास के ग्रन्थों में अभाव है। बलवन्तसिंह को विनयसिंह द्वारा कैद किया जाना श्यामलदास के "वीर विनोद" एवं पिनाकी लाल जोशी तथा एस.एल. नागौरी के अपने अपने अलवर राज्य के इतिहासों में उल्लेख है। पर कवि ने इसका उल्लेख अपने काव्य में नहीं किया है। तथा अलवर राज्य के वंश की वंशावली में शंभुकुमार और नरुशाह के नये नाम देकर अलवर व जयपुर के इतिहास के शोधकर्ताओं को सोचने को विवश किया है। जिसे मैं उन पर छोड़ता हूँ। विनयसिंह द्वारा राज्य के विकास में योगदान का कवि ने कोई जिक्र नहीं किया है। राज्य सिंहासन के लिये हुए इस युद्ध में कवि ने बलवन्तसिंह व उनके तरफदारों द्वारा रचे गये षड्यंत्र की नवीन जानकारी दी है। जिसका उपर्युक्त संदर्भित ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं है। उक्त घटना को अलवर राज्य के इतिहास में महलरासो के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि उक्त युद्ध महलों व महलों के पास ही लडा गया था।

गवेषक, राजस्थान प्राच्य विद्या
प्रतिष्ठान, शाखा कार्यालय,
महल चौक, अलवर

शंकर रावकृत भीमविलास की ऐतिहासिकता

— डॉ. महावीर प्रसाद शर्मा

'भीमविलास'(नीमराणा (अलवर) के चौहान शासक राजा भीमसिंह चौहान के आश्रित कवि शंकर राव द्वारा विरचित एक ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य है । यह ग्रथ हमें नीमराणा के राजा राजेन्द्र सिंह जी चौहान के सौजन्य से देख को मिला । इसके साथ ही जीर्णशीर्ण अवस्था में एक और रचना 'चौहान वंशावली' भी मिली । यद्यपि ये दोनों रचनाएं अधिक प्राचीन नहीं हैं, फिर भी इनमें अजमेर के सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के वंशजों आदि के संदर्भ में नीमराना राजवंश संबंधी मान्य जानकारी लिपिबद्ध है ।

उपर्युक्त दोनों रचनाओं में चौहान वंशावली नीमराणा के राजा विजय सिंह देव (सन् १८४२-१८५६ ई.) के शासनकाल में संकलित की गई थी । दूसरी रचना 'भीमविलास' प्रबन्ध काव्य की रचना राजा विजय सिंह देव के पौत्र राजा भीमसिंह जी देव (सन् १८६८-१९७७ ई.) के शासनकाल में उनके आश्रित कवि शंकर राव ने, २२ फरवरी १८७४ ई. को प्रारम्भ कर राजा भीमसिंह जी के पौत्र राजा जनकसिंह जी (सन् १८८५-१९३२ ई.) के शासनकाल में सन् १९०४ ई. के मध्य १९७ छंदों में सम्पूर्ण की गई थी । इस काव्य की प्रतिलिपि को लिखकर प्रतिलिपिकार कुंदनलाल ने १९ जनवरी १९०५ ई.को पूर्ण किया था । लेकिन ये दोनों रचनाएँ एक दूसरी की पूरक लगती हैं । 'भीमविलास' काव्य में चौहान वंशावली का अत्यधिक आश्रय लिया प्रतीत होता है । यद्यपि कहीं कहीं समय सूचक वर्ष उलट पुलट भी गये हैं ।

'भीमविलास' काव्य ग्रंथ का इस दृष्टि से अत्यधिक महत्व है कि पृथ्वीराज तृतीय की मृत्यु एवं अजमेर के चौहान राज्य के पतन के बाद पृथ्वीराज तृतीय के भाई-भतीजों का क्या हुआ ? वे कहां-कहाँ गये ? और अपने राज्य कहां-कहाँ स्थापित किये ? इन प्रश्नों के प्रामाणिक उत्तर अभी

तक अप्राप्त ही हैं । इस संदर्भ में प्रसिद्ध इतिहासकार स्व. डा.रघुवीरसिंह जी, महाराज कुमार सीतामऊ के ये शब्द उद्धृत करना चाहूँगा । वे कहते हैं-'वंशावली' तथा 'भीमविलास' में दी गई माणिक्य राव चौहान के बाद पृथ्वीराज तृतीय तक की पीढ़ियों की छानबीन ईसा की बीसवीं शताब्दी की आधुनिक ऐतिहासिक खोजों से प्राप्त जानकारी के आधार पर की जा सकेगी ।

सम्राट् पृथ्वीराज चौहान तृतीय (मृ.११९३ ई.) के बाद चौहानों का टीकायती ठिकाना राठ क्षेत्र का नीमराणा राज्य ही रहा है । यहां के शासक सदा से 'राठपति' कहलाते रहे हैं । राठ क्षेत्र के सम्बन्ध में ओडवायर महोदय कहते हैं-

The estate lies in the track known locally as the Rath, were the jurisdiction of Ulwar, Jeypere, Fatiala, Nabha and Brithsh Government adjoin, and which is pre-eminently the home of the Chohan Rajputs claiming descent from Prithvi Raj, the last Hindoo Emperor of Delhi and among Rajputs acknowledged as the bravest of the brave. This triat of their character is enshrined in the proverb Kath hate Rath na hate(The plough handle may bend but not the Rath(Rajputs)).[1]

यह तो सर्व विदित ही है कि राठपति राजा चन्द्रभानसिंह चौहान के दरबार में उनके आश्रित कवि जोधराज ने सं.१८७५ में हम्मीररासो की रचना की थी । उनके पूर्वज महाकवि चन्दवरदायी ने अपने आश्रयदाता सम्राट् पृथ्वीराज चैहान के चरित्र को पृथ्वीराज रासो के माध्यम से अमर कर दिया था । उसी चन्दवरदायी के वंशज महाकवि शंकर राव ने चौहानों के टीकायती एवं पृथ्वीराज चैहान के वंशज राजा भीमसिंह जी की आज्ञा से 'भीमविलास' [२] की रचना की थी । शायद विद्वानों को यह बात चौंकाने वाली लगेगी, किन्तु स्वयं महाकवि शंकर रांव आत्म परिचय देते हुए महाकवि चन्दवरदाई को इस प्रकार स्मरण करते हुए कहते हैं-

श्रीगिरधर गुरुचरण में, बार बार सिर नाय ।
(वरणों) भीमविलास इह, दीजियै ग्रंथ लिषाय ॥३ ॥
क्रपा पाय कवि चन्द यह, बखानी वरदाय ।
भूत भविस्यति (जिन्हे), दीनू भैव बताय ॥४ ॥
ताही के वरवंश में, माइ होतु सहाय ।
हरजिवंत हरसिद्ध तव, नमो नमो महामाय ॥५ ॥

जिस प्रकार महाकवि चंद देवी भक्त माने जाते हैं, उसी प्रकार कवि शंकर राव भी देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं-

॥छन्द पद्धरी ॥

तुहीं भवताप निवारन वार, करै महमां नितवेद प्रचार।
तुही कविचंद दियो वरदान, भविष्यति भूत कर्यो व्रतमान ॥८ ॥
रह्यो विनती कर शंकर जोय, दीजियै मात अहमें पद मोय।
नमो सत रूप नमो व्रत रूप, नमो शुभ कारैज सिद्धि अनूप ॥९ ॥

अत: महाकवि शंकर राव महाकवि चंदवरदायी के श्रेष्ठवंश में उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा भीमसिंह जी की प्रसन्नतार्थ भीमविलास काव्य की गुरु आज्ञा से फाल्गुन सुदी पंचमी रविवार, वि.सं.१९३० (तदनुसार २२ फरवरी १८७४ ई.) में रचना प्रारम्भ की जिसमें पहले चौहान वंश वर्णन किया गया है तथा बाद में राजा भीमसिंह जी जनकसिंह जी तक के राजाओं के जीवनचरित की झांकी प्रस्तुत की गई है। स्पष्ट ही इसमें पृथ्वीराज रासो की शैली का अनुसरण किया गया है।

वर्ण्य विषय :

कवि शंकर राव सर्वप्रथम गणपति, सरस्वती, स्वगुरु गिरधरदास एवं देवी उमा की नौ छंदों में प्रशस्ति प्रस्तुत करते हैं। इसके बाद राजाज्ञा से भीमविलास की रचना प्रारम्भ कर रचनाकाल सम्बन्धी ४ छन्दों को उद्धृत करते हुए कहते हैं-

राजतै राजधानै, औ ठिकाने नीवराने,औपि जानै चहुवानै तौ छतीस वंसवानै है।
आनै उपमाने उपमेय हो रहानै सब, पीथल प्रभुति कविचंद कै वखानै है।
शंकर सुजान कुल ताही कै म्यानै, भूप भीम फुरमांनै (ग्रंथ) कारक करानै है।
मान सब मानै दै असीस कवितानै, लग्या रूपक बनाने ओ विलास बरहाने है ॥

नीमराना वर्णन:

पर्वतशिखर स्थित महलों में निवास करने वाले राजा भीमसिंह नीमराणा के अधिपति है। उनके राज्य में चतुर्वर्ण सुखपूर्वक रहते हुए निज निज धर्मों का पालन करते हैं। राजा भीमसिंह जी के इष्टदेव लाडले बालकृष्ण और उनके भ्राता बलराम हैं। राज्य में सुन्दर सुन्दर बाग बगीचे, तालाब और बाबड़ियां सुशोभित हैं। देवालयों की शोभा का तो कहना ही क्या ? हाट-बाजार सजे धजे हैं तथाप्रजा सुखपूर्वक रहती है। इसके बाद छंद संख्या १९ से २७ तक कवि शंकर भगवान् शंकर की स्तुति करते हैं। इस स्तुति में उनका काव्य-कौशल देखते ही बनता है।

चौहान वंशावली:

इसके बाद 'चौहान वंशावली' का वर्णन कवि शंकर राव, राजा विजयसिंह चौहान के समय में (वि.सं.१८९९, सन् १८४२ ई.)में संकलित चौहान वंशावली का आश्रय लेते हुए करते हैं-श्रीमन्नारायण ॥२ ॥ ब्रह्मा ॥२ ॥ भृगुऋषि ॥३ ॥ भार्गव ऋषि ॥४ ॥ ऋचीक ऋषि ॥५ ॥ यमदग्नि ऋषि ॥६ ॥ परसराम अवतार ॥७ ॥ वत्स ऋषि ॥८ ॥ सतयुग तांही ॥ अग्निकुण्ड उत्पत्ति ॥ आहूती दई जब पुरष प्रगट भयो ॥

इसके बाद छंद सं.२८ से ३३ तक चहुवान-उत्पत्ति का वर्णन किया गया है । कारण वहीं जो गीता में बताया है - यदा यदा हि धर्मस्य-अर्थात् जब जब पृथ्वी पर पापों का भार बढ़ा, असुरों के आतंक बढ़ने लगे, तब सभी देवता भयभीत होकर भगवान की शरण में गये जिनकी आर्तवाणी से प्रभु द्रवित हो गये । फलस्वरुप आबू पर्वत पर यज्ञ हुआ, जिसमें ऋषि-मुनियों की आहूतियों के आह्वान से भगवान विष्णु के स्वरूप वाले विविध आयुधों से युक्त चतुर्भुजी पुरुष प्रकट हुए । शंकर कवि कहते हैं कि भगवान परशुराम के द्वारा २१ बार पृथ्वी क्षत्रिय विहीन किये जाने के बाद भगवान् विष्णु की अंशकला से चतुर्भुज चहुवान प्रकट हुए ।

इसके बाद कार्तिक के द्वारा यह बताया गया कि उस समय सुभीनर नाम के सोमवंशी राजा ने चतुर्भुज चहुवान के साथ सावग्या नामक अपनी पुत्री का विवाह कर दिया जिससे चाह ऋषि प्रकट हुए । वत्स ऋषि ने चाह ऋषि को गोत्राचार मंत्र दिया । इसी से वह चहुवान पुत्र चाह, वत्स गोत्री कहलाया ।

कवि ने भीमविलास के ३४ वें छप्पय में गोत्र प्रवरादि का वर्णन किया है । सामवेद, अनलकुंड उत्पत्ति, भृगुवंश, कात्यायनी शाखा, त्रिपुर पुर, गोभिल-सूत्र, वत्सगोत्र, क्षेत्रिय वर्ण, गायत्री ब्रह्म गुरु भार्गव,-देश पूर्व टंकारपुर, आशापूर्णा कुलदेवी, आबूराजकुलगिरि, विल्ववृक्ष-कुलवृक्ष ।

कलियुग के चौहानः

कलियुग में चौहान राजाओं का राण और फिर भान विरुद पड़ा और पंचाण या पंचराण राजा से हरिमान राजा तक ११४ पीढ़ी राज्य किया । राजा हरिमान के माणिकराव चौहान का जन्म हुआ । राजा माणिकराव ने एक बड़ा भारी अनुष्ठान किया और घोर तपस्या की । परिणामस्वरूप आशापूर्ण करने वाली आसापुरा तथा संभल की संभरी माता दोनों प्रकट हुई । उनके वरदान से सांभर जैसी नमक की झील प्राप्त हुई और वही सांभर ग्राम की स्थापना की । यह वि.सं.७०३ की बात है । माणिक राव संभरीनाथ कहलाये और कुलदेवी सतयुग में आदिशक्ति थी, वही त्रेतायुग में अम्बिका, द्वापर में आनन्दी तथा कलियुग में आसावरी कहलाई ।

इसके बाद छंद सं.४९ से ६६ तक माणिक्य राव से लेकर पृथ्वीराज चौहान तृतीय तक और फिर पृथ्वीराज तृतीय से राठ के चौहान नरपतियों तक की वंशावली निम्न प्रकार प्रस्तुत की है-

(१)माणिकराव (२)सिंधुराव (३) लाखनसी (२४ पुत्र हुए) (४)विजयराज (५) हरिराज (६) पदमसी (७) सालमान (८) अजयपाल (अजमेर की स्थापना) (९) बीसल (१०) अनैसी (आना) (११)पिथौरा (१२) आलण (आल्हणोत कहलाये) (१३) गेंदराज (१४) बुधराज (१५) कंठपाल (बुधराज का अनुज) (१६) गंगदेव (१७) सोमेश्वर (छोटा भाई कान्हड़ देव या कान्ह सामन्त सिरोमणि कहलाता था) (१८) पृथ्वीराज तृतीय (दो पुत्र कंवरपदे ही स्वर्गवासी हुए) (१९) भोमेश विजयराज (काका कान्ह का पुत्र जिसे पृथ्वी राज ने गोद लिया, ईटागढ़ या इंटोली बसया) (२०) लाखन (माढन गद्दी बनाई) (२१)संकट (२२ पुत्र हुए) (२२)लाह (२३)अंजनदेव (२४)मदनसी (मुंडावर गद्दी बनाई)

(२५)पदमसी (२६)मोकलसी (२७)धीरदेव (१९ पुत्र हुए) (२८)अनैसी (२९)नानगदेव (३०) बीहड़देव (३१) हालाजी (सात पुत्र हुए) । बड़े पुत्र हांसा जी मुण्डावर की गद्दी पर विराजे और मुसलमान बन गये । छोटे राजदेव जी ने नीमराणा गद्दी की स्थापना की । उनसे छोटे बीहड़देव जी बडोद, तेजसिंह और रुदोजी बड़ाली बैठे । छठे भोजराज जी हुए और सातवें बादशाह के पास चले गये ।

नीमराणा के चौहानः

(३२) राजा राजदेव जी (गद्दी नीमराना सं.१५२१) (३३) पूर्णदेव (३४) बीझराज (३५) नरु (३६) जयतसिंह (३७) प्रताप सिंह (३८) डूंगरसिंह (३९) खडगसिंह (४०) कल्याणसिंह (४१) बलकर्ण (४२) रघुनाथ सिंह (४३) जैतसिंह (४४) प्रताप सिंह द्वितीय (४५) चतुरसिंह (४६) महासिंह (४७) चन्द्रभानसिंह (४८) पृथ्वीसिंह (४९) विजय सिंह(चौहान वंशावली संकलित करवाई) (५०) ईश्वरीसिंह (५१) भीमसिंह (५२) मुकुन्द सिंह (५३) जनक सिंह (५४) उमरावसिंह (५५) राजा राजेन्द्र सिंह (भीमविलास राजा जनकसिंह जी के काल में पूर्ण हुआ)

इस प्रकार राजा विजय सिंह तक चौहानों की कुल ११४३ पीढ़ियों का वर्णन करने के बाद कवि शंकर राव ने माणिकराव चौहान सिंधुराव और लाखण्सी से विकसित होने वाली आल्हणोत चौहानों की खांपों का वर्णन करते हुए कहा है कि लाखनजी के २४ पुत्र थे, जिनसे २४ खापें इस प्रकार चलीं-

आल्हण आदि प्रमाण हुवै हाडा[१] हद खींची [२] ।
चंदवरिया [३] भदोर[४] राकसा [५] सैंभर [६] खींची [७] ।
भंवर षिवर भलभूप मादरैचा मणिधारी ।
चीया डडेर चाह कूंपला नाहर भारी ।
बाघेश बघोड़ा मोहिला गीला ओड सुहोइया ।
पब्बीया बील दूधैड़िया देवड़ोत सब जोइया ॥६९ ॥

इस प्रकार राजा लाखनसी (३) के पाटवी पुत्र विजयराज (४) संवत् ७८७ में सांभर की गद्दी पर विराजे । इसके बाद हरिराज और फिर उनके पुत्र पदमसी सं.८१२ में सांभर की गद्दी पर बैठे । राजा पदमसी के बड़े पुत्र सालमान सं.८३५ में अजमेर की गद्दी पर विराजे । फिर सं.८८३ में बड़ा पुत्र अजयपाल राजा बना । अजयपाल राजा के चार पुत्र बीसल, आना, माहल और दंतकदेव थे । बीसल जी अजमेर के राजा बने । बीसलजी अत्यधिक कामाचारी थे । उनके बाद उनके पुत्र बलभद्र जी ने १० वर्ष तक अजमेर पर शासन किया । इसके बाद संभल मुरादाबाद से आना जी आये और सं.९६२ में अजमेर के शासक बने । उन्होंने आनासागर का निर्माण करवाया तथा ३३ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का दान किया । इसके बाद अजमेर के क्रमशः निम्नलिखित शासक हुए-राजा पिथोरा (सं.९८४) आल्हण, गेंदराज, कंठपाल, अमरगंग, सोमेश्वर (सं.१०८६) और पृथ्वीराज तृतीय हुए । महाकवि शंकर राव पृथ्वीराज तृतीय के सम्बन्ध में कहते हैं:-

कविरानी को जीम दे, निजरानी कूं सीस ।
होई सफल कारज सकल, मल्हन दई असीस ॥१०७ ॥
जनमे सुत सोमेश के, पृथ्वीराज परमांन ।
सातबार वादसाह का, कीनो नारि निधान ॥१०८ ॥
चौरासी जुग युद्ध करि, लीनी फते भुजान ।
पीरादिक भूपति किते, जीते चंद वषान ॥१०९ ॥
सवालक्ष रासो किंयो, वरदानी वरदाय ।
भूत भविस्यति को तिन्ह, दीनी भैव बताय ॥११० ॥

राठ क्षेत्र के चौहान:

सम्राट् पृथ्वीराज चौहान तृतीय के दों पुत्र रेणासी एवं अखयसी थे । वे दोनों भाई पीरों के साथ युद्ध करते हुए काम आये । इसके बाद सम्राट् पृथ्वीराज की गोद काका कान्हदेंव के पुत्र भूमि विजयराज आये । उन्होंने सं.११६० में इंटोली या ईटागढ़ (वर्तमान रेलवे स्टेशन अटेली, हरियाणा) में अपने राज्य की स्थापना की । इन्हीं राजा विजयराज के चार पुत्र हुए-लाखनसी (पाटवी) गोपाल देव (खिनौन कराणे गये)पतमसी (सांचोर बैठे और सांचौरा चौहान कहलाये)और वीरसेन (रणस्तंभपुर-रणथंभोर) । वीर सेन के जेतराव और फिर राणा हम्मीर राजा बने जिन्होंने अल्लाउद्दीन खिलजी से लोहा लिया । राणा हम्मीर के वंशज बाद में मेवाड़ की भूमि पर राज्य करने लगे ।

सं.१२०४ में पाटवी लाखनसी राजा बने और माढण की गद्दी की स्थापना की । ये बड़े पराक्रमी राजा थे । इनके पुत्र संकट राजा बने । इनके २२ पुत्र थे । बड़े पुत्र लाहादेव सं.१२९२ में माढण की गद्दी पर विराजे । साथ ही इन्होंने मुंडावर में नई गद्दी की स्थापना की । बाकी के २१ पुत्रों ने क्रमश: वीरसुमेर (इटावा) ब्रह्मदेव (राजौर) तिलोकचंद, ब्रह्मभद्र, कल्याणदेव (जनवै), अजयराज (चंडूस) ,श्रीमालचंद ताराजीत (उडीसा) ,विजयराज (हरियाणा में), तिलोकचंद (रतौली) , बुधसिंह (कांटी), सूरतसिह (कालै पहाड़) ,माधवजी चन्द्रदेव, इन्द्रदेव (लालसोट), वीरमचंद, बलदेव (कुमाऊ), हर्षदेव (हरसरु) ,धूलार्क, रामदेव (सोखर) ,सहसबाल (बाबला) और ल्होरेजी ने जसराणे में राज्य किया ।

राजा लोहा के दो पुत्र थे । दोनों ही मुंडावर में साथ सथ रहते थे । बड़े पुत्र अंजनदेव राजा बने । उनके चार पुत्रों में से मदनसिंह सिंहासनासीन हुए, दूसरे बिड़ददेव ने बड़ोद और कीतोया कीतसिंह ने दुवी में कोटड़ी बनाई । चौथा विजयसिंह साथ ही रहा । राजा मदन सिंह सं.१३०५ में मुंडावर की गद्दी पर विराजे । राजा मदन सिंह के पद्मसिंह (सं.१३४२)हुए जिन्होंने बादशाह जहांगीर से युद्ध किया । सं.१३५१ में उनके पुत्र मौकलसी और सं.१३६० में धीरदेव मुंडावर के शासक बने ।

राजा वीरदेव के १९ पुत्र हुए । बड़े अनेसी जी सं.१३८२ में मुंडावर के शासक बने । शेष में से खेतसिंह (रताय) जैतसिंह (कांकर) अजयराज (मोरड़े) जगसहाय (खूंदरोठ) दूलाजी (बधीण) मदनसिंह जी (कूल), हाथीराम जी (आंतेला) पाधोजी (पांच पहाड़ी) महरसी जी (धमारी) बाघसिंह

(बाघसिंह की बसई) चन्द्रसेन, भोजराज (महापुरा) देवपाल या उदेपाल (बानसूर) तथा गीगराज ने गिरराजपुर को आबाद किया ।विजय सिंह, भूरराज और कूंतलजी ना औहाद रहे ।

राजा अनैसीजी (सं.१३८२) के पाटवी पुत्र नानगदेव जी मुंडावर की गद्दी पर बिराजे । इसके बाद उनके पुत्र बीहड़देव जी मुंडावर के शासक बने । बीहड़देव जी के ३ पुत्र हुए। बड़े हालाजी सं.१४५७ में मुंडावर की गद्दी पर बिराजे । दूसरे हमीर जी हमीरपुर और तीसरे वीरमदेव जी बीजवाड़ बैठे ।

राजा हालाजी के तीन पुत्र हुए-हांसोजी, वीरमजी और राजदेव जी । हांसोजी मुण्डावर के शासक बने और मुसलमान हो गये । इसके बाद इनका विरुद (राव)पड़ा । वीरमजी बडोद चले गये और राणा कहलाये तथा तीसरे राजदेव जी ने अपना अलग राज्य सं.१५२१ में नीमराणा में स्थापित किया और राजा कहलाये । राजा राजदेव चौहान ने तैमूरलंग के समय में सं.१४६९ में हरेई के बादशाह को पकड़कर बंदी बना लिया था ।(दृष्टव्य छन्द - ११७)

राठ (नीमराणा) के चौहान:

राजा राजदेव (सं.१५२१) के बाद उनके बड़े पुत्र पूर्णमल जी सं.१५२७ में नीमराणा की गद्दी पर बिराजे । छोटे मोकलजी (धीलाठ) गूंदराजजी (शांजापुर चौबारे) और कीलाजी कांकर बैठे । पूर्णमल राजा के ७ पुत्र हुए । बड़े वीझलसिंह जी नीमराणा की गद्दी पर सं.१५७५ में विराजै । छोटे रोहतास जी टांकड़ी, पीपाजी राजगढ़, सालमदेव जी कुतीणे, मैलोजी कुतीणे, मानकचंद जी गिगलोने, गोपनाथ जी खुदराठ बैठे ।

राजा बीझोजी (सं.१५७५) के तीन पुत्र हुए। बड़े नरुजी नीमराणा की गद्दी पर सं.१५८४ में बैठे । दो और गोविंदराज और बूंदरजी थे । राजा नरूजी के दो पुत्र थे-जैतसिंह और कुंभोजी । जैतसिंह सं.१५९३ में नीमराणा की गद्दी पर विराजे और छोटे कुंभोजी बैलणीरावत जा बैठे ।

राजा जैतसिंह (सं.१५९३) के दो पुत्र हुए-बड़े राजा प्रताप सिंह नीमराणा की गद्दी पर विराजे और छोटे लाखाजी गिगलाणा बैठै । राजा प्रताप सिंह के ३ पुत्र हुए । बड़े राजा डूंगरसिंह सं.१६१४ में नीमराणा के शासक बने तथा छोटे सैंतराजजी जगीराबाद तथा भाणोजी तेजपरै विराजै ।

राजा डूंगरसिंह जी के दो पुत्र हुए हुए-बड़े राजा खडगसिंह सं.१६२७ में नीमराणा की गद्दी पर विराजे और छोटे रामदास जी रामपुर जा बैठे । राजा खडगसिंह जी के ३ पुत्र हुए । बड़े राजा कल्याणसिंह सं.१६४२ में नीमराणा की गद्दी पर विराजे । इनके बाद इनके पुत्र राजा बलकरणजी देव सं.१६५७ में नीमराणा की गद्दी पर बैठे । छोटा भाई उदयकरण नगली बलाई बैठा । राजा बलकरण जी के दो पुत्र हुए । बड़े राजा रघुनाथ सिंह जी सं.१६७० में नीमराणा की गद्दी पर विराजे । इनके तीन पुत्र थे । बड़े राजा जैतसिंह जी सं.१६८४ में नीमराणा की गद्दी पर आसीन हुए और छोटे रामसिंह और सुजानसिंह डामड़वास चले गये ।

राज जैतसिंह जी के तीन पुत्र हुए। बड़े प्रतापसिंह नीमराणा की गद्दी पर सं.१६९५ में विराजे। छोटे किसनसिंह एवं किलाणसिंह पेहल चले गये। राजा प्रताप सिंह जी के ३ पुत्र थे। बड़े चित्रसालसिंह सं.१७०७ में सिंहासनासीन हुए। छोटे रामसिंह जी बसई जा बैठे तथा अणंदसिंह जी ना ओलाद रहे। राजा चित्रसालसिंह जी के पाटली पुत्र टोडरमल जी नीमराणा की गद्दी पर सं.१७१७ में विराजे। महासिंह जी ने सं.१७९६ में भारत प्रसिद्ध बहुमंजिल बावड़ी का निर्माण करवाया। कालेश्र महादेव जी के देवालय की स्थापना की तथा सिद्धिनाथ का मंदिर बनवाया। बावड़ी के निर्माण में ३ लाख ५६ हजार रुपये खर्च हुए। तालाब खुदवाये। भैरवदेव की स्थापना की तथा सं.१८०३ में चामुण्डा के मंदिर की स्थापना की। राजा महासिंह जी के दो पुत्र नौनदसिंह एवं चत्रसाल थे जो कंवरपदे ही स्वर्गवासी हो गये थे। इसके बाद बसई से लालसिंह जी के पुत्र चन्द्रभान जी गोद आये और सं.१८२७ में श्रावण तृतीया को उनका राज्याभिषेक नीमराणा के सिंहासन पर हुआ। चौहान कुलभूषण राजा चन्द्रभान के संबंध में महाकवि शंकरराव कहते हैं-

अरिदल दहांन तम दारिद कू भान आ जस के निसान हिंदवान में प्रमान है।
कर घर क्रबान वसु वसुधा पै आन, इ, सीषानं सुलतान फिरंगांन को वषान है।
जानत जिहान लै नरान कू न दीनों पांन, हठको इकान, तो हमीर को वषान है।
एक को उजैरो सब जग में प्रकाशमान, दोहू इकठान चहुआन चंद्रभान है ॥१२१ ॥

इस सम्बन्ध में महाकवि जोधराज के हम्मीररासो को भी देखा जा सकता है।[२]

राजाचन्द्रभान सिंह जी के ३ पुत्र थे। बड़े राजा पृथ्वीसिंह जी सं.१८९० में नीमराणा की गद्दी पर विराजे।छोटे भाई वखतावर सिंह जी भी उन्हीं के साथ नीमराणा में रहे। दूसरे छोटे भाई लक्ष्मणसिंह रुणसी जा बैठे। राजा पृथ्वीसिंह जी के चार पुत्र हुए। बड़े राजा विजय सिंह जी सं.१८९९ में नीमराणा की गद्दी पर विराजे। इसी समय में अपने वंश की वंशावली का संकलन करवाया। छोटे भाई विशालसिंह जी डूंगरसिंह जी और जालिमसिंह थे। राजा विजय सिंह जी के २ पुत्र थे। बड़े ईश्वरीसिंह सं.१९१३ में नीमराणा की गद्दी पर विराजे। उनके ना औलाद रहने पर पर उनके छोटे भाई भीमसिंह जी सं.१९२५ में नीमराणा के शासक बने जिनके दरबारी कवि शंकरराव ने सं.१९३० में भीमविलास ग्रंथ की रचना की। इसके बाद छन्द सं.१२४ से १३४ तक राजा भीमसिंह जी की यश प्रशस्तिका का बखान किया गया है।

राजा भीमसिंह चौहानः

राजा भीमसिंह जी काव्य, कोश, वेद और पुराणों के ज्ञाता तथा भगवान् कृष्ण और बलराम के उपासक थे। वे प्रजाप्रिय, उदार एवं दानी थे। अपने व्यक्तिगत ज़ीवन में उन्हें अफीम का शौक था। सं.१९२६ में वसंत पंचमी को कच्छवाहावंशी अलवर नरेश नरुका राव राजाजी की पुत्री से उनका विवाह हुआ। सं.१९२७ में अपने पिता राजा विजयसिंह जी एवं भ्राता ईश्वरीसिंह जी की स्मृति में विजयपुरा एवं ईश्वरीसिंहपुरा नामक दो गांव बसाये। सं.१९२८ में उन्होंने पर्वतस्थित राज महलों में भीमनिवास नामक महल का निर्माण करवाया तथा अपने नाम से भीमसिंहपुरा गांव की नींव

डाली। इसके बाद सं.१९२९ में खण्डेला के राजा जी की पुत्री से तथा सं.१९३१ में मुंडिया खेड़ा के तंवर राजा की पुत्री से विवाह किया। किन्तु ना औलाद होने से उन्होंने अपने जीवनकाल में ही सं.१९३१ में रुणसी के ठाकुर कुंदनसिंह के पुत्र मुकुंदसिंह को गोद लेकर राजतिलक कर दिया। सं.१९३४ में राजा भीमसिंह जी स्वर्ग सिधार गये।

राजा मुकुन्दसिंह ने अपने शासनकाल में बाग में चौलावा कुआ बनवाया, जनहितार्थ तालाब खुदवाया, गंगा मंदिर की स्थापना की तथा थाना और तहसील की इमारतों का निर्माण करवाया। राजा मुकुन्द सिंह मेयो कॉलेज, अजमेर में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे कि वहीं सं.१९४२ में उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी इच्छा के अनुसार उनके चचेरे भाई ठाकुर दौलतसिंह जी के पुत्र जनकसिंह को उनका उत्तराधिकारी बनाया गया। राजा जनकसिंह जी की आयु उस समय १० वर्ष ही की थी। उनका जन्म कार्तिक सुदी ७, सं.१९३२ में हुआ था। राजतिलक के बाद राजा जनकसिंह जी भी मेयो कॉलेज, अजमेर में अध्ययनार्थ चले गये। आप अंग्रेजी और फारसी के विद्वान् थे। आपकी योग्यता से प्रभावित हो अलवर नरेश राजा जयसिंह की भतीजी, उनके भाई ठा.सुल्तानसिंह, थाना निवासी की पुत्री के साथ् उनका विवाह सं.१९५० में हुआ। सं.१९५१ के पौष सुदी अष्टमी रविवार को राजा जनकसिंह जी को पुत्र-रत्न की प्राप्त हुई। छन्द सं.१६३ तक कवि शंकरराव ने विवाहोत्सव एवं पुत्र जन्मोत्सव का बड़ा हृदयहारी काव्यात्मक वर्णन किया है। इसी वर्ष उन्होंने अपने दादा कुन्दनसिंह जी का बड़ा भारी काज किया। किन्तु अभी तक राजाजी की नाबालगी के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें पूर्ण शासनाधिकार नहीं दिये थे। सं.१९५३ में उन्हें पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त हुए। इस संबंध में शंकर कवि कहते हैं:

सन गुनीस त्रैपन समे, भयौ भूप अषतार।
जा चाहे सो कीजियै, न्याव नीति निरधार ॥१६४॥
सौर सुन्यौ धुवनन्दन लो, जनकेश बहादुर की हुसियारी।
कंपनी कीरति कांन सुनी, जब गौर जो मिंट अजंट (विचारी)।
शंकर सनि गुनीस तरेपन, साल अरिंदन के उर आरी।
दे कर कारपनो पद तोहि, दई करतार तुम्हें अक्त्यारी ॥१६५॥

इसी वर्ष पौष सुदी, ९ शुक्रवार को राजाजी के दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने तबेले के भवन का निर्माण करवाया तथा महलों के मुख्यद्वार के नये विशाल कपाट लगवाये। उन्होंने सं.१९५४ के अंत और सं.१९५५ के प्रारम्भ तक अपने नाम से जनकसिंह पुरा, ठा.कुन्दनसिंह के नाम से कुंदनपुरा, राजा मुकुन्द सिंह के नाम से मुकुन्दपुरा, ठा.दौलतसिंह के नाम से दौलतपुरा, प्रताप सिंह के नाम से प्रतापसिंह पुरा और माधोसिंह के नाम से माधोसिंह पुरा छ:गांव बसाये। दुर्भाग्य से सं.१९५५ में राजाजी की नरुकी रानी स्वर्ग सिधार गई।

छप्पनिया अकाल

भीमविलास के छंद सं.१७० से १७६ तक कवि शंकरराव ने छप्पनियां अकाल की विभीषिका तथा राजा जनकसिंह जी द्वारा किये गये जनहितकारी उपायों का वर्णन प्रस्तुत किया है। युद्ध स्तर पर खोले गये अकाल राहत कार्यों की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है-

छप्पन की साल कीनी कुचाल, चाल वेहाल प्रजा की ये क माल की न तंगी है ।
पसीन की बूंद मंद कंदन सुकाय दिये,पशु और जिनावर को कौन संगी है ।
औसे हु कहर पै मिअर जिहान कीन, नीवागढ़ नाथ की अनौठी बात चंगी है ।
देश औ विदेशन के नोवति नरेश कहे, भूप जनकेश तौरी कीरति किलंगी है ॥१७२-१७३ ॥

राजाजी ने इस कठिन समय में जनहित के अनेक कार्य किये । यहां तक कि अपनी राज्य सीमा में उन्होंने पशुवध पर पाबंदी लगा दी थी । आज्ञा के उल्लंघन कर्ता को कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी ।

सं.१९५६ की आषाढ़ सुदी नवमी को राजा जनकसिंह जी का दूसरा विवाह प्राचीन राजौरगढ़ के गुर्जर प्रतिहारसिंह, तसीगं के ठाकुर साहब की पुत्री के साथ बड़ी धूमधाम के साथ हुआ । कवि शंकर राव ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दोनों ही राजाओं के वैभव का अत्यधिक मनमोहक वर्णन किया है । रानी प्रतिहारिनी जी के दो पुत्र एवं एक पुत्री ने जन्म लिया । इस प्रकार राजाजी के ३ पुत्र एवं एक पुत्री थी । इसके बाद छन्द सं.१७९ से १८१ तक राजा जनकसिंह जी के अन्मदिन का वर्णन है । सं.१९६० के मध्य में राजा जनकसिंह जी ने जनककल्याणार्थ नीमराणा में एक अस्पताल खुलवाया जिसमें डाक्टर के स्थान पर प्रथम नियुक्ति डा.दीनानाथ शर्मा की की थी । इसी समय बाग में जनकनिवास नाम एक सुन्दर कोठी का निर्माण करवाया । सं.१९६१ में अपने भाई प्रताप सिंह का विवाह पूर्व में हजरतगंज के राजा लायकसिंह की पुत्री से करके लाये ।

(यहां तक तो कवि शंकर राव नीमराणा के चौहानों का वर्णन करते हैं । इसके बाद सं.१९८९ में राजा जनकसिंह जी के बड़े पुत्र उमरावसिंह गद्दी पर विराजे और बाकी तीन भाई रघुराज सिंह जी, सुमेर सिंह जी और हम्मीरसिंह जी जयपुर में जा बसे । राजा उमरावसिंह जी के बाद उनके पुत्र राजा राजेन्द्र सिंह जी (जन्म ४ जनवरी १९२१ ई.मृत्यु १९९१ ई.) सं.१९९९ सन् १९४२ ई. में गद्दी पर विराजे । स्व.राजा राजेन्द्र सिंह जी की एक मात्र औरस पुत्री राजकुमारी सुनीता का विवाह मेवाड़ के सिसोदिया वंश में सन् १९९० में हुआ है ।)

इसके बाद महाकवि शंकरराव अपना वंश परिचय देते हुए कहते हैं कि वे सम्राट् पृथ्वीराज चौहान तृतीय के सखा मंत्री और कवि चंदवरदायी की वंश परम्परा में भैंरुसिंह के पुत्र हैं । वंश परम्परा इस प्रकार है-

मल्हण-चंदवरदाई-जल्हन-बल्देव-वलखंड-नरदेव-भीमदेव-मानदेव-गंगदेव-भीषम देव-दुर्गादत्त-दुलेराव-नाथा-गिरधर छीतरसहाय-गुमान-सालम-भौज-भैंरुसिंह-शंकर राव ।

महाकवि शंकर राव भीमविलास की दंद सं.१९४ से १९७ तक अपना परिचय देते हुए कहते हैं-

मल्हण कै कवि चंद , चंद कुल साह लड़ानौ,
हरषवत हरसिद्धि तिन्है वरदानं प्रमानौ ।
तवंतै वरवयै वधु चंद सुत जल्हन जप्पिय,
जल्हन के बलदेव जकै वलखंड सुथप्पिय ।
नरदेव नाम तिनके भये, भीमदेव जिय जानियै,
पुनि मानदेव गंगदेव जी भीषम देव वषानिये ॥१९४ ॥
भीषम के दुरगादत्त जानौ । तिनके दुलैराव वषांनौ ।
दूलै घर नाथौ कविराज । दान मान श्रुति सकल समाज ॥१९५ ॥
नाथा कै गिरधर कह्यौ, तिनके छीतरसाय
तापद प्रेम प्रतानियो, मुनि गुमान कविराय ॥१९६ ॥
सालम मालि—न घरां, तिनकै भौज वषान ।
वा घर भैरुसिंह कै, शंकरा (सुकवि) सुजान ॥१९७ ॥

अपनी जाति और वंश का उल्लेख करते हुए अन्यत्र कहा है-

च्यार जुगान तै पुज्जिक पात है, जामन जग्य कै नैग लिये है ।
दान दसोध के है अधिकार, विचारिकै ब्रह्मनि वाक्य कहे है ।
चंदर सूर धरा ध्रुव साखिये आदि के नहि अये नये है ।
जा दिन ते चहुवान भये, मन ता दिन राज रे राव भये है ।

इस प्रकार यह विचारणीय प्रश्न है कि कविचंद की एक परम्परा में एक और नैनूराम ब्रह्मभट्ट की परम्परा में कृष्णभक्त सूरदास आदि हुए हैं तो दूसरी परम्परा में महाकवि जोधराज राव (हम्मीर भट्ट) और शंकर राव (भीम विलास) ब्रह्मभट्ट हुए हैं । और इस प्रकार कवि चन्दवरदायी की वंश परम्परा में यह नवीन उपलब्धि है ।

अन्त में भीमविलास एक ऐतिहासिक काव्य है जिसके पूर्वार्द्ध में चौहान वंशावली जो चंद आदि के पृथ्वीराज रासो आदि की परम्परा में, संगृहीत है और उत्तरार्द्ध में राजा भीमसिंह और जनकसिंह जी की उपलब्धियों का वर्णन है । इस काव्य में वर्तमान शोध बोध के प्रकाश में देखते हैं तो पृथ्वीराज तृतीय तक की वंश परम्परा में कई समय-संबंधी ऐतिहासिक भूलें हुई हैं, किन्तु उनके बाद की परम्परा जो भोमविजय राज से जनकसिंह तक वर्णित है, वह ऐतिहासिक कसौटी पर खरी उतरती है । मुंडावर, नीमराना और अलवर राजघरानों के दस्तावेजों से इसकी पुष्टि की जा सकती है । जो पट्टे-परवाने प्रस्तर लेख, भवन, इमारतें आदि आज उपलब्ध हैं उनसे भीमविलास की ऐतिहासिकता को परखा जांचा जा सकता है ।

इस प्रकार पृथ्वीराज तृतीय के बाद के चौहानों के कहां-कहां ठिकाने हुए उसका संक्षिप्त इतिवृत्त इस ऐतिहासिक काव्य के माध्यम से प्रकट होता है।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय
कोटपूतली (जयपुर)

---

1 M.F.O. year 1897-99 Assesment Rreport of Nimrana estate Page 05

2. शंकर राव कृत भीमविलास: सम्पा.डा.महावीर प्रसाद शर्मा, प्रस्तावना-डा.महाराज कुमार रघुवीरसिंह जी, १९८३, लोकभाषा प्रकाशसन, कोटपुतली (जयपुर)

3. पृथ्वीराज राजै जग मो प्रसिद्धि। भृगुबंस मध्य प्रगटै सुसिद्ध।
नृप चन्द्रभान तिहिं बस, मध्य। किरवांन दांन दौउ प्रसिद्ध ॥५ ॥
माणिकराव चहुवान, कुल दैन खंग दोऊ धरत।
कहि जोधराज यह बस म, ननकारी, नाहिन करत ॥९६६ ॥
भूपति नीवागढ़ प्रगट, चद्रभान चहुवान।
साम दाम अरु भेद जुत, दंडहि करत खलान ॥९६९ ॥
हम्मीर रासो, का.ना.प्र.सभा काशी, वि.सं.२००६

मेवाती काव्य में राजनैतिक इतिहास

—*अनिल जोशी*

भारत में मुगल शासन प्रारंभ होने के समय में राजनैतिक शक्ति के दो केन्द्र देहली और कन्नौज प्रमुख थे । भारत पर शासन करने की दृष्टि से देहली से आगरा तक बयाना और मथुरा आदि पर अपना राजनैतिक प्रभाव स्थापित करना आवश्यक समझा जाता था । मध्य भारत का यह हिस्सा-मेवात क्षेत्र कहलाता है—

इत दिल्ली, उत आगरा, हूं तक मेरो सोर
तोय रोकौ कांईन घुड़चढ़ी कर तू मथुरा तक दौड़ ॥

विषय के उद्देश्य को ध्यान में रखकर मेवाती काव्य साहित्य का विशद विवेचन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास कर रहा हूँ । मूल विषय में आने पर मेवाती कौम पर दो शब्द कहना चाहूंगा । मेव कौम के आचरण में प्रत्येक समय में हर एक शासक के अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाना, जी जान से प्रतिरोध करना और शासकों को नाको चने चबाना प्रवृत्ति में रहा है । यह कौम, एक आजादाना, जिन्दगी बसर करती आई है जिसमें अपनी परम्पराओं को कभी प्रलोभनों के वशीभूत होकर त्यागा नहीं है । इस्लाम के नाम पर भी, जुल्मी बादशाह की, ताबेदारी न करना और रियाया पर कभी जुल्म नहीं ढाना इनका परम धर्म रहा । इस कौम में मिराशी कवि हुए जिन्होंनें राज्याश्रयों से दूर रहकर, सत्य की रक्षा करने के भाव से ऐतिहासिक काव्य सरल प्रवाहमयी भाषा में रचा हैं । चार-पांच विभिन्न मिराशियों के अलग-अलग समयों में रचे गये मेवाती भाषा के काव्यों का विवेचन, विषय अनुरूप प्रस्तुत कर रहा हूं ।

१. नृसिंह मेव रचित काव्य, समय १५२६ ई. से १५२७ ई. तक का विवरण

यह काव्य मुगल बादशाह बाबर, इब्राहिम लोदी तथा इब्राहिम लोदी के भाई जलालखां लोदी, दूसरे भाई महमूद लोदी, हसनखां मेवाती- राजा अलवर और मेवाड़ के शासक राणा सांगा आदि से संबंधित है । हसनखां मेवाती अलवर के राजा अलावलखां का पुत्र था यह दिल्ली के बादशाह इब्राहिम लोदी का मौसीजात भाई था । इस वीर ने राणा सांगा के साथ मिलकर भारत राष्ट्र को आक्रान्ता मुगल बाबर बादशाह से बचाने के लिए लड़ते हुए अपने प्राणों का उत्सर्ग खानवा के युद्ध के मैदान में कर दिया था ।

नृसिंह मेव कवि ने हसनखां की कथा काव्य में लिखी, इसकी हस्तलिखित प्रति सम्वत् १६२९ टोडा के जैन मंदिर में उपलब्ध है । इसकी एक प्रति जयपुर के जैन मंदिर में भी है ।

१. नौ बकुण्ठह वासौ लही, जैसी बीती तैसी कही ।
धूर बैसाख बयांसी अड़ै, इबरोहिम अरु बाबरू लड़ै ॥
२. हिन्दुस्तानी लेवा कर मुड़ो, तो पीछै तहि बाबर चढ़ौ ।
बाब दाढ़ी झाडे हाथ, हुए उबरे बारह बांट ॥
३. पहर दोये इब्राहिम लड़ौ, आयो नांही रण माही पड़ौ ।
नाल कटी सब छाड़ौ देशू, लूटन लागे रमिस्तर दरेश ॥
४. खां का लूण हलालु न करै, मिस्ति छोड़ि दोजिग महि पड़ै ।
पूत अलावलखां को जायो, सूरवीर क्षत्री अति बणों ॥
५. पूत हसन को नाहरखान, तब डेरू मे पहुंचों आन ।
ई मेरे मन की काण, इनके लियाड़ खाण्डे के पाण ॥
६. तुम कागज लिख भेज दिय चित्तौड़ ।
मधुरा हरका की नाही दौड़ ॥
७. सग ताई जोड़ी सार, लियो देश दरेशन मारि ।
हम तुम बीच इसी क्यो होई, मधुरा देश को मुकदम होई ॥
८. बाकिल नहीं आए विदरूप, तिनके कान जिसे हदि सूप ।
आंखि मीचुरी नाक छीपटी, बन्दर मुहि काबि बुरी ॥
बाबर के सिपाहियों ने एक-एक सुन्दरी पकड़ ली
दई लिगाड़ी पहिलि जोट, हुई बलध भैंसै की जोट ।

बिरूप काबूली सिपाहियों के हाथ में पड़ी सुन्दरियां ऐसी लगती थी जैसे बैल के साथ भैंसा हो—

इसा मुकदम हुआ न होई, ताकि खैंचे न ढाकरी कोई ।
नाहरखां कहू पान मंगाई, कही बात जानू बैसाई ॥

हसनखां के बेटे नाहर खां के लिए बाबर ने पान-फूल सिरोपाउ आदि अपनी पोती से रिश्ता करने के लिए हसनखां मेवाती को भेजा ।

खुरासान को बाबरू धणी । देणा कही पोती आपणी ॥
क्यों परगनों बयानो लेहि ।सीक बाय कहुं आपणु देहि ॥
मेलियौ नाहरखान नवाजि । छत्र तणै वै तमहारौ राज ॥

बाबर ने बयाना आदि का राजपाट हसनखां को देने का लालच दिया लेकिन हसन खां ने बाबर को लुटेरा आक्रमणकारी समझ कर और प्रजा के सुख चैन को सुरक्षित रखने के लिए राणा सांगा, व अन्य क्षत्रियों की सेना सजाकर खानवा की भूमि में बाबर के साथ युद्ध करना पसंद किया और युद्ध भूमि में अपने प्राण गंवाये ।

महाराजा बख्तावरसिंह अलवर के समय का काव्य कोराणी की लड़ाई की प्रशंसा में (समय सन् १७९१ से १८१५ A.) यह काव्य जयसिंह शायर का लिखा हुआ है । सारांश यह है कि अलवर की तहसील रामगढ़ के गांव कोलाणी में राजा सूरज मल द्वारा एक सूरमा मेव को बहुत सम्मानित किया गया था, उसका पुत्र रायमान मेव का सरदार था और इस कोलाणी गांव में रहता था । अलवर के राजा बख्तावरसिंह ने रामगढ़ तहसील के जब्बरखां को एक घोड़ा और एक सिरोपाव भेंट किया तथा राज्य की जमा वसूल करने का अधिकार दिया ।ज़ब्बरखां ने कोलाणी गांव के मेवों पर जुल्म ढाना शुरू कर दिया । इसके फलस्वरूप मेवों व राज्य के सैनिकों तथा महाराजा बख्तारसिंह द्वारा नियुक्त सरदारों के मध्य युद्ध हुआ ।जिसके संबंध में काव्य इस प्रकार है—

१. चहड़ा जब्बर और जहांगीर, शहर डोंडी पिटवाई
चहड़ी मारकपर सूं धाड़ू, मेव ने करी अमाई
खांजी बहड़ा कोम के पैदल और असवार
गाय छुड़ावां बांदके लांवा, कोलाणी सू जार ॥
२. गाय लूछ कर ले गया, सुणो मेरी मां का जाया वीर,
जहांगीर घायल हुयो, अब तू हाथ लिखा दलमीर ॥
३. जब्बर खां घबरा गयो, वहां नैनै नैनै नीर
पाणी को प्यासो मरो, मेरा तू मांको जायो वीर ॥
४. बख्शो कहे बकार, लालसिंह सुणयो मेरी
बढ़ाली ले हाथ, कहा है तेरी देरी ॥
५. चढ़ो लाल ललकार कर, लियो हाथ में सेल
खांजी मारो बांधकर, याने सेल दियो सब मेल ॥
६. फिर दीनू दल्ल भुजबल भिड़ा, उठी गरद घमसाण
दो खांजी इकदम कटा, जब्बर को घटगो गरब गुमान ॥
हाथ जोड़ अरजी करै, मुख लीनी घास ।
सुले सफाई अब करो, जब्बर का हुयो कटम को नास ॥

जंग हुयो झिर नाहण्ये बिगड़ा सारा काम
अब जग मढे कोलाण गढ़ जे मेरी लज्जा राखे राम ॥
मेरो गढ़ कोलाणी गांव जैसे केयसर की कियरी
याको सुपल फले परिवार खुली रहो नर और नारी
यासूं दुस्मन माने हील, नरुका हारा बाजी
मै तुगंर बढ़ भूप हुयां मोसूं कुदरत राज
बाघोड़ा की पाल में मेरो कोलाणी सुक बास
हातिसिंह की मोत को जादिन रोज् पड़ो रणवास ॥

महाराजा मंगलसिंह के समय (१८७४ से १८९२ A.D.) तक का काव्य (घुड़चढ़ी मेव की प्रशंसा में)

घुड़चढ़ी मेव और मेवखां दो भाई थे जो अपने समय के राजाओं को कोई अहमियत नहीं देते थे और कभी भरतपुर को तो कभी अलवर राज्यों में डकैती डाला करते थे, साथ ही असहाय व गरीबों की मदद भी किया करते थे । एस समय जब वे तिजारा क्षेत्र के जंगलों में घूम रहे थे तो उन्हें एक औरत रास्ते में जाते हुए मिली और उस औरत ने उन्हें देखते ही गहने इत्यादि उतार कर छुपा लिये तब घुड़चढ़ी ने कहा—

जमींदार लूटा नहीं, लूटा लाला साहूकार ।
सुण्यां बहिना बावली, कैसै तैने जैवर धरो उतार ॥

स्त्री कहती है—

खुदाबख्श का सुत, फिरे वे दोनुं भाई ।
फिरोजपर जमादार लिनो मार, कीक तौ मचती पाई ॥
उनसू हमलू डर लागै, म्हारा थर-थर कांपै हाथ ।
हीण घुड़चढ़ी मेवखां, जिनसू डरपै सब मेवात ॥

चूंकि मेवखां व घुड़चढ़ी दोनों भाईयों ने मेवात के अन्दर आतंक मचा रखा था अतः इन दोनों को पकड़ने के लिए राज्य के बड़े-बड़े सरदार व कुछ मेव जाति के लोग भी दौड़ धूप कर रहे थे । उस समय यह अपने एक साथी रुड़ा से कहते हैं—

टौड़ मांढ़े चढ़ी सिखर, सिदरावट छाई ।
बांधा कोचरों थांसै नै, कीक मचाई ॥
जैरोली भी चढ़ी, मेदसिंह चढ़ौ भाई
दोनूं चढ़ी बाल, खडा हम दोनूं भाई ॥
जै हम पकड़ा जाय, राज ना करै, रिहाई ।
साथ गांव बच के चढ़ा, उड़ती आवै रीर ।
कूद नीन का घाट में, मेरा बगद मेव खां वीर ॥

जब घुड़चढ़ी मेव को राजा की फौज पकड़ने लगती है तो घुड़चढ़ी अपने फूफा भागमल के पास गांव ककराला में आकर कहता है—

अब भाईन सूं बिगड़गा, रहो ठिकाणो नाय ।
ककराला में भागमल, आया तेरी बांय ॥
यह सुनकर उसका फूफा उत्तर देता है—
इत दिल्ली इत आगरो, हूं तक मेरो सौर ।
तोय रोका कोई न घुरचढ़ी, कर तू मथुरा तक की दौड़ ॥

अलवर के महाराजा जयसिंह जी के शासनकाल (१८९२ से १९३७ A. D.) के मध्य सन् (१९३१-३२) में अलवर रियासत में अधिक राजस्व वसूली के सम्बन्ध में गोविन्दगढ़ नामक गांव में मेवों द्वारा कड़ा संघर्ष किया गया जिसका विवरण निम्म प्रकार है—

१. बजगो आल्हाराम, बिगल में फूंक लगाई
लै लै कै बन्दूक, फेरे कर रहा सिपाही
मारग थी चला, मसन के रोक लगाई
ताला कर दिया बन्द बणेनी दे दुहाई
बुद्ध कू भूल्यां राधड़ा, रियाया कीनी खार
मेवाती छत्रीन ने, दे दियो लाठ साहब लू तार
२. न्याणा वालो मेवखा, तुरंग कसाई टार
हियलो दियो निवाजखा, बुलायो देवा को सरदार
बाघोड़ा का चौधरी, कछु तो कर सलूक
पलटण चहड़ी राव की दीन्यो सब गोविन्दगढ़ फूंक
३. गोविन्द गढ़ के खेत, दिखागो दिन में तारो ।
वे हा बिन हतियार, मेव कहा करा बिचारा ॥
तू ई मैम्बर तू ई चौधरी, तौ पै करा पुकार ।
गोविन्दगढ़ में राव ने, मुक्ता दिया मिनख मार ॥

जब अंग्रेजों ने महाराजा अलवर का जवाब तलब किया तो महाराजा ने कहा—
मेरी सुणो वायली साहब, वक्त अब आग्गो किसो ।
मौसू होगा मेव फिरंट, जमा का ना देवै पैसो ॥
मेरो गोविन्दगढ़ बी ना सुणे, मुक्तो लियो पुकार ।
मेवन ने जबरी करी, मेरा हाकम गेरा मार ॥

२. शाहजहां के समय का पांच पहाड़ वा काव्य— 'बात साहित्य-अनिल जोशी पेज-३५ से ४६ तक)

बादशाह शाहजहां देहली के शासनकाल के समय मेवात क्षेत्र में स्थित पांच पहाड़ नाम स्थान (नहू) के पास मेवों का बाहुल्य था। इनमें साहसिकता और कुशलता भरी पड़ी हुई थी। एक समय जब बादशाह शाहजहां का माल व असबाब घोड़ों व ऊंटों पर लद कर आगरा (अकबराबाद) के लिए जा रहा था। यह काफिला पांच पहाड़ के रास्ते से तिजारा के पास में जब गुजर रहा था तब उस माल को अजानगढ़ ग्राम के पास मेव सरदार भसन्द, मवासी, रायमान, रूड़ा आदि ने रोक लिया। बादशाह के सिपाहियों ने रोब से मेवों को धमकाया।

१. मुसन्द मवासी रायमान, रूडा तू सुन लैय।
ऊंट तो जायगा अकबराबाद कू, तम सूं लिया जाय तो लेय॥

इसके बाद मेवों द्वारा सिपाहियों पर हमला किया गया और माल को लूट कर ले गये। तब सिपाहियों ने बादशाह से फरियाद की।

बादशाह मेव मुगल भेड़ा हुआ, राड मढ़ी भल्ली।
अदली का दरबार में पटकी राज बल्ली॥
बादशाह वाने तेरा छत्तर सब पकरा दक्खम रोपी राड़।
मेवं अनीति करै है, मानै नाय पांच पहाड़॥

तब बादशाह ने अहडादसिंह सरदार के साथ बारह हजार सैनिकों को भेजा। जब यह खबर मेवों के पास पहुंची तो मेवों के सरदार रायमान ने अहडादसिंह को एक पत्र लिखकर कहा—

सुणियो राजा अहड़ादसिंह, तोसूं में कदैय न करतो टाल।
ऊंट हमन पैं है नहीं, उनकू लेगा वाड़ी राय गिराय॥

इसी बीच रायमान को यह पता चलता है कि उसका भाई अहडादसिंह से मिल गया है और अहडादसिंह को पत्र लिखकर भेजता है—

रायभान कहे सुणो राज, मेरा परबत को पूरो परताप।
बाणा बाण जणा गोड़ी का, पौत दौड़ कहे या देख थाप॥
बिलग रोवतो राणो, मिला, मातो मसन्द मिलई थाप।
तोकू मैं देऊ न ऊटन फेर कै, चाहे शाहजहां बादशाह चढ़ी आये अहड़ाद॥

जब मेवों एवं शाहजहां बादशाह की फौज के बीच युद्ध चल रहा था तब उसी अन्तराल में मेव सरदार रायभान के बेटे जोधसिंह की पत्नी के बेटा उत्पन्न हुआ और उन्होंने कुंआ पुजवाने की बात करी तब औरतों ने जोधसिंह से कहा कि भले ही शत्रु कुंए को घेरे पड़ा हो परन्तु मेरा कुंआ तो अवश्य पुजेगा।

रायभान का जोधसिंह, तेरों राज बड़ा तप तेज।
या तो मेरो कुंओं पूजा दे अलख को, नहीं तो मेरी मत चढियो सेज।

उसी समय जोधसिंह का पिता रायभान आता है और कहता है कि

सुणियों बेटी बावड़ी, मतन दिखावा छोय।
मेरो सभी कुटुम्ब कट जायेगा, बेटी कलपे चढेगो तोय॥

राणी कहती है—

कलके चढे काई कुलच्छणी, मेरे मन लागी ।
पांच पहाड़ का राज ही, आज तेरी अमर तेज जागी ॥

रायभान पुनः कहता है कि बेटी वहां फौज आड़ी पड़ी हुई है, वह उत्तरदेती है—

कहा तोपे बाईसी चढ़ आई बादशाह की,
कहा तोपे राज चढ़ आयो बादशाह को ।
या मेरी सोहड़ रहगी घर में,
नातर तो कुंओं पूंजूं अलख को ॥

जोशी भवन,
महताब सिंह का नौहरा
नई बस्ती, अलवर (राज.)

'हमीरायण' काव्य का राजनैतिक दृष्टि से विवेचन

— *डॉ. देवकुमार*

'हमीरायण'— सादूलं राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर से सन् १९६० में प्रकाशित पुस्तक को आधार माना गया है। 'दो शब्द' में श्री भंवरलाल नाहटा ने लिखा है कि 'हमीरायण' नामक एक और काव्य भी प्राप्त हुआ है, जिसकी एक अशुद्ध-सी प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में और उसके बृहद् रूपान्तर की प्रतिलिपि स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायणजी के संग्रह में है, वह ग्रंथ काफी बड़ा होने से मुनि जिनविजयजी ने अगरचन्द नाहटा के सम्पादन में— राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से प्रकाशित करने का निर्णय किया है। इस काव्य का रचयिता भाण्डउ व्यास है। इस व्यास ने भाड (भाट) द्वारा गाये जाते रहे हमीर के चरित्र को संवत् १५३८ में अर्थात् सन् १४८१ में कहकर लिखवाया है। इस काव्य का प्रयोजन— रामायण और महाभारत के समान ही, हमीरायण की रचना इस बात की प्रेरणा देने के लिये हुई है कि हमें दुष्टों का संहार करना चाहिए और सज्जनों का पोषण। अपनी सनातन भारतीय संस्कृति की रक्षा का उद्योग पूरी सूझबूझ और बड़े से बड़े बलिदान के साथ करना, क्षत्रिय राजा का परम कर्त्तव्य है। उक्त प्रयोजनवश 'हमीरायण' का पाठ निःश्रेयस् की अवाप्ति का श्रेष्ठ साधन हो सकता है।—

रामायण, महाभारत जिसउ, हम्मीरायण तीजउ तिसउ,
पढ़इ गुणइ संभलइ पुराण, तियां पुरषां हुइ गंग सनान ॥

इस काव्य में जिस शक्तिशाली पुरुष के चरित्र का गान है, वह राजा हमीर सन् १२८८ ई. से सन् १३०१ तक रणथम्भौर पर शासन करता रहा। यह भारतीय संस्कृति की रक्षा करने वाले

चौहान राजा पृथ्वीराज तृतीय के पुत्र गोविन्दराज की पीढ़ी में जन्मे राजा जैत्रसिंह का पुत्र था। बाहरी आक्रान्ता म्लेंच्छ-मुगल आदि राजाओं का उद्देश्य भारत की रहने वाली प्रजाओं को सुव्यवस्था और सुख प्रदान करना नहीं था। उनके शासन का उद्देश्य केवल अपने भौतिक सुख-भोग के लिए, इस देश के रहने वाले लोगों की गाढ़ी मेहनत की कमाई को लूटना, यहां के लोगों को बंदी बनाकर उनसे बेगार लेना, लड़कियों और लड़कों को लौण्डी और गुलाम बनाकर अपनी जकड़ में रखना था। उन्होंने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए इस देश की संस्कृति का विनाश किया। पुस्तकालयों तक को उन्होंनें जलाया। भारतीयों के हृदयों को आघात पहुंचाने वाले कार्यों को इन म्लेच्छों ने अपने शासन का धर्म बना लिया। शैतानों का पोषण किया। इसके विपरीत भारतीय राजाओं के शासन का उद्देश्य प्रजाओं के कल्याण के लिए विभिन्न संस्थाओं का पोषण करना रहा है। ये राजा अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे। "रञ्जयते अनेन इति राजा" ॥ये सुव्यवस्था को अपना कर्त्तव्य मानते थे। विदेशी आक्रान्ता अलाउद्दीन भी शैतान कोटि का बादशाह था। शेरशाह सूरि के आश्रित एवं 'पद्मावत' की रचना करने वाले मुस्लिम कवि जायसी ने अलाउद्दीन बादशाह को हिन्दू, क्षत्रिय राजा की तुलना में 'शैतान' लिखकर प्रचारित किया है। सन् १५२७ में ई. अलवर के मुस्लिम राजा हसन खां मेवाती ने आक्रान्ता बाबर मुगल को लुटेरा कहा और राणा सांगा की सहायता के लिए युद्ध करते हुए प्राणों का बलिदान दिया। बैरमखां के पुत्र रहीम खानखाना ने उदयपुर के राणा अमरसिंह को इसी भारतीय राष्ट्रीय भावना से उचित सलाह लिखकर भेजी (दृष्टव्य— 'वीर विनोद')

'धर रहसी, रहसी धरम, खप जासी खुरसांण।'

हमीरायण काव्य के कथानक का सार

इस काव्य के रचयिता भाण्डउ 'व्यास' ने अलीक अक्षरों को टालने का प्रयास किया है—

चउपई १— 'कथा करंतां मो मति देहि, अलिय अक्खर अधिक टालेहि।'

रणथंभौर के गढ़ में रहकर राजा हमीरदेव चौहान राज करता था। यह राजा (जैतिग दे) जैत्रसिंह का पुत्र था। हमीर राजगद्दी पर बैठा। वीरमदे (अनुज) को 'युवराज' पद मिला।

हमीरदेव की शरण में अलाउद्दीन बादशाह का एक सेनापति मोहम्मद शाह पठान आया। उसने बताया— "मैं अलाउद्दीन के सेनाप्रधान उलूग खान के साथ (गुजरात आदि में) आक्रमण और लूटपाट के कार्यों में समझौते के अनुरूप सैन्य सेवा देता रहा। इस लूटपाट की सम्पत्ति में से जो हिस्सा मुझे मिलना चाहिए, वह उलूग खान ने मुझे नहीं दिया तब मैंने उसकी सेना का विनाश किया। अब मैं आपकी शरण में आया हूं। मैं अब आपके चरणों की सेवा करूंगा। मैं रहमान की साक्षी देकर वचन देता हूं कि मेरे मन में कपट नहीं है।" हमीर ने उस पठान वीर मोहम्मद शाह को जागीर दी और बड़ा सम्मान दिया। रणथम्भौर के व्यापारियों तथा भाटों आदि ने शरण देने के कार्य को अनर्थकारी बताया। उन सबके कथन पर राजा हमीर ने कान नहीं दिया। देहली से बादशाह के सेनापति उलूग खां ने कुपित होकर 'रणथम्भौर' की राज्य सीमा में आकर हमला कर दिया। बैजल सुत जाजा ने अपनी सेना के साथ उलूग खां से मुकाबला किया और सेना का विनाश किया। फिर उसी रात वह

गढ़ रणथंभौर मे हमीर देव के पास पहुंचा और उन्हें उलूग खां के आक्रमण का वृतान्त सुना दिया। उधर तब तक उलूग खां की सेना ने आगे बढ़कर, हीराघाट पर पहुंचकर, छावनी को सोते में घेर लिया। वहां हजारों आदमियों को बंदी बना दिया। उस नगर को जला दिया। लोग वहां से भाग-भाग कर रणथंभौर पहुंचने लगे। नगर के बणियां बाजार में बैठे, हंसी करने लगे कि राजा हमीर ने जो विष-बेल बोई है उसका फल चख ले। (चउपई-७३) हमीर ने सभी वीर जागीरदारों को इकट्ठा कर किया। समस्त फौज सजा कर, पठान मोहम्मदशाह को साथ लेकर उलूगखां की सेना का मुकाबला किया। उलूग खां अपने बादशाह के पास दिल्ली जाकर कहने लगा कि हमीर के सामने आपकी बादशाहत झूंठी हो गई है (चउपई-८३)। इस पर अलाउद्दीन रणथंभौर जाने के लिए सवारी पर बैठ गया। वह कहने लगा कि सभी अधीनस्थ राजाओं-सामन्तों आदि को फरमान लिख भेजो— 'सभी अपनी-अपनी सेनायें लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हों।' उस अवसर पर अलाउद्दीन ने प्रतिज्ञा की—"मैं रणथंभौर को लेकर ही वापिस लौटूंगा।' (चउपई.९०)। सुलतान मन में यह सोचता जा रहा था कि पहुंचते ही मैं रणथंभौर के गढ़ का भंजन कर दूंगा। हमीर सहित समस्त शहर के लोगों को बंदी बना कर दिल्ली ले जाऊंगा।" बादशाह ने उलूग खां को आदेश दिया कि पूरे देश का विनाश कर डालो। बादशाह की फौज आगे बढ़कर रणथंभौरगढ़ की तलहटी में पहुंच गई। वहां उड़ी हुई धूल से सभी दिशाओं में अंधेरा छा गया। हमीर के गढ़ में युद्ध का बिगुल बजने लगा। अलाउद्दीन ने वहां के मोल्हाभाट को, अपना संदेश देकर राजा हमीर के पास भेजा। भाट ने हमीर देव के पास जा कर मर्म भरे स्वर में हमीर से कहा— "एक ओर कीर्ति है और दूसरी ओर लक्ष्मी है, इनमें से एक की चाहत कर लीजिए।" राजा हमीर कहता है— "बली बारहठजी। 'कीर्ति' और 'लक्ष्मी' में कौन श्रेयस्कर है ? इसका निश्चय मैंने कर लिया है। लक्ष्मी (अरथ-गरथ) सब यहीं सीमा में रह जाती है।कीर्ति देश-विदेश में जाकर रहेगी।' मोल्हा भाट कहता है — हे राजा ! सुलतान ने कहलवाया है कि अपनी पुत्री देवल दे को उससे ब्याह दो, धारू-बारू (नर्तकियों) को दे दो और बहुत से हाथी दे दो।' यदि तुम इन शर्तों पर संधि कर लो तो तुमको माण्डू और उज्जयिनी का राज दे दिया जायेगा।" पुनः मोल्हा भाट कहने लगा— 'शरणागत-वत्सलता आप सरीखी कोई नहीं रख सकता है, आपकी कीर्ति स्वर्ग लोग तक होगी।' राजा हमीर ने अपना दृढ निश्चय प्रकट किया— "भाटजी ! मैं कीर्ति का ही चयन करता हूं। लक्ष्मी को छोड़ता हूं। हार जाऊँगा तो हरिशरण जाऊंगा, किसी अन्य को सिर नहीं झुकाऊंगा।' मोल्हा भाट ने बादशाह अलाउद्दीन को, हमीर का संदेश वापिस जा कर सुनाया— "मुझे देवगिरी का यादवराज मत समझ। मुझे गुजरात मत समझ। मुझे चालुक्य कर्ण मत समझ। मुझे जलालुद्दीन (बादशाह) मत समझ कि जिस (अपने चाचा) को विश्वास उत्पन्न हो जाने पर (तूने) धोखा देकर मरवा डाला था। अलाउद्दीन, यह हमीर इस देश के सनातन धर्म के (पूर्व काल से चले आ रहे) रखवाले रणथंभौर का दृढ़ अड़ा हुआ कपाट है। (छप्पय— १५६)

बादशाह अलाउद्दीन वहां के अन्य भाटों को अरथ-गरथ आदि भण्डार देना चाहता है। वहां नाल्ह है, वह कुछ भी लेने से इंकार कर देता है। वह कहता है— "हे सुल्तान ! हमीर चौहान तुमसे युद्ध अवश्य करेगा, भले ही वह मारा जावे। हम संधि नहीं करा सकते।" जब हमीर राजा मारा

जायेगा तभी जो उचित होगा वह भाट आपसे मांग लेगा।" तत्पश्चात् छत्तीसों राजकुलों के वीर सैनिक, हमीर के बुलावे पर आ पहुंचे । (चउपई १६७) इनके साथ मोहम्मद शाह भी गढ़ से नीचे आ कर खिलजी सेना से युद्ध करने लगा। उसने अलाउद्दीन की सेना को पीछे भगा दिया। अलाउद्दीन का बड़ा सेनापति निसरतखां नवलखा दरवाजे के समीप मारा गया। (यह बादशाह का करीबी रिश्तेदार भी था)। ऐसे समय में बादशाह अलाउद्दीन रणथंभौर गढ़ की तलहटी में स्थित अपने शाही डेरे में बैठकर दरबार सजाता था। उधर गढ़ ऊपर महल में हमीर देव अपना दरबार लगाते थे। दरबार में बैठे मुहम्मदशाह पठान ने हमीर देव से कहा कि अलाउद्दीन मेरा तो नंबर एक शत्रु है। आज्ञा हो तो मैं यहीं से उसके शाही डेरे में ऐसा तीर मारूं कि सुल्तान का जीवन ही समाप्त कर दूं।' राजा हमीर उसे सीख देता है कि अलाउद्दीन तुम्हारा (पहले) वास्तव में स्वामी रहा है। स्वामी का वध उचित नहीं है। तुम बादशाह का छत्र काट दो। आज्ञा पाकर मोहम्मद शाह ने इस कुशलता से तीर चलाया कि उस एक तीर से सात छत्र एक साथ कट गये। बादशाह को अति आश्चर्य हुआ। युद्ध होता ही रहा। मुस्लिम सेना भारी संख्या में मरती ही जा रही थी। खिलजी शाही सेना किसी न किसी रूप में रणथंभौर की सेना से लड़ते-लड़ते बारह वर्ष पूरे कर चुकी थी। उसके अनेक सैनिक मार डाले गये थे। (दिल्ली मे हाजी मौला आदि ने बगावत कर दी थी।) दिल्ली से यह भी अरदास आई थी कि यदि 'गढ़' जीतना संभव नहीं था तो अब तक लड़ कर इतनी फौज क्यों मरवा डाली। (चउपई. ११७)। हमीर ने सोचा कि इस वक्त बादशाह दबकर बात करेगा । अतः अपने प्रधान रणमल और राइपाल (रतिपाल) को बादशाह के डेरे पर बात करने के लिए भेज दिया। (चउपई. २२३) बादशाह ने राजनैतिक युक्ति साम, दाम, दण्ड और भेद से काम लेते हुए रणमल (प्रधान सेनापति) का अत्यधिक सम्मान किया। उसे लोभ दिया कि तुमको हमीर ने मात्र आधी बूंदी का राज दिया है, हम तो विजयी होने पर तुमको पूरी 'बूंदी' जागीर में दे देंगे। तुम अपने स्वामी हमीर से धोखा करके, उसकी फौज, किसी बहाने से अपने साथ ले, आकर मुझसे मिल जाओ। पुनः यह सांत्वना भी दी कि हम हमीर आदि को जान से नहीं मारेंगे, केवल बंदी बना देंगे। हमीर के पास वापिस आकर प्रधान रणमल ने झूंठ बोला कि संधि की वार्ता हुई थी। अल्लाउद्दीन तो अपनी उन्ही पहले वाली शर्तों को ही दोहराता है। प्रधान मन में कपट रख कर यह भी कहता है कि आपका अनुज वीरम घात कर सकता है। (चउपई. २३५) इसके बाद रणमल ने मांग की कि एक बार आप मुझे सेना के साथ भेज दें तो हमला करके मैं मुगलों का हाल खराब कर दूंगा। राय हमीर ने अपने सवा लाख सैनिकों को उसकी कमान में भेज दिया। तब रणमल फौज के साथ आगे बढ़कर अलाउद्दीन से मिल गया।'गढ़' में सेना की कमी हो गई तब हमीर ने स्थिति की भयावहता को जान कर प्रजा से कहा कि तुम लोग नगर छोड़कर अन्यत्र चले जाओ। हमीर के द्वारा इसी प्रकार कहे जाने पर भी नाल्ह (मल्ल) भाट, बैजल सुत जाजा, बड़गूजर और मोहम्मदशाह पठान ने साथ छोड़कर अन्यत्र जाने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा कि हम पीठ नहीं दिखा सकते हैं। राजा को रणमल प्रधान से धोखा खाने के कारण भारी दुख पहुंचा। उसने अपनी भयावह स्थिति में अग्रिम नीति का निश्चय करके, पटरानी से कहा कि जौहर की रस्म पूरी करो। फिर अनुज वीरम से कहा कि तुम सुरक्षित अन्यत्र चले जाओ ताकि मेरा वंशज तो शेष रहे। वीरम नहीं गया। तत्पश्चात्

हमीर ने अपनी कुलधर्म की ज्योति की रक्षा करने हेतु अपने पुत्र (आसा) का राजतिलक कर दिया। अपना वंशानुगत राजदण्ड-भूत 'खड्ग' निकाल कर कुंअर को दे दिया और कहा कि तुम बड़े होकर रणथंभौर पर कब्जा कर लेना। राजनैतिक अनुभव भरी सीखें भी कुंअर को दी कि किसी महेश्वरी (अर्थात् बनिया) को किसी जिम्मेदारी का प्रधान अधिकारी मत बनाना। तुरक जाति के लोगों को बहुत सम्मान देना (तुरकां ने दीज्यो बहुमान)। इसके बाद हमीर देव ने अपने पुत्र को उसकी माता व राजपूत आदि सैनिकों के साथ घोड़ों पर सवार करवा कर अन्यत्र सुरक्षित स्थान पर जाने के लिए भेज दिया। वहां घर-घर में स्त्रियों ने जौहर व्रत किया। शत्रु के हाथ में कोई भी उपयोगी सामान न जाये इस नीति को ध्यान में रखकर समस्त अरथ-गरथ को राजा ने कूपों, बावड़ियों और सरोवरों आदि में डलवा दिया। समस्त हाथी और घोड़ों आदि का भी वध कर दिया गया। वीरम देव और जाजा को गढ़ की रखवाली के लिए नियुक्त करके हमीर, मोहम्मद शाह को साथ लेकर पैदल युद्ध भूमि में जा कर युद्ध करने लगे।

लड़ते-लड़ते हमीर जब लहूलुहान हो गये और जमीन के पत्थरों से उसकी गति में बाधा पड़ने लगी तब मोहम्मद शाह ने राजा हमीर देव को अपने कंधे पर उठा लिया। मोहम्मद शाह ने ऐसे वक्त में भी हमीर की शान रखी। वह घोषणा करता फिर रहा था— "मेरा साहब हमीर है।" हमीर ने भाट नल्ल को यह काम सौंप दिया कि तुम हमारा दाह करना और मीर पठान को दफना देना। हमीर ने बहुत ज्यादा घायल हो जाने पर अपने हाथ से (साका किया) अपना गला काट कर 'शिव' को सिर समर्पित किया। मोहम्मद शाह पठान ने कुरान शरीफ के नियम का अन्त तक पालन किया कि रहमान की साक्षी देकर जो उसने हमीर से 'चरणों की सेवा करने और उसे स्वामी मानने की "संधि सेवा" स्वीकार की थी, उसको मरते दम तक सच्चे मुसलमान की तरह अमल में लाया।' वह युद्ध भूमि में शैतानों से लड़ता-लड़ता मरा। जाजा बड़गूजर और वीरम भी वहीं युद्ध में मरे।

संवत् तेरह इकत्तरइ जेठ आठमि सनिवार

राउ मूवउ पालट्यउ, जाणनइ इणि संसार।

किन्तु इतिहासकारों ने सन् १३०१ ई. में हमीर की मृत्यु मानी है। नैणसी री ख्यात, भाग २ में सं. १३५८ में मृत्यु मानी। इनकी रक्षा नल्ल भाट कर रहा था। रात बीत जाने पर प्रातःकाल बादशाह अलाउद्दीन उस स्थान पर आया जहां हमीर थे। बादशाह ने रणमल से पूछा— इनमें से तुम्हारा स्वामी कौन सा है? मद और लोभ से अंधे, उस रणमल ने अपने पैर से इशारा करके हमीर की पहचान कराई। बादशाह को उसकी यह हरकत पसंद नहीं आई। नल्ल भाट ने बादशाह की दुहाई की और हमीर के महासत्वशाली चरित्र की प्रशंसा में कवित्त सुनाएं। फिर अलाउद्दीन के अच्छे गुणों का भी गान किया। अलाउद्दीन ने भाट नल्ल से कहा— "गढ़, अरथ-गरथ कुछ भी मांग लो।" हमीर की नीति के अनुयायी नल्ल ने कहा—

'अरथ-गरथ देस भण्डार न काम, साथ कि वि न आवइ सामि।'

पुनः कविता में कहा, यदि तू सुप्रशासक स्वामी है तो— 'द्रोहंतिने परहामारि।' अर्थात् स्वामी से द्रोह करने वालों को सख्त सजा दीजिये।

बादशाह ने मन में विचार कर निश्चय किया कि (कृतघ्न) रणमल और राइपाल (रतिपाल) को मारने में कोई पाप नहीं है। कोठारी (खाद्य-संग्रहाध्यक्ष) ने भी दगा की है।' इसलिए बादशाह ने हुकम जारी किया कि 'स्वामी से द्रोह करने वाले इन तीनों ही व्यक्तियों की, पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक की खाल उतरवा दीजिए।' तत्पश्चात् नाल्ह भाट ने अपने लिए मौत मांगी और सम्मान के साथ मरा।

अलाउद्दीन बादशाह ने हमीर को दाग दिया और गंगा में प्रवाहित किया। हमीर देव के भाट नाल्ह भी बड़ी प्रभावोत्पादक कविता कहते थे। उन्होंनें अपनी वाक्-शक्ति से हमीर के असली दुःखदायी शत्रुओं रणमल आदि की करनी का हिसाब, सही रीति से पूरा किया। इस प्रकार अन्त में भाण्ड व्यास कहता है—

रामायण महाभारथ जिसउ, हम्मीरायण तीजउ तिसउ
पढ़इ, गुणइ, संभलइ पुराण, तियां पुरुषां हुइ गंग सनान ॥

अन्त में निष्कर्षतः कह सकते हैं— संकटकालीन अवस्था किसी को भी नहीं छोड़ती। मनुष्य को उचित है कि 'स्वधर्म' का पालन करे। शास्त्रों में भी सभी प्रकार की नीति विहित है। हमीर ने भी राज करने की समुचित नीति का प्रारम्भतः पालन किया था। प्रजाओं का उसने कल्याण किया था। कोटिमख किया। अन्य राजाओं को जीता। अच्छी सेना, अच्छा कोष, गढ़, धन-संग्रह, मित्र आदि (सप्ताङ्ग) प्रबल था। छत्तीस राजकुल के क्षत्रिय, बड़गूजर जाजा जैसे स्वामिभक्त, मोहम्मद शाह जैसे कुशल मित्रों का संग्रह यत्नपूर्वक किया। भेद नीति का भी पालन किया कि अलाउद्दीन के शत्रु बने उस पठान को जो भारी फौज लेकर आया था उसे शरण दी - उससे अन्त तक लाभ मिला।

१. रणमल सेनापति आदि से बड़ा धोखा खाने के बाद की उस संकटपूर्ण अवस्था में उसने कन्नौज के राजा जयचंद के समान गंगा में डूबकर जान गंवाने का शास्त्र विरुद्ध कायरतापूर्ण कार्य नहीं किया। भाट खेम ने जो हमीर का समकालीन है उसने 'हमीर दे कवित्त' में कहा है—

"गंगबूड जै चन्द मुओ, भिडियौ न भयंगम।" हमीर सरिस हमीर किय कर कंदल रणथंभमल।"

२. समस्त उपयोगी सम्पत्ति को शत्रु से हाथ में पड़ने से बचाने के लिए उसे कूपों, सरोवरों और बावड़ियों में डाल दिया। हाथी और घोड़ों को मार डाला। जौहर व्रत करवा कर स्त्रियों और बच्चों को समाप्त कर दिया वरना शत्रु उन्हें लौण्डी-गुलाम बना सकता था।

३. पुरुष के अधूरे रहे कार्यों को पूरा करने की सन्तान से ही ज्यादा आशा की जाती है। कुल की रीति भारतीय संस्कृति की रक्षा के प्रयोजन से हमीर ने अपने पुत्र और उसकी मां को सुरक्षित अन्यत्र भेज दिया। पुत्र (आसा) का राजतिलक कर दिया। रणथंभौर को बड़ा होने पर अधिकार में कर लेने का निर्देश दिया।

४. अनुभव भरी राजनैतिक सीखें दी—

महेश्वरी (अर्थात् बणिया— व्यापारी) को कभी प्रधान या अध्यक्ष पद पर नियुक्त मत करना। राजनीति विमर्श में महेश्वरी जाति के व्यक्ति की सलाह पर कान मत देना। जैसा कि मोहम्मद

शाह को शरण देते समय व्यापारियों ने विरोध किया था किन्तु उस पर हमीर ने ध्यान नहीं दिया। हमीर का अनुभव खरा उतरा कि उसी मुहम्मद शाह ने हमीर का अन्त तक भरपूर साथ दिया।

५. हमीर की सामयिक राजनैतिक सीख भी सदैव के लिए उपयोगी है जो कि अनुभव में प्रयोग-सिद्ध होने पर उसने अपने कुअर को दी—'तुरकां ने दीजो बहुमान।' तुर्कों (इस जाति विशेष पठानों) को बहुत आदर प्रदान करना।

हमीर ने कड़े वक्त में परीक्षा कर ली कि सच्चा मुसलमान रहमान की साक्षी उठाकर यदि कोई संधि कर ले तो उसे मरते दम तक निभाता है। सामान्यतः इस्लाम धर्म के सच्चे अनुयायी जिसकी नौकरी करते हैं उसके साथ दगा नहीं करते हैं। वे इस नियम के कट्टर होते हैं।

रणथंभौर पर जब अकबर ने हमला किया और उस पर अधिकार किया उस समय ३५०० पठान सैनिकों ने अपने-अपने औरत-बच्चों सहित राणा की तरफ से लड़ते हुए प्राण गंवाये। हल्दीघाटी के युद्ध में भी राणा प्रताप की सेना में पठान आदि मुस्लिम निष्ठा से लड़े थे।

हर एक समय में बादशाहों के खिलाफ लड़ने वाले राजाओं की सेनाओं में मुस्लिम सिपाही अपने हिन्दू स्वामियों के प्रति निष्ठावान रहे।

दरबारी भाटों की वीरता और चातुर्य का भी राजनीतिक प्रभाव 'नल्ल' भाट की करनी से प्रमाणित है। अतः भाटों का रखना श्रेयस्कर है। मरने-मारने की हमीर की नीति ने ८५००० शत्रु सैनिकों को मार कर भारत में बढ़ते शत्रु प्रवाह को रोकने में दृढ़ कपाट का कार्य किया।

वह चाह, मान की ही रखता था अतः उसने अपनी बेटी को देकर यानि सम्मान निधि दे कर झूठा भोगभरा सामन्ती शासन करने की चाह को पाप माना।

हमीर महासत्वशाली 'मुक्त' पुरुष था। उसकी राजनैतिक सीख, सच्चे राष्ट्र का निर्माण करने में उपयोगी प्रमाणित हो सकेगी। अतः 'हमीरायण' काव्य का उपन्यास, काव्य नाटक आदि के रूप मे साहित्यिक शिक्षा निर्माण मे उपयोग अपेक्षित है।

राजस्थान प्राच्य विद्या
प्रतिष्ठान, भरतपुर

सन्दर्भ :

डा. दशरथ शर्मा द्वारा लिखित भूमिका प्रकाशित 'हमीरायण' सन् १९६० ई.।
-क राजा हमीर के शिलालेख वि.सं. १३४९ एवं १३४५ वि.सं.।
-ख कवि मल्ल (नल्ल· भाट) रचित कवित्त रिणथंभौर रै रांणौ हमीर हठालै रा"
— उक्त 'हमीरायण' के परिशिष्ट-२ में छपा है।

आवश्यक नोट— भाट खेम ने (हमीरायण परिशिष्ट ४ में) हमीर दे कवित्त में— "भाट खेम कहै बात जाजौ बड़गूजर प्राहुणौ थकौ आयौ हुतौ तिण नूं राजा हमीर आपरी बेटी देवल दे परणाई थी। सु परणा मोड बांधे हिज काम आयो। देवल दे राणी होद माहे बुड मुई॥

नल्लभाट— श्री ओझा जी ने भी राजपूताने का इतिहास की भूमिका में पृष्ठ १९ पर बीसलदेव रासो के रचयिता नल्ल को हमीर का आश्रित भाट माना है । बीसलदेव रासो-विजयपाल रासो आदि हमीर के समय की रचनाएं हैं।

पुनः, हमीरायण परिशिष्ट-२ का कवित्त "रिणथंभौर रै राणौ हमीर हठालैरा" रचयिता मल्ल— नल्ल ही संभव है। - म = न = नल्ल से मल्ल मे प्रतिलिपिकार का दोष है।

पुनश्च, तारीखे-फरिश्ता में लिखा है कि मुहम्मद शाह के नेतृत्व में कई लोगों ने विद्रोह किया था, वे जालोर से भागकर रणथंभौर आ गये थे।

"बादशाह अलाउद्दीन ने उन सभी आदमियों को भी मरवा दिया जिन्होंने राजा (हमीर) का साथ छोड़ दिया था। जैसा रणमल आदि वजीर। उस बादशाह ने कहा अपने स्वामी के प्रति इनका ऐसा व्यवहार रहा है, ये मेरे प्रति भी सच्चे कैसे रह सकते हैं।"

डा. शीला दीक्षित ने शोध प्रबन्ध लिखा है तुर्ककालीन भारत में दासों के आचरण व राजनीति पर प्रभाव, वह भी द्रष्टव्य है।

घेला खिड़िया कृत बियाखरी दूदा हाडा री

— *डॉ. अम्बादान रोहड़िया*

घेला खिड़िया कृत 'बियाखरी दूदा हाडा री' विषयक मेरे इस वक्तव्य में मैंने डिंगल साहित्य की एक अज्ञात कृति का परिचय प्रस्तुत किया है और राजस्थानी साहित्य एवं इतिहास में उसका महत्त्व प्रतिपादित किया है ।

राजस्थान, गुजरात और अन्य प्रान्तों में चारणी साहित्य में शोध-संपादन हेतु थोड़ा बहुत कार्य पिछले कुछ सालों से आरंभ अवश्य हुआ है, मगर आज तक चारणी साहित्य का सिर्फ दसवां हिस्सा ही प्रकाशित हो पाया है । राजस्थान और गुजरात में मध्यकालीन चारणी साहित्य का सृजन विपुल मात्रा में हुआ है लेकिन चारणी साहित्य मौखिक परंपरा का होने से उसका कुछ अंश लुप्त हो गया है और थोड़ा हिस्सा पांडुलिपि भंडार में छिपा पड़ा है । यदि हमें इतिहास के सभी पहलुओं को उजागर करके हमारी संस्कृति का पूरा परिचय प्राप्त करना है तो डिंगल साहित्य की ज्यादा से ज्यादा छानबीन करनी होगी और उसके बाद भारतवर्ष के इतिहास के तथ्यों को प्रकट करना होगा । क्योंकि दुर्भाग्यवश हमारे देश का इतिहास कुछ ऐसे लोगों ने लिखा है जो किन्ही सत्ता परस्तों की कदमबोशी करते थे अथवा जिनका अपना कोई दृष्टिबिन्दु ही नहीं था । ऐसे लोगों ने तो हमारे प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम को भी १८५७ का विद्रोह ही लिख दिया है । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि पुनः शोध के द्वारा सत्य का प्रतिपादन किया जाय । इसके लिए इतिहास का पुनर्लेखन करना समय की मांग है ।

गुजरात-राजस्थान की भूमि वीर नररत्न प्रसविनी है । इन वीर नररत्नों ने अपनी मातृभूमि एवं संस्कृति की आन, बान और शान की रक्षा के लिए आजीवन विधर्मियों से लोहा लिया

है ।यह धरती इन रणबांकुरों की शहादत और त्याग को अपनी ओजस्वी बाणी से जगप्रसिद्ध करने वाले भगवती शारदा के उपासक चारण कवियों की भी जन्मदात्री है ।चारण कवियों ने इतिहास के सुवर्ण पृष्ठों पर शूरवीरों की बातें अंकित की हैं । चारणी साहित्य की ऐसी एक कृति है । "बियांखरी दूदा हाडा री" इस कृति के कर्ता हैं, चारण कवि घेला खिडिया । इस कृति का सबसे आकर्षक पहलू है कृतिकार का गुजराती होना । किन्तु इस कृति का नायक दूदा हाड़ा राजस्थानी है । दिल्लीपति अकबर के साथ बूंदीपति दूदा हाड़ा का युद्ध हुआ था । कवि ने अपनी ओजस्विनी वाणी में इस संग्राम का चित्रात्मक वर्णन किया है ।यहां प्रारंभ में कवि और कथानक का परिचय प्रस्तुत कर तत्पश्चात् कृति का रसास्वाद कराना अभीष्ट है ।

गुजरात के झालावंश का राजस्थान के राजपूतों से पुराने काल से वैवाहिक संबंध रहा है । इस सिलसिले में कई झाला सरदार राजस्थान में आकर स्थायी हुए हैं । इस आवागमन के कारण कई चारण कुल राजस्थान से गुजरात में आकर स्थायी हुए हैं । इन चारण कुलों में एक खिडिया कुल भी है जो विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में सौराष्ट्र में आकर झालाओं के राज्याश्रय में बस गये । झाला सरदार ने उनको कवाड़िया और सूरवदर नामक दो गांव प्रदान किये ।[१] ये दोनों गांव हलवद तहसील सुरेन्द्र नगर जिले में है ।[२] चारण कवि घेला खिड़िया का जन्म कवाड़िया नामक गांव में हुआ था ।[३] मगर घेला खिड़िया का जीवन वृतान्त अप्राप्य है । इस कृति से सिर्फ इतना प्रमाणित होता है कि यह बून्दी के राव दूदा (दुर्जनसाल) व शहँशाह अकबर के समकालीन थे और राजस्थान में उनका आवागमन भी होता था । इस सम्पर्क सूत्र के फलस्वरूप घेला खिड़िया ने राजस्थान के रणबांकुरों की शौर्यगाथा को अपनी ओजस्विनी बाणी में चित्रांकित किया है । वस्तुत: यह घटना राजस्थान और गुजरात की प्रान्तीय एकता के भावात्मक सेतु की द्योतक है ।

बून्दीपति सुरजन साल के दो पुत्र थे । ज्येष्ठ पुत्र भोज और छोटा पुत्र दुर्जनसाल था ।. कवि के अनुसार रणथंभौर के किले के लिए अकबर के साथ हुई लड़ाई में अकबर को परास्त करने वाला दुर्जनसाल बड़ा ही वीर और पराक्रमी था ।

ग्रंथ परिचय—

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के गुजराती भवन के पांडुलिपि भंडार में इस कृति की दो पांडुलिपियां मिलती हैं । इनमें से एक अपूर्ण है । इस आलेख के लिए मैंने पूर्ण प्रति का उपयोग किया है । इस शोधपत्र में जहां जहां उदाहरण दिये हैं वे इस प्रामाणिक पूर्ण पांडुलिपि से अवतरित हैं और कृति में जो क्रम है उसी का जिक्र किया गया है । इस प्रति का क्रमांक ४०/२०८० है ।[४]

इस कृति में कवि ने ४ गाहा, ८८ बियाखरी, ५८ पाधड़ी, १४ दोहे और एक कलश के कवित्त का प्रयोग किया है । इस तरह कुल मिलाकर १६५ कंडिकाओं में यह संग्रामकथा प्रस्तुत की गई है ।

कृति के प्रारंभ में कवि ने ४ गाहा छंदों में तत्कालीन परंपरा अनुसार भगवती शारदा एवं गौरीपुत्र गणेश का स्तवन करके मंगलाचरण किया है और राजपूत वंश की इस गौरवगाथा को

प्रस्तुत करने के लिए शक्ति की याचना की है।

मंगलाचरण के बाद कवि ने ८८ बियाखरी छंदों का प्रयोग किया है। बाद में कृति में संवाद प्रयोजित करके १४ दोहे प्रस्तुत किये हैं। फिर संग्रामकथा पाधड़ी छंद में आगे बढ़ती है। पश्चात् एक कलश के कवित्त द्वारा कृति का समापन किया गया है।

कृति का आदि और अन्त निम्नांकित है। आदि—

॥अथ गुण बेयाखरी दूदा हाडा री खेडिया गेहला की कहंत लिखिते ॥

अन्त—

॥इति गुण बेयाखरी रूपग १६५ ॥ छते संपुरण लखा छे ॥ लखतग बारट शीआ देवादानाणी वरखे जेठ वद, ३ सोमे श्री नवानगर मध्ये कल्याणमस्तु ॥श्रीरस्तु ॥

ग्रंथ संक्षेप—

घेला खिडिया कृत बियाखरी राव दूदा री कृति का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

बून्दी के राव सुरजन के पुत्र दूदा (जिसको कथा में दुर्जनसाल भी कहा गया है) बडा वीर व युद्धनिपुण राजा था। राव दुरजनसाल को अधीनस्थ करने के उद्देश्य से अकबर ने राव दूदा पर आक्रमण कर दिया। घमासान लड़ाई हुई। कई योद्धा मारे गये और अकबर को भी पराजय का मुंह देखना पड़ा। पराजित होकर दिल्ली लौटा हुआ अकबर व्यथित हुआ। अकबर ने शाही कचहरी में यह एलान किया कि जो सरदार दूदा हाडा को परास्त करेगा, उसका शाहजादी के साथ ब्याह करके उसे हाड़ाओं का आधा राज्य दे दिया जायेगा।

दूदा हाड़ा के शौर्य और वीरता से प्रभावित सब लोग नतमस्तक बैठे रहे। लेकिन तीसरी बार एलान किया गया तो बहादुरखांन ने खड़े होकर बीड़ा उठा लिया और वह शाही सेना को साथ लेकर बून्दी पहुंचा। वहां दुर्जनसाल के साथ उसका बड़ा भारी संग्राम हुआ । आखिर में बहादुरखान परास्त हुआ।

आस्वाद—

घेला खिडिया कृत 'बियाखरी राव दूदा री' का ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। कृति का कथानक तो इतिहास प्रसिद्ध है, मगर कवि ने अपनी ओजस्विनी वाणी में दुरजनसाल की वीरता और क्षत्रियोचित पराक्रम का यथार्थ वर्णन किया है। कृति, भाषा, रस, अलंकार और छंद इत्यादि पहलुओं से उल्लेखनीय है। लेकिन निर्धारित समयावधि के कारण मैंने कृति की चन्द उत्तम आस्वाद्य पंक्तियों को ही प्रस्तुत किया है।

राव दुरजनसाल का छोटा पुत्र दूदा बाल्यावस्था से ही तेजस्वी और बलवान था। जन्म के बाद कुछ ही दिनों में उसने घुटनों के बल चलना सीख लिया था । यथा—

वड जिम वाधे दूद खता वाणि।
अनि पोह वरस तितो दिन एकणी ॥

यहां कवि ने गुजरात की प्रसिद्ध कहावत दिवसे बमणो वधे रात चोगुणो वधे का कलात्मक विनियोग किया है तो दूसरी ओर दुरजनसाल बचपन से ही आम लोगों से कुछ भिन्न ही था । ऐसा माहोल खड़ा किया है । कुछ ही दिनों में वह आंगन में दौड़ने लगता है ।

दीह दस पंच रीषि रा अंगनि ।
वेहला ए पग थोभे थड़ी वणी ॥
दीह पंच दस थोभी थड़ी वणी ।
होए रा अंगणि लागो हालकी ॥६ ॥

दुरजनसाल की किशोरावस्था में चारण कवियों ने चौहानवंश की यशोगाथा, का उसको परिचय करवाया था । अपने पूर्वजों की यश गाथा सुनने का उसको बड़ा शौक हो गया था ।

साआ अंषरिष सदे नांणो ।
रूप तुझ कुली गोगल राणो ॥ २३ ॥

पृथ्वीराज चौहान की वीरता और अप्रतिम शौर्य को कवियों ने हृदयंगम करवाया था ।

रामति सजीजे पीथल रमेयो ।
गदे ए बाण असर घर गमैयो ॥ २५ ॥

अपने पूर्वजों की यशोगाथा सुनकर ऐसा पराक्रम दिखाने का संकल्प करने वाले दुरजनसाल के शौर्य और पराक्रम की बात दशों दिशाओं में फैल जाती है । और दुरजनसाल अकबर की आंखों में खटकने लगा ।

अकबरशाह हिन्दुआ ओखल ।
साल तिम असुरा दुजणसल ॥८५ ॥

अकबर ने राव दूदा को संदेश भेजा कि मेरी शरण स्वीकार कर मुझे नजराना पेश करो, मगर क्षत्रियोचित शौर्यवन्त दूदा ने साफ इंकार कर दिया ।

नमि मूं दूदा तु सर नामी ।
शाह कहे काए भेजी सलामी ॥ ९३ ॥
गरजे एम रंगथंभर गामी
सरनामी नह दिया सलामी ॥९४ ॥

दूदा ने अकबर का अनादर किया तो संग्राम शुरू हो गया और अकबर की बुरी तरह पराज़य हुई ।

थाप खडग आंहजे कुंभाथल ॥ ९५ ॥

* * * * * *

हाए हाए भाखे देवे हर
वलती वाए बूंब न वाहर ।
सीधर भाजे गांजे सरताणी ॥
आवे थहे वेसे आपाणी ॥
राहु काबे नवे खंड के ।
खुदालम उर सेल खटके ॥९६ ॥

शहँशाह अकबर को अपनी पराजय की वेदना मन ही मन खाये जा रही थी । इस उक्ति में अकबर की मनःस्थिति का निरूपण हुआ है ।

पडे भंगाण प्रांजले पाटण
षोदालम सष सेज नही षण ॥
अणभंग दूद नणां ओद्राए
षुदालम नह मदयक षाए ॥९८ ॥

अकबर ने दिल्ली कचहरी में बीड़ा फिराकर दूदा को पराजित करने वाले सरदार के साथ शाहजादी का ब्याह करवा के चौहानवंश का आधा राज्य दे देने की घोषणा की । अकबर की मनःस्थिति को इस दोहे में चित्रित किया गया है यथा—

दईवा ओ गति दाहेरो । रचि बैहो सुरताण ।
दुजणसाल दष गाहवा । आगल ही असराण ॥९ ॥
अकबर आषे ऊंमरां । कोई साधे दूद असाध ।
पहला घी परणावी करि आपा चाओर आध ॥१० ॥

अकबर की कचहरी में उपस्थित सभी वीरों को दुरजनसाल की ताकत का ठीक-ठीक अंदाजा था । इसीलिए तो सभी ने अपनी आंखें जमीन पर गाड दीं । तीन बार कचहरी में बीड़ा फिराया गया । मगर सभी उमराव हतप्रभ हो गये ।

केरा त्रणि फरमाण करि, मांही महल महंत
सतरी बहुतरी संभले, काने छांह करंत ॥ १२ ॥

ऐसी विकट स्थिति में बहादुरखान ने बीड़ा उठा लिया । और कहा कि शहजादी तो हमारी माता के समान है, यह कहते हुए विवाह से इंकार किया । इस पंक्ति से प्रजा और राजा के पवित्र संबंध उजागर होते हैं ।

तूं घा अम माता जसी । सैन समापि समूझ ।
दुरजनसाल पाधोरियां । तो मखि दाढी मूछ ॥१३ ॥

बहादुरखान की बहादुरी और शौर्य की प्रशंसा करते हुए अकबर ने कहा—

बहादुरखान फोहाड़ बद्र । आषे मुं असमान ।
अगा अकबर ईर्षयो दूदो लफड़खान ॥१४ ॥

बूंदी पर आक्रमण करने के लिए बहादुर खान ने सैन्य में वीर योद्धाओं का वर्णन किया उनके योद्धाओं का वर्णन पघड़ी छंद में कलात्मक ढंग से हुआ है । यथा—

पंच चत्र हाथ डीले पहुर ।

आ ऊडी हाथ मोकला ऊर ॥९ ॥

बहादुर खान के आगमन की बात सुनते ही दूदा हाड़ा में वीररस का संचार होता है । कवि की छंदकला निरूपण शक्ति की परिचायक पंक्तियां दर्शनीय हैं —

रौद्र चा सणे वाजिंत्र रोल ।

कसण बंध त्रुटि विकसि कपोल ॥३२ ॥

घेला खिडिया ने बड़ी सूझबूझ के साथ प्रसंगोचित अलंकार का विनियोग करके कथा प्रवाह को रसग्राही बनाया है—

उतरे खागी दोरे उखंड

भति चाक जेम घट कमल मंड ॥ ५२ ॥

समरागंण में दूदा के सामने बडी वीरता के साथ जूझने के बाद बहादुरखान की पराजय होती है । कवि ने अकबर के प्रशस्ति वचनों का व्युतक्रम करते हुए दूदा के शौर्य, पराक्रम की व्यंजना इस उपालम्भ से कर दी कि यह तो लकड़ी ने कुल्हाडे को काट डाला है । उदाहरण दृष्टव्य है—

गो भाजि बहादुर मेलि मद ।

षूटवि धड षरसाण खनि ॥

भति एणि कुहाडो भंजियो ।

जीतो लकड़ षान जगि ॥

पांडुलिपि विवरण—

श्री रतुदान रोहड़िया ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय भंडार के लिए १९६९ के शोध यात्रा के दौरान इस पांडुलिपि को प्राप्त किया । इस में बहुत से डिंगल काव्यों के साथ 'दूदा हाडा री बियाखरी' भी है ।

यह पांडुलिपि ४ से.मी. चौड़ी और २५ से.मी. लंबी है । इसके प्रत्येक पृष्ठ पर १२ पंक्तियां हैं । प्रत्येक पंक्ति में २६ से २३ तक अक्षर हैं । काली स्याही से लिखी गयी यह रचना लिखावट की दृष्टि से साफ सुथरी है । जो नागरी लिपि में पायी जाती है । जहां छंद का उल्लेख है वहां दोनों ओर से दो दो दंड चिह्न भी किये हैं यथा—

॥अथः गाहा ॥

इस तरह छंद के चरण को भी दोनों छोर से दो दो दंड चिह्नों द्वारा आवृत किया गया है । यथा—

॥तूं वघ्रवाणी तूं ब्रह्माणी ॥

वेसे आलोच्य कृति बियाखरी राव दूदा री साहित्य एवं इतिहास के ग्रन्थों में उपेक्षित सी रही, किन्तु उसमें राजस्थान का गौरवपूर्ण इतिहास सुरक्षित है । इस कृति के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट होती है कि गुजरात-राजस्थान में बिखरे पड़े डिंगल काव्यों की खोल एवं उनको साहित्यिक व सांस्कृतिक दृष्टि से अनुशीलन करके इतिहास की विलुप्त कड़ियों को जोड़ने की महती आवश्यकता है । इन काव्यों के माध्यम से ही हम अपनी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत के प्रति गौरव का अनुभव करते हुए निज अस्मिता को चरितार्थ कर सकते हैं ।

राजकोट (गुजरात)

पाद टिप्पणी

१. श्रीमान रतुदान रोहड़िया की भैंट दि. १-२-९६ से अवतरित अंश
२. एजण
३. एजण
४. सौराष्ट्र युनिवर्सिटी गुजराती भाषा साहित्य भवन चारणी साहित्य हस्तप्रत भंडार की हस्तलिखित प्रति क्रमांक ४०/२०८०

डिंगल का ऐतिहासिक काव्य : जवानरासो

— डा. राघवेन्द्रसिंह मनोहर

डिंगल के एक अज्ञात ऐतिहासिक काव्य 'जवानरासो' की दो हस्तलिखित प्रतियां हमें उपलंब्ध हुई हैं जिनमें से प्रथम बड़ी प्रति के रचयिता बारहठ सीताराम रत्नू तथा दूसरी छोटी प्रति के नरसिंहदास रत्नू हैं । अद्यावधि अज्ञात एवं अप्रकाशित इस काव्य की ये दोनों प्रतियां बोराज के कुंवर दुर्गादासजी के सौजन्य से मिली हैं । इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य में पूर्व जयपुर रियासत में खंगारोत कछवाहों के एक प्रमुख संस्थान बोराज (प्राचीन नाम बोराईचि) में विक्रम संवत् १८४३ की माघ वदी १४ फरवरी १७८६ ई. को लड़े गये भीषण युद्ध का रोमांचक व प्रामाणिक वर्णन हुआ है जिसकी उपलब्ध शिलालेखों तथा अन्य साक्ष्यों से पुष्टि होती है ।

जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह के शासनकाल में मरहठों के साथ कई लड़ाईयां हुईं जिनमें तूंगा का युद्ध प्रसिद्ध है । बोराज का यह युद्ध तूंगा के उक्त युद्ध से लगभग छह माह पहले हुआ । मरहठों के बोराज पर किये गये इस आक्रमण का नेतृत्वकर्ता महादजी सिन्धिया का सेनानायक रायजी पटेल था जिसका बोराज और निकटवर्ती ठिकानों के खंगारोत शासकों ने जबरदस्त प्रतिरोध किया । फलतः बोराज में तीन दिन तक भीषण युद्ध लड़ा गया । इस युद्ध के नायक बोराज ठाकुर सकतसिंह के कनिष्ठ पुत्र जवानसिंह थे जो निकटवर्ती भ्रातृ संस्थान सीतारामपुरा के अधिपति थे । जवानसिंह ने इस युद्ध में मरहठों का संहार करते हुए अप्रितम वीरता प्रदर्शित की तथा अपने अनेक योद्धाओं सहित लड़ते हुए काम आये । बोराज में किले के सामने एक विशाल चबूतरे पर स्थापित संगमरमर की शिला पर एक शिलालेख उत्कीर्ण है जिसमें जवानसिंह के अपनी मिसल (सैनिक टुकड़ी) सहित वीरगति पाने का उल्लेख है । इस कलात्मक शिलालेख के ऊपरी भाग पर जवानसिंह तथा अन्य योद्धाओं की सुन्दर आकृतियां बनी हैं । इसमें जंवानसिंह घुड़सवार के रूप में प्रदर्शित है वहीं

अन्य योद्धाओं को पैदल हाथ में भाला लिए हुए दिखाया गया है। सफेद संगमरमर की शिला पर योद्धाओं का बहुत सजीव और जीवन्त रूप में अंकन हुआ है।

उक्त बोराज युद्ध में जवानसिंह द्वारा प्रदर्शित अद्‌भुत वीरता और पराक्रम पर डिंगल के इस ऐतिहासिक काव्य जवानरासो की रचना हुई है। हालांकि जवानरासो का प्रतिपाद्य केवल युद्ध की घटनाओं का वर्णन करना है अतः यह एक लघु खण्डकाव्य है परन्तु ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों ही दृष्टि से यह महत्वपूर्ण रचना है। यह प्रचुर ऐतिहासिक संदर्भों से युक्त है। इसमें बोराज युद्ध की तिथि, युद्ध की प्रमुख घटनाओं, लड़ाई में भाग लेने वाले कछवाहा, राठौड़, पंवार, धाभाई, गौड़ व अन्य योद्धाओं तथा महादजी सिन्धिया के सेनानायक रायजी पटेल की गतिविधि सहित अनेक बातों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। कवि चूंकि इस युद्ध व्यापार का प्रत्यक्ष दृष्टा था अतः इसका ऐतिहासिक महत्त्व और भी बढ़ जाता है। फलतः उक्त युद्ध संबंधी जानकारी के लिए यह एक प्रामाणिक साक्ष्य ग्रंथ के रूप में उपयोगी है। साथ ही यह डिंगल परम्परा की एक सशक्त रचना है जिसमें कवि ने अपनी ओजस्वी एवं प्रवाहपूर्ण शैली में अपने चरित्रनायक के शौर्य और वीरता का सुन्दर वर्णन किया है। यह वर्णन कहीं कहीं मौलिक एवं उत्कृष्ट कवित्व से भी गर्भित है। उक्त रचना के काव्यगत महत्व तथा उसमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं का सामान्य परिचय देने की दृष्टि से इसके कुछ चयनित अंश विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यथा बोराज युद्ध की तिथि के संबंध में 'जवानरासो' का यह उल्लेख कितना महत्वपूर्ण है—

माह बदि तिथि चवदसि मदै, उण दिन मंगलवार।
घटियो जुध बोराचि थहै, जवान पटल गुजार॥
बाषाण करूं जस ज्वन बीर, रिण रचे जेण विधि धरंधीर।
मंगल बुदि चवदसि माहा मास, जुध रचे समत तैयाल जास॥

महादजी सिन्धिया के सेनानायक रायजी पटेल से संबंधित कुछ संदर्भ दृष्टव्य हैं —

सजो जरूर जरूर सूं सांवत रावत सूर।
दषि पटैल गरूर दिल, कीधौ कोप करूर॥
जपियो माघ पटैल दिस, राय पटैल धिराज।
दल संका ढूंढाड़ दिस, आप पधारो आज॥
हट पटैल जग माण हड़, तिम हिरणांकस ताण।
राषण बांण बाराह रूष, यल षत्रवाट जवांण॥
हट सायक राय पटैल हठी, यल रायक जोध जवाण अठी।
कधि राय वुठी चढ़ कुन्र तिसो, जुध नांघ भडां भड़ भीम जिसो॥

जवानरासो में इस बोराज युद्ध में लड़ने वाले वीरों का बहुत रोचक और प्रभावपूर्ण वर्णन हुआ है—

देयण अगर ओठम दलां, दूठ अगर षलदाय।
अगर सवाईसिंघ रो, सोहड़ा अगर सवाय।

बदन जलाहल तेज बिंब, रजवट बदन सरोष ।
बढै दय दवुतरिण बदन, चढै बन जस चोष ॥
वोपै षत्रवट आब अंगि, समहर करण सताब ।
सिंध सवाईसिंघ रौ, गाढै मंतै (जु) लाब ॥
केड़तियारौ भाण कध मेड़तिया रौ मोड़ ।
समहरत षियो नागसो वो लषयो राठौड़ ॥
बधिर षिये षत्रवट बिरद, मैं दषिये कुल मोड ।
अणभग सींघ वमेदरौ, वै लिषिय राठौड़ ॥
षलां बिघर पण षांग जट जोधा जीयण जंग ।
लिछमण धीरज सींघ रो, रंगियो रजवट रंग ॥
अजो भवानूं भड़ अभंग जंग कौजू जोधार ।
(दा) रण षग जटण दलां, पाडण षलां पंवार ॥

जवानरासो के युद्ध वर्णन से पता चलता है कि बोराज की इस लड़ाई में विभिन्न शाखाओं और उपशाखाओं के क्षत्रिय वीरों के अलावा जन सामान्य अर्थात् समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों ने मरहठों के इस आक्रमण का जमकर प्रतिरोध किया तथा लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दी । इनमें चारण, पुरोहित, दादूपंथी, नागासाधु, धाभाई, कलाल तथा अन्य वर्गों के लोग शामिल थे । यथा—

प्रसरामरूप जिंदराम प्रोत, मोरिचा वुठाया मोहणोत ।
दादूजं पंथ मैं ब्रमदास, गोकल को चेलो गुगुण प्रकास ।
धाऊज रूपचंद सूर धीर, अण संक जज करतो अहीर ।
कोजूह सुतण लालो कलाल, झटका बोह करतो जलाल ।
चारण रिण पड़िया जूजि च्यारि, स्याम ध्रम काम अमाम सारि ।
हद लड़े लाल दूजो हमीर, मारिया दिषण्या पंच अमीर ।

यह ऐतिहासिक काव्य अपने काव्यगत सौन्दर्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट कोटि की रचना है । विशेषकर इसका युद्ध वर्णन इतना ओजस्वी और जीवन्त है कि आज से दो सौ दस वर्ष पूर्व लड़े गये उस भीषण युद्ध का सजीव रेखाचित्र हमारी आंखों के सामने उभर आता है । जवानरासो के युद्ध वर्णन की एक झलक देखिए—

धड़ाधड़ तोप गजे घमरोल, बड़ाबड़ तेग बजे बंबरोल ।
पड़ै जड़ि जो रिणसार अपार, बहै भलकारन लावत बार ।
चढै भडराप जलै षग चालि, हल रतनांगर जेम हकालि ।
हच रिण फोज धरै मन हपोस, रचै भड़ जुवाण अगसत स्योस ।
पिलै भड़राप छिलै नहै पार, मिलै नद जेम समंद मंजार ।
चलै दल थाट मिलै चकचूर, सही तम फाट जिलै तप सूर ।

बहै षल फण सजैरिण बाट, गलै जिम टीड हिमै जल धार ।
बहै घमसांण अजब बंदूक, असी असमांण गजब अचूक ।
भड़ासणि जूड़ जड़सणि भोट, लषै ग्रह बाज गड़ासणि लोट ।
लषै षल फूटी सरै लट टोट, चड़ै पर नर करें मरै चोट ।
यसा पड़ि जूमि कंगूर अरिंद, गिरै जठि वूधि लंगूर गिरंद ॥

*** *** ***

धरे हिरणांकुस वपरधोप, करे नरसिंघ भरे रिस कोप ।
यसी बिधि कोपियो जोध जवाण, सजे तप भाण दुवा समांण ॥
दहंदल नायक बायक दीध, कसेभड़ तायक आहिव कीध ।
धुरे त्रह तोप डंडा हल घोर, सुंडा हल है दल पैदल सोर ॥
जगे अति सोर लगी जल जोर धगी नभ घोर घड़ी जिम छोर ।
टंडे दिषणी कूरम ठाम, मंडे कुरपंड जुही संगराम ॥

रणचण्डी द्वारा रक्तपान तथा कबन्ध युद्ध का प्रसंग भी रोमांचक है—

ग देव मिल घट घट, गलै रत बीर चंडी गट गट ।
लषांभ मूंड पडै लटलट, चुणै रड माल सिंभू चट चट ।
हठै बेताल हसै हठहठ तठै रुद्र षाल भटै तठ तठ ।
सजै षग तूटत हंस समंध, कटै सिर जूटत केक कमंध ।
जरै धर सार दुधा रजपट, करै ललकार हकार कवट ।
रुलै पग जाल अंत्राल बिरूप, वुरै बरमाल जलाल अनूप ।
लगेह दवा अंग घूमत लोह, सही भदवा बंग वूमत सोह ।
पडै केई घायल वुबरिपाल, मिलै केई जोध महि मंद्दराल ।
सबै दल घायल पूर दुसार, पड़े दिषणी जड़ि पंच हजार ।
पला सणि हासणि ग्रीध छपाड़ि, पड़े रिण राव घणा षल पाड़ि ।
कीयो हर हार सिरोमणि केत, षत्रीगुर जुजि पडे रिण षेत ।

जवानरासो की दूसरी अपूर्ण प्रति जो किन्हीं नरसिंहदास रत्नू द्वारा रचित है में बोराज युद्ध की घटनाओं का क्रमबद्ध रोमांचक प्रभावपूर्ण, जीवन्त और हृदयग्राही वर्णन हुआ है जिसके कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं—

मंगलबुद्धि चवदसि माहा मास, जुध रचे समत तैयाल जास ।
पहले दिन जध हवोय है प्रकार, सुकबीक है सांचा समांचार ॥
बरियाम स्याम कजि भिड़े बेग, तोपां परिजाती बहि तेग ।
पलटणि सिपाह कटिया अपार, वुठिगा मोरिचावै ही वार ।
समीयाज मरहटा फेरि सूर, पड़ियाज षेतिबल करे पूर ।
दूजे दिन पून्य बुधवार, परभाति तोप घूमंत अपार ।

वुणबार ज्वन वूठयो अह, सादूल दकाल्यो जाणि सीह ।
समराध सरमा ज्वुनसंग, आवीय किला बारै अभंग ।
हलो मंजि दिषणी दल हटाय, मारे गनीम चौगान मांय ।
पनराहा जषमी पड़े, पांच सेनां मैरट भंजि संस साच ।
कुसलेस हवे करि फतै काज, अण संक आय करतो अगाज ।
बुदि फागण पड़िवा गुर बिचाल, तीजै दिन रिण मंडि निराताल

जवानसिंह और उनके साथी योद्धाओं के शत्रु सेना पर टूट पड़ने तथा फलस्वरूप घमासान युद्ध होने का साक्षी जवानरासो का यह उल्लेख देखिये—

जिन बार ज्वनसिंघ महाजोध, दिखान तोलि वठयोस क्रोध ।
लंकाल रूप भड़ ज्वुन लार, अनमैत आय भिड़िया अपार ॥
भाराध हुवो अदभुत भयांण, मरैटा हटा कटि अ प्रमाण ।
नाहर ज्वुन कीनु अषेट, थाहर हिण मंडीयो दुरंग घेट ॥
बलोबल बाजि अति बीर, हाक लगि आभ सीस वससे लड़ाक ।
च्यार सै तोप चहुं बल चलंत, घर अचर-धराधर घर सलंत ॥
पटैल भांणिजा धरमपूत, बरो बरि षड़ा बिहूं मजबूत ।
रिण ताल कराल त्रमक रुड, जलमां टोप भड कड़ा जूड ॥
डंकणी केई संपणी दे तरास, काली कंकाली चड़ि अकास ।
सिवषड़ा आय वमिया समेत, हसि बैरी जोगणी पत्र हेत ॥

इस युद्ध के प्रमुख केन्द्र बोराज के किले की प्रशंसा में कवि द्वारा कहे गये ये दोहे उल्लेखनीय हैं —

दिल बंका बंका बिरद, अति बंका अगि आचि ।
बंकाधट रावत बसै, बंका गढ़ बोराचि ।
बिरद अढंका निरबहण संका न मानै साचि ।
रावत धका धारिया, बंका गढ़ बोराचि ॥

बोराज के समीप खंगारातों के एक अन्य संस्थान हिरणोदा में उपलब्ध एक स्मारक शिलालेख से भी जवानरासो में वर्णित इस युद्ध की प्रामाणिकता पर प्रकाश पड़ता है । उक्त शिलालेख के अनुसार हिरणोदा के ठाकुर गुमानसिंह ने युद्ध के तीसरे दिन बृहस्पतिवार को रायजी पटैल भी मरहठा सेना का मुकाबला करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए । इस शिलालेख में बोराज के किले पर १७८६ ई. में लड़े गये इस युद्ध को साके की संज्ञा दी गई है ।

बोराज के इस युद्ध में जवानसिंह द्वारा प्रदर्शित अद्भुत वीरता और पराक्रम पर मुग्ध होकर जवानरासो के रचयिता ने अपने चरित्रनायक द्वारा किये गये युद्ध को चित्तौड़, गागरोण तथा रणथंभौर इत्यादि प्रसिद्ध किलों पर हुए साके से उपमित करने में अपना गौरव समझा है—

जेम कीध चीतोड़ पतै जैमल छत्रीपण ।
जेम कीध गागरोणि, राव अचलेस अचल रिण ।
घटे जेम रिणथंभ, प्रसिध हमीर प्रवाण ।
बिढै खंगा बोराजि, तेम जुध कियो जवाण ।
जुग च्यारि पला अंबरजतै गिणां सूर चंद मेर गिर ।
जाय नह कीरती जातां जुगां, अखियातां बातां अमर ॥

प्राध्यापक, इतिहास
३४, सवाई सदन, जोबनेरबाग
पारीक कालेज रोड, जयपुर

जयपुर के कच्छवाह शासकों का इतिहास

— डा. गिरिजा शंकर शर्मा

राजस्थान में भी भारत के अन्य भागों की भांति ऐतिहासिक काव्य निर्माण की एक सुदृढ़ परम्परा रही है। जयपुर राज्य का काव्य-ग्रन्थों के निर्माण में विशिष्ट स्थान रहा है। कविचन्द द्वारा रचित "कूर्मविलास" काव्य ग्रंथ इनमें से एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। कूर्मविलास का सीधा संबंध जैसा कि इस काव्य ग्रंथ के नाम से ही ज्ञात होता है आमेर और जयपुर के कछवाह वंश के शासकों से है। यद्यपि इस ग्रंथ का रचनाकाल अधिक प्राचीन नहीं है किन्तु कवि द्वारा प्रत्यक्ष देखी और सुनी गई समकालीन घटनाओं और बातों के साथ-साथ जयपुर राज्य के पोथीखाने में संगृहीत मूल अभिलेखों का इसके लेखन में उपयोग किये जाने के कारण इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्त्व काफी बढ़ गया है। कूर्मविलास ग्रंथ का प्रणयन कवि ने १८५४ ई. से प्रारंभ कर दिया था और इसकी रचना प्रक्रिया में तीन वर्ष लगे और १८५७ में इसकी संपूर्ति हो गई। कूर्मविलास सांगानेरी कागज मटमेले रंग के ११X ९ आकार के ४२४ पृष्ठों का काली स्याही से सुंदर और सुस्पष्ट अक्षरों में लिखा गया हस्तलिखित ग्रंथ है।

कृति को देखने से प्रतीत होता है कि कवि ने ग्रंथ में जिन तथ्यों को उजागर करने का मानस बनाया था उन्हें वह सम्यक्तया लिपिबद्ध कर सका किन्तु ग्रंथ के अंतिम अंश में सवाई जयसिंह की मृत्यु और सवाईसिंह द्वितीय के प्रारंभिक जीवन को लिपिबद्ध करने के पश्चात् उसने उसे सहसा अधूरा ही छोड़ दिया। कविचन्द ने ग्रंथ में लगभग २,४५० छंदों में कछवाहों के इतिहास को इस प्रकार लिपिबद्ध किया है कि इस वंश के पूर्व पुरुषों से लेकर महाराजा सवाई रामसिंह द्वितीय तक की घटनाओं का इसमें सांगोपांग ब्योरा उपलब्ध हो जाता है। रसानुकूल छंदों का प्रयोग कर कवि ने वर्ण

विषय को साकार बना दिया है। दोहा, सोरठा, छप्पय, चौपाई, भुजंगप्रयात, मोतीदान, भुंजगी, त्रोटकं, नीसाणी, पद्धरी, त्रिभंगी, चामर, नाराच, झूलबा, तोमर, हरिगीतिका, कवित्त और बेताल आदि छंदों का इस ग्रंथ में बहुतायत से उपयोग हुआ है। यहां छंदों के विषय में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि ग्रंथ में यत्र तत्र उनकी संख्यागत क्रमबद्धता भंग हुई है।

कूर्मविलास की भाषा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमें खड़ी बोली, ब्रज और राजस्थानी की ढूंढाड़ी उपभाषा का मिश्रित प्रयोग है। साथ ही कहीं-कहीं फारसी भाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। उसने ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियों को ग्रंथ में यथासाध्य सही लिखा है। संवत् मास, पक्ष एवं वार को अंकों में अंकित न कर उन्हें शुद्ध संस्कृत अथवा देशी भाषा के शब्दों में लिखा है। सन् १७५४ में जब सवाई जयसिंह द्वितीय राजकुमार ही था तथा अपने पिता विष्णुसिंह (विसनसिंह) की आज्ञा से मुगल दरबार में उपस्थित हुआ तब उसे बादशाह की ओर से दक्षिण में युद्ध के लिए जाने का आदेश हुआ। उसने आदेश मानते हुए खेलना का किला विजय किया और वापिस घर आ गया। उस समय को कवि ने इस प्रकार छंदबद्ध किया है—

आये मिलि पतसाह ते त्रेपन भादव मास।
डेरन आ आनंद बढ़्यो हि मुद काही उदास ॥७८॥
सतरह सो चोवन संवत अगहन बुद्धि सनिवार।
अबल फते करिकै आये निज गृह राजकुमार ॥७९॥

वैसे तो इस ग्रंथ में आमेर के कच्छवाह वंश के शासकों के आख्यानों और चरित्रों के साथ तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का लेखाजोखा भी इस ग्रंथ में देखने को मिलता है किन्तु इस आलेख में हम केवल कछवाह वंश के राजनैतिक इतिहास पर ही चर्चा करेंगे। कूर्मविलास में कच्छवाह वंश के पूर्व इतिहास से लेकर जयपुर राज्य के १९वीं सदी तक के इतिहास की विशद जानकारी उपलब्ध होती है। यह राजनैतिक इतिहास ग्रंथ में आख्यानों, चरित्रों एवं वंशावलियों के शीर्षकों के रूप में देखने को मिलता है। महाराजा रामसिंह जी प्रथम से लेकर महाराजा रामसिंह द्वितीय तक के इतिहास शीर्षकों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कवि ने कच्छवाह वंश के सभी शासकों, उनके राजकुमारों तथा उनके काल में घटी राजनैतिक घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया है।

कवि ने कच्छवाह शासकों की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानते हुए उसके वंशजों में कुश (राम का पुत्र) तथा उसके पश्चात् अनेक नामों का उल्लेख करते हुए सोढदेव और दूल्हराय को कच्छवाह वंश के मुख्य वंशजों में माना है। उसके अनुसार दूलहराय से पूर्व तक कच्छवाह शासक नरवर और ग्वालियर तक ही अपने को सीमित किये हुए थे। इनमें दूलहराय ही पहला राजा था जिसने सर्वप्रथम राजस्थान में निष्क्रमण कर यहां ढूंढाड क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व जमाया था। उसने दौसा को, जिस पर पूर्व में बड़गूजर शासन कर रहे थे, जीतकर उस पर अपना कब्जा किया। दूलहराय के पश्चात् कच्छवाह वंश में अनेक छोटे बड़े शासकों के उल्लेख के पश्चात् पजवन नामक शासक के बारे में विस्तार से लिखा गया है। १२वीं सदी का यह कच्छवाह शासक तत्कालीन चौहान शासक पृथ्वीराज का

समकालीन ही नहीं था अपितु पृथ्वीराज चौहान द्वारा लड़े गये युद्धों में उसका सहयोगी भी था। पजवन की मृत्यु भी चौहान शासक के लिए लड़ते-लड़ते युद्ध में ही हुई। यहां यह उल्लेखनीय है कि कवि ने पजवन के समय की पृथ्वीराज और उसके पुत्र पूरनमल, पंचायान, गोपाल, बलभद्र, सुरताण, जगमाल, चतुर्भुज, कल्याणदास, कुंभा, शिवब्रह्मा आदि की भी सराहनीय भूमिका रही है। मुगल सम्राट् अकबर से पूर्व के उपर्युक्त कच्छवाह शासकों में पृथ्वीराज के पश्चात् पूरनमल, भीम, रतनसिंह एवं आसकरण के नाम कवि ने विशेष रूप से गिनाये हैं। आसकरण ने मुगल दरबार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उसके पश्चात् पृथ्वीराज का ही एक अन्य पुत्र बिहारमल (बिहारीलाल) अकबर बादशाह के समय में कच्छवाह शासक बना। यहां यह उल्लेखनीय है कि बिहारमल की पुत्री ही बादशाह को ब्याही गयी थी।

बिहारमल के पश्चात् मानसिंह, भगवंतदास, महासिंह और भाऊसिंह कछवाह शासकों और उनके राजकुमारों की मुगल शासन में जो गतिविधियां रही उन पर कवि ने विस्तार से प्रकाश डाला है। एक ओर जहां भाऊसिंह के पश्चात् मिर्जा राजा जयसिंह की मुगल दरबार में राजनैतिक गतिविधियों यथा मुगलों में हुये उत्तराधिकार युद्ध के साथ दक्षिण विजय, उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त विजय एवं कंधार विजय आदि में मिर्जा राजा जयसिंह की वीरता आदि का यशोगान किया गया है, वहीं दूसरी ओर ग्रंथ में औरंगजेब के शासन काल में मराठों, विशेष रूप से शिवाजी के साथ में मिर्जा राजा जयसिंह और उसके पुत्र कुंवर रामसिंह के संबंधों की भी पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है। मिर्जा राजा जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र सवाई रामसिंह के उसका उत्तराधिकारी बनने और मुगल शासक की ओर से लड़े गये उसके युद्ध एवं विजयों आदि का यथोचित उल्लेख हुआ है। रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् विष्णुसिंह (विसनसिंह) की मुगल दरबार की गतिविधियों की, मुगल शासन की ओर से उसकी मथुरा में लंबे समय तक नियुक्ति को और उसके राजकुमार जयसिंह को बाल्यकाल में शिक्षा-दीक्षा देने और मुगल दरबार में उसकी उपस्थिति सहित दक्षिण भारत में खेलना किले को विजय करने जैसी घटनाओं को कवि ने यथायोग्य विस्तार दिया है।यहां यह उल्लेखनीय है कि कवि ने सवाई जयसिंह द्वितीय की गतिविधियों पर भी कुछ विशेष प्रकाश डालने का प्रयास किया है। विष्णुसिंह की मृत्यु के पश्चात् सवाई जयसिंह द्वितीय का आमेर का शासक बनना, मुगल बादशाह के लिए उसके द्वारा लड़े गये युद्ध, मालवा के गवर्नर के रूप में उसकी गतिविधियों सहित उसके द्वारा जयनगर (जयपुर) नाम से नवीन नगर बसाने, उसमें महल बनवाने और उद्यान लगाने के अतिरिक्त वेधशालाओं आदि के निर्माण कराने जैसी उसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों तथा उसके द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ की कवि ने ग्रंथ में विस्तार से चर्चा की है। उसी के समय के शेखावटी के राजनैतिक घटनाचक्र का भी कवि ने उल्लेख किया है। सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् ईश्वरीसिंह के गद्दी पर बैठने, जयपुर राज्य में मरहठा गतिविधियों और ईश्वरीसिंह द्वारा लड़े गये बगरू के युद्ध और उसकी मृत्यु की पर्याप्त चर्चा के साथ ईश्वरीसिंह के पश्चात् सवाई माधोसिंह के जयपुर की गद्दी पर बैठने, मराठा और जाटों के साथ झगड़ों और मृत्यु की घटनाओं का तथ्यात्मक विवरण दिया गया है। सवाई माधोसिंह प्रथम के पश्चात् क्रमशः पृथ्वीराज, सवाई प्रतापसिंह और सवाई जगत्सिंह की गतिविधियों

का ब्यौरा भी आया है । तत्पश्चात् जयसिंह तृतीय एवं सवाई रामसिंह द्वितीय की प्रारंभिक गतिविधियों पर भी कवि ने यथासाध्य प्रकाश डाला है । इसके अतिरिक्त कवि ने उन प्रसंगों पर विशेष बल देते हुए उनका विस्तार से वर्णन किया है जिन्हें डा. यदुनाथ सरकार और डा. मथुरालाल शर्मा ने अपने द्वारा लिखे जयपुर के इतिहासों में प्रमाणों के अभाव में छोड़ दिया है । उदाहरणस्वरूप राणा सांगा के साथ खनवा युद्ध में घायल हुए कच्छवाह शासक पृथ्वीराज और राणा सांगा का मृत्यु लेख डिग्गी-मालपुरा में मिला. है जो कूर्मविलास में उल्लेखित पृथ्वीराज की मृत्यु के उल्लेख की पुष्टि करता है ।

उपर्युक्त शासकों के चरित्र, आख्यान एवं वंशावलियों में जयपुर राज्य की जागीर व्यवस्था एवं जागीरदारों के क्रियाकलापों यथा उनके द्वारा बसाये गये कस्बों और गांवों का उल्लेख भी इस ग्रंथ में यत्र-तत्र देखने को मिलता है ।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार
बीकानेर

केसरीसिंह समर का ऐतिहासिक विवेचन

— मनोहरसिंह राठौड़

हिन्दी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल के काव्यों और गाथाओं का अवलोकन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन योद्धा कितने वीर, धीर, पराक्रमी और बलशाली थे। इन रणबांकुरों के साथ रहने वाले कवि या साहित्यकार कोमल किसलय-से भावों को हृदय वल्लरी पर सहेजे, हाथों में हठीली खङ्ग दुधारी से वार पर वार करते रहते थे। युद्ध की विभीषिका में लपलपाती तलवारों की भालों-ढालों की टंकार और हय-गज गर्जन-तर्जन के मध्य योद्धाओं के गाजर-मूली से कटे गिरते अंगों की बौछार के दृश्यों को हृदय में लिये, रक्तरंजित हो वे लौटते और कलम को स्याही में डुबो उन जीवंत चित्रों को कागजों पर उकेर देते जिनमें प्रमुख कविया करणीदान-सूरज प्रकाश, वीरभाण रतनू - राजरूपक, शिवदास गाडण - अचलदास खींची' री वचनिका का सृजन माना जा सकता है। महाराजा पृथ्वीराज बीकानेर भी भक्त, कवि और योद्धा रूपी त्रिवेणी थे। इनके द्वारा रचित ग्रंथ उच्च कोटि के होने के कारण आज हमारी साहित्यिक धरोहर हैं।

वैसे तो राजस्थान का चप्पा-चप्पा युद्ध स्थल रहा है। इला न देणी आपणी हालरिया हुलराय, उक्ति के अनुसार यहां की माताएं अपने शिशु को स्तन पान कराते समय दुलारते हुए धरती की रक्षा हेतु प्राण न्यौछावर करने का पाठ पढ़ाती आयी हैं। इसी प्रकार भूरी-भूरी स्वर्ण कणिकाओं की आभायुक्त शेखावटी की धरती, वीर-प्रसूता भी रही है। इस धरती की गौरव गाथा का बखान करते हुए प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा अनेक ग्रंथों में मिल जायेगी। कहा गया है कि—

भूरा थळ भाखर उत्तंग, नाळ-खाळ चौगान।
सदा सुरंगी लागणी, शेखा धरा महान्।
यहां के वीरों की महिमा में कहा गया है—
खाटी वीरां खाग सूं, लाटी जस रै लाह,
दाटी धर दुसमण दळां शेखावाटी वाह।

केसरीसिंह समर खण्डेला निवासी हरिर्नाम उपाध्याय रचित वीरकाव्य है। इसमें खण्डेला के राजा केसरीसिंह संवत् १७४०-१७५४ वि. (शासन काल) के शौर्य, साहस, स्वाभिमान एवं धर्मप्रियता का मार्मिक चित्रण है।

डिंगल और पिंगल में रचित यह काव्य उच्च कोटि का एक वीर काव्य है। कवि ने अपने आश्रयदाता राजा केसरीसिंह तथा शाही सेना के वीरों के पराक्रम का वर्णन समान रूप से किया है तथा दोनों ही पक्ष के युद्ध से भागने वाले योद्धाओं के नाम गिनाने में संकोच नहीं किया है। इसलिए यह पूर्णतया ऐतिहासिक तथ्यपरक ग्रंथ माना जाता है। कही भी अतिप्राकृत प्रसंग नहीं आया है, जैसा कि इस श्रेणी के काव्यों में प्रायः पाया जाता है। इस ग्रंथ की विशिष्टता यह भी है कि इसमें अनेक घटनाओं का पहली बार चित्रण मिलता है।

इस काव्य का संपादन शेखावटी के प्रसिद्ध इतिहासकार पं. झाबरमल्ल शर्मा ने किया। विद्वान् संपादक ने काव्य की कथावस्तु को तीन प्रकरणों में विभक्त किया है। पूर्व पीठिका में खण्डेला राजा केसरीसिंह के पूर्वजों— महाराव शेखा से लेकर केसरीसिंह के पिता बहादुर सिंह तक का वर्णन है। दूसरा प्रकरण इस वीर काव्य की कथा वस्तु का प्राण है। इसमें वीर केसरीसिंह का जीवन वृतान्त एवं उनके द्वारा किये गये युद्धों का सजीव चित्रण है। तीसरा प्रकरण सतीचरित्र है, इसमें उनकी चार रानियों के सती होने का वर्णन है।

काव्य का प्रारंभ गणेश व सरस्वती की वंदना से हुआ है— "प्रथम बंदौ गणपति बहुरि सुरसति सिर नाऊं।"

इस काव्य में प्रसिद्ध फकीर शेख बुरहान चिश्ती के वरदान से मोकलजी के पराक्रमी पुत्र महाराव शेखा के जन्म होने का उल्लेख है—

रहे सेख जुग मास सेवा सूं राजी भये।
निहचै पूरी आस पुत्र होय तुव छत्रपति॥

लोक प्रसिद्ध है कि इसी प्रकार की दुआ से शेखाजी का जन्म हुआ था। माधोवंश प्रकाश और शेखावाटी प्रकाश में शेखाजी का जन्म संवत् १४९० वि. में ही माना गया है।[१] शिखर वंशोत्पति में कविया गोपालदास ने लिखा है— अर्कवार दसमी, विजय क्वार सुक्ल सिधकाम, जिण दिन शेखो जलमियो, बरवाड़ै, बरियाम।" अतः आसोज सुदी १० संवत् १४९० वि. (२४ सितम्बर १४३३ ई. को शेखाजी का जन्म हुआ था।[२] शेखाजी ने पठानों से मित्रता करके ५०० पठान वीरों की मदद से अमरसर बसाया। आमेर के राजा चन्द्रसेन को परम्परानुसार घोड़े देने बंद कर दिये और परिणाम स्वरूप युद्धों का सामना किया।

केसरीसिंह समर में ही महाराव शेखा की निश्चित मृत्यु तिथि बैसाख सुदि तीज संवत् १५४५ वि. ज्ञात होती है। छप्पय द्रष्टव्व है—

पनरा सै चालीस पांच ऊपर परवाणो,
सुकलपच्छ वैसाख तीज सुरगुरु समाजणो।
नगर घाटवे आय गौड सेना बहु सज्जे,
चढे अमरसर नाथ तबहि तिरमाला बज्जे॥

सतसठ वीर रण में परे बहु भांति जुध इण विध भयो,
प्रोहित जु संगि मालिक कहूं राव सिखर सुरपुर गयो ॥

राव शेखा पृ. १०२ में लिखा है कि घाटवा में एकत्रित गौड़ सरदारों ने शेखाजी को रण-निमंत्रण भेजा—

गौड़ बुलावै घाटवै, चढ आवो सेखा ।
लस्कर थारा मारणां, देखण का अभलेखा ॥

महाराव शेखा के बाद उनके पुत्र रायमलजी गद्दी पर बैठे । ये भी अपने समय के प्रसिद्ध वीर थे । सुल्तान इब्राहिम लोदी के सेनापति नवाब हिन्दाल बेग को इन्होंने पराजित किया था और शाही परगने नारनौल की बीकानेर के राव लूणकरण से रक्षा की थी । छप्पय द्रष्टव्य—

"लूनकरन कमधज्ज साहपरि सेन पलानी,
तब दिल्ली थरहरी साह बहु संका मानी ।
जिब लिखि कै फुरमान मीर रयमाल बुलायो,
नारनोल लूटिबा सेन राठोर सुधायो ।
उतरे जु आय दोऊ नृपति इक कूरम कमधज्जवर,
रन-खंभ गाडि मंडे तहां खेत जु ढोसी अडर नर ॥

ढौसी युद्ध श्रावण बदी चौथ संवत् १५८३ वि. (२८ जून, १५२६ ई.) में हुआ था । काव्य में युद्ध वर्णन बड़ा सजीव हो उठा है—

चढी सेन दोउ स बज्जे निसानं, उडी रैनु आकास दीसै न भानं ।
वहैं तीर सोकंत कूकंत बानं, भटक्कै बंदूक स छुट्टे कमानं ॥
तजे कायरां पायरं पाव नट्ठे, खिमै खग्ग ऊनग सूरंस हट्ठे ।
लगी लोह की मार है वार खारी छकी घाव सूं राव सेना निहारी ॥

एक उदाहरण—

बग्गे निसान जग्गी सुं सेन बाजिन सवार हुरकंत रैन ।
लग्गे सुदन्त-घावन नरेंद, सिंदूर तेल मंडत गयंद ॥

रायमलजी ८८ वर्ष, ९ मास, ७ दिन को होने पर चल बसे थे । दोहा केसरीसिंह समर में इस प्रकार है—

बरस अट्ठासी मास नव दीह सात दुय जाम
घड़ी च्यारि गय तन तजहि गो वैकुंठा धाम ॥१७१ ॥

रायमलजी के ५ पुत्रों में रायसल अत्यधिक प्रसिद्ध हुए । अकबर की जान भी रायसल जी ने गुजरात युद्ध में बचायी थी । शाही आज्ञा से निर्बाणों का दमन किया और खण्डेला शेखावतों के अधिकार में आया । इनसे २-३ पीढी आगे बहादुरसिंह हुये । इन्हें औरंगजेब ने दक्षिण में भेजा जहां बहादुरखां से अनबन होने से लौट आये । काव्य में द्रष्टव्य है यह प्रसंग—

दिखन देस पहुंचे नृपति जहां बहादुरखांन ।
ताकी समता ना बने हिन्दू वा तुरकांन ॥२४५ ॥

औरंगजेब ने लौट आये बहादुरसिंह को पकड़ने फौलादखां को भेजा। किन्तु ये किसी प्रकार निकल गये। फिर बादशाह ने खंडेले पर दराबखां के नेतृत्व में सेना भेजी। इसी समय (संवत् १७३५ वि.) में छापोली के सुजानसिंह विवाह से लौटे ही थे और सिरमोड़ बंधे ही दूल्हे के वेश में मंदिर बचाने युद्ध में उतर गये और परलोक सिधार गये। इनके पराक्रम का कवि ने आह्वान किया है—

झिरमिर-झिरमिर मेहा बरसै, मोरां छतरी छायी।
कुळ मै है तो आव सुजाना, फौज देवरै आयी॥

राजा केसरीसिंह अपने पिता के निधन पर संवत् १७४० फाल्गुन कृष्ण ८ के दिन खुण्डेला की राजगद्दी पर बैठे । केसरीसिंह स्वतंत्र प्रकृति के थे जिससे शाही मामला नहीं दिया और अपना राजकाज अलग चलाने लगे। इससे रुष्ट बादशाह औरंगजेब ने अजमेर के सूबेदार सैयद अब्दुलाखां को खण्डेला पर आक्रमण करके केसरीसिंह को पकड़ लाने का हुक्म दिया। सय्यद अब्दुलाखां ने धोखा देने के लिए अपने पुत्र नूरुद्दीन को संधि पत्र देकर भेजा। राजा केसरीसिंह ने उसका बड़ा सम्मान किया व पगड़ी बदल भाई बन गये। नूरुद्दीन ने सारा भेद लेकर पिता को कूच करने का लिखा व स्वयं उससे जा मिला। केसरीसिंह को बकाया इजारा भरने को कहा गया अन्यथा जबरन वसूल करने का आदेश था। केसरीसिंह बहुत क्रुद्ध हुये और युद्ध के लिए तैयार हो गये। अपने सजातीय वीर शेखावतों को युद्ध में सहायतार्थ आमंत्रित किया। फलस्वरूप राव जगत्सिंह श्यामरामोत कासली, उदयसिंह बहादुरसिंहोत (केसरी सिंह का अनुज) संग्रामसिंह, वैरीसिंहोत, रतनसिंह मोकमसिंहोत, श्यामसिंह, वैरीसिहोत खूड़ का ठाकुर, रूपसिंह, जुझारूसिंहोत आदि मनोहरपुर शाहपुरा की सेना हरीपुरा के मैदान में आ एकत्रित हुई। काव्यकार हरिनाम उपाध्याय ने युद्ध न करने की सलाह दी मगर मान्य न हुयी। भाइयों ने केसरीसिंह को किले में जाने की राय दी लेकिन इन्होंने अपनी सुरक्षा स्वीकार नहीं की। दोनों पक्षों में भयानक युद्ध व भीषण रक्तपात हुआ। किन्तु मनोहरपुर, शाहपुरा और लाडखानोतों के युद्ध से हट जाने के कारण केसरीसिंह और राव जगत् सिंह कुरुक्षेत्र के समय अभिमन्यु की तरह भयानक रूप से घिर गये। राव जगत्सिंह ने शाही अफसर नूरुद्दीन को सांग से मार डाला। राजा केसरीसिंह जूझते हुए युद्ध भूमि की शय्या पर रक्त की चादर बिछा कर सदा के लिए सो गये। इस युद्ध में शाही सेना के दो हजार सैनिक मारे गये। इनके साथ ही संग्रामसिंह, रतनसिंह, पृथ्वीसिंह, अचलदास, भोपालसिंह आदि खेत रहे। यह युद्ध सं. १७५४ आसोज सुदी ११ को हुआ था। काव्यकार ने वर्णन किया है—

"सतरा सै चौवन्न मास आसोज सो जानो,
कियो युद्ध केहरीखांन अबदुल्ले मानो ।
रच्यो हरिपुर खेत गाडि रण खम्भ जु मंडे,
निज पौरुष दिखलाय किते अवरंग दल खंडे।"

यह तिथि अन्य ग्रंथों में भी उल्लिखित है— रासल जस सरोज, सीकर का इतिहास पृ. ५५, खण्डेला का इतिहास पृ. ८५-९४, हरिपुरे का युद्ध लेख कुं. देवीसिंह मण्डावा, संघ शक्ति

जयपुर-जनवरी १९६२, पृ. ३९-४१, राजस्थानी वीर गीत संग्रह पृ. ९३ गीत, ६३, पृ. ९४ गीत ६४, पृ. ९५ गीत ६५ । राजा केसरी सिंघ शेखावत खण्डेला के गीतों में इनके युद्ध कौशल का शानदार वर्णन मिलता है ।

काव्यकार के युद्धों में साथ रहने, आश्रयदाता के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन न करने व प्रशस्ति के लोभ को छोड़ देने के कारण यह काव्य साहित्य छटा को बिखेरने, युद्धों के जीवतं वर्णन करने के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्णतया प्रामाणिक और महत्वपूर्ण बन पड़ा है । इतिहास व साहित्य का यह कीर्तिस्तम्भ राजा केसरीसिंह के नाम के साथ ही सदा अमर रहेगा ।

तकनीकी अधिकारी
ई-२८, सीरी कॉलोनी, पिलानी

सन्दर्भ ग्रन्थ —

1. सुरजनसिंह शेखावत— राव शेखा पृ. ३३
2. क्षत्रिय दर्पण— वर्ष-१ अंक-३ पृ. ३५

क्यांमखां रासो की ऐतिहासिकता

डा. रतनलाल मिश्र

क्यांमखां रासो एक ऐतिहासिक काव्य है । इसके रचयिता कविवर जांन हैं । इनकी गणना राजस्थान के प्रसिद्ध कवियों में की जाती है । प्रारंभिक अवस्था में फतहपुर के प्रसिद्ध नवाब अलफखां को ही जांन कवि माना जाता था तथा इसका नाम नियामतखां भी बताया गया था ।[१] इस तरह के अतथ्यात्मक उल्लेख होते रहे क्योंकि एतद्विषयक शोध उस समय अतीव प्रारंभिक अवस्था में थी ।[२] आगे चल कर जांन कवि की अड़सठ रचनाओं की बात श्री कमल कुलश्रेष्ठ ने हिन्दी जगत् के सामने रक्खी ।[३] इस कवि के अन्य ग्रन्थों की खोज करते हुए डॉ. दशरथ शर्मा ने जब क्यांमखां रासो का अध्ययन किया तो यह निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठापित हुआ कि इन ग्रन्थों का रचयिता अलफखां न होकर उसका पुत्र नियामतखां उपनाम जांन कवि था ।

निरन्तर शोध के परिणाम स्वरूप जांन के विविध विषयों पर रचे ७६ ग्रंथ प्रकाश में आ चुके हैं । इस तरह के विशाल साहित्य का सृजन करने वाला दूसरा कोई साहित्यकार तत्कालीन राजस्थानी साहित्यिक जगत् मे नहीं था ।

जांन कवि के इस विशाल साहित्य का वर्गीकरण किया गया है । छोटे-छोटे चरित्र काव्य, मुक्तक, शृंगार वर्णन काव्य, उपदेशात्मक काव्य, कोष एवं मिश्रित ये वर्ग हैं ।[४] इनमें से अधिकांश रचनांएँ अधिकांश संग्रहों में प्राप्त हो चुकी हैं । जांन आशु कवि था । उसने कुछ ग्रन्थ कुछ घण्टों में बनाये थे ऐसा उसके स्वयं के उल्लेख से ज्ञात होता है ।डॉ. परशुराम चतुर्वेदी इस कवि की विशेषता उसकी पंक्तियों के प्रवाह में देखते हैं ।[५]

जांन विविध विषयों एव भाषाओं का ज्ञाता था । हिन्दी, संस्कृत और फारसी का वह विद्वान् था । उसने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद या छायानुवाद किया । रस रीति की विवेचना करने वाले ग्रन्थों का प्रणयन किया । प्रेम कथाओं का सृजन किया एवं ऐतिहासिक काव्य लिखे । उसके ग्रन्थों में अनेक विषयों का ऐसा सांगोपांग विवरण प्रस्तुत किया गया है कि तत्कालीन सामाजिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक स्थिति का आंखों के आगे एक दृश्य पट उपस्थित हो जाता है ।

कवि का गहरा अध्ययन था । विविध विषयों जैसे इतिहास आदि का उसे सम्यक् ज्ञान था और सबसे ऊपर विशेष बात यह थी की वह सबल कवि था । उसके कवित्व में शक्ति थी । यह शक्ति किसी किसी को ही भगवत् कृपा से प्राप्त होती है "कवित्वं दुर्लभं लोके शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ।"

यहां प्रस्तुत निबन्ध में हमें जांन कवि के काव्य क्यांमखां रासो की ऐतिहासिकता पर ही प्रमुख रूप से विचार करना है । अत: चाहते हुए भी हम कवि जांन की विशिष्टताओं का विशद निरूपण नहीं कर सकते । एक बात और कहकर इस प्रसंग को समाप्त कर रासो की ऐतिहासिकता पर चर्चा करेंगे ।

नवाब अलफखां का जन्म संवत १६२१ और मृत्यु १६८३ में हुई थी ।[६] न्यामतखां इसी नवाब का पुत्र था । कवि का रचनाकाल सत्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध तथा अठाहरवीं शती का पूर्वार्द्ध था । संम्भवत: इस कवि की प्रथम रचना विरह सत है । पचास वर्षों की दीर्घ अवधि को कवि का रचना काल माना जा सकता है ।[७] इसी के आधार पर कवि के दीर्घ जीवन की कल्पना भी की जा सकती हैं । कवि के गुरु हाँसी के शेख मोहम्मद चिश्ती थे ।

कायमखानी नवाब कला प्रेमी थे । साहित्यिक मनोविनोद एवं सृजन उनकी दिनचर्या के आवश्यक अंग थे । अनेक नवाब कवियों के आश्रयदाता एवं सरस्वती के वरद पुत्र थे । उनकी सृजन-धर्मिता की बात दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी । उस समय जांन के समान धर्मी और समकालीन अनेक प्रसिद्ध कवि थे । प्रसिद्ध निर्गुणोपासक संत कवि सुन्दरदास सं. १६८२ में काशी से विद्यार्जन कर फतेहपुर आ गये थे । उधर नवाब अलफ खां की मृत्यु सं. १६८३ में हो गयी थी । अत: सुन्दरदासजी का सान्निध्य दौलतखां को ही अधिक मिला था । दौलतखां कवियों का आश्रयदाता एवं स्वयं भी सुकवि था । इसके प्रमाणस्वरूप हम भीखजनजी की भारती नाममाला से निम्न लिखित पद्य उद्धृत करते हैं -

राज करत रससों भयो, ज्यों जगती पति इन्द्र ।
अलिफखान नन्दन नवल, दौलतिखान नरिन्द्र ॥
दानक्रियान सुजानपन, सकल कला संपूर ।
रवि विरंची ऐसो रच्यो, वचन रचन सति शूर ॥[८]

दौलतखां नवाब के शासन काल में अनेक सुकवि फतेहपुर में वास करते थे । नवाब के घराने में जांनकवि, दौलतखां और कवि प्रेमी ताहरखां थे । उधर दादू अस्थल में संत प्रयागदास,

संतदास, मारु, सुन्दरदास, घड़सीदास, नारायण दास, भीखजन और बालक राम थे जो सभी सुकवि थे। इनमें सुन्दरदास जी के अतिरिक्त संत बालकराम बड़े ही सशक्त कवि एवं साहित्यकार थे।[९] आगे चल कर निरंजनी बड़े अस्थल में संत कवि नरीदासजी भी इनमें सम्मिलित हो गये थे। इस प्रकार एक छोटे से कस्बे में दशाधिक साहित्यकार सृजनरत थे।

क्यांमखां रासो एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें क्यांमखानी नवाबों का इतिहास वर्णित है। इन नवाबों के अतिरिक्त इस ऐतिहासिक काव्य में देहली सल्तनतकालीन एवं मुगल कालीन अनेक अज्ञात तथ्यों का उद्घाटन किया गया है। इसकी एक अन्य विशेषता शेखावाटी क्षेत्र के राजनैतिक घटनाचक्रों का सांगोपांग निरूपण है। इसमें इतिहास की अनेक विलुप्त कड़ियां फिर से जोड़ी जा सकती हैं। इस प्रकार रासो एक सुन्दर काव्य होने के साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण है।

क्यांमखानी धर्म परिवर्तन के पूर्व चौहान थे। धर्म परिवर्तन के पश्चात् भी उनके हिन्दु संस्कार प्रबल थे। अधिकांश रीति-रिवाजों में भी उनकी राजपूतों से समानता थी तथा राजपूत जाति में धर्म परिवर्तन के पश्चात् भी उनके विवाह सम्बन्ध होते थे। क्यांमखानी वंश के प्रवर्तक क्यांमखां की सातों स्त्रियां हिन्दु थीं। इस प्रकार इन नवाबों के समय में जो राजनैतिक एवं सामाजिक वातावरण था वह सारा का सारा हिन्दु संस्कारों से विनिर्मित था। उनकी अधिकांश: प्रजा हिन्दू थी जिनकी भावनाओं का वे आदर करते थे और गौ हत्या उनके राज्य में निषिद्ध थी।

कायमखां रासो में तुगलक, सैय्यद, लौदी और सूरवंशों पर पर्याप्त सामग्री है जिसका सम्यक उपयोग किया जा सकता है।[१०]

रासो में क्यामखां का विशद वर्णन प्राप्त होता है। इसके पूर्व सृष्टि की उत्पत्ति पर जॉन ने अपने ढ़ंग से प्रकाश डाला है। चौहान वंश की वह एक ऐसी सूची प्रस्तुत करता है जो बांकीदास, नैणसी और टॉड की सूचियों से कुछ अंश में विभिन्नता रखती हैं। जान चौहानों को वत्स गोत्रीय बताकर एक सत्य की संपुष्टि करता है।[११]

क्यांमखां रासो में क्यांमखां के मुसलमान बनने की बात का वर्णन किया गया है। दद्रवे का कुंवर कर्मचन्द एक बार शिकार खेलते हुए भटक कर दूर जा निकला। वह थक कर एक वृक्ष की छाया में सो गया। अन्य वृक्षों की छाया ढल गयी पर उस वृक्ष की छाया यथावत् बनी रही। उधर प्रसिद्ध इतिहास पुरुष बादशाह फिरोजशाह तुगलक हिसार से शिकार खेलता उधर आ निकला। उसने यह करामात देखकर कर्मचन्द को करामाती पुरुष मानकर साथ ले गया। कालान्तर में उसे इस्लाम की तालीम देकर मुसलमान धर्म में दीक्षित किया और अपना बड़ा सरदार बनाया। कर्मचन्द के धर्मपरिवर्तन की जो कथा रासो में दी गई है उसका यह सार संक्षेप है।[१२]

रासो ने क्यांमखां के धर्म परिवर्तन की जो कथा दी है उसमें सन् संवत का उल्लेख नहीं है। किस समय फिरोजशाह ने उसे मुसलमान बनाया उस समय क्यांमखां की क्या आयु थी इस प्रकार की जिज्ञासाएँ बिना समाधान के ही रह जाती हैं। अनेक विद्वानों ने कायमखां के धर्म

परिवर्तन काल तथा उसकी आयु का उल्लेख किया है पर उनकी मान्यताएँ किसी भी पुष्ट प्रमाण पर आधारित नहीं होने के कारण स्वीकार्य नहीं हो सकती ।[१३] इस विषय में हम आगे चलकर प्रमाणपुष्ट साक्ष्य उपस्थित करेंगे ।

क्यांमखां रासो में जिन क्यांमखानी नवाबों का जिक्र आया है उनके नाम कायमखां, ताजखां, फतहखां, जलाल खां, दौलतखां, नाहर खां, फदनखां, ताजखां, अलफखां, दौलतखां दूसरा इसका पुत्र ताहरखां और सरदार खां । इन फतेहपुर के नवाबों के अतिरिक्त कायमखां के सभी पुत्रों का भी विस्तृत वर्णन रासो में मिलता है । झुंझनु के नवाब भी कायमखानी थे जिनकी उपलब्धियों की संक्षिप्त प्रासंगिक चर्चा रासो में मिलती है ।

क्यामखां नवाब आगे चलकर दिल्ली के सुलतानों से सम्बंधित रहे । शेरशाह के पिता को कायमखानी वंश की राजकुमारी विवाही गयी अत: रासो से हमें ज्ञात है कि शेरशाह नवाब नाहरखां को "मामू" कहकर पुकारता था । रासो से हमें यह भी ज्ञात होता है कि फदनखां की पुत्री मुगल सम्राट् अकबर को विवाही गई थी । अनेक लोगों ने इसी को प्रसिद्ध कवयित्रि ताज बताया है ।

मुगलों से कायमखानियों का पूरा सद्‌भाव था । विवाह संबंध के साथ साथ आगे के नवाब मुगलों के मनसबदार भी थे । वे सरकारी मुहिमों पर जगह जगह जाते थे तथा अपने वीरत्व का प्रदर्शन करते थे ।[१४] इसी क्रम में हमें रासो से ज्ञात होता है कि राठौड़ अमरसिंह ने जब भरे दरबार में सलाबतखां को मारडाला तो उसकी परिणति अमरसिंह की मृत्यु में हुई । नागौर पर कायमखानी नवाब ताहर खां ने हमला कर राठौड़ों को निकाल दिया और कब्जा कर लिया । रासो से ही यह ज्ञात होता है कि उस समय राठौड़ों का ऐसा आंतक था कि कोई सरदार नागौर जाने को तैयार नहीं था ।[१५]

अलफखां की विविध मुहिमों का जिक्र करते हुए रासो ने भारतीय इतिहास के कुछ अज्ञात तथ्यों को उजागर किया है । कांगड़े के युद्ध का विस्तृत विवरण यहां उपलब्ध है । इसके अलावा दक्षिण में मलिक अम्बर की राजनैतिक सूझबूझ और शौर्य ने किस प्रकार मुगल सेना की दुर्दशा की इसकी विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है ।

क्यांमखां ने अपने समय में तुगलक और सैय्यदवंश के सात बादशाहों का समय देखा था । अत: रासो ने क्यांमखां के वर्णन में इन अल्पकालीन शासकों के समय की घटनाओं के वर्णन भी किये हैं । ये बातें अन्यत्र विशद रूप में प्राप्त नहीं हैं ।

रासो में वर्णित ऐतिहासिक विवरण प्राय: सही हैं । जिन तथ्यों का उल्लेख रासो में किया गया है उनकी पुष्टि अन्य साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक स्रोतों से होती है । कुछ जगह कुछ वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण भी बन पड़े हैं पर वे तथ्यों को प्रभावित नहीं करते हैं । जान कवि हैं, उसे भी अन्य कवियों की तरह अतिशयोक्ति का अधिकार प्राप्त है । अनेक इतिहासकार अपने चरित्र नायक का वर्णन करते हुए अप्रिय तथ्यों को जान बूझकर छोड़ देते हैं या भुला देते हैं । रासो इस प्रकार के दोष से प्राय: मुक्त हैं । अपने पिता के वर्णन में भी वह बात को बढ़ा चढ़ा कर या गढ़कर नहीं कहता

हैं। उसका स्वयं का कथन हैं। "पिता जान बढ़ि ना कहूं, भांखू साची बात।[१६]

अब हम विभिन्न रजवाड़ों के विवरणों का उल्लेख करना चाहेंगें जो रासो ने हमें दिये हैं। ये विवरण जैसा कि पूर्व में कहा गया है अन्यत्र अप्राप्य है। सर्व प्रथम बीकानेर के शासक वर्ग से सम्बन्धित तथ्यों का उल्लेख करते हैं। बीकानेर के शासक और संस्थापक राव बीका की विजयों का वर्णन मान्य इतिहास ग्रन्थों में मिलता है। विजय के विपरीत बीका की पराजय का कहीं वर्णन नहीं मिलता है। रासो से हमें ज्ञात होता है कि जब बीका ने ढोसी पर आक्रमण किया तो वहां के पठानों और तुर्कमानों के आगे उसकी करारी शिकस्त हुई और उसे रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा। इसी हार का प्रतिशोध लेने के लिये लूणकरण ने ढोसी पर चढाई की थी। इससे यह विवरण जो रासो में दिये हैं वस्तुतः सही प्रतीत होते हैं।

बीका ढ़ोसी गयो हो, उतते आयो भाजि।[१७]
लूनकरन चित चोख धरि, चल्यो उतहि दल साजि॥

इसी प्रसंग में लूनकरण का ढ़ोसी जाना, राह में दौलतखां से सहायता भिजवाने को कहना दौलतखां का लूणकरण के मुसाहिबों को धक्का मारकर निकाल देना तथा लूणकरण का ढ़ोसी में मारा जाना आदि घटनाओं का विवरण रासो में मिलता है और बातें तो समान ही हैं पर यह तथ्य नया है कि कायमखानियों ने उसकी कोई मदद नहीं की। ज्ञात तथ्य यह है कि कायमखानियों ने भी सेना भेजी जिसने अन्यों की भांति रणक्षेत्र छोड़ दिया। "छन्द राउ जइतसीरउ" के अनुसार कायमखानियों ने सेना भेजी थी।[१८] अपने विशिष्ट विवरणों के कारण रासो की बात सत्य के अधिक नजदीक प्रतीत होती है।

बीकानेर के संस्थापक बीका के चाचा राव कांधल थे जिन्होने फतेहपुर पर आक्रमण किया और फतेहखां के वीर सेनापति सरखेल बहुगुन को युद्ध में मार डाला। इस बात का रासो तथ्यात्मक ढंग से उल्लेख करता है तथा कटु सत्य को छिपाता नहीं। सरखेल की वीरता की प्रशंसा वह अवश्य ही करता है।

कांधिल रिनमल राव कौ, दयो खेत विचराइ।[१९]
सीस कटे बहुगुन लर्‌यो बहु गुन दये दिखाई॥
सारो सागै रान को, अजो सांखलो नाम।
फतेहखांन के कटक नै, मारे गिरायो ठांव॥
तिह समय चित्तौर हो, आपुन फतन मुछार।
स्वामी बिना सेवक लरै, सुजस भयो संसार॥

फतेहखां जब चित्तौड़ से लौटकर आया तो सारी घटना जान अति क्रुद्ध हुआ। उसने एक युद्ध में कांधल को हराकर भगा दिया और अपनी हार का बदला लिया। यह बात भी मान्य इतिहासों में नहीं है।

ताजन अंस बिध्वंस धरा सबहि भुमिया भुजपा निपजाये
मारि लयो सुल्तान हिसामर्दी, जातु भिवानी के छूर मिलायके ॥
चिम्मन को हर लीनौ निसान, भजाये हैं कांघल जादू खिसाये ।
लूटि आंबेर लयो रनथंभ, जहान में फतन को जस छायो ॥

इसी प्रकार कायमखानियों और शेखावत संघर्ष के अनेक अज्ञात तथ्यों का विवरण रासो में मिलता है । फतेहपुर के आसपास कुछ शेखावत सरदार बसे हुए थे । दौलतखां ने उन्हें पट्टी छोड़कर जाने को कहा तो उन्होंने गर्वोक्ति की कि हमें तो बड़े बड़े सरदार भी नहीं निकाल सके तुम किस खेत की मूली हो । इस पर दौलतखां ने उनपर आक्रमण कर उन्हें वहां से भगा दिया । इसी क्रम में माधो शेखावत को भदवासी से भगाया ।[२०] रासो में वर्णन आया है कि जब जहांगीर बादशाह बना तो उसने कायमखानी नवाब आलफखां को फतेहपुर नगर दिया और लाल मुहर का पट्टा कर दिया ।[२१] यह तथ्यात्मक विवरण है, जिसके गलत फलितार्थ रासो के सम्पादकों ने और अन्य लोगों ने निकाले हैं । उनकी मान्यता है कि एक बार फतेहपुर कायमखानियों के हाथ से निकल गया था ।[२२] यह विकृत निष्कर्ष है । वस्तुतः लालमोहर का पट्टा स्थाई अधिकार का द्योतक होता था । इसके मिलने पर जागीर में परिवर्तन नहीं होता था । फतेहपुर वतन जागीर के रूप में सदा कायमखानियों के पास रहा था । पर कभी इसमें भी परिवर्तन सम्भव था । लाल मोहर का पट्टा होने पर यह डर अब नहीं रहा था ।

रासो से हमें कुछ नवीन जानकारियां मिलती हैं । जैसे बहलोल लोदी, जो दिल्ली का बादशाह था, की लड़की झुंझनु के नवाब शम्सखां को ब्याही थी । इसी प्रकार जोधा की पुत्री भी झुंझनु के नवाब को ब्याही थी । अजय सांखला राणा सांगा का साला था जो फतेहपुर की लड़ाई में मारा गया । महाराणा मोकल की कायमखानी ताजखां और मोहम्मदखां के हाथों पराजय हुई ।[२३] गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी ने इस युद्ध में महाराणा मोकल की विजय मानी है जबकि वीर विनोद में श्यामलदासजी ने एक में विजय और दूसरे में पराजय मानी है ।[२४]

इस निबन्ध में अन्यत्र मैंने यह कहा है कि रासो के विवरण प्रायः तथ्यात्मक है । अनेक दूसरे तथ्यों से मिलने पर यह बात सत्य भी प्रमाणित होती है । कुछ पूर्वाग्रहों से ग्रसित दृष्टि रखने वाले लोग कई विवरणों को उतना शुद्ध नहीं मानते । उनकी दोषदर्शिनी दृष्टि इन तथ्यों में अतिरंजना ही नहीं देखती अपितु तथ्यहीनता भी देखती है । रासो का कोई भी निष्पक्ष पाठक इस प्रकार के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकता ।

रासो का सर्वप्रथम विद्वत्ता पूर्ण सम्पादन सम्पादकत्रय ने किया जिनमें डॉ. दशरथ शर्मा का नाम प्रमुखता से उल्लेखनीय हैं । वे बीकानेर के निवासी थे, जहाँ लम्बे समय तक राठौड़ों का राज रहा था । रासों में कायमखानियों और प्रसंगवश राठौड़ों पर भी अच्छी सामग्री मिलती हैं । कायमखानियों और राठौड़ों में पुराना बैर भाव था तथा अनेक संघर्ष हुए थे । इन संघर्षों के सम्बन्ध में पूर्व में कुछ कहा जा चुका है ।

कई जगह कुछ ऐसी बातें रासो में आती हैं जो संपादकत्रय के गले नहीं उतरती । एक वर्णन है जो जोधा राठौड़ ने अपनी पुत्री का डोला झुंझनु के नवाब शम्सखां को भेजा । संपादकों ने इसे तथ्यपूर्ण कथन माना है । उनके तर्क हैं कि जोधा न कायमखानियों से कमजोर था और न दबा हुआ, अतः वह अपनी पुत्री का डोला क्यों भेजता ।[२५] अगर मध्यकालीन राजनैतिक परिस्थितियों की ओर गौर किया जावे तो यह बात असंभव नहीं लगती । पुत्री के विवाह अपने से कमजोर शासक से भी किये जाते थे । विवाह सम्बन्ध से वे अपनी सुरक्षा को मजबूत करते थे । राव मालदेव ने तो कमजोर था न दबा हुआ । फिर भगोड़े सरदार हाजी खां को उसने लड़की क्यों दी । विवाह कायमखानियों से होना एक आम बात थी । यह बात हम कायमखां के प्रसंग में कह आये हैं ।

रासो में एक जगह आया है[२६] कि शेखावत सरदार रायसल को फदनखां ने सिफारिश कर मनसबदार बनवाया । संपादकगण इसे भी एतराज की दृष्टि से देखते हुए कहते हैं कि रायसल दो हजार के मनसब वाला प्रभावशाली सरदार था । वह फदनखां से अधिक प्रभावशाली रहा होगा, अतः रासो का कथन संगत प्रतीत नहीं होतां । रासो के एतद्सम्बंधी वृत पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि यह एतराज निस्सार हैं । रासो मे आया है कि बादशाह ने फदनखां को कहा कि मेरा भोमियों पर एतबार नहीं हैं क्योंकि वे गुमराह होते देर नहीं लगाते । मै रायसल (जो भोमिया था) को तभी मनसब [२७] दूंगा जब तुम उसकी जामनी दो । इस पर रायसल की बांह पकड़ कर फदनखां ने उसे मनसब और मान दिलवाया । रायसल मनसब पाने पर ही प्रभावशाली हुआ होगा । क्या पहले ही प्रभावशाली था ? दूसरे फदनखां की बादशाह तक पहुंच थी । वह उनका मनसबदार और सम्बन्धी था । अतः सिफारिश करने की स्थिति में था । समय की प्रथा के अनुसार बिना जामनी के नौकरी नहीं मिलती थी । अनेक सेठों, साहूकारों की जामनी (निशा) पर ही इजारा मिलता था । इसमें छोटे-बड़े की बात कहां सामने आती है । बादशाही सेवामें जाकर निश्चयपूर्वक रायसल बड़ा सरदार हुआ । समग्र रूप से विचार करने पर संपादकों के एतराजों का कोई दम नहीं हैं । अतः रासो का एतद्सम्बन्धी कथन निर्दोष है ।

रासो में एक जगह आया है कि कायमखां ९५ वर्ष की अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुए । संपादकों ने इस कथन पर चार एतराज उठाये हैं । ९५ वर्ष का बुड्ढा लड़ाई में साथ क्या जावेगा । फिरोजशाह के राज्यकाल में वह २७ या २८ साल का होता जबकि वह नादान बालक था । उसके मुख्य युद्ध उसके ६४ वर्ष के होने के बाद हुये , कायमखां के बड़े पुत्र का जन्म उसके ६७ वर्ष की अवस्था के बाद हुआ । हम संक्षेप में इनका निरीक्षण करते हैं । बुढ्ढे भी लड़ाई में साथ जाते हैं । लड़ते नहीं अपितु सैनिकों का उत्साहवर्द्धन करने के लिये । करमचन्द रासो के अनुसार नादान बालक नहीं था । किन्तु शिकार खेलने लायक युवक था । वह २७ या २८ का भी हो सकता था । वस्तुतः वह उस समय २० वर्ष का था । आगे के युद्धों में कायमखां अवश्य लड़ा था । फिरोज की मृत्यु ई.१३८८ वि.१४४५ में हुई । उस समय कायमखां ६४ वर्ष का नहीं सिर्फ ५४ वर्ष का था । वैसे ६४ वर्ष का व्यक्ति भी लड़ ही सकता हैं । बहलोल लोदी सन १४५१ संवत् १५०७ में गद्दी पर बैठा उस समय

ताजखां ६९ वर्ष का था । उसका जन्म उस समय हुआ जब कायमखां ४८ वर्ष का था ६७ वर्ष का नहीं । इस प्रकार चारों एतराजों की निस्सारता स्पष्ट है और रासो का वर्णन तथ्यपूर्ण है ।

कायमखां रासो एक अति महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य है । कहीं कहीं अतिरंजनाओं और अतिश्योक्तियों को छोड़कर उसके विवरण तथ्यपूर्ण हैं । राजस्थान के ऐतिहासिक काव्यों में उसका स्थान गौरवास्पद एवं अन्यतम है ।

४४/६२ किरण पथ,
मानसरोवर, जयपुर

सन्दर्भ सूची

1. देखें सुन्दरंग्रन्थावली, सं. पं. हरिनारायण पुरोहित, कलकत्ता ।
2. धूमकेतु सं. पं. शिवशेखर द्विवेदी, अंक तीसरा, अगस्त सन् १९३८, कायमखानी नवाब अलफखां और उनकी हिन्दी कविता, व झाबरमल शर्मा, राजस्थानी, त्रैमासिक अंक ४, वर्ष ३
3 हिन्दुस्तानी पत्रिका जनवरी- मार्च अंक, १९४५, डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ
4 वही
5. सूफी काव्य संग्रह, सं. पं. परशुराम चतुर्वेदी । भूमिका भाग ।
6 सोलहसौ इकईस में । जनमें दीवाण ।
कीये अजले क्यांमखां । चकवै चौहाण ।
संवत् हुआ तियासिया, लेखे परवाणा ।
बैकुण्ठ पहुँचे अलफखां । छड्डु दिया जहाण ॥ अलफखां पैडी, पृ८
7. देखे । क्यांमखां रासो की भूमिका भाग ।
8. भारतीनाममाला, कवि भीखजन, फतेहपुर । भीखजन सुकवि थे तथा संतदासजी दादूपंथी के शिष्य थे ।
9. दादूपंथ परिचय, स्वामी नारायण दास, अजमेर
10. देखे रासो का एतद्‌विषयक वर्णन
11. परस राम सुत सूर हे ताके बछ बड़जोत ।
चाहवान है जगत में, ते सब बछ सगौत ।
12. करमचन्द की बसौं बाता, कैसे कीनौ तुरक विधाता ॥
कुंवर करमचन्द खेलत डोलत, अधिक सिरिस्टवदन मुख बोलत ।
फेरोशाह दिल्ली सुलतान, चारों चक में जाकी आन ।
नासिर सैद बुलायो पास, जो देख्यो सो करदो प्रकास ।

13. देखें शेखावाटी प्रकाश, पं. रामचन्द्र भगवती दत्त शास्त्री, मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास, डॉ. बी. एस. भार्गव, बीकानेर का इतिहास, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, इत्यादि ।
14. देखें रासो में अलफखां का वर्णन जिसमें उसके वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख किया गया है।
15. राव कुतुब नागौर हौ, जोधावत वहुपास ।
    को नां के नागौर को, ऐसी उनकी त्रास ॥
16. कहत जान अब बरनिहौ, अलिफखान की जात ।
    पिता जान बढि ना कहौ, भाखौं साची बात ॥
    अलिफखान दीवान कौ, बहुत बड़ो है गोत ।
    चहुं बांत की जोट कौं, और न जग में होत ॥
    रासो छन्द ४,५
17. क्यांमखां रासो, पद्य सं. ४९९ पृष्ठ सं. ४२.
18. छन्द रा जइतसीरउ बीठू सूजा रचित, छन्द ८०.
19. क्यांमखां रासो, पद्य ४१४ से ४१६ पृ. ३५.
20. श्यामदास माने नहीं, कूरम सुत गोपाल ।
    पट्ठ दयो फुरमोन धर अलिफखानु तत्काल ॥
    रासो पद्य ६७४
21 पद्य ६९५, पृ. ५९
22. देखें, रासो का भूमिका भाग एवं टिप्पणी भाग ।
23. लरि बिचर यो सीसौदियो, जबहि पर्‌यो घमसान ।
    दे अपने पैरोज के ने जे पुनि नीसान ॥ पृ. ३४९.
24. देखें । वीर विनोद, श्यामलदास, उदयपुर का इतिहास. ओझा ।
25. देखें । रासो भूमिका एवं टिप्पणी भाग ।
26. देखें । रासो फदनखां का वर्णन ।
27. रासो पद्य ६४० - ६४२ पृ. ४४
28. जीयो बरस पंचानुवै क्यामखान चहुवान ।
    बड़े बड़े साके करै, गनत न आवै ग्यान ॥ ३०४

क्यामखां रासो :
इतिहास, शासन एवं सांस्कृतिक चिन्तन का दस्तावेज

— बी. एल.माली

मुसलमानों के आगमन से पूर्व मरुप्रदेश का हिसार, झुंझनुं और फतेहपुरवाटी का क्षेत्र बागड़ क्षेत्र कहलाता था। हिसार के आस-पास चहुवाण राजपूत आबाद थे। इसी क्षेत्र को हासिल कर इस क्षेत्र के शासक 'वागरपति' या 'बागरी' कहलाये। इन शासकों में क्यामखानी दीवान प्रमुख रहे हैं। ये शासक नवाब कहलाये। इन क्यामखानी शासकों का दिल्ली के बादशाहों के यहां काफी सम्मान रहा है। बादशाहों के यहां भी ये नवाब ही कहलाते थे। दिल्ली दरबार में नवाब ताजखां द्वितीय, नवाब आसिफ खां, नवाब दौलतखां द्वितीय बराबर जाते रहे हैं। क्यामखानी दीवानों ने अपने समकालीन सम्राटों की ओर से अनेक लड़ाइयां लड़ी और सम्मान पाया। तुगलक, सैय्यद, लोदी, सूर और मुगलवंशों के बादशाहों से क्यामखानी नवाबों के निकट के सम्बन्ध रहे हैं। क्यामखानियों के अधीन छापर, बागड़ क्षेत्र, फतेहपुरवाटी और झुंझनुवाटी नाम से प्रसिद्ध हुआ। संवत् १७८७ में यहां नवाबों का अंत हो गया।

बागड़ क्षेत्र में फतेहखां ने फतेहपुर बसाया। मुहम्मदखां ने जूंझा जाट की सलाह से झुंझणुं बसाया। इसे विशेष रूप से आबाद किया। नवाब जलालखां ने जलालसर बसाया जो फतेहपुर के दक्षिण में 8 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। जलालखां ने ही इस क्षेत्र में बारह कोस का बीहड़ रखा जो आज प्रायः खत्म हो गया है। इस बीहड़ पर अधिकांशतः तो खेतिहरों ने कब्जा कर लिया है, कुछ हिस्से पर राजकीय भेड़ प्रजनन केन्द्र स्थापित हैं।

बागड़ की इस भूमि पर नवाब दौलतखां ने दौलदाबाद बसाया जो फतेहपुर के विस्तार के बाद आज फतेहपुर के एक मुहल्ले के रूप में परिणत हो चुका है। नवाब नाहरखां ने नाहरसर नाम के दो गांव बसाये जो फतेहपुर के उत्तर-दक्षिण में स्थित हैं। फतेहखां ने फदनपुरा गांव बसाया जो फतेहपुर से ८ किमी. दूरी पर स्थित है। ताजखां ने ताजसर बसाया। अलिफखां ने अलिफसर बसाया। दौलतखां द्वितीय ने दौलतपुरा गांव बसाया जो बीकानेर रियासत में था। सरदारखां ने सरदारपुरा,

दीनदारखां ने दीनपुरा, ताहिरखां ने ताहिरपुरा व रशीदखां ने रशीदपुरा गांव बसाया। इस प्रकार बागड़ क्षेत्र का यह भू-भाग क्यामखानी नवाबों द्वारा एवं उनके वंशजों द्वारा आबाद किया गया जिसे नया नाम मिला फतेहपुरवाटी और झुंझनुवाटी, इस क्षेत्र में क्यामखानियों का २७९ वर्षों तक शासन रहा।

इस क्षेत्र के इन क्यामखानी दीवानों को एक काव्यग्रंथ में प्रशस्त किया गया है। इस ग्रंथ का रचियता जान कवि है और इस ऐतिहासिक ग्रंथ का नाम है— 'रासा श्री दीवान अलिफखां'।

इस काव्य ग्रंथ में १०४५ पद्य हैं। ग्रंथ में सर्वाधिक ३७३ पद्य अलिफखां पर रचे गये हैं एवं क्यामखां पर १८६ पद्य। शेष पद्य अन्य नवाबों एवं उनके वंशजों आदि पर हैं। इस ग्रंथ में चौहानवंश की उत्पत्ति एवं क्यामखां तक का विवरण मात्र नहीं है।

इस रासो विषयक ग्रंथ का नाम विद्वानों ने "क्यामखां रासो" रखा है। ग्रंथ में क्यामखानियों की उत्पति, उनका सांस्कृतिक चिंतन और उनका राजनैतिक इतिहास समाया हुआ है। इस रासो के प्रथम कथापुरुष क्यामखां है। वह क्यामखानियों का आदिपुरुष है। क्यामखानियों की उत्पत्ति एवं इतिहास विषयक कथावस्तुका प्रथम परिचायक पुरुष है। रासो की कथावस्तु को व्यापक अर्थ देने एवं रासो के ऐतिहासिक महत्व के कथानक से पाठकों को सीधा जोड़ने हेतु संभवतः इसे क्यामखां रासो नाम दिया गया है। परन्तु यहां प्रश्न यह भी उठता है कि क्या विद्वान् किसी कृतिकार की कृति का नाम बदलकर उसे अन्य नाम से चर्चित करवाने का अधिकार रखते हैं ? यह अधिकार संभवतः सविवेक इस नामकरण से सुरक्षित हो जाता है।

जान अच्छा अध्येता था। समकालीन काव्य परम्परा से वह भली भांति परिचित था। उसे रासो परम्परा का गहन अध्ययन था। यही वजह है कि काव्य परम्परा को सुरक्षित रखने हेतु उसने कहीं कल्पना का भी सहारा लिया परन्तु अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से बहुत परहेज रखा है। अलिफखां से पूर्व का वर्णन जान ने से पूर्व काव्य ग्रंथों से लिया है। अलिफखां और बाद का वर्णन उसके समय का होने के कारण काफी प्रामाणिक है। जान ने (इस कथा काव्य में) क्यामखानियों के प्रथम पुरुष से लेकर प्रभावशाली शासकों एवं उनके वंशजों का ब्यौरा रासो में दिया है। उनकी वीरता, शौर्य, विजयों, विजय अभियानों में भागीदारी का विवरण भी रासो में आया है। क्यामखानियों के राजनैतिक इतिहास का विवरण होने के कारण यह रासो एक महत्वपूर्ण कृति है और इस कृति का ऐतिहासिक महत्व है। क्यामखानियों का इतना अच्छा और इतना विश्वसनीय वर्णन रासो के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता।

जान एक संवेदनशील कवि था। अपने युग पर उसकी गहरी पकड थी। समकालीन केन्द्रीय व्यवस्था पर उसकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। जान की दिल्ली के तख्त पर की गई टिप्पणी बड़ी प्रांसगिक एवं कालजयी है—

अनंत मताहरि भखि गई, नैकु न आई लाज।
येक मरै दूजै धरै, यहै दिल्ली को काज॥

ये पंक्तियां हमें बताती हैं कि दिल्ली किसी शहर का नाम नहीं है, दिल्ली किसी राजधानी का नाम नहीं है, यह तो एक व्यवस्था-अव्यवस्था का प्रतीक है।

रासो का रचनाकाल संवत् १६९१ अर्थात् सन् १६२४ का है। इस समय बादशाह शाहजहां दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ था और मुगल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष से पतन की ओर प्रयाण कर रहा था। यह पतन भी रासो की इन पंक्तियों में अंकित हुआ है।

क्यामखां रासो के साथ 'रासा' शब्द क्यों ?

राजस्थानी साहित्य के इतिहास में सर्वत्र रासो शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी रासो को 'रासा' क्यों कहा गया है ? जान कवि ने भी इस कथा काव्य को 'रासा' नाम दिया है। विद्वानों ने भी इसे 'रासा' कहा है। इस नामकरण के भेद पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

'रासा' शब्द तत्कालीन क्यामखानियों, बिसातियों, मुसलमानों की अपनी निजी भाषा का शब्द है। क्यामखानी, बिसायती एवं मुसलमान आज भी फतेहपुर पट्टी में रासो को 'रासा' ही बोलते हैं। अन्य लोग 'यो के रासो है' बोलेंगे तो मुसलमान क्यामखानी बिसायती आदि 'ये क्या रासा है' बोलेंगे। उनकी यह ध्वनि सम्पत्ति है जो अन्यों से भिन्न है। क्याखामी, बिसायती एवं मुसलमानों की भाषा में राजस्थानी के ओकारांत शब्द आकारांत हो गये हैं। जैसे 'होग्यो' को 'होग्या' जातो का 'जाता' 'रहतो' का 'रहता' आदि। यह प्रभाव १६९१ वि. के पूर्व से ही प्रचलित है जो तुर्की एवं बागड़ी के पारस्परिक सम्प्रेषणीय मिश्रण का परिचायक है। क्यामखानी, बिसायती एवं मुसलमानों की ध्वनि-सम्पत्ति इस शब्द में सुरक्षित हुई है। यह हमेशा इस जाति की ध्वनि सम्पत्ति की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित करता रहेगा।

रासो की भाषा

रासो की भाषा तत्कालीन बागड़ी भाषा से प्रभावित थी। क्यामखानियों के उच्चारणों में मुगलिया प्रभाव था। यह प्रभाव रासो के रचाव में उतर कर आया है। रासो में अधिकांश प्रयोग बागड़ी भाषा के हैं। क्यामखानियों के जातिगत भाषा स्वरूप को पहिचान कर ही रासो की भाषा का निर्णय किया जाना चाहिए अन्यथा हम बड़ी भूल कर बैठेंगे।

रासो के रचनाकाल के समय मारू-सोरठ का प्रचलन प्रायः समाप्त हो चुका था। गुजराती उस काल खंड में मरुभाषा से अलग होकर एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी, चूंकि इस समय राजस्थान और राजस्थानी शब्द प्रचलन में नहीं आये थे, अतः लोक में, इस क्षेत्र में मारू-सोरठ नाम ही प्रचलन में रहा होना संभव है।

रासो की भाषा से इस क्षेत्र के भाषा के इतिहास को समझने में भी सहायता मिलती है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है हिसार-सिरसा का क्षेत्र सरस्वती नदी का प्रवाह क्षेत्र रहा है। सरस्वती नदी के प्रवाह क्षेत्र के कारण ही संभवतः यह सारस्वत प्रदेश कहलाया होगा। सरस्वती नदी के लुप्त हो जाने के बाद यह क्षेत्र किन-किन भाषागत रूपों में विकसित हुआ, इसकी एक कड़ी हमें क्यामखां रासो से हाथ लगती है। परवर्ती भाषा काल में यह क्षेत्र बागड़ कहलाया। इसी बागड़ क्षेत्र से बागड़ी जाति और गोत्र का उद्भव हुआ जो इस क्षेत्र के होने के परिचायक है। बागड़ क्षेत्र के लोग ही बागड़ी कहलाये। 'बागड़' भी संभवतः बागड़ के ही निवासी थे। इस बागड़ क्षेत्र के लोगों

की भाषा बागड़ी कहलाई । बागड़ क्षेत्र से पूर्व इस क्षेत्र की भाषागत स्थिति हमारे लिए शोध के नवीन द्वार खोलती है ।

चहुवाण नख की अन्य जातियों की व्युत्पत्ति

चहुवाणों से क्यामखानियों कीउत्पत्ति इतिहास संमत है । जिस प्रकार क्यामखानियों का आदि पुरुष चहुवाण राजपूत पुत्र था, उसी प्रकार अन्य चहुवाण वंशीय जातियों के आदिपुरुष भी चहुवाण राजपूत सुत रहे होंगे । क्यामखां रासो इस तथ्य पर विचार करने को बाध्य करता है । जान चहुवाण को कल्पवृक्ष कहता है—

कलप बिछ चहुवान है, जाकै अनगन साख ।
जो हो जानो जान कही, सु तो सुनाउ भाख ॥

इस पद्य के पश्चात् एक सवैये एवं दो दोहो में चहुंवाणों की ३२ खांपों का विवरण कवि ने दिया है । इनमें चहुवाणों की 'राकसिये' भी एक खांप है । इस शाखा का विवरण मुंहता नैणसी और कर्नल टाड दोनों की सूची में है । मेरे पिताजी ने हमारा नख चहुवाण और गोत्र 'राकसिये' बताया है जो बही भाटों से पीढ़ी दर पीढ़ी श्रुति परम्परा में चला आ रहा है । इसी क्षेत्र में जहां क्यामखां रासो की रचना हुई, हमारी बिरादरी में यह कहावत है कि यहां राकसियो की धाई गाजती थी । हम राजपूत नहीं है, जिस प्रकार आज क्यामखानी राजपूत नहीं है । जिस तरह से चहुवाण आदिपुरुष से क्यामखानियों की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार अन्य जातियों के आदिपुरुष भी चहुवाण पुरुष रहे, जिनमें उनके नख और खांप दोनों सुरक्षित हैं । अगर हम इन तथ्यों को बही भाटों के अभिलेखों एवं अन्य प्रासंगिक विवरणों एवं वर्णनों द्वारा शोध कर प्रकाश में लाये तो एक बड़ी उपलब्धि होगी ।

चारण साहित्य में इस तरह का विवरण नहीं आ सका, इसका कारण समझ में आ सकता है । परन्तु चहुवाणों के कई पुरुष अन्य कार्यों में अवश्यमेव प्रवृत्त हुए हैं, इसीलिए अनेक जातियों में यह नख एवं गोत्र दोनों सुरक्षित हैं ।

क्यामखानी चहुवाणों की उत्पत्ति माता की कोख से नहीं

क्यामखानी चहुवाण राजपूत मुसलमान किसी माता की कोख से जनमकर क्यामखानी नहीं कहलाए अपितु उनके आदिपुरुष को बादशाह ने धर्मपरिवर्तन द्वारा मुसलमान बनाया था । इस धर्मपरिवर्तन से उनके आदिपुरुष का गोत्र लुप्त हो गया । क्यामखानी चहुवाणों की यह पीड़ा रासो में उद्घाटित हुई है—

करमचंद की वरनो बातां, कैसे कीनो तुरक विधाता (पद्य- १५२)

ददरेवे में चौहानों का राज्य काफी प्राचीन समय से था । संवत् १२७० का तत्संबंधी शिलालेख डा. टैसीटोरी ने खोज निकाला था । कर्मचन्द ददरेवे के ही चौहान मोटेराव का पुत्र था । बादशाह ने धर्म परिवर्तन के साथ उसका नाम भी बदल दिया था । जान इस घटना पर पद्य लिखकर कहता है—

कर्मचंदते फेरिके धर्‌यो क्यामखां नाम।

यह क्षण ऐतिहासिक है। यहां हमें यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि क्यामखानी वंश के जन्मदाता का जन्म मां की कोख से नहीं हुआ अपितु धर्म परिवर्तन से हुआ है। क्यामखानियों का आदिपुरुष चहुवाण था और वह मुसलमान नहीं था। इसीलिए जान के अपने पूर्वजों को चहुवाण राजपूत कहा है। जान कवि चहुवाणों का प्रशंसक था। वह अपने पूर्वजों एवं अपने को चहुवाण राजपूत मानता था। चहुवाणों की शाखाओं में उसने क्यामखानियों को भी रखा है। चहुवाणों को जान कवि ने निम्न पद्यों में प्रशस्त किया है—

जिती जात रजपूत की, सगरे हिदसतान।
सुबमे निहचै जानियो, बड़ी गोत चहुवाण॥
आलिफखानु दीवान को, बहुत बड़ो है गोत।
चहुवाण की जोड़को, और न जग में होत॥

परन्तु उनका यह सम्बोधन कर्मचन्द से क्यामखां के साथ ही लुप्त हो गया। वे अब सिर्फ क्यामखानी रह गये हैं, चहुवाण राजपूत नहीं।

रासो में शेखावाटी से पूर्व इस क्षेत्र का इतिहास भी वर्णित हुआ है। शेखावाटी के पूर्व यह क्षेत्र फतेहपुरवाटी और झुंझनुवाटी कहलाता था, उसके पूर्व यह क्षेत्र बागड़ क्षेत्र के अंतर्गत आता था।

रासो : क्यामखानियों का राजनैतिक इतिहास

रासो में कई ऐतिहासिक तथ्य खुले हैं। परन्तु मुख्यतः यह बागड़ क्षेत्र के क्यामखानियों की सत्ता, शासन और शासकों का विवरण देता है। रासो में क्यामखानी सरदारों की वीरता, शौर्य, पराक्रम और उनके यश विस्तार तथा उनके शौर्य का लोहा मानने वाले भोमियों, भूमिपतियों, शासकों का विवरण भी रासो में मिलता है। क्यामखानियों के विरोध का ज्ञान भी रासो करवाता है। राठौड़ो से उनकी राजनैतिक विरुद्धता रासो में किसी न किसी रूप में उद्घाटित हुई है। रासो क्यामखानियों का राजनैतिक इतिहास है, उनकी उत्पत्ति का दस्तावेज है।

क्यामखानियों का प्रथम पुरुष क्यामखां जो कर्मचन्द से क्याम खां बनाया गया, दिल्ली दरबार में काफी सम्मानित था। जब बादशाह ठट्टा विजय के लिए निकला तो दिल्ली का फौजदार क्यामखां को बनाया। बादशाह की अनुपस्थिति में मुगलों के दिल्ली आक्रमण में क्यामखां ने मुगलों को शिकस्त दी। पेरोशाह के बाद महमूद एवं नजीरखां के दरबार में भी क्यामखां का बहुत सम्मान था। परन्तु नजीरखां की मृत्यु के बाद उसके गुलाम के बादशाह बनने पर क्यामखां दिल्ली से अपने घर की तरफ चल पड़ा। मल्लू खां से क्यामखां के युद्ध का प्रसंग रासो में आया है। इसके बाद वह हिसार में आ बैठा। क्यामखां का प्रभाव रिणी, भटनेर, भादरा, गरानो, कोठी, बजवारा, कालपी, एटावा, उज्जैन, धार आदि तक भी था। कुछ प्रकारान्तर से ऐसा विवरण रासो में आता है।

मल्लूखां की तैमूर लंग से लड़ाई का प्रसंग रासो में वर्णित हुआ है । लाहौर के मोजदीन एवं क्यामखां के बीच लड़ाई की घटना भी रासो में आई है । क्यामखानियों द्वारा राव चूंडा से नागोर विजय करने का प्रसंग भी रासो की काव्य घटनाओं में वर्णित हुआ है । इसके बाद दिल्ली विजय का प्रसंग आया है और खिज्रखां को दिल्लीपति बनाने का प्रसंग वर्णित हुआ है । क्यामखां की मृत्यु ९५ साल की उम्र में हुई, यह तथ्य भी रासो बताता है ।

क्यामखां के बाद मां की कोख से जन्मा प्रथम क्यामखानी दीवान ताजखां हिसार का शासक बना । क्यामखां के पांच बेटों में वह सबसे बड़ा था । रासो के पद्यों में वर्णन है कि दिल्ली में ताजखां के निःसंतान मरने, इसके बाद मुबारक, महमदफरीद, अलावदी और मुबारक बादशाह का पुत्र अमानतखां क्रमशः बादशाह बने । फिर बहलोल लोदी ने अपने भुजबल से दिल्ली का तख्त प्राप्त किया ।

क्यामखां के चौथे पुत्र का वारुवे और पांचवे पुत्र का बगड़ बसने का उल्लेख भी रासो में आया है । बगड़ भी क्यामखानियों के अधीन रहा है । क्यामखां के दोनों बड़े पुत्र हिसार में रहे । रासो में क्यामखां के दोनों बड़े बेटों द्वारा चित्तौड़ के स्वामी राणा मोकलसी को युद्ध में परास्त कर नागौर के नेजे-निशान वापस लेने का प्रसंग भी आया है । राणा ने फिरोजखां से ये ले लिये थे । नागौर से ताजखां और मुहम्मदखां के हिसार लौटने की बात पर फिरोजखां के रुष्ट होने एवं घायल करने का प्रसंग भी रासो में है ।

क्यामखानियों के पास खेतड़ी, खरकश, चबोहाना और पाटन होना भी ताजखां के समय में प्रकाशित हुआ है ।

ताजखां हिसार में और महमदखां हांसी में काबिज रहे । ताजखां के बाद फतहखां हिसार का उत्तराधिकारी बना । वह बड़ा प्रबल और वीर था । उसने एक ही मुहूर्त में छह गेट की नींव रखी ।अपने नाम पर संवत् १५०८ चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन उसने फतेहपुर शहर बसाया । फतहखां के पास रनाऊ होने का उल्लेख भी रासो में आया है । आस-पास के भोमिये, पल्ह, रुहेवा, भादरा, मारज, वाइले आदि के स्वामी भी उसकी सत्ता स्वीकार करते थें ।

बहलोल लोदी की रणथंभौर चढ़ाई में फतेहखां के शामिल होने का प्रसंग रासो में वर्णित हुआ है । मेवातियों को भगाकर ढोसी विजय का वर्णन रासो में आया है । फतेहखां के वीर बहुगुन का प्रसंग भी रासो में वर्णित हुआ है जिसके नाम पर बोहगण का कुंआ आज फतेहपुर में मौजूद है ।

फतहखां के कांधल और रिणमल, राणा सांगा अना सांखला आदि के साथ युद्ध का विवरण भी रासो में है । किर्रानी पठान मुसकी को भगाना, आंबेर पर चढ़ाई, भिवानी का घेरा और लूट का वर्णन भी फतेहखां के प्रसंग में रासो में वर्णित हुआ है । बहलोल लोदी एवं फतेहखां के अदल-बदल विवाह प्रस्ताव की घटना के बाद दिल्ली न जाने का प्रसंग भी रासो में है । संवत् १५३१ में फतेहखां की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र जलालखां फतेहपुर का नवाब बनता है । जलाल खां के चौपनखां के साथ कटराथल युद्ध एवं छापोरी पर चढ़ाई एवं आंबेर घेरे का प्रसंग भी रासो में है ।

झुंझनु के मुबारकशाह के नाना राव जोधा और उसके मामा बीका और बीदा होने का प्रसंग रासो में उद्‌घाटित हुआ है । जलालखां के द्वारा बहलोल लोदी के जंवाई फतेहखां से झुंझनु वापस मुबारकशाह को दिलाने का प्रसंग रासो में वर्णित हुआ है ।

जलाल खां के लोहागर रहने, उसकी अनुपस्थिति में फतेहपुर पर बीदा के आक्रमण एवं दौलतखां द्वारा फतेहपुर को बचाने का प्रसंग भी रासो में है ।

जलाल खां के बाद फतेहपुर का नवाब दौलतखां बना ।दीवान दौलतखां चौहान महान् तेजस्वी था । वह अनीति के लाख-करोड़ को भी कौडी के समान मानता था । उसमें वचन सिद्धिकी भी विशेषता थी । वह महान् योद्धा और वीर था । सात सुलतान भी यदि उसके प्रतिस्पर्द्धी हो तो भी वह युद्ध में पीठ नहीं दिखाता था । रासो में दौलतखां के समय राव बीका की ढोसी में हार, लूनकरण का पाटोधे में डेरा आदि प्रसंग भी आये हैं । दौलतखां गौवध के विरुद्ध था । यह बात क्यामखानियों के धार्मिक संस्कारों में थी । .रासो में आया बाबर का प्रसंग इसी तरफ इंगित करता है । दौलतखां सिकन्दर लोदी का समकालीन था, परन्तु वह उसके दरबार में नहीं गया । झुंझनुं के भीखनखां के विरुद्ध नौहा के मुहबतखां तथा दौलतखां के बेटे नाहरखां की आमूसर के ताल की लड़ाई का प्रसंग भी रासो में आया है ।

दौलतखां के मरने के बाद नाहरखां फतेहपुर का नवाब बना । वह बड़ा वीर और विलासप्रिय था । वह शेरशाह का समकालीन था । बाबर के बाद हुमायूं दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी के मरने के बाद इब्राहिम लोदी को मारकर बने । शेरशाह का नाहरखां को मामा कहकर पुकारने का भी प्रसंग रासो में आया है ।

मकराणा में अजमेर के फौजदार जगमाल पंवार और नाहरखां के बीच युद्ध का प्रसंग भी रासो में है । नाहरखां की मृत्यु के बाद फदनखां फतेहपुर का नवाब बना । वह अकबर के समकालीन था । अकबर फदनखां से प्रेम रखता था । अकबर चौहान गोत्र का प्रशंसक था । रासो में फदनखां द्वारा बीदावतों के साथ छापर द्रोणपुर युद्ध, छापौरी और पूंख के हमले के प्रसंग भी आये हैं । निरवाणों को हराकर गांव जलाने का प्रसंग रासो में वर्णित हुआ है ।

फदनखां के बाद ताजखां द्वितीय, फतेहपुर का नवाब बना । ताजखां बड़ा सुन्दर था उसके सौन्दर्य की उस समय के शासकों में बड़ी चर्चा थी । ताजखां का पुत्र मुहम्मदखां द्वारा क्योर एवं वैराट विजय का प्रसंग रासो में वर्णित हुआ है । मांडन के पुत्र कूंपावत राठौड़ कुंभकरन को रणक्षेत्र से भगाने की घटना भी रासो में है । ताजखां के समय ही मुहम्मदखां की मृत्यु हो गई थी अतः उसने अपने पौत्र अलफखां को अपने साथ रखा व बादशाह अकबर के दरबार में उसे ले गया । ताजखां जीवित रहा तब तक अलफखां को क्षण भर के लिए भी अपने से अलग नहीं रखा । ताजखां के मरने के बाद अलफखां उत्तराधिकारी बना । बादशाह ने उसे टीका देकर फतेहपुर का स्वामी बनाया । यह प्रसंग भी रासो में आया है । यही अलफखां रासोकार का पिता था ।

झुंझनुं के स्वामी बहादुर खां के मरने के बाद उसका पुत्र समसखां उत्तराधिकारी हुआ परन्तु दूसरे भाई उसे नहीं मानते थे, अलफखां उसे बादशाह के पास ले गया और मनसब का सम्मान

दिलाया। यहीं से यह रीति चलती है कि फतेहपुर वाले जिसे बड़ा करे वही झुंझनु में बड़ा होता है।

रासो में अलफखां के अकबर की तरफ से पहाड़ में युद्ध, सलीम द्वारा राणा पर चढ़ाई के समय अलफखां का साथ ले जाना, मेवाड़ में आकर सेना विभाजित कर सादड़ी थाना अलफखां के जिम्मे देना, 'ऊंटाले' का युद्ध आदि ऐतिहासिक प्रसंग वर्णित किए हैं। अकबर की मृत्यु के बाद जहांगीर द्वारा अलफखां को फतेहपुर का लाल मोहर का पट्टा देने का प्रसंग भी रासो में वर्णित है। मेवात विजय, भिवानी की चढ़ाई, दक्षिण विजय में अलफखां के योगदान के प्रसंग भी रासो में हैं।

पटौधी और रसूलपुरं, नरहड़, भादौवासी के दौलतखां के आक्रमण के प्रसंग रासो में हैं। दिल्लीपति द्वारा अलफखां को जागीर देने का प्रसंग रासो में आया है। दौलतखां के बेटे नाहरखां द्वारा बादशाह को बेटी देने का प्रसंग भी रासो में वर्णित हुआ है।

अलिफखां के दक्षिण, कांगड़ा मेवात की लड़ाइयों में भाग लेने, नूरपुर पर कब्जा आदि प्रसंग रासो में उपलब्ध हैं। जहांगीर का कांगड़े में अलफखां से मिलने और सम्मानित करने का प्रसंग भी आया है।

काबुल में बगावत को दबाने हेतु जहांगीर द्वारा कांगड़े से अलिफखां को बुलाने का प्रसंग रासो में है। कांगड़ा में अलिफखां को चार बार भेजने का तथ्य रासो में उद्घाटित हुआ है। विक्रम संवत् १६८६ अठाइसवें रोजे के दिन अलिफ के बैकुंठ जाने का प्रसंग रासो में वर्णित है।

अलिफखां के बाद दौलतखां एवं ताहिर खां का वर्णन है। दौलतखां जान कवि का भाई था । ताहिर खां उसके भाई का बेटा। दौलत का समय शाहजहां के काल का है। शाहजहां ने दिल्ली के तख्त पर बैठते ही दौलतखां को मनसब बढ़ाकर सम्मानित किये जाने का प्रसंग रासो में हुआ है। अमरसिंह और सलावत खां का प्रसंग भी रासो में ताहिरखां के वर्णन के साथ हुआ है जो मुसलमान इतिहासकारों के वर्णन पर आधारित है।

रासो में बल्ख में ताहिर खां की मृत्यु का प्रसंग बड़ा मार्मिक है। फतेहपुर का अंतिम नवाब सरदार खां रासो में वर्णित हुआ है जिसने अपना विरुद सवाई क्यामखां रखा। परन्तु सरदार खां के बाद फतेहपुर में कई कमजोर नवाब हुए हैं जिनका परिचय 'फतेहपुर परिचय' में मिलता है।

क्यामखानी वंशपरम्परा, पीढ़ी दर पीढ़ी उनके शासकों एवं वंशजों का ऐतिहासिक अभिलेख यह रासो है। क्यामखानियों के सांस्कृतिक चिन्तन का रासो एक अपूर्व दस्तावेज है। क्यामखां से लेकर ताहिर खां एवं उसके बाद का विवरण होने के कारण क्यामखां रासो क्यामखानियों के राजनैतिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण अभिलेख के रूप में उभर कर सामने आता है।

जान जो बाते ज्ञात थी, जो उसने पुरातन कवित्त से ज्ञात की, उन्हें बिना अतिशयोक्ति के रासो में रखा है। रासो के प्रारंभिक पद्य में ही उसने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह सत्य ही कहकर वर्णन करेगा। उसने अपने पिता के लिए भी बढ़-चढ़कर कहने का भाव नहीं रखा— 'पिता जान बढ़ि नां कहौ, भाखौ साची बात' (पद्य ४) यही कारण है कि जान की विश्वसनीयता पर कोई संदेह नहीं है।

सांस्कृतिक पक्ष

रासो के रचनाकाल तक क्यामखानी अपने आपको पूर्णतः मुसलमान स्वीकार नहीं कर पाये थे। यह तथ्य रासो में प्रखर रूप से प्रस्फुटित हुआ है। जान ने अंतिम रूप मे अपने भाई के लड़के की प्रशस्ति में अपने कुल को राजपूत ही कहा कहा है—

तरवर ताहर खान तन, सादत सत सपूत।
सरदारां सरदार है, रजपूतां रजपूत ॥

क्यामखानियों की गैर मुसलमान सांस्कृतिक परम्पराओं और धार्मिक विश्वास संबंधी काफी पद्य रासो में आए हैं। कुछ पद्य यहां उद्धृत है —

सोरहसै जुतियासिया, सन् सहस पैंतीस।
अलिफखानु बैकुण्ठ गये, रोजे अट्ठाईस ॥
धर्मराज कैसे कहूं, कौन धर्म यहु आहि।
काटत ऐसो कलप, तर, कृपा न उपजी काहि ॥
फतनमयो अतहीं प्रबल, नप्यो काहू सीस।
काहू को मानत नहीं, टोक बिना जगदीश ॥
ताहरखां या देश में, येक बार फिर आव।
सज्जन सुजन को अवधि, है परखन को दाव ॥

क्यामखानियों का मृत्यूपरांत बैकुंठ प्राप्ति में विश्वास, धर्मराज और उसके न्याय में विश्वास, एक ईश्वर (जगदीश) में विश्वास और पुनर्जन्म में विश्वास इन पद्यों में प्रकाशित हुआ है। उनका रजपूती सत और आन में विश्वास था। दरअसल में क्यामखानी अपने आपको हिन्दू विश्वास और परम्पराओं से अलग नहीं कर पाये थे। वे गो-हत्या के विरुद्ध थे। यह तथ्य रासो के पद्य सं. ५१८ से ५२२ में प्रकाशित है।

जान ने क्यामखानियों के लिए भगवान की कृपा स्वर्ग एवं धर्मराज के न्याय के प्रति विश्वास रासो में व्यक्त किया है। वह मुसलमानों के मत के अनुसार नहीं, अपने कुल की सांस्कृतिक परम्परा में चहुवाण राजपूतों की भांति उल्लेख करता है। पद्य सं. १८ में 'दया करी जगदीश' का उल्लेख है तो पद्य २६ में 'ये चरित्र जगदीश' कहता है।

क्यामखानी चहुवाणों का सांस्कृतिक चिंतन मुसलमान सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार नहीं था। वे पुर्नजन्म एवं धर्मराज में विश्वास करते थे। जान के काव्य रचाव में मुसलमानीपन नहीं है, रासो विशुद्ध गैर मुसलमान परम्पराओं का अनुसरण कर लिखा गया कथा काव्य है। वर्णन एवं शब्द प्रयोग भी मुसलमानों के अनुसार नहीं है, तरवर, कल्पवृक्ष, सरदारां सरदार, सीत पवन, कृपा न उपजी आदि अनेकानेक शब्द प्रयोग ही नहीं, सम्पूर्ण रासो मुस्लिम कवियों से भिन्न भाषा और वर्णन के साथ लिखा गया है।

काव्य प्रयोग

इस कथा काव्य का प्रयोजन अलिफखां को प्रशस्त करना रहा है । परन्तु जो वर्णन इस रासो में आया वह इतना विस्तृत, व्यापक एवं बहुआयामी था कि रासो का प्रयोजन भी कवि का स्वयं का नहीं रहा जैसा कि कृति का नाम उसका स्वयं का दिया नहीं रहा ।

जान का उद्देश्य संभवतः क्यामखां को प्रशस्त करने का नहीं रहा है, अन्यथा वह इस कथा काव्य का नाम 'रासो श्री दीवान अलिफखां का' नहीं रखता । कवि का, पृष्ठ भूमि में क्यामखानियों का इतिहास उजागर करने का प्रयोजन अवश्य रहा होगा । यह इतिवृत्त रासो परम्परा की आवश्यकता थी । शायद इसीलिए उसने रासो विधा का चयन किया होगा । जान के मन में अपने दीवानों का इतिवृत्त लिखने की बात अवश्य रही है । और इसी बात ने एक ऐसी कृति को प्रस्तुत किया है जो अपने विषय वस्तु में अनूठी एवं ऐतिहासिक है ।

जान कौन था

जान रासो के रचयिता का उपनाम है । रासो में कवि ने अपने परिचय के पद्य लिखे हैं परन्तु उसने कहीं स्पष्ट रूप से यह नहीं लिखा कि वह अलिफ खां का बेटा न्यामतखां है या फकीरखां । रासो में उसने अलिफखां का बेटा होना तो स्पष्ट रूप से प्रकाशित कर दिया है परन्तु आगे कुछ नहीं लिखा ।

कई विद्वान् बुद्धिसागर ग्रंथ का हवाला देकर रासो के रचयिता जान को अलिफखां का द्वितीय पुत्र न्यामतखां घोषित करते हैं । परन्तु क्यामखां रासो का गंभीरता पूर्वक अध्ययन करे तो दो शब्द बार-बार हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे । 'जांन और जान' ।'जान' अनुस्वार सहित शब्द रासो में जहां भी आता है वह कवि के लिए प्रयुक्त हुआ है और जान अनुस्वार रहित जहां रासो मे प्रयुक्त हुआ है वह क्रियापद या क्रियासूचक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है । इस तथ्य के साथ अगर इस कवि द्वारा रचित पद्य सं. ६७१ का अवलोकन करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि न्यामतखां जान कवि नहीं है—

बडो दोलतखानु है, दूजो न्यामतखान
खान सरीप फरीदखां, पूनि फकीरखां जान
इस पद्य में फरीदखां जान महत्वपूर्ण शब्द है ।

कवि ने जहां रासो की भाषा के बारे में प्रकाश डाला है, रासो के रचनाकाल को भी बताया है, अपने पिता एवं भाइयों का उल्लेख किया है वहां उसने अपने आपको भी नहीं छुपाया है । अपने उपनाम सहित अपने नाम को भी उद्घाटित किया है । वह पद्य जिसमें उसने अपने आपको नाम सहित उद्घाटित किया है, वह ६७१ ही हो सकता है । इस पद्य से यह तथ्य हमारे सामने विचार हेतु प्रस्तुत होता है कि अलिफखां का पांचवां पुत्र फकीरखां जान कवि था या द्वितीय पुत्र न्यामतखां । इस संबंध में पद्य संख्या ६ भी उल्लेखनीय है—

कहत जान कछु अेक हो, सबको करो बखान ।
बात अलिफखां की कहो, सब पाछे कहि जान ॥

इस पद्य में 'सब पाछे कहि जान' महत्वपूर्ण अंश है । सव, पाछै, काहं और जान शब्द इस पद्य में महत्वपूर्ण है । 'सब' का अर्थ है अलिफखां और जान के चार भाई, पाछै, पछै ही पकै यानी सबके बाद 'कहिं' का अर्थ 'फिर कही जाकर' 'जान' का अर्थ स्वयं कवि । अर्थात् सबके वर्णन के बाद कहीं जाकर जान का नम्बर आता है । यानी अलिफखां की बात कहते हुए जान सबके बाद आता है । सबके बाद जाकर कहीं जान का नम्बर आना, इस क्षेत्र की लोकभाषा का अर्थ है । इससे यह स्पष्ट होता है कि जान अलिफखां का अंतिम पुत्र यानि पांचवां पुत्र फकीरखां था ।

रासो के पद्यों के अनुसार इस काव्य ग्रंथ का रचयिता फकीरखां था जो जान कवि के नाम से प्रसिद्ध है । यह तथ्य रासो में ही प्रकट हुआ है ।

अलिफखां का वर्णन कर कवि ९३९वां पद्य लिखकर संवत् १६९१ में ग्रंथ लिखने का तथ्य प्रकाशित कर रासो पूर्ण करता है परन्तु अपने भाइयों में दौलतखां एवं भतीजे ताहिरखां आदि का वर्णन करने का लोभ संवरण नहीं कर सका, अतः आगे पद्य लिखे । ९४० से १०४५ तक के १०५ पद्यों में दौलतखां एवं ताहिरखां तथा सरदार खां तक वर्णन कवि ने किया है । वह भी क्यामखानियों के राजनैतिक इतिहास को जानने की एक कड़ी बनता है और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी है ।

ग्रंथ रचना का समय सूचक पद्य निम्न प्रकार है—
सोरहसै इक्यानवे, ग्रंथ कर्‌यो इहु जान
कवित पुरातन में सुन्यो, तिह विध कर्‌यो बखान ।

रासो के पात्र

क्यामखां रासो क्यामखानी वंश परम्परा एवं उनके इतिहास का दस्तावेज है ।यद्यपि यह एक कथा काव्य है इसमें क्यामखानियों संबंधी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्रकाशित हुए हैं ।

रासो में फिरोजशाह गौण-पात्र है और मोटे राव भी । कर्मचन्द रासो के मुख्य कथानायकों में हैं । वह धर्मपरिवर्तन के बाद क्यामखां कहलाता है ।

रासो में ताजखां, फतहखां, जलालखां, दौलतखां, नाहरखां, फदनखां, ताजखां द्वितीय, महमदखां और अलिफखां का प्रमुखता के साथ वर्णन हुआ है । ये सब क्यामखानी दीवान हैं । क्यामखान के वंशज हैं । दौलतखां द्वितीय एवं ताहिर खां के प्रमुखता के साथ वर्णन हुए हैं । रासो में ताहिरखां की मृत्यु का प्रसंग बड़ा मार्मिक है । इसमें भारतीय सांस्कृतिक चिंतन है । कवि ने अपने पिता की मृत्यु पर भी इतने पद्य नहीं लिखे जितने पद्य ताहिर खां की मृत्यु पर रासो में लिखे हैं ।

एक महत्वपूर्ण बात जिसे हम प्रथम रूप में रख सकते हैं, वह यह कि सन् १३६२ में फिरोजशाह तुगलक ने ठट्टा पर आक्रमण किया— सिंधियों को सबक सिखाने के लिए । तब बादशाह की अनुपस्थिति में दिल्ली का कार्यभार क्यामखां के हाथों में सौंपा । यह उस काव्य तथ्य की ओर

संकेत देता है जब कर्मचन्द को मुसलमान बनाने के बाद बादशाह मोटे राव को वह कहता है—

तुरक भये की करिह न चिंत, याको राखो ज्यो सुत मिंत
याको करिहो पंचहजारी, सांचू कहत को वाह हमारी ।

फिरोजशाह के बाद तुगलक वंश के शासकों में क्यामखां का बराबर सम्मान रहा। रासो के विवरण से यह तथ्य प्रकट होता है कि क्यामखां महमूद तुगलक, मल्लूखां व तिमूर के आक्रमण का समकालीन था।

मल्लूखां को हराने के बाद क्यामखां के पराक्रम में विस्तार हिसार के अतिरिक्त दूनपुर (आज का तारानगर) भटनेर (आज का हनुमानगढ़), भादरा, एटावा, उदयपुर, मेवासी, उज्जैन, धार मे यश विस्तार हुआ। उसके शौर्य के ये शासक प्रशंसक थे।

जब तिमूर लंग वापस काबुल जाता है तो क्यामखां खिज्रखां को दिल्ली का शासक बना कर बैठाता है।

क्यामखां द्वारा लाहौर के फौजदार से हिसार जीतने का ऐतिहासिक प्रसंग भी उद्घाटित हुआ है जब वह मल्लूखां के बाद दिल्ली से अपने घर की ओर प्रयाण करता है और बाद में मल्लूखां को हराकर हिसाब कब्जे में करता है—

काईमखां चहूवान नै, लये मौजदी मारि ।
दुलहु बिन न जनेत हुवै, भाग चले दल हारि ॥

रासो में राव चूड़ा के नागौर दुर्ग में लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त करने एवं नागौर विजय में क्यामखानियों की वीरता का उल्लेख महत्वपूर्ण है।

रासो में मुलतान के खिजरखां को क्यामखानी सहायता का प्रसंग उद्घाटित हुआ है। खिजरखां दौलतखां द्वारा छीना हुआ जिला हिसार वापस क्यामखां को सौंपने का तथ्य प्रकाशित है।

सैय्यद अलाउद्दीन के समय लोदी हिसार और पानीपत के स्वामी थे, यह तथ्य भी रासो में उद्घाटित है।

फतेहपुर की स्थापना संवत् १५०८ में फतेहखां द्वारा करने का प्रसंग भी ऐतिहासिक है।

वागरपति के अतिरिक्त क्यामखानी सरदार को बागरी भी कहा जाता था—

हो नाहरखां बागरी, जाऊं न बिना जुध ।

रासो में फदनखां द्वारा अकबर को बेटी देने का प्रसंग भी महत्वपूर्ण है।

रासो में क्यामखानियों के पंजाब से संबंध का भी उल्लेख हुआ है। ताज खां के रेवाड़ी और अलवर का आक्रमण का भी उल्लेख है। 'अकबरनामा' में आलिफखां का वर्णन हुआ है।

इतिहास प्रसिद्ध 'ऊंटाले का युद्ध' का प्रसंग भी रासो में आया है जिसमें चूंडावतों एवं शक्तावतों में हरावल का धणी बनने का वीरता का ऐतिहासिक प्रसंग है।

रासो में झुंझनु में क्यामखानियों के शासन एवं बीकानेर से शत्रुता का उल्लेख भी वर्णित हुआ है । दलपत बीकानेरिये (पद्य ६९७) इसी शत्रुता का परिचायक है ।

नाहरखां और शेरशाह के आत्मीय संबंध का ऐतिहासिक उल्लेख रासो में हुआ है ।

अलवर के हसनखां मेवाती का उल्लेख रासो में हुआ है । खानवा के युद्ध में हसनखां मेवाती ने राणा सांगा का साथ दिया था ।

अमरसिंह का प्रसंग मुसलमान इतिहासकारों द्वारा वर्णित रूप में ही रासो में हुआ हैं ।

ताहिर खां एवं मुराद का बल्ख में प्रवेश (७ जुलाई, १६४६) जैसे ऐतिहासिक प्रसंग भी रासो में आये हैं ।

कंधार पर आक्रमण, कांगड़े की विजय और मऊ दुर्ग पर आक्रमण में क्यामखानियों की भूमिका का उल्लेख रासो में हुआ है ।

रासो के अध्ययन से एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि मुसलमान एवं मुगल शासकों ने क्यामखामियों को हमेशा अपने नजदीक रखा फिर भी वे अपनी मूल परम्पराओं को भूल नहीं सके । अगर मुगलों के पतन के बाद इन्हें अपने मूलवंश के लोगों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता तो रासो के लेखक की चहुवाण राजपूत न होने की पीड़ा खत्म हो जाती ।

हल्दीघाटी युद्ध के संदर्भ में मानचरित्र रासो

— श्रीमती मधुकान्ता शर्मा

मध्यकालीन भारत के इतिहास में अकबर, प्रताप एवं मानसिंह का त्रिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।अकबर, प्रताप एवं मानसिंह से संबंधित विभिन्न घटनाओं का समकालीन फारसी तवारीखों एवं मेवाड़ी स्त्रोतों में अपनी-अपनी रुचि एवं प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन किया गया है । आधुनिक इतिहास लेखकों ने इन विवरणों के आधार पर तत्कालीन घटनाओं की भिन्न-भिन्न एवं एक सीमा तक परस्पर विरोधी व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं । उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में 'मानचरित्र रासो' का विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है । मानचरित्र रासो का लेखक कवि नरोत्तम आमेर के शासक महाराजा मानसिंह प्रथम का समकालीन कवि है ।

मानचरित्र रासो मध्यकालीन भारतीय इतिहास के प्रमुख नायक एवं आमेर के शासक महाराजा मानसिंह प्रथम के जीवन एवं कार्यों की प्रशंसा में लिखा गया एक काव्य ग्रंथ है । सवाई मानसिंह (द्वितीय) संग्रहालय सिटी पैलेस जयपुर में सुरक्षित इस रचना की पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि का समय वि.सं. १६९७ दिया है ।

इस ग्रंथ की सर्वप्रथम सूचना कर्नल टाड ने अपने एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज आफ राजस्थान नामक ग्रंथ की पाद टिप्पणी में दी है तथा इसे जयपुर महाराजा के संग्रह में होना बताया है । किन्तु टाड ने अपने उपर्युक्त ग्रंथ में माानचरित्र के सन्दर्भों का कहीं उल्लेख नहीं किया है । ऐसी स्थिति में दो ही संभावनाएँ हो सकती हैं, या तो उन्हें यह ग्रंथ प्राप्त नहीं हो सका या किन्हीं कारणों से वे इस ग्रंथ का समुचित उपयोग नहीं कर पाये । इस कारण उन्होंने केवल ग्रंथ के नाम का उल्लेख करके छोड़ दिया ।

प्रस्तुत ग्रंथ का सर्वप्रथम परीक्षण करने वाले विद्वान् पंडित गोपाल नारायण बहुरा हैं। उन्होंने "लिटरेरी हेरिटेज ऑफ द रूलर्स आफ आमेर एण्ड जयपुर" नामक अपने ग्रंथ में इस ग्रंथ के कतिपय अंश सर्वप्रथम प्रकाशित किये और इस तथ्य का उल्लेख किया कि प्रस्तुत ग्रंथ जयपुर स्थित पोथीखाने के खास मोहर संग्रह में सुरक्षित है।

प्रस्तुत मानचरित्र रासो नामक ग्रंथ को संपादित करने का श्रेय भी पं. गोपाल नारायण बहुरा को ही है। प्रस्तुत ग्रंथ सवाई मानसिंह (द्वितीय) संग्रहालय सिटी पेलेस, जयपुर द्वारा प्रकाशित सवाई मानसिंह द्वितीय पुस्तक माला के नवें ग्रन्थाक के एक अंश के रूप में सन् १९९० में प्रकाशित हुआ है।

पाण्डुलिपि का पुष्पिका की मूल पाठ इस प्रकार है—

"संवत् १६९७ वर्षे आसोज मासे शुक्ल पक्षे विजयदसमीतिथौ सोमवारे ॥ महाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री मानसिंह जी तत्पुत्र महाराजाधिराज श्री जगतसिंहजी। तत्पुत्र महाराजाधिराज श्री श्री श्री श्री महासिंघजी। तत्पुत्र महाराजाधिराज महाराज श्री श्री श्री श्री मानधाता श्री जयसिंह जी विजय राज्ये ॥ गढ़ अबांवती महादुर्गे ॥ लिखत महातमां मनोहर दास पुस्तकं लिखतं ॥ श्री रस्तु रस्तु कल्याणं ददातु ॥१ ॥

मानचरित्र रासो मानसिंह को आधार बना कर लिखा गया एक काव्य ग्रंथ है जिसमें ४३२ पद्यों की रचना है। इस रचना में २२ छंदों का प्रयोग किया गया है जिनमें से अधिकांशतः प्राकृत एवं भाषा के छन्द ही प्रयुक्त हुए हैं। सबसे अधिक कवित्त (छप्पय) छन्द का प्रयोग किया है। ५४ पद्यों में चौपाई एवं छत्तीस पद्यों मे अडिल छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त गाथा, श्लोक, भुजंग प्रयास आदि छंदों का प्रयोग प्राप्त होता है।

ग्रंथ का प्रारंभ साटक छन्द में गणेश वन्दना के साथ हुआ है। इसके बाद सरस्वती की वन्दना करते हुए अन्य देवी देवताओं का कवि वर्णन करता है। ग्रंथ के ३७वें ४०वें छन्द में कवि प्रस्तुत रचना के नामकरण, विषय और प्रयोजन पर इस प्रकार प्रकाश डालता है—

धरियउ मानचरित्र जु नाम। पावक सुनत रसिक विश्राम।
कथि सिंगारू कछु विरु जे तेन। पढत गुनत सचु पावही जेन॥

प्रस्तुत ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ से हमें तत्कालीन भारत के राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक इतिहास से संबंधित अनेक पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है जिनका विस्तृत विवेचन, विश्लेषण यथा समय लेखिका द्वारा प्रस्तुत किया जायेगा।

प्रस्तुत ग्रंथ का एक महत्वपूर्ण अंश राणा चरित्र है। छन्द संख्या १९७ से छन्द संख्या २७३ तक यह राणा चरित्र का प्रसंग वर्णित है। यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत ग्रंथ की जिस प्रतिलिपि के आधार पर यह विवेचन किया जा रहा है उस प्रतिलिपि में छंद संख्या १९७ से पूर्व अथ राणा चरित्र लिखा हुआ प्राप्त होता है। कवि के उपर्युक्त विस्तृत वर्णन से बादशाह अकबर, महाराजा मानसिंह एवं महाराणा प्रताप के पारस्परिक सम्बन्धों पर महत्वपूर्ण एवं नवीन प्रकाश पड़ता है। यहां इस शोधपत्र के माध्यम से ऐसे ही कतिपय बिन्दुओं को प्रस्तुत किया जा रहा है।

लेखक का उदयपुर के राजवंश एवं महाराणाओं के प्रति दृष्टिकोण—

प्रस्तुत प्रसंग में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि महाराजा मानसिंह के चरित्र को आधार बनाकर लिखे गये इस ग्रंथ में कही भी उदयपुर के राजवंश या महाराणाओं के प्रति किसी प्रकार की निन्दा या तिरस्कार की भावना नहीं है । इसके विपरीत कवि ने स्थान-स्थान पर मेवाड़ के शासकों के प्रति पूर्ण सम्मान प्रकट करते हुए उनकी खुले शब्दों में प्रशंसा की है । राणा चरित्र के सबसे पहले दोहे में कवि इस प्रकार से महाराणा प्रताप की प्रशंसा करता है—

उदैसिंघ सब जग प्रकट, ता जाने सब कोइ ।
जासु पाट परताप सो, जो कुलदीपकु होइ ॥१९७ ॥

महाराणा प्रताप अकबर बादशाह को अपने गर्व के कारण तुच्छ समझता था—

आपुन मेदपाटपति तपई । हिन्दू जाहि सकल जगु जपई ॥
मानइ नहीं अकबररू संक । गरब आपनै गनै जु रंक ॥१९८ ॥

किसी भी ऐतिहासिक स्रोत का विवेचन विश्लेषण करते समय इस बात का विशेष महत्व होता है कि किसी ग्रंथ का लेखक या घटना का वर्णन करने वाले व्यक्ति का दृष्टिकोण क्या है । कवि का उपर्युक्त दृष्टिकोण (महाराणा प्रताप एवं मेवाड़ तथा अन्य राजपुरुषों के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा की भावना) गहन चिन्तन एवं विश्लेषण की अपेक्षा रखता है । इस विषय में कवि का परिचय एवं उसका जन्म स्थान हमें कतिपय महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करता है ।

कवि ने प्रस्तुत ग्रंथ में छन्द संख्या ४४ से ४६ तक स्वयं का परिचय दिया है जिसके अनुसार कवि का रामपुरा (मेवाड़) में सनाढ्य ब्राह्मण वंश में जन्म हुआ था । रामपुरा के संस्थापक गहलोत वंश के राव दुर्गभानु थे और कवि के पूर्वज इन्हीं राजा के आश्रय में रहते थे । लेकिन कालान्तर में ब्रह्मकर्म से जीवन यापन कठिन हो गया तो धन की आवश्यकता के कारण कूरम (मानसिंह) का गुणगान करने का निश्चय किया जैसा कि निम्न छन्द से स्पष्ट है—

विप्र वंस कवि जनमु जाति तिहि कहइ सनावढ ।
सेव करि बहु भूप अउर उद्दिम नाहिं आवढ ॥
पीढी तीनि सुजान दान हित नाकरूं मंडिय ।
ब्रह्म तनौ करि कर्मु प्रीत हरि सौ नहिं छंडिय ॥
तिहि धर्म हेतु धन इंछि मन भूप एक चित लाइयो ।
कर तात मात गणपति के, गुनु, कूरम को ठाइयो ॥

राणा चरित्र का दूसरा प्रसंग गोगुन्दा से (छन्द ४६) संबंधित है । कवि महाराणा प्रताप के तत्कालीन आवास स्थल गोगुन्दा का वर्णन इस प्रकार करता है—

पुर मांह जो गोगुंद ग्राम गनी ।कहि सोभन आवइ एक बनी ॥
तहं बारिय बाग अनेक कहौं । फुलवारी तनौ नहिं छेहल हौं ॥
हय पाइक कौ कुन सोधु मनै । गज गाजत घाटनि ठाठ घने ॥
सजि साकत सौंज सनाह सबै । करि राखहु कारन जूझ तबै ॥

लरिहौं जिय मैं बहु खांति करी । टरि है पग ठोर न येक घरी ॥

गोगुन्दा में रहते हुए महाराणा प्रताप अकबर की अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे और उनके हृदय में निरन्तर अकबर से संघर्ष करने की भावना बनी हुई थी । महाराणा प्रताप की इस भावना को नरोत्तम कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है—

लरिबे की जिय मैं घनी, मन में करइ जु दापु ।
रावत राजा राव सौं, सनमुख कहइ प्रतापु ॥२०३ ॥

अकबर से संघर्ष करने की इसी भावना के अनुरूप महाराणा प्रताप ने जालोर पर आक्रमण किया और उनसे दण्ड वसूल किया जैसा कि निम्न छंद से स्पष्ट है—

ऐसे बरस गईता सात, उपज्यो कलहु न सुनियो गात ।
मन तब सोचि उपाय जु कियऊ, जाइ डंडु जालोरह लियउ ॥२०४ ॥

तब जालोर के पठानों ने जाकर राणा के इस कार्य की सूचना एवं फरियाद अकबर से की —

इक जाइ साहि जल्लाल पहिं, करि फिरादि आगै खरै ।
तिन कंपहि गात मुख बात कहि, साहिं रान ऐसै करै ॥२०५ ॥

महाराणा प्रताप की इन गतिविधियों की सूचना पाकर बादशाह अकबर ने महाराजा मानसिंह को बुलाकर महाराणा के विरुद्ध अभियान करने के लिए आदेश दिया—

राजा मान बुलाइकै, कही साहि जल्लाल ।
कामु चढे मो होइगो, कै तुम तै दर हाल ॥२०७ ॥

कवि नरोत्तम मानसिंह द्वारा खमनोर में डेरे डालने का उल्लेख इस प्रकार वर्णन करता है—

दिन दस पांच लगे तीन वाट । संग चले अति मोगरा ठाठ ।
कूच ही कूच मुकामन केरा । भये आनि खमनोरह डेरा ॥२३६ ॥

मानसिंह के सैन्य अभियान की जानकारी मिलने पर प्रताप भी घाटों को रोककर युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं—

सोधो पायो रान ज़ब, हय गये समिटे ठाट ।
लै असवार असषि सजि, आपुनु रोकइ घाट ॥२३७ ॥

कवि ने हल्दी घाटी युद्ध का वर्णन करते हुए कहीं भी पूर्वाग्रह पूर्ण वर्णन नहीं किया है । दोनों पक्षों की खुलकर प्रशंसा की है । दोनों पक्षों में हुये तुमुल युद्ध का वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त कवि ने युद्ध में भाग लेने वाले हिन्दू एवं तुर्क योद्धाओं के नामों का उल्लेख एवं वंश परिचय भी ग्रंथ में प्रस्तुत किया है । इस प्रसंग में मानचरित्र रासो का दो सौ तियालीसवां छन्द उल्लेखनीय है ।

युद्ध के अन्त का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

जीत्यौ जु मांन नीसान हनि, खस्यो खेत परताप तिहि ॥२६२ ॥

युद्ध में मानसिंह ने प्रताप का निसान, रामप्रसाद हाथी आदि छिन लिये और प्रताप रणक्षेत्र छोड़कर खिसक गये ।

प्रस्तुत युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद कालान्तर में अकबर मानसिंह से भेंट करने जाते हैं । कवि ने इस प्रसंग का इस प्रकार वर्णन किया है—

साहि अकबर जब सुनी, आये हैं ग्रिह मान ।
हरखवंत समुहै चल्यौ, आपुनु सकल दिवान ॥२७७ ॥

इस विजय के उपलक्ष्य में बादशाह अकबर मानसिंह से भेंट करके बहुत प्रसन्न होते हैं और उन्हें बहुमूल्य हीरे आदि पदार्थ एक हलका (इलाका) और पांच सौ घोड़े पुरस्कार स्वरूप प्रदान करते हैं—

परसे साहि आपु नृप मांनु, आदरु बहु कीनउ सनमांनु ।
दये पदारथ हीरा साच, हलका एक तुरी सै पांच ॥२६८ ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि मान चरित्र रासो में कवि नरोत्तम ने बादशाह अकबर, महाराजा मानसिंह एवं महाराणा प्रताप के पारस्परिक संबंधों का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है । इसी प्रसंग में प्रस्तुत ग्रंथ में कवि ने हल्दीघाटी के युद्ध से संबंधित विभिन्न घटनाओं की भी चर्चा की है । महाराणा प्रताप का गोगुन्दा में निवास, महाराणा की अकबर की सत्ता को चुनौती, जालोर पर आक्रमण, बादशाह द्वारा प्रताप के विरुद्ध शाही सेना का भेजा जाना, शाही सेना का खमनोर में पडाव आदि प्रसंगों की चर्चा की गई है ।

इस दृष्टि से कवि नरोत्तम द्वारा हल्दी घाटी युद्ध का कारण जालोर की घटना का बताया जाना विशेष रूप से उल्लेखनीय है । कतिपय परवर्ती मेवाड़ी स्त्रोतों में विशेषतः रावल महाराणा री बात में भोजन के प्रसंग को लेकर महाराणा प्रताप एवं मानसिंह में जिस मनमुटाव की चर्चा की गई उस घटना का मानचरित्र रासो में कहीं वर्णन प्राप्त नहीं होता । इसी प्रकार शक्तिसिंह की घटना का भी प्रस्तुत ग्रंथ में कही उल्लेख प्राप्त नहीं होता है ।

हल्दीघाटी के युद्ध के कारण के रूप में जालोर की घटना का अन्यत्र वर्णन प्राप्त नहीं होता है किन्तु समसामयिक फारसी तवारीखों में यह उल्लेख मिलता है कि हल्दी घाटी के युद्ध के बाद महाराणा प्रताप ने बादशाह अकबर के विरुद्ध राजस्थान के शासकों को संगठित करने का प्रयास किया था । इसी क्रम में प्रताप ने जालोर के ताजखां पठान को भी अपने साथ मिला लिया था । अकबर नामा से विदित होता है कि अकबर ने इस गठबंधन को तोड़ने के अनेक प्रयास किये । सैयद हाशिम और रायसिंह को जालोर के ताजखां और सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध भेजा । (अकबर नामा भाग ३ पृ. १६४)

अकबरनामा के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जालोर में उस समय पठानों का अपना एक शक्तिशाली समूह था और हल्दीघाटी के युद्ध के पूर्व महाराणा प्रताप एवं जालोर के इन पठानों के मध्य किसी टकराव की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता ।

इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि आधुनिक इतिहासकारों, विशेषतः डा. गोपीनाथ शर्मा ने अकबर, प्रताप एवं मानसिंह के पारस्परिक संबंधों का वर्णन करने के लिए राजप्रशस्ति एवं अमरकाव्यवंशावली का भी प्रयोग किया है। राजप्रशस्ति की रचना महाराणा राजसिंह के काल में वि.सं. १७३२ में हुई थी। इसी प्रकार अमरकाव्यवंशावली भी राजप्रशस्ति के बाद की रचना है।

मेवाड़ में लिखे गये उपर्युक्त ग्रंथों की तुलना में नरोत्तम कवि कृत रचना अधिक प्राचीन है। जैसा कि हम पूर्व में देख चुके हैं कि इस ग्रंथ की रचना की वि.सं. १६९७ लिखित पाण्डुलिपि तो प्राप्त है ही ग्रंथ की मूल रचना इससे भी पूर्व हुई है। इस दृष्टि से नरोत्तम कवि के वर्णन अपना विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

वरिष्ठ व्याख्याता
श्री सत्यसाई महाविद्यालय,
जयपुर

कुंवरजी श्री संग्रामसिंह जी शक्तावत री दवावैत

मोहब्बतसिंह राठौड़

प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में ग्रन्थांक २२९९ में यह दवावैत नाम से उपलब्ध है। इसमें मेवाड़ राजवंश सम्बन्धी अति दुर्लभ ऐतिहासिक जानकारी है। "दवावैत" के शाब्दिक अर्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद है। सामान्यत: कुछ इतिहासकार व साहित्यकार तो दवावैत का अर्थ "दुआ" अथवा "आशीष" देने वाले साहित्य के रूप में करते हैं परन्तु यह अर्थ इसके साहित्य के विषय में उपयुक्त नहीं जान पड़ता। अगरचन्द जी नाहटा के मतानुसार "दवावैत" शब्द का अर्थ दो प्रकार की प्रवृति वाला साहित्य है। यह गद्यात्मक व पद्यात्मक दोनो प्रकार का हो सकता है। इस साहित्य की विशेषता किसी छन्द आदि पर आधारित न होकर अनुप्रास या यमकालंकार सम्बन्धी होती है।[१] डा. हुकमसिंह भाटी के मतानुसार गद्य-पद्य में लिखी गयी तुकान्त रचनाएं "दवावैत" कहलाती है। गद्य के छोटे छोटे वाक्य खण्डों के साथ पद्य में किसी घटना या किसी पात्र का जीवन-वृत्त "दवावैत" में मिलता है।[२] परन्तु प्रस्तुत पत्र में इस मत विभिन्नता पर ध्यान केन्द्रित करने के बजाय मूल विषय पर ध्यान रखते हुए उक्त ग्रंथ पर कुछ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

इसका पूरा नाम इसके प्रारम्भिक पृष्ठ के अंन्तिम चरण में इस प्रकार से है —

॥श्री महागणाधिपते नम: ॥ श्री एकलिंगजी प्रसादातु ॥ श्री सुरजदेव छत छे जी ॥ श्री सुरज वंश ॥ श्री बापा रावल ॥ श्री खुमाण पोराईत ॥ महाराणाजी ॥ श्री उदेसींहजी ॥ पुत्र प्रतापसिंघजी ॥ पुत्र सगतसिंघजी ॥ पुत्र अचलदास जी ॥ पुत्र नरहरदासजी ॥ पुत्र केवलदास जी ॥ पुत्र माधोसिंघजी ॥ पुत्र सुरतसिंघजी पुत्र सोभागसिंघजी पुत्र लालसिंघजी ग्रहे भार्या महेल झालाजी

कुक्षे पु [३] कुवरजी श्री संग्रामसिंघजी री दवावेत लखते ॥

इस प्रारम्भिक वर्णन से स्पष्ट होता है कि लालसिंह शक्तावत के पुत्र संग्रामसिंह के शौर्य का वर्णन इसमें दिया है । शक्तावतों की वंशावली में लालसिंह को शिवगढ़ का जागीरदार बताया है । उसके पुत्र संग्रामसिंह द्वारा लावा सरदारगढ़ हस्तगत करना बतलाते हैं ।[४] उस समय सरदारगढ का डोडीया जागीरदार सामन्तसिंह था । उसके अपने आठों भाईयों से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे । [५] अवसर का लाभ उठा संग्रामसिंह शक्तावत ने किले पर कब्जा कर लिया था जो अत्यंत शक्तिशाली था ।[६] ६४ वर्षों तक किले पर शक्तावतों का कब्जा रहने पर पुन: महाराणा स्वरूप सिंह ने वि.सं.१९१२ में सेना भेजकर सामन्तसिंह के पोते जोरावरसिंह को दुर्ग सुपुर्द किया ।[७]

संग्रामसिंह के नाम के आगे 'कुंवर' शब्द विशेषण के रूप में होने से पता चलता है कि ग्रन्थ की रचना लालसिंह की मौजूदगी में हुई थी । संग्रामसिंह की माता झाली महेली मेवाड़ के तीनों झाला ठिकानों बड़ी सादड़ी, देलवाड़ा, व गोगुन्दा में से किसी एक ठिकाने के सामन्त की कन्या हो सकती है ।

" उण वषत उदीय्यानगंरा ऊपरा राणो भीमसीघ राज करै । तणरा प्रतापसु अधपतीय्यारा थानक थर रहे । .... [८] इससे सिद्ध होता कि इसकी रचना के समय मेवाड़ में महाराणा भीमसिंह राज कर रहे थे । परन्तु विवरण में चारण तथा पृथ्वीराजरासौ परम्परानुसार इसमें मेवाड़ के रावल समरसिंह को निम्नलिखित अंश में दिल्लीश पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक बतलाया है ।

"करण रे पाछे समरसि रावल हुवो । बडो हीज रजपूत । कजीया मासला माहे । मजबुतां मजबूर पांचेस हजार सरदार वु । केसरया करेने । खारी सुलतान रे माथे । चत्रगण हाली । पृथ्वीराज चहुवाण रे ओटे । उण वाररा जेचन्द रे पागला हु । आऐन वाथ घाली । रावल ऐक ऐक सूं एक बंधता हुआ । प्रथम दरा कुंवरो । पवाडा बाटीयया जुवा जुवा । मंडोवरा पडीययानु । भांजेन । रांणा रो बरद पायो । हिदुसथान रे सीस रजपुती रो । कोटा बेधायो ।[९]

रावल समरसी के बाद रायमलोत कुंवर पृथ्वीराज तथा राणा सांगा का निम्नलिखित वर्णन है -

"जणा पाछे उड़णो प्रथीराज । ताषो परबत घेरने । लला पठाय नु मार लीधो । उप बवहु कलमां रे । सीसोदां रे बेर बीधो । सागे राणे । सात वार । सुताणानि । जंझेरा में जडीयया । जागण पर । आतपरा । पावक धड़ हड़ीरथा ।[१०]

राणा सांगा के बाद राणा रतनसी, विक्रमजीत तथा वणवीर के बारे में ग्रंथ मौन है । सांगा के बाद राणा उदयसिंह का बड़ा मार्मिक वर्णन मिलता है - "जण गादी उदसींघ बड़ो हि सरदार । दलरो उधार । दातार झूंझार । सरणाई साधार । भाषरां नु भांजेन । ऊदीस्यानगर बसाये नरलोक माहे दूजो कैलाश हि दरसाययो । जणरे परतापसींघ ने सगतसींघ । [११]

आगे लिखा है कि भ्रातृद्वेष के कारण शक्तिसिंह लड़ाई करके अकबर बादशाह से जा मिला [१२] । अकबर ने बड़ा सत्कार किया । बाद में शक्तिसिंह मानसिंह कछवाहे की मेवाड़

पर आक्रमण करने वाली सेना के साथ मिल गया [१३] । यह सूचना पाकर महाराणा प्रताप ने सामन्तों की सभा बुलाई [१४] । एक दिन युद्धरत प्रताप को शत्रु ने पहचान लिया [१५] और चेतक अश्व पर भागने को विवश किया [१६] । इस परिस्थिति को देखकर "बादशाह की आज्ञा से पलायनरत प्रताप के पीछे गया [१७] । शक्तिसिंह ने शत्रुओं का संहार कर प्रताप का आलिंगन किया [१८] । उसी दिन से शक्तिसिंह ने "खुरासाण मुलतानरी आगल रो विरुद पायो [१९] । इस वर्णन से शक्तिसिंह की हल्दीघाटी अभियान में उपस्थिति का बोध होता है ।

शक्तिसिंह का बेटा अचलसिंह था जिसके वंशल अचलावज कहलाये [२०] । ग्रन्थ के पत्र १२ पर आगे शक्तिसिंह के वंशज लालसिंह के घर संग्रामसिंह के जन्म का वर्णन है । पत्र १७ पर सरदारों का वर्णन है जो अनुमानतः रावल लालसिंह के सामन्त जान पड़ते हैं । पत्र २१ पर "घोड़ा रा बखाण" दिया हुआ है । पत्र ५४ पर राजाज्ञा से लालसिंह के खेरोदा दुर्ग पर ४०० जवानों के साथ दुर्गद्वार को तोड़ने की प्रतिज्ञा लेकर जाने का वर्णन है । पत्र ६२ पर खेरोदा दुर्ग पर होने वाले युद्ध का सजीव वर्णन है जिसमें ग्रन्थकार के मतानुसार शक्तावतों ने बहुत वीरता दिखलाई ।

ग्रंथ की समाप्ति पत्र ८३ पर होती है जिसमें निम्नलिखित वर्णन मिलता है । "श्री श्री श्री दवावेत श्री सूरजवंश महाराज राजेश्वर महारावलजी श्री बापा खुमाण रा पोराइत । रघुवंश महाराज राजेश्वर महरांणाजी श्री उदेसिघजी री रावल सांगाजी री दवावेत संपुरणं लखते गुरजी गुणेसदास लखावतु चारण भीमजी पठनार थी चारण प्रतापजी सं. १८६७ असाठ सुद ११ शुक्र ।

ग्रंथ के समाप्ति पत्र ८३ से पता चलता हैं कि यह ग्रंथ चारण भीमजी को कंठाग्र था । चारण प्रताप जी के लिये भीमजी ने गुरुजी गुणेसदास जी द्वारा वि.सं.१८६७ असाढ़ सुद ११ शुक्र को लिपिबद्ध करवाया । इस प्रकार इस दवावैत का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि महाराणा भीमसिंह के समय इसकी रचना की गई । रावल लालसिंह के जीवनकाल में जब संग्रामसिंह कुंवर पदे में था तब इसकी रचना प्रारम्भ की जो संग्रामसिंह के रावत रहते हुई ।

मारवाड़ के कई योद्धाओं पर दवावेत रचनाऐं लिखी गई हैं, परन्तु मेवाड़ में केवल यह एक दवावैत प्रकाश में आई है । इस दृष्टि से भी इसका महत्व है । विशेषतः मेवाड़ के इतिहास में शक्तावतों की भूमिका उजागर करने एवं इतिहास की अनेक रिक्त कड़ियां जोड़ने में यह रचना सहायक है ।

शोध अधिकारी
प्रताप शोध प्रतिष्ठान
भूपाल नोबल्स संस्थान, उदयपुर

1. "भारतीय साहित्य" अप्रेल १९५६, पृ.२१७-२२४ पर "दवावेत संज्ञक हिन्दी रचनाओं की परम्परा" नामक आलेख, शोधपत्रिका भाग ८ अंक १-२ पृ.३५ साहित्य संस्थान उदयपुर ।

2 संस्कृत एंव राजस्थानी साहित्य की ऐतिहासिक कृतियों का विवेचन पृ.४९ डॉ. हुकुमसिंह भाटी, प्रताप शोध प्रतिष्ठान उदयपुर। दवावैत शुद्धबन्ध और गद्यबन्ध नाम से दो प्रकार की होती है । शुद्धबन्ध पदबन्ध की रचना होती है अतः उसमें अनुप्रास मिलाया जाता है, गद्यबन्ध में नहीं - सम्पादक

3. पुत्र

4. सगतरासौ महाकाव्य डा. हुकुमसिंह भाटी पृ.६७८ परिशिष्ट ८ प्रताप शोध प्रतिष्ठान उदयपुर

5. दीपंग कुल प्रकाश सं. डॉ ब्रजमोहन जावलिया पृ.१११ दोहा सं.५३८, प्रतापशोध प्रतिष्ठान, उदयपुर

6. वही पृ.१११ दोहा सं.५४०

7. वीर विनोद भाग - २ पृ.१९३८

8. ग्रंथ के पत्र सं.-१४

9. ग्रंथ के पत्र सं.-३

10. ग्रंथ के पत्र सं.-४

11. ग्रंथ के पत्र सं.-४

12 ग्रंथ के पत्र सं.४ व ५

13 ग्रंथ के पत्र सं.५

14 ग्रंथ के पत्र सं.६

15 ग्रंथ के पत्र सं.७

16 ग्रंथ के पत्र सं.८

17 ग्रंथ के पत्र सं.९ व १०

18 ग्रंथ के पत्र सं.१०

19 ग्रंथ के पत्र सं.११

20 ग्रंथ के पत्र सं.११

सगतरासो का ऐतिहासिक महत्त्व

— डा. हुकमसिंह भाटी

राजस्थान में ऐतिहासिक रासो काव्य लेखन की एक दीर्घकालीन परम्परा रही है। इनमें रायमल- रासो, क्यामखां-रासो, शत्रुसाल-रासो, बिन्है-रासो, रतन-रासो, पृथ्वीराज-रासो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।[१] सगतरासो इसी क्रमिक रासो काव्य धारा की एक देदीप्यमान कड़ी है ।

गिरधर आशिया विरचित सगतरासो काव्य का इतिहास और साहित्य दोनों ही दृष्टि से विशेष महत्व है । डिंगल की यह एक उत्कृष्ट रचना होने के साथ मेवाड़ के इतिहास की अनेक नवीन घटनाओं पर प्रकाश डालने और इतिहास की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में यह ग्रंथ उपयोगी सिद्ध हुआ है । राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्व. डा. रघुवीरसिंह के मतानुसार— "सिसोदियों की शक्तावत खांप के आदि पुरुष सगतसिंह विषयक सगत-रासो अंततः प्रकाशित हो गया, यह देखकर प्रसन्नता होती है । कुल मिलाकर यह प्रकाशन संग्रहणीय ही नहीं अध्ययनीय तथा ध्यानपूर्वक विवेचनीय है ।"[२] राजस्थान के प्रख्यात साहित्यकार स्व. डा. नारायणसिंह भाटी ने इसे ऐतिहासिक महाकाव्य की संज्ञा देते हुए बताया है कि— "डिंगल की प्रबन्ध काव्य परम्परा में यद्यपि इससे पहले गजगुणरूपक, रतन रासो, रतनसिंघजी री वचनिका आदि कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथ रचे जा चुके हैं परन्तु यह ग्रंथ अपने ढंग की अनूठी कृति है । राठौड़ों के इतिहास पर वीरभांण रतनू का ग्रंथ राज रूपक मूल्यवान प्रकाश डालता है, उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण प्रकाश सिसोदियों के इतिहास पर इससे पड़ता है ।"[३] जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो. सतीशचन्द्र ने इस ग्रंथ के महत्व को आंकते हुए लिखा है— "यह पुस्तक इतिहास के उस काल से वास्ता रखती है जिसे एक अर्थ में हम वीरगाथा काल कह सकते हैं क्योंकि इस काल में मुगलों की विपुल सैन्य शक्ति और साज-सज्जा को जानते हुए भी कुछ राजपूत-तत्वों और व्यक्तियों ने उनके खिलाफ संघर्ष करना अपना कर्त्तव्य

समझा और तरह-तरह के कष्ट ही नहीं सहे अपितु अपने प्राणों की आहुति देने से भी नहीं हिचके। इस क्षेत्र में शक्तावतों का विशेष योगदान एक तरह से इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित ही रहा है, यह ग्रंथ इस कमी को पूरा करने में विशेष सहायता देता है। ध्यान से पढ़ने पर सगत रासो हमें उस काल के समाज की आंतरिक विषमताओं, उदयपुर का पड़ौसी राज्य के साथ संबंध और इससे भी अधिक उस काल के योद्धाओं, राजाओं, राज्य कर्मचारी, चारण आदि की मान्यताओं, अवधारणाओं व (मानव) मूल्यों के ऊपर प्रकाश डालता है।"[४] इसी प्रकार अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर भंवर भादानी ने ग्रंथ की समीक्षा करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से इसे महत्वपूर्ण बतलाया है।[५]

ग्रंथ के प्रारंभ में सरस्वती व गणपति की स्तुति करते हुए कवि ने सूर्यवंशी गहलोतों को समूचे संसार का मार्ग दर्शक बताया है। फिर महाराणा हमीर से लेकर महाराणा उदयसिंह तक के शासकों का प्रशस्ति गान किया है। महाराणा उदयसिंह के १४ पुत्रों का नामोल्लेख करते हुए उनमें से शक्तिसिंह द्वारा कटारी की धार पर अपना हाथ पटक कर शक्ति का परिचय देने का विवरण दिया है। आगे वर्णन इस प्रकार है— महाराणा ने शक्तिसिंह की इस उद्दण्डता से कुपित होकर उसे राज्य से निर्वासित कर दिया। इस पर वह अकबर की सेवामें जाने को मजबूर हुआ।[६] परन्तु जब अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई करने के लिए उसे साथ में चलने के लिए कहा तो वह चुपचाप चित्तौड़ दुर्ग के रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करने के लिए चित्तौड़ चला गया। जयमल राठौड़ व पत्ता सीसोदिया ने उसे गढ़ में प्रवेश करने से रोक दिया तो वह डूंगरपुर सहसमल की सेवा में जाकर रहा परन्तु जगमाल का वध किये जाने पर उसे डूंगरपुर का भी परित्याग करना पड़ा और वैणगढ़ में रहते हुए उसने अपनी शक्ति का परिचय दिया।[७]

जब मन्दसौर के सैय्यदों ने भींडर पर आक्रमण कर वहां की स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाया तब वहां के स्वामी अमरसिंह सोनगरा की पुकार सुनकर शक्तिसिंह ने उन सैय्यदों का दमन किया। फिर उसने शाही सेना में सम्मिलित होकर[८] खमणोर (हल्दीघाटी) के युद्ध में भाग लिया। इसमें राजाराम तुंवर, रामदास मेड़तिया, मानसिंह सोनगरा, भीम डोडिया, कविराम चारण आदि योद्धा काम आये। शक्तिसिंह ने प्रताप का पीछा करने वाले खुरासान और मुल्तानखां नामक यवनों को मारकर प्रताप की रक्षा की। युद्ध के बाद मानसिंह कछवाहा महाराणा के महल देखने गोगूंदा गये। वहां भाण्डों का आखाड़ा चित्रित देख मानसिंह ने सीसोदियों की हंसी उड़ायी। इस पर शक्तिसिंह ने अकबर और कछवाहों के वैवाहिक प्रसंग को लेकर कटाक्ष किया फिर शक्तिसिंह वहां से भैंसरोडगढ़ चला गया जहां उसकी मृत्यु हुई।[९]

सगत रासों में वर्णित शक्तिसिंह विषयक मुख्य-मुख्य घटनाएं इतिहास की कसौटी पर खरी उतरती हैं। शक्तिसिंह अपने पिता द्वारा निष्कासित किया जाने पर धोलपुर में सम्राट् अकबर से मिला परन्तु जब उसे चित्तौड़ अभियान मे साथ चलने के लिए कहा तब वह धौलपुर से निकल गया। इसकी पुष्टि अकबर नामा से होती है।[१०] सगत रासो में शक्तिसिंह का डूंगरपुर सहसमल के यहां जाना लिखा है परन्तु उस समय डूंगरपुर की गद्दी पर आसकरण विद्यमान था, सहसमल उस समय कुंवर पदे में था। यद्यपि सगतरासो में जगमाल के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती परन्तु

जोगेश्वर मंदिर की वि.सं. १६३४ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वह महाजन आसकरण का प्रधानमंत्री था।[११] जहां तक हल्दीघाटी के युद्ध में शक्तिसिंह द्वारा प्रताप की रक्षा करने का प्रश्न है इसकी पुष्टि राजप्रशस्ति महाकाव्य[१२], अमरकाव्य[१३] खुमाणरासो[१४] वंश भास्कर[१५] और कुंवर संग्रामसिंह की दवावैत[१६] से होती है।

इसके अतिरिक्त जेम्स टॉड[१७] श्यामलदास[१८] रामनारायण दूगड़,[१९] मुंशी देवीप्रसाद[२०] आदि इतिहासकारों ने इस घटना को स्वीकार किया है। यद्यपि फारसी ग्रंथों में इस का उल्लेख नहीं होने के कारण गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने प्रारंभ में इसे स्वीकार नहीं किया है।[२१] परन्तु ओझा ने ठिकाना चांदथली की व्यावहारिक स्थिति पर अपनी सम्मति प्रस्तुत करते हुए शक्तिसिंह की हल्दीघाटी में उपस्थिति को स्वीकारा है।[२२]

शक्तिसिंह भैंसरोड़गढ़ में रहा था इसकी पुष्टि वहां बने उसके स्मारक से होती है। भैसरोड़गढ़ पर शक्तावतों का अधिकार रहा। बाद में जब भैसरोड़गढ़ महेचों को दे दिया गया उस समय विजयपुर के शक्तावतों ने अपना मत प्रस्तुत करते हुए भैंसरोड़गढ़ अपने नाम लिखवाया।[२३]

भाण, अचलदास व राजसिंह को जागीरें प्राप्त—

शक्तिसिंह के बाद भाण उत्तराधिकारी हुआ। भाण का अनुज अचलदास दसोर में आकर रहा। उसने रामपुरा के राव दुर्गा का गर्व भंजन किया। फिर अचलदास व बल्लू बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए परन्तु उन्होंने शस्त्र डालकर आत्मसमर्पण नहीं किया। महाराणा प्रताप ने अचलदास और बल्लू के साहस को देखकर अपने पास बुलाया और अचलदास को देसूरी का पट्टा प्रदान किया।[२४] भाण खेराड़, अचलदास देसूरी व राजसिंह नेवरिया में रहकर महाराणा के राज्य की रक्षा करने लगे।

गायों के रक्षार्थ मदनसिंह व चतुर्भुज का प्राणोत्सर्ग—

इन शक्तावतों के प्रभुत्व को देखकर चारण जाति के लोग कांठल में आकर बसे। उस समय खेरज के पत्ता हाड़ा का बल काफी बढ़ा हुआ था। उसके छोटे भाई उदा कांठल के चारणों की गायें घेरने लगे। इस पर मदनसिंह व चतुर्भुज ने चढ़ाई कर गायों की रक्षार्थ अपने प्राणों की बलि दी।[२५]

शक्तावतों द्वारा अपने भाइयों का प्रतिशोध लेना—

अचलदास ने अपने भाइयों का प्रतिशोध लेने हेतु खेरज के पत्ता हाड़ा पर आक्रमण किया। उसके साथ जोध, वाघा और बल्लू और राजसिंह भी ससैन्य सम्मिलित हुए। पत्ता का भाई उदा स्त्री का वेश धारण कर दुर्ग से बाहर निकलने में सफल हुआ परन्तु पत्ता हाड़ा लड़ता हुआ धराशायी हुआ।[२६] इस प्रकार अचलदास ने खेरज पर अधिकार कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। फिर महाराणा प्रताप की आज्ञा पाकर अचलदास ने भाण राठौड़ पर आक्रमण कर धरियावद हस्तगत किया।[२७]

जोध शक्तावत का बलिदान—

इसके बाद अचलदास, जोध, बल्लू व बाघा इन चारों ही शक्तावत बन्धुओं ने देवलिया पर आक्रमण कर वहां के रावत (भानूसिंह) को महाराणा के अधीन बनाया । फिर शक्तावतों और सैय्यदों के बीच घमासान युद्ध हुआ जिसमें जोध शक्तावत वीरगति को प्राप्त हुआ ।[२८]

राजसिंह द्वारा अपने भाई जोध का वैर लेना—

राजसिंह ने सैय्यदों से अपने भाई जोध का प्रतिशोध लेने के लिए बेगू पर आक्रमण कर वहां पर अधिकार कर लिया ।इस अभियान में अनेक सैय्यद मारे गये ।[२९]

अचलदास का देवलिया पर आक्रमण—

शक्तावतों ने जोध की मृत्यु के लिए देवलिया के रावत को अपराधी माना । इसलिए अचलदास ने महाराणा अमरसिंह की आज्ञा से देवलिया को चारों ओर से घेर लिया, वहां का रावल सिंहा अमरसिंह की सेवा में उपस्थित हुआ । इस पर महाराणा अमरसिंह ने अचलदास को चावण्ड में बुलाकर रावत की पदवी से सम्मानित किया ।[३०]

ऊंटाले के युद्ध में शक्तावतों की भूमिका—

अकबर ने सहजादा सेखू और मानसिंह कछवाहा को ससैन्य मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये भेजा । अचलदास के परामर्श के अनुसार महाराणा ने भाण, माला, बल्लू और अचलदास की अध्यक्षता में ऊंटाले पर एक सेना भेजी । शक्तावतों और चूण्डावतों ने इस युद्ध में अपार शौर्य प्रकट किया ।[३१] सगत रासों में ऊंटाले युद्ध का विस्तार से वर्णन दिया है परन्तु शक्तावतों और चूण्डावतों की सेना के हरावल में रहकर युद्ध करने की प्रतिद्वन्द्विता का उल्लेख नहीं है जैसा कि श्यामलदास ने वीर विनोद में किया है । बहुत कुछ संभव है कि इस युद्ध से संबंधित कुछ बातें बाद में जोड़ दी गई हैं । इसके अलावा वीर विनोद आदि ग्रंथों में ऊंटाले के युद्ध के संदर्भ में बल्लू और जैत्रसिंह चूण्डावत के नाम ही मिलते हैं जबकि सगतरासों में अचलदास, भाण और माला शक्तावतों के पराक्रम का वर्णन हुआ है ।

दलपत और भूपत शक्तावत का सैय्यदों से लड़कर मारा जाना—

दलपत आदि शक्तावतों ने ऊंटाले के युद्ध में अनेक यवनों का संहार किया । इसलिए शाही आज्ञा प्राप्त कर मीर रुकन्दी ने दलपत और भूपत ने कालीखाल में युद्ध करने का निश्चय किया । भूपत व दलपत के साथ अनेक सिसोदिया, चौहान, अहीर आदि लड़ने को तत्पर हुए और सारे के सारे मारे गये ।[३२]

नरहरि द्वारा हाड़ाओं का दमन करना—

अचलदास ने बेगूं पर अपनी पकड़ और मजबूत की । उसने राजसिंह का बदला लेने के लिए अपने कुंवर नरहरि को हाड़ा चौहानों पर आक्रमण करने हेतु भेजा । नरहरि ने हाड़ाओं का सर्वनाश कर राजसिंह के बैर का भलीभांति बदला लिया । जगन्नाथ व अब्दुल्ला खान ने मेवाड़ पर चढ़ाई की । उस समय अचलदास ससैन्य महाराणा अमरसिंह की सेवा में उपस्थित हुआ । महाराणा

ने पहले देवलिया के रावल के साथ युद्ध करने का निश्चय किया [३३] और इसके लिए सेना सुसज्जित की। सगतरासो में इस अभियान में भाग लेने वाले योद्धाओं की लम्बी सूची दी है [३४] जिसमें राजपूत ही नहीं पुरोहित, चारण, महाजन, कायस्थ योद्धाओं के नाम दिये हैं।

अचलदास ने महाराणा की इच्छा के विरुद्ध पहले यवनों के साथ युद्ध करने का निश्चय किया और रणांगण में अड़ा रहा। इस पर महाराणा ने उसे 'सवाई सगर' कह कर पुकारा। चूंकि सगर ने म्लेच्छों की आधीनता स्वीकार कर चित्तौड़गढ़ प्राप्त कर लिया था। इसलिए अचलदास की तुलना सगर के साथ किये जाने पर उसे आत्मग्लानि हुई और उसने अपनी कलंक कालिमा को धोने के लिए वहीं अपने प्राण विसर्जित कर दिये। [३५] सगतरासो की इस बात की पुष्टि नैणसी और बांकीदास की ख्यात से भी होती है। [३६]

मैनाल का युद्ध—

अचलदास के बाद नरहरि उत्तराधिकारी हुआ। महाराणा अमरसिंह ने उसके तिलक कर तलवार बंधाई। नरहरिदास ने पहले सगर से टक्कर लेकर चित्तौड़ दुर्ग की दीवारों को ध्वस्त किया और मांडलगढ़ व जहाजपुर के मुगल थानों पर अधिकार करता हुआ [३७] मेनाल पहुंचा। महाराणा अमरसिंह के आदेश से मेवाड़ के योद्धा मुगलों से लड़ने के लिए सुसज्जित हुए। गिरधर आशिया ने इसकी लम्बी सूची के साथ उनके अश्वों के नाम तथा योद्धाओं के पूर्वजों की उपब्धियों का दिग्दर्शन कराया है। बादशाह के मनसबदारों और सेना की व्यूह रचना का चित्रण भी किया है। फिर युद्ध का वर्णन विस्तार से दिया है। अन्त में नरहरिदास के साथ मारे जाने वाले योद्धाओं के नाम दिये हैं। कवि लिखता है कि रामायण का युद्ध सीता के लिये हुआ था और कौरव पांडवों ने राज्य के लिए महाभारत का युद्ध किया था परन्तु नरहरि ने मैनाल की लड़ाई निःस्वार्थभाव से अपने स्वामी के लिए लड़ी, वह धन्य है। [३८]

यद्यपि इतिहास ग्रंथों में मैनाल युद्ध का वर्णन हमें नहीं मिलता परन्तु वि.सं. १६७० में शाहजादा खुर्रम को १२,००० सेना के साथ मेवाड़ पर भेजा गया था। उसके साथ जोधपुर के राजा सूरसिंह, किशनगढ़ और राव रतन हाड़ा बूंदी भी थे। इस सेना ने मांडलगढ़ में पड़ाव डाला। [३९] मेनाल मांडलगढ़ में स्थित है। इसलिए यह प्रबल संभावना लगती है कि शाही सेना को रोकने के लिए महाराणा ने नरहरि के नेतृत्व में सेना भेजी और वह लड़ता हुआ अनेक योद्धाओं सहित काम आया। इस प्रकार छोटी-मोटी अनेक लड़ाइयां लड़ी गई जिनका विवरण इतिहास ग्रंथों में नहीं है। सगत रासों जैसे काव्य ग्रंथों का गहराई से अध्ययन करने के साथ बिखरे हुए मृत्यु स्मारक, शिलालेखों की खोज करने की आवश्यकता है। इससे इतिहास की कई नई घटनाओं पर प्रकाश डालने में हमें सहायता मिलेगी।

गिरधर आशिया का पूर्वज कर्मसी आशिया महाराणा उदयसिंह के समय पाली मारवाड़ के स्वामी अखेराज सोनगरा के यहां से मेवाड़ में आकर रहा। उस कर्मसी के वंशजों ने साहित्य सृजन कर अच्छा नाम कमाया और उन्होंने पसंद व मेघटिया गांव प्राप्त किये। [४०] गिरधर आशिया को इतिहास का अच्छा ज्ञान था। उसने न केवल चित्तौड़ के दूसरे साके का हाल मुहणोत नैणसी को भादवा सुद १५ सं. १७१९ को लिख भेजा। [४१] बल्कि अपने पूर्वजों की संचित सामग्री

के अनुसार सगत रासों की रचना कर मेवाड़ इतिहास को उजागर करने का प्रयास किया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि गिरधर आशिया ने वि.सं. १७२०-३० के लगभग सगत रासों की रचना की।

निष्कर्ष—

१. सगत रासो में शक्तिसिंह की तीन पीढ़ियों का वृत्तांत मिलता है। शक्तिसिंह के सत्रह पुत्रों में से सात पुत्र और एक पौत्र युद्ध अभियानों में काम आये।

क्र.सं.	युद्ध अभियानों में प्राणोत्सर्ग करने वाले शक्तावत के पुत्रों/पोत्रों के नाम	युद्ध अभियान का नाम	समय
१.	जोध (शक्तिसिंह के पुत्र)	जोरण का युद्ध	१५९७ ई.
२.	चतुर्भुज	हाड़ा पत्ता के भाई उदा से लड़ता हुआ कांटल में काम आया	१५९७ ई. से पूर्व
३.	मदन	हाड़ा पत्ता के भाई उदा से लड़ता हुआ कांटल में काम आया	१५९७ ई. से पूर्व
४.	बल्लू	ऊंटाला का युद्ध	१६०० ई.
५.	दलपत	कालीखोल (माण्डल) मीर रुकन्दी से युद्ध	१६०० से १६०५ ई. के बीच
६.	भोपत	कालीखोल (माण्डल) मीर रुकन्दी से युद्ध	१६०० से १६०५ ई. के बीच

इन सभी का विस्तार के साथ बड़ा ही सजीव वर्णन प्रस्तुत ग्रंथ में हुआ है। यही कारण है कि सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में शक्तिसिंह के वंशज अपनी महती उपलब्धियों के फलस्वरूप एक दम उभर कर मेवाड़ के इतिहास में हमारे सामने आये और वे शक्तावत नाम से प्रख्यात हुए। इतना ही नहीं उन्होंने चूण्डावतों की तरह युद्ध अभियानों में हरावल में रहने के लिए अपना प्रस्ताव महाराणा के समक्ष रखा। और अपनी गरिमा को बनाये रखने के साथ ही अधिकाधिक जागीरें प्राप्त करने में सफल हुए।

२. ग्रंथ में केवल शक्तावतों के शौर्य का ही नहीं, युद्ध अभियानों में भाग लेने वाले पक्ष-विपक्ष के चौहान, राठौड़, सांखला, भाटी, तंवर, ओसवाल, ब्राह्मण, नाई, चारण आदि अनेकानेक योद्धाओं के बारे में उनके वंश परिचय सहित समुचित जानकारी मिलती है।

३. इसमें मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप और महाराणा अमरसिंह कालीन घटनाओं पर नवीन प्रकाश पड़ा है।

४. युद्ध अभियानों के वर्णन में सेना की व्यूह रचना को दर्शाया गया है। अतः सैन्य प्रबन्ध की जानकारी के लिए भी यह ग्रंथ उपयोगी है।

५. यह ग्रंथ इतिहास की दृष्टि से ही नहीं समाज शास्त्रीय अध्ययन और तत्कालीन सामन्तों की मनोवृत्ति जानने हेतु भी उपयोगी है।

६. शक्तावत बन्धुओं की धर्म के प्रति आस्था, प्रतिशोध लेने की प्रबल भावना, कर्तव्यपरायणता, स्वामी भक्ति और त्याग की भावना आदि कितने ही मान-बिन्दुओं और संस्कृति के पहलुओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा है ।

७. ग्रंथ में प्रतापगढ़ के रावतों, मालवा के सैय्यदों और शाही अधिकारियों के क्रिया-कलापों के बारे में भी अच्छी जानकारी मिलती है । अतः कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह ग्रंथ मेवाड़ इतिहास के बहुआयामी पक्षों को नये सिरे से समझने में उपयोगी सिद्ध होगा ।

निदेशक, राजस्थानी शोध
संस्थान, चौपासनी जोधपुर

सन्दर्भ-सूची

1. ऐतिहासिक कृतियों का विवेचन प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर
2. प्रताप शोध प्रतिष्ठान के प्रकाशनों पर विद्वानों की सम्मतियां, मज्झमिका अंक १२ पृ. १५१
3. वही पृ. १५२
4. सगतरासो आमुख पृ. ११ सं. कृष्णचन्द्र श्रोत्रिय, डा. हुकमसिंह भाटी, प्रताप शोध प्रतिष्ठान उदयपुर
5. ख्यात (पत्रिका) पृष्ठ २
6. सगत रासो छंद १ से ३० पृ. १-११
7. सगत रासो छंद ३१-४२ पृ. १२-१५
8. सगतरासो छंद ४३-६६ पृ. १६-२४
9. वही छंद ६१ से ८९ पृ. २५-३५
10. अकबर नामा भाग-२ पृ. ४४२-४३ (१९७७)
11. डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ. ९९
12. राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ४ श्लोक २६-३०
13. अमरकाव्य सप्तदशसर्ग छह संख्या ३१-३४ पृ. २५२-५३ साहित्य संस्थान, उदयपुर
14. खुमाण रासो सं. कृष्णचंद्र श्रोत्रिय पृ. ८९३
15. वंश भास्कर षष्ठ राशि चतुर्दश मयूख छंद ७-११ सं. रामकरण आसोपा पृ.२६५९
16. कुं. संग्रामसिंह दवावेत ग्रंथांक नं. २२९९ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर
17. एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान भाग-१ पृ. २७९ (१९५० ई.)
18. वीर विनोद भाग- २ पृ. १५३

19. राजस्थान रत्नाकर पृ. १२३
20. राजस्थान के महाराणा एवं राजाओं का जीवन चरित्र सं. डा. मनोहरसिंह राणावत पृ. ७०
21. उदयपुर राज्य का इतिहास भाग-१ पृ. ४४०
22. सालम सुयस सरोज् पृ. १३-१४
23. विजयपुर कुशलसिंह का पट्टा संवत् १७७१ पोस सुदी २, मेवाड के ऐतिहासिक पट्टे परवाने पृ. ३९ से डा. हुकमसिंह भाटी
24. सगतरासो छंद सं. १०५-१०८ पृ. ३९—४३
25. सगतरासो छंद सं. १२२-१२४, पृ. ५५
26. सगतरासो छंद सं. २००-२२७, पं. ७९-९०
27. सगतरासो छंद सं. २४२-२४४ पृ. ९५-९८
28. सगतरासो छंद सं. २५२-२६४, पृ. १००-१०६
29. सगतरासो छंद सं. २७०-२८० पृ. १०७-११०
30. सगतरासो छंद सं. २८७-३६२ पृ. १३२-१५४
31. सगतरासो छंद सं. ३६४-४११ पृ. १५४-१७४
32. सगतरासो छंद सं. ४१३-४२६ पृ. १७४-१९३
33. सगतरासो छंद सं. ४६७-४८३ पृ. २५२-२५७
34. सगतरासो छंद सं. ४३८-५४५ पृ. २५७-२७५
35. सगतरासो छंद सं. ५४६-५७३ पृ. २७५-२८३
36. नैणसी ख्यात भाग-१ पृ. २७, बांकीदास की ख्यात पृ. ९३
37. सगतरासो छंद सं. ५९५-६०७ पृ. २९७-३०५
38. सगत रासो छंद सं. ६१०-६९६ पृ. ३०७-५५३
39. ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास भाग-१ पृ. ४८७-४८८
40. कीरत प्रकाश, सगत रासो प्रस्तावना पृ. २, ३
41. नैणसी ख्यात भाग-१ पृ. ५४

* सातरासो को वीरगाथा काल से संबध करना अतिशयोक्ति है, इसे इतिहास की दृष्टि से पूर्व मध्य अथवा साहित्य की दृष्टि से वीरगाथोत्तर काव्य कहना उचित है - संपादक

राजविलास का ऐतिहासिक महत्त्व

डॉ. गिरीशनाथ माथुर

जैन कवि मान द्वारा रचित राजविलास एक ऐतिहासिक काव्य है। इसमें मेवाड़ महाराणा राजसिंह (१६५२-८० ई) के शासन काल की (१६७७-८०ई) के मध्य घटित ऐतिहासिक घटनाओं का सजीव वर्णन है। ग्रन्थ अठारह विलासों में विभक्त है।

ग्रन्थ महाराणा राजसिंहकालीन राजस्थान के इतिहास लेखन के लिये आधार है। इसमें वर्णित घटनाओं की पुष्टि समकालीन मूल स्त्रोत अमरकाव्य, राजप्रशस्तिमहाकाव्यम् एवं शिलालेखों आदि से होती है। इससे यह जान पड़ता है कि कवि राजदरबार के काफी नजदीक रहा है।

राजविलास में हिन्दी के साथ अनेक शब्द राजस्थानी भाषा के प्रयुक्त हुए हैं। कवि की भाषा प्रौढ़ एवं परिमार्जित है।

राजविलास का प्रथम संस्करण नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था। उसका संपादन लाला भगवानदीन ने किया था। दूसरा संपादन आकर-ग्रन्थमाला के तहत नागरी प्रचारिणी द्वारा ही १९५८ ई में प्रकाशित किया गया। इसका संपादन डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने किया। ग्रन्थ की मूल प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में सुरक्षित है।

राजविलास के प्रथम विलास में मेवाड़ एंव चित्तौड़ के किले का वर्णन है। इसके बाद बाप्पा रावल के जीवन की घटनाएं दी हैं।

दूसरे विलास में बाप्पा रावल से लगाकर महाराणा जगत्सिंह प्रथम तक की वंशावली दी गई है।[१] वंशावली के बाद महाराणा जगत्सिंह के राज्य वैभव एवं उदयपुर नगर का चित्र चित्रित किया गया है। इसीमें महाराणा राजसिंह के जन्म का वर्णन भी है।

तीसरे विलास में महाराणा राजसिंह के विवाह का वर्णन है । राजविलास के लेखक के अनुसार राजसिंह का प्रथम विवाह बूंदीनरेश राव छत्रसाल की बड़ी कन्या के साथ हुआ था । इस विलास में १०८ पद्य हैं ।

चौथे विलास में २३ पद हैं, इसमें राजसिंह द्वारा बनवाये गये सर्वऋतु विलास बगीचे का वर्णन है ।

महाराणा राजसिंह संवत् १७०९ में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा, उस समय उसकी आयु २३ वर्ष की थी । [२]

धरमत के युद्ध (१६५८ ई.)के पश्चात् औरंगजेब ने शाहजहाँ द्वारा जब्त किये गये मेवाड़ के परगनों पर राणा को अपना आधिपत्य स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान कर दी थी । महाराणा ने तब माण्डलगढ़, पुर, माण्डल, दरीबा, बनेड़ा, शाहपुरा, सावर, जहाजपुर, व केकड़ी पर अपना अधिकार किया । इसके बाद वह शाही क्षेत्र को लूटता हुआ मालपुरा पहुंचा । छठे विलास में महाराणा राजसिंह द्वारा मालपुरा में की गई लूट का वर्णन है । इसमें बताया गया है कि उस समय मालपुरा एक समृद्ध नगर था, साथ ही सैनिक दृष्टि से बड़े महत्व का स्थान था । वहां मुगल थाना था । १६५८ ई. में महाराणा राजसिंह ने उसे लूट कर चौपट कर दिया । सात दिन की लूट में उसने अपार सम्पत्ति प्राप्त की । उस खुशी में उदयपुर में अनेक उत्सव आयोजित किये गये । [३]

सातवें विलास में महाराणा राजसिंह का रूपनगर (किशनगढ़) के राजा रूपसिंह की पुत्री चारुमति के साथ विवाह का वर्णन है ।

रूपनगर के राजा रूपसिंह का देहांत होने पर उसका पुत्र मानसिंह उत्तराधिकारी हुआ । औरंगजेब ने मानसिंह की बहिन चारुमति की सुन्दरता का हाल सुन कर उससे विवाह करना चाहा । विवश मानसिंह ने सम्बंध स्वीकार किया [४] परन्तु चारुमति, औरंगजेब के साथ विवाह नहीं करना चाहती थी । दुखीः होकर उसने महाराणा राजसिंह की शरण ली । उसने पत्र के द्वारा महाराणा से प्रार्थना की कि वह तुरंत आकर उससे विवाह करके उसकी लज्जा एवं धर्म की रक्षा करें । [५]

महाराणा ने तुरन्त किशनगढ़ पहुँच कर मानसिंह एवं परिवार के अन्य सदस्यों को दिखावे के तौर पर कैद किया एवं चारुमति से विधिवत् विवाह कर उदयपुर ले आया, जहाँ वधु का भव्य स्वागत किया गया । [६]

राजविलास के आठवें विलास में राजसमुद्र निर्माण का वर्णन है । इसकी पुष्टि राज प्रशस्ति महाकाव्यम् से होती है । [७]

नवें विलास में कवि मान ने जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह द्वारा शाहजहाँ के उत्तराधिकार युद्ध में औरंगजेब के विरुद्ध दारा का पक्ष लेने व बाद में भी औरंगजेब की आज्ञा न मानने के कारण जमरुद में १६७८ ई. में उसकी मृत्यु होने के बाद जोधपुर को खालसा करने, उसके पुत्र अजीतसिंह को दिल्ली बुलाने, राठौड़ों द्वारा अजीतसिंह को छुड़वाने व दुर्गादास द्वारा अजीतसिंह को मेवाड़ महाराणा राजसिंह के पास लाने व महाराणा द्वारा उसे संरक्षण देकर बारह गांवों सहित केलवा का पट्टा प्रदान करने का उल्लेख किया है । [८]

राजविलास के दसवें व ग्यारहवें विलास में मेवाड़ पर औरंगजेब की चढ़ाई का वर्णन है । लेखक के अनुसार औरंगजेब को यह सूचना मिलने पर कि महाराणा राजसिंह ने अजीतसिंह को संरक्षण दे रखा है, तब फरमान भेजकर अजीतसिंह को उसे सौंपने के आदेश दिये । महाराणा ने उसे ठुकरा दिया । तब बादशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई का निर्णय लिया । इधर राजसिंह ने मुगल सेना का सामना करने के लिये सामंतों की राय ली । [९]

महाराणा ने पुरोहित गरीबदास द्वारा दी गई राय कि पूर्व महाराणाओं द्वारा पहाड़ों में जाकर छापामार युद्ध प्रणाली अपनानी चाहिये, को स्वीकार किया । महाराणा को मुगल संघर्ष में पानरवा, मुरपुर, जवास, जूड़ा के भोमिया सरदारों व पचास हजार भीलों की सहायता प्राप्त हुई । [१०]

महाराणा के पहाड़ों में चले जाने के बाद मुगल सेना ने उसका पीछा किया पर उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई । शाहजादा अकबर ने उदयपुर नगर को खाली पाया । औरंगजेब ने मेवाड़ में चित्तौड़, माण्डल, पुर, बैराठ, भैसरोड़गढ़, मन्दसौर, नीमच, जीरन, उण्टाला, कपासन, राजनगर एवं उदयपुर में शाही थाने स्थापित किये । तब महाराणा ने रोष में आकर अपने सरदारों को शाही थाने उठाने का आदेश दिया ।"

ग्यारहवें विलास में देसूरी की घाटी के युद्ध में मेवाड़ी सेना की विजय एवं मुगल खजाने को लूटने का वर्णन है । मेवाड़ी सेना का नेतृत्व रूपनगर का सोलंकी विक्रम एवं घाणेराव का राठौड़ गोपीनाथ कर रहा था[१२]

बारहवें विलास में उदयपुर की लड़ाई का वर्णन है । इस थाने पर कोठारिया के रावत रुक्मांगद का पुत्र रावत उदयभान एवं अमरसिंह चौहान ने आक्रमण कर मुगल सेना को भगा दिया । महाराणा ने उदयभान की वीरता से प्रसन्न हो उसे एक घोड़ा, सिरपाव, तलवार एवं बारह गांव प्रदान किये । [१३]

तेरहवें विलास में झाड़ोल के पास स्थित नेणवाड़ा की लड़ाई का वर्णन है । इसमें शाहजादा अकबर एवं उसके सेनापति हसनअलिखां की सेना को बेगूं के रावत महासिंह, सलूम्बर रावत रतनसिंह, पारसोली के राव केसरीसिंह चौहान के नेतृत्व में मेवाड़ी सेना ने पराजित किया । तब शाहजादा अकबर ने औरंगजेब को सलाह दी कि यहां बार बार पराजय के कारण हमें यह स्थान छोड़ कर चित्तोड़ चले जाना चाहिये जिसे उसने स्वीकार कर ली । [१४]

चौदहवें विलास में चित्तौड़ युद्ध का वर्णन है । औरंगजेब ने तोपें लगाकर चित्तौड़ का मोर्चा दृढ़ किया । किन्तु बांसी के शक्तावत गंगदास ने उस पर आक्रमण कर ९ हाथी छीनकर महाराणा को भेंट किये । महाराणा ने उसे घोड़ा, गांव एंव सिरोपाव देकर उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की । [१५]

पंद्रहवें विलास में महाराणा राजसिंह के द्वितीय पुत्र द्वारा गुजरात के शाही क्षेत्र पर आक्रमण का वर्णन है । मेवाड़ में मुगल सेना द्वारा की गई विध्वंसात्मक कार्यवाही के प्रतिशोध लेने हेतु महाराणा ने ही उसे भेजा था । उसने ईडर को उजाड़ कर अहमदाबाद, जूनागढ़ एवं बड़नगर आदि को लूटा एवं मस्जिदों को नष्ट किया । महाराणा ने जनहानि को देखते हुए पत्र द्वारा उसे वापस बुला लिया । [१६]

सोलहवें विलास में बदनोर के राठोड़ सांवलदास व मुगल सेनापति रुहिल्लाखां के मध्य लड़ाई का वर्णन है। सांवलदास ने रुहिल्ला को पराजित कर बदनोर पर अधिकार कर लिया।[१७]

विलास १७ में महाराणा राजसिंह के मंत्री दयालदास द्वारा मालवा पर किये गये आक्रमण का वर्णन है। महाराणा के आदेश से दयालदास ने मालवा क्षेत्र के मुगल थाने हटाकर उसके स्थान पर मेवाड़ी थाने कायम किये। उसने शाही क्षेत्र में मिली अपार सम्पत्ति को प्रजा में बांटने के बाद भी अनेक ऊंट सोने से भर कर लाया।[१८]

अंतिम विलास में कवि मान यह सूचना देता है कि राजसिंह कालीन मेवाड़ मुगल संघर्ष के अंतिम चरण में चित्तौड़ को छोड़ सभी थानों से मुगल अधिकार समाप्त कर दिया गया। चित्तौड़ में शाहजादा अकबर बड़ी सेना सहित पड़ाव डाले था। उसने वहां अनेक महल व मन्दिरों को गिरवा दिया था। उस पर कुंवर जयसिंह ने मेवाड़ के सरदारों के साथ १७३७ सं. की आषाढ़ मास की एक रात्रि में अचानक आक्रमण किया, उस समय मुगल पक्ष के अनेक सैनिक एवं पशु मारे गये। जयसिंह के सैनिकों ने मुगल खजाना लूट लिया। स्वयं शहजादा अकबर ने भागकर अपनी जान बचाई। इसके बाद वह अजमेर चला गया।

आक्रमण में भाग लेने वाले सरदारों को कुंवर जयसिंह ने गांव व सिरपाव देकर सम्मानित किया।[१९]

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि मानकृत राज विलास महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य है। यह इतिहास की टूटी कड़ियों को जोड़ने के लिये आधार ग्रन्थ है।

सहायक आचार्य (इतिहास)
राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय,
उदयपुर

1. पालीवाल देवीलाल एवं माथुर गिरीश नाथ, बड़वा देवीदान कृत ख्यात - मेवाड़ के राजाओं की राणियों, कुवरों एंव कुवरियों का हाल पृ. २१।
   बड़वा देवीदान के अनुसार उस रानी का नाम कंवराबाई था।
2. अ – राजविलास, विलास ५, दोहा १
   पालिय प्रवर कुँअरपद, बरस तेईस बखान।
   पाट बइठे पुहवीपति, राजसिंह महारान॥
   ब – भट्ट रणछोड़दास, राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ५, श्लोक सं २२-२३, सं. मोतीलाल मेनारिया
   स – सूर्यवंश वंशावली, पृ ५८, राज प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर।
   सूर्यवंश के अनुसार महाराणा राजसिंह का जन्म सं.१६८८, कार्तिक कृष्णा(वदी) द्वितीया

सित.२४,१६२९ को हुआ तथा कार्तिक वदी ४,वि सं.१७०९ (अक्टूबर १०,१६५२ ई)को वह गद्दी पर बैठा। तब उसकी आयु २३ वर्ष की थी।

द – भट्ट रणछोड़,अमर काव्यम् सर्ग २०,श्लोक ८९,सं.डॉ.देव कोठारी।

3. अ — मान राजविलास,विलास ६,पद २८-३९

ब — सूर्यवंश वंशावली,पृ ५८

स — भट्ट रणछोड़,राजप्रशस्ति महाकाव्यम् सर्ग ७,श्लोक ३१-४१ - राज प्रशस्ति में मालपुरा को ९ दिन तक लूटने का वर्णन है।

4. राजविलास,पद्य २३-२४
5. राजविलास,विलास ७,पद्य ३१-३७
6 अ –राजविलास,विलास ७,पद्य २३-१०७

ब – भट्ट रणछोड़,राजप्रशस्ति महाकाव्यम् सर्ग ८,श्लोक २९-३१

7 अ– राजविलास,विलास ८,पद्य ८,१०७,११०-११२

ब– भट्ट रणछोड़,राजप्रशस्ति महाकाव्यम् सर्ग ९-१२

8. अ– राजविलास,विलास ९

ब– ओझा,गौरीशंकर हीराचन्द,उदयपुर राज्य का इतिहास,भाग २,पृ.५५४-५५

स– व्यास आर.पी.महाराणा राजसिंह,पृ.१०७-८

9. राजविलास,विलास १०,पद्य ६,९,२६
10. राजविलास,विलास १०,पद्य ७१,८०,८६-९८
12. राजविलास,विलास-११.
13. उपर्युक्त विलास १२ पद्य-२३
14. उपर्युक्त विलास १३
15. अ– राजविलास विलास १४,पद्य ३९-४१

ब – भट्ट रणछोड़,राजप्रशस्ति महाकाव्यम् सर्ग २२,श्लोक ३९-४०

16. अ– राजविलास,विलास १५,पद ३६-३९

ब– उपर्युक्त,राजप्रशस्तिमहाकाव्यम् सर्ग २२ श्लोक २७-२९

17. राजविलास,विलास १६
18. अ– उपर्युक्त विलास १७,पद्य ३८

ब– ओझा,गौरीशंकर हीराचन्द,उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २,पृ.५६७

19. अ राजविलास विलास १८,पद्य ६,७,९६,९७,१००

ब भट्ट रणछोड़,राजप्रशस्ति महाकाव्यम्,सर्ग २२,श्लोक ३१-३८

राजप्रशस्ति में आक्रमण में भाग लेने वाले सरदारों के नाम दिये हुए हैं।

‘राजप्रकाश’ का ऐतिहासिक महत्त्व

— डा. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

दसोंधीराव किशोरदास रचित राजप्रकाश एक ऐतिहासिक काव्य है, जिसका पूर्ण महत्त्व इतिहासकारों के लिए प्रायः अज्ञात है। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह प्रथम, वि.सं. १७०९-१७३७ तदनुसार ई. सन् १६५२-१६८० की समकालीन रचना होने से इसका विशेष महत्त्व है। काव्य रचना का नाम ‘राजप्रकाश’ ही प्रसिद्ध है किन्तु रचना के प्रारंभ में पूरा नाम इस प्रकार है—

“अथ रांणाजी श्री राजसींघजी को गुणनाम राजप्रकाश दसोंधी राव श्री किशोरदासजी क्रित लिखते।”

रचना के अन्त में पुष्पिका लेख से भी इसका नाम ‘राणा राजसींघजी को गुणनाम राजप्रकाश’ ज्ञात होता है और प्रतिलिपि संबंधी सूचनाऐं भी प्राप्त होती हैं— “इती श्रीराण राजसींघजी को गुणनांम राजप्रकास राव श्री किशोरदासजी क्रित रुपक एकसौ बत्तीस संपूरण लिखतं साह सारदूल बोल्या पोथी श्री कासीपुर में लिखी मिती वैसाख सुदी ७ सोमवार पुणरबस नखित्र ऊपरांति पुखि संवत् १७१९ चूक विचूक अखिर हुवो होय सुं समझि सुधारिज्यो पोथी श्री रावज (जी) की छै आगिली परति सौ उतारी छै।”

रचना की एक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में ग्रंथांक २१७६ पर सुरक्षित है। इसकी एक जीरोक्स कापी प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर द्वारा प्राप्त की गयी है। ६१ पत्रात्मक प्रति में प्रतिपृष्ठ १६ पंक्तियां, प्रति पंक्ति लगभग २३ अक्षर और पूर्ण पद्य संख्या ७०२ हैं।

मंगलाचरण के पश्चात् दसोंधी शाखा के राव कवि किशोरदास ने महाराणा राजसिंह की समकालीनता इस प्रकार बताई है—

दूहौ

राणोप्रतपे राजसी, घर गिरपाट उबोर ।
राज प्रकासि नांम गहि : कहि कहि राव किसोर ॥

रचना के अंत में भी महाराणा राजसिंह की विद्यमानता कवि ने सूचित की है—

दूहौ

रसरंगी राजड़ तणौ : रसणां जस रसजोर ।
बणीयो पाट बिराजबो, कहियो बाट किसोर ॥५९ ॥

कहीयो जते किसोर कवि : छंद माहै छत्रपति ।
त्यांचित जाणौ सरस्वती, कहिजे जगति जुगति ॥६० ॥

कबित

गति जुगति अर बीजे चित सरसती चढाए ।
राज करै राजसी, ईला खडि बोल्यण आये ॥
जाति भांति जाणवो ततो परमाण बखाणौ ।
राण तणे दरबार सार मिल्यो हिन्दवाणो ।
गह गह गईद नौबती, गुडे सूर नर चढ़ि साजसी ।
जगपति तणौ छत्रपति जगि रांणा बिराजे राजसी ॥६१ ॥

रचना के प्रारंभ में सृष्टि निर्माण के साथ ही ब्रह्मा से लेकर भगवान श्री रामचन्द्र के बाद तक की वंशावली दी गयी है । यह वंशावली श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों पर आधारित है । भगवान राम के ज्येष्ठ पुत्र 'लव' से ही मेवाड़ राजवंश की उत्पति बतायी गई है । (पत्र संख्या ७) इसके विपरीत कवि राजा श्यामलदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ वीर विनोद में राम के लघु पुत्र 'कुश' से मेवाड़ राजवंश का विकास बताया है (अध्याय २) जो युक्तिसंगत नहीं है ।

बापा रावल के पश्चात् का अधिकांश वर्णन परंपरागत रूप में है । काव्य गत कतिपय ऐतिहासिक विशेषताओं का विवरण इस प्रकार है—

हल्दी घाटी युद्ध में कवि ने महाराणा प्रताप की विजय बताई है—

"रण जितौ प्रताप .... मान समर मूकियौ"

महाराणा अमरसिंहकालीन उंठाला युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले योद्धाओं के कुछ नाम ही मिलते हैं—

रावत जैतसिंह, शक्तावत बल्लू और रावत तेजसिंह खंगारोत (वीर विनोद, अध्याय ८)

राज-प्रकाश में ऊंठाला युद्ध में मारे गये अनेक योद्धाओं का नामोल्लेख है—

ऊठो लाय घाय भड आया, दल वदल जैम दरसाया ।

बलू, जयमल, सुरजिमल, नरु, शुभकरण और रामो गौड़ आदि ।

मेवाड़ मुगल संधि के विषय में कवि ने लिखा है—

"तू मेवाड़ स राज करि, हुं दिल्ली दिवाना ।
बादी साहा करणसी, तो आदि घराणा ॥
आप आपणी भोग वाजि मीड जाणा ।
राज विराजे करणसिंह, हिन्दु हिन्दवाणा ॥

इस प्रकार मेवाड़ मुगल संधि में महाराणा अमरसिंह की उदासीनता और करणसिंह की सक्रिय भूमिका स्पष्ट ही परिलक्षित होती है । महाराणा राजसिंह के वर्णन के अन्तर्गत कवि ने प्रारंभ में 'टीका दौड़' युद्ध में महाराणा के विजय- अभियान और प्रचुर परिमाण में शाही इलाके में धन संपति लूटने का उल्लेख किया है । तत्पश्चात् राग-रागिनी और दरबारियों के नामों, उपवन वर्णन आदि के साथ ही रचना पूर्ण हुई है । इससे ज्ञात होता है कि किसी कारण वश कवि राजसिंह के शासनकाल का पूरा वर्णन नहीं कर सका ।

कवि ने राजसिंह के दरबार में प्रचलित अनेक राग-रागणियों का वर्णन विस्तार से किया है । इससे ज्ञात होता है कि महाराणा राजसिंह के दरबार में संगीत विद्या का विकास हुआ था और कवि को संगीत का विशेष ज्ञान था ।

रचना के अन्त में महाराणा राजसिंह के दरबारियों का विशेष वर्णन है । समकालीन इतिहास की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है । नाम इस प्रकार हैं—

अरसी-सरसी (दोनों भाई), छत्रसिह (काका), केहरी कुंवर, मनोहरसिंह, भाऊ सूरजमल, महोकमसिंह शक्तावत, रावत केहरीसिंह, जसराज, नरपाल का पुत्र सप्ता, विजयपाल, मोहनसिंह, जगमाल का पुत्र कजिमाल, रूद्र गिरीराज पुत्र, रघुनाथ, नरसिंह का पुत्र जैतसिंह, करणेश का पुत्र मान, गोकुल, ईसर, माधव, रावत मानसिंह, झाला रायसिंह, पृथ्वीराज, रामचन्द्र, राम का पुत्र रणछोड़, जेत कुंवर, कल्याण, कान का पुत्र जसा, झाला राय मल, मेहता मान सिंह, रामचन्द्र, सबलसिंह, रुक्मागंद, राठौड़ दुर्जनसिंह, महीचा चन्द्रसेन, उदयकरण, चौहान तेजचन्द्र, सांखला शिवराज, डोडिया महेश, नरेन्द्र गौड़, सुभाष गौड़, इन्द्र देवड़ा, बाला जेठवा, राजगुरु गरीबदास, बारेठ बली, सौदा खेमराज, ददवाड़ीया खेमराज, भाट हरिगोपाल, फतहचन्द, कायस्थ समर्थकरण और उदो साह आदि ।

राजप्रकाश काव्य का रचनाकार, प्रतीत होता है कि महाराणा राजसिंह के प्रारंभिक शासन काल तक ही जीवित रहा । तदनुसार मुगल शासन विरोधी युद्ध अभियान 'टीका दौड़' का विवरण ही उपलब्ध होता है तथापि मेवाड़ के महाराणा राजसिंह प्रथम की समकालीन रचना होने और कवि किशोरदास को मेवाड़ इतिहास की जानकारी के कारण राजप्रकाश का विशेष ऐतिहासिक महत्व है ।

४१, रवीन्द्र नगर,
उदयपुर

"जगविलास का ऐतिहासिक महत्त्व"

डॉ. राजेन्द्रनाथ पुरोहित

मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह द्वितीय १७३४-१७५१ ई. के आश्रित कवि नन्दराम ने वि.सं.१८०२ में "जगविलास" काव्य की रचना की । उक्त ग्रन्थ वर्तमान में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा उदयपुर के संग्रहान्तर्गत अधिग्रहण क्रमांक २२१६ पर प्रविष्ट है ।महाराणा जवानसिंह के पठनार्थ वि.सं. १८७८ में इसकी प्रतिलिपि तैयार की गई । प्रति सुन्दर तथा सुपाठ्य है ।ब्रजभाषा में रचित तथा ४०४ पदों से युक्त यह काव्य साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि का होने के साथ साथ ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है । इसमें महाराणा जगत्सिंह द्वितीय की दिनचर्या, राजसी वैभव, राज प्रबंध तथा जगनिवास महल के प्रतिष्ठा उत्सव का विशद वर्णन प्राप्त है । तदनुसार यह रचना तत्कालीन इतिहास की राजनैतिक घटनाओं को समझने हेतु भी उपयोगी है ।

आदि :-

श्री लम्बोदर समरि सदा, मंगल सुख कारिम ।
अति प्रचंड भुज डंड सुंड सोहत अति भारिय ॥
एक दंत मयमंत संत सेवक सुखदायक ।
गुन पूरन गुन गेह गुन सुदाता गुन नायक ॥
बहु रिद्धि सिद्धि नव निद्धि कर सुन्दर संकर सुत सरस ।
अति बुद्धि दियन दिये सुबुद्धि तौ किए जगतेस जस । ॥१ ॥

दोहा -

श्री सरसति दीजें सुमति कीजें बुद्धि विसेस ।
पांवु वर वदाईनी गांऊं जस जगतेस ॥२ ॥

अन्त :- छप्पय

जगनिवास जग रांन कियो महुरत सुखकारिय ।
कविजन परिग्रह तिन्है दई तब रीझ सुभारिय ॥
भोजन विविध प्रकार गोठ हैं भई तहां तब ।
अन धन बसन अपार दये जग रांन बाज जब ॥
सब देस सुबस आनन्द अति कहत नन्द बानी सरस ।
जगतेस रांन संग्राम सुख चिरंजीवो कोरिक बरस ॥४०४ ॥

ग्रन्थ के प्रारंभ में कवि ने पिछोला झील का ऐतिहासिक वर्णन करते हुए झील के मध्य स्थित "जगमन्दिर" नामक महल को शाहजादा खुर्रम की शरणस्थली कहा है। महाराणा कर्णसिंह के काल १६२०-१६२८ ई. में घटित इस घटना की पुष्टि के संदर्भ में उल्लेखनीय है। काव्य के अनुसार जगनिवास महल का प्रथम मुहूर्त वैशाख शुक्ल १०, वि.सं. १७९९ को हुआ, तथा डोड़िया ठाकुर, सरदारसिंह के मार्गदर्शन में ३५ मास के निरन्तर निर्माण कार्य के पश्चात् यह पूर्ण हुआ। उक्त महल का वास्तु मुहूर्त माघ शुक्ल ९, वि.सं.१८०२, फरवरी १, १७४६ई सोमवार को सम्पन्न हुआ। काव्य में प्रतिष्ठा उत्सव के ब्राह्म मुहूर्त्त से दूसरे दिन समापन तक का जगनिवास का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया हैं। महाराणा की दिनचर्या का वर्णन करते हुए कवि उनकी धर्मपरायणता पर प्रकाश डालते हुए लिखता है कि महाराणा ने प्रात: ४ बजे जागृत होकर अपने देहकार्य से निवृत हो "अमर विलास" बाडी महल में पूजा सम्पन्न की । तदनुसार सेवा, संध्या, नाम-जप के बाद राज पुरोहित, संतोषराम तथा अन्य ब्राह्मणों के सानिध्य में भट्ट देवराम से वेद पाठ सुना तथा धूप, दीप, नैवैद्य के पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान की । शोभायात्रा हेतु प्रस्थान करने के पूर्व कवि महाराणा की पोशाक का विवरण लिखता है कि महाराणा ने जामा, अंगरखी, कमरबन्दा धारण करने के पश्चात् सिर पर तुर्री, छोगा, कलंगी युक्त पगड़ी, पांव में मोजड़ी तथा गले में मोती, माणक, पन्ना तथा हीरे की विशाल माला एवं हाथों में पोहुँचियें आदि आभूषण पहने। शोभा यात्रा के अन्तर्गत छत्र, चंवर, मोरछल, हाथी, तथा घोड़े आदि शाही-लवाजमें का विशद वर्णन प्राप्त होता हैं। शोभा यात्रा के जगन्नाथराम मन्दिर पहुंचने पर महाराणा ने उक्त मन्दिर के ध्वजा दंड समारोह को सम्पन्न किया। मुगल आक्रमण के दौरान विध्वंस के पश्चात् पुन: जीर्णोद्धार करा महाराणा ने इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्पन्न की। शोभा यात्रा के पिछोला झील के तट पर पहुंचने पर महाराणा नाव पर सवार होकर "जगनिवास महल" पहुंचे। इस अवसर पर पिछोला झील के चारों ओर जन-सैलाब की उपस्थिति दर्शाते हुए कवि प्रजा की मंगल कामना का वर्णन करता है। महाराणा नव निर्मित प्रासाद के झरोखे में आसीन हुए, जहां प्रथम सिद्ध मुहूर्त सम्पन्न हुआ। उनके समीप राज राघवदेव तथा भाई नाथसिंह बैठे, नृत्य गान का आयोजन हुआ, नर-नारी सुरीले कंठ से गान प्रस्तुत करने लगे। नट-गंधर्व, वेश्याएं तथा कलावंत सब अपनी अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे थे। परिजन, सेवक, सरदार, चारण तथा भाट महाराणा को नजर-नछरावल प्रस्तुत कर रहे थे। चारण भाट तथा कवियों ने महाराणा को आशीष दी। महाराणा ने सभी को सिरोपाव तथा आभूषण दिये। सरदारों को अश्व प्रदान किये गये। सरदारों को प्रदत्त

अश्वों के नाम उल्लेखनीय हैं, उनपर मुगल प्रभाव दृष्टि गोचर होता है । अश्वों के नाम धसलबाड़ा, हरबख्शनीला, दिलमालक, बाज बहादुर, चौगान बाज, तेज बहादुर, तथा दिलमालक आदि हैं । राज दरबार का विवरण प्रस्तुत करते हुए कति ने मेवाड़ की तत्कालीन सामंती व्यवस्था का वर्णन करते हुए झाला, चौहान, परमार, डोडिया, सांरगदेवोत, शक्तावत, चूड़ावत आदि सरदारों के नामों का उल्लेख किया है । इन सरदारों सामंतों में राज राघवदेव तथा भाई नाथसिंह को महत्वपूर्ण सरदार बताया है । तत्कालीन राजनैतिक स्थिति के अनुसार यह संदर्भ उल्लेखनीय है । महाराणा द्वारा रावत लालसिंह को भैंसरोडगढ की जागीर का पट्टा प्रदान करने का उल्लेख है जबकि अन्य ग्रंथों में महाराणा अरिसिंह द्वारा उक्त जागीर प्रदान करने का उल्लेख मिलता है । दरबार की बैठक व्यवस्था के अन्तर्गत पंक्ति में प्रथम श्रेणी के सरदार, महाराणा के भाई पुत्रादि एवं द्वितीय श्रेणी तथा तृतीय श्रेणी के सरदारों का क्रम प्राप्त होता है । दरबारी शिष्टाचार के अनुसार छडीदार ने "जुहार" उद्घोषित किया । कवि ने मुत्सद्दी (अधिकारी) वर्ग के प्रसंग में छडीदारों का दरोगा, पंचोली, मसाणी, कायस्थ, पानेरी, तथा पाण्डे आदि पदों की सेवा एवं कर्तव्य पर समुचित प्रकाश डाला है ।

प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर आयोजित भोज का वर्णन करते हुए कवि शाकाहारी तथा मांसाहारी व्यंजनों का विवरण प्रस्तुत करता है । तदनुसार शाकाहारी भोजन के अन्तर्गत परोसे जाने वाले मिष्ठानों में घेवर, लाखनशाही, लड्डू, जलेबी, फेनी, खाजा, खुरमा, तथा अकबरी गुंजा उल्लेखनीय हैं । इसी प्रकार सूअर, मृग, बकरा तथा मछली से निर्मित मांसाहारी व्यंजन भी परोसे जाने का उल्लेख प्राप्त होता है । कवि ने जगनिवास महल के गुलाब, कदली, चम्पा के पौधो का वर्णन करते हुए इसकी तुलना ब्रज के कुंज से की है । काव्य में महल के स्तंभ, बुर्ज, द्वार, नहर, दरीखाने, महराब आदि की स्थापत्य विषयक विशेषताओं को दर्शाया गया है । आमरवास, खुशमहल, दरीखाना तथा बड़ा चेबचा नामक स्थान, मेवाड़ की स्थापत्य कला पर मुगल प्रभाव को निरूपित करते हैं । दूसरे दिवस राजपरिवार की महिलाओं निमित्त जगमन्दिर में उत्सव आयोजित हुआ, इस उत्सव पर राजपरिवार की राजदादी, राजमाता, रानियां, कुंवरानियां तथा ठकुरानियां उपस्थित हुईं । राज परिवार की महिलाओं का उक्त विषयक वर्णन जनानी ड्योढी विषयक जानकारी के लिये उपयोगी है । महिला के नाम के साथ राज परिवार के पुरुष व्यक्ति का नाम, उस महिला का परिचय तथा उसके सामाजिक स्तर का परिचायक है । यह कृति अद्यावधि अप्रकाशित हैं । "जगविलास काव्य" मेवाड़ के तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक तथा राजनैतिक इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति है ।

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
उदयपुर

महावजसप्रकास का आलोचनात्मक अध्ययन

— डा. जे.के. ओझा

'साहित्य' किसी भी परिवर्तन या नवोन्मेष का अनिवार्य अंग माना गया है क्योंकि वह न केवल युग सत्य को प्रकट करता है अपितु जनमानस में सुप्त आकांक्षाओं को जागृत करके आवश्यक दिशा- निर्देश भी करता है। यों देखा जाए तो 'साहित्य' शब्द का प्रचलन सातवीं-आठवीं शताब्दी से हुआ है। इससे पूर्व संस्कृत में 'साहित्य' की जगह 'काव्य' शब्द का ही प्रयोग मिलता है।[१] 'साहित्य' शब्द व्यापक एवं विस्तृत स्वरूप लिए हुए है जिसमें गद्य-पद्य की सभी विधाओं का समावेश हो गया है। आचार्य मम्मट ने काव्य के जो छह प्रयोजन बताये हैं—यश, धन, व्यवहार कुशलता, अमङ्गल से रक्षा, आनंद और कान्ता के समान मधुर उपदेश आदि । ये ही जीवन के भी सर्वमान्य प्रयोजन हैं।[२]

यों तो राजस्थानी शासकों के आश्रय में पर्याप्त काव्य सृजन हुआ। किसी घटना विशेष से प्रभावित होकर भी काव्य रचनाएँ की गईं । इस प्रकार की रचनाओं में आश्रयदाता अथवा क्षेत्र विशेष का कवि ध्यान रखने का प्रयास अवश्य करता था किन्तु वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर पाता था। अतः यह कहना कदापि अतिशयोक्ति नहीं होगी कि काव्य, युग-समस्या का प्रतिनिधित्व करता है। बाबू गुलाबराय के विचारों में कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसको जैसी मानसिक खाद मिल जाती है वैसी ही उसकी कृति होती है। वह अपने समय के वायुमंडल में घूमते हुए विचारों को मुखरित कर देता है। कवि वह बात कहता है जिसका सब लोग अनुभव करते हैं किन्तु जिसको सब लोग कह नहीं सकते। सहृदयता के कारण उसकी अनुभव शक्ति औरों से बढ़ी चढ़ी रहती है।[३] यही कारण है कि काव्य को तत्कालीन परिस्थितियों एवं वातावरण का प्रतिबिम्ब स्वीकार किया जा सकता है।

ऐतिहासिक काव्यों में कवि समकालीन शासक या आश्रयदाता के जीवन से संबंधित घटनाओं का वर्णन करता है । राजस्थानी साहित्य की 'गीत' अपनी निजी संपत्ति है, जिस पर उसे गर्व है ।[४] गीत एक ओर राजस्थानी योद्धाओं के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं तो दूसरी ओर इतिहास जानने में इनकी उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है । कहा भी जाता है कि 'गीतड़ा या भीतड़ा' अर्थात् भीतड़ा (महल, किले, भवन, स्मारक आदि) तो फिर भी नष्ट हो सकते हैं किन्तु गीत तो सदैव अमर रहते हैं जैसे—

"भीतड़ा ढह जाय धरती मिलै,
गीतड़ा नह जाय कहै (राव) गांगौ ॥"[५]

यों इतिहासकार के लिए काव्य इतिहास एवं विशेषतया राजनैतिक इतिहास जानने का एक अमोघ अस्त्र है, किन्तु उसे अपनी पैनी दृष्टि से कल्पना एवं अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनों को कांट-छांट कर वास्तविकता के धरातल पर पहुंचना होगा । प्रस्तुत शोध पत्र में 'महावजसप्रकाश' काव्य में वर्णित मेवाड़ के राजनैतिक इतिहास का आलोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है ।

महावजसप्रकाश काव्य ग्रंथ की दो प्रतियां प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा उदयपुर में संगृहीत एवं सुरक्षित हैं । दोनों ही प्रतियां मूल से प्रतिलिपि कराई गयी थी । इसकी मूल प्रति कानोड़-ठिकाने में सुरक्षित थी[६] किन्तु वह अब अप्राप्य हैं । प्रा. वि. प्र. वाली प्रति का सम्पादन १९८९ ई. में डा. हुकमसिंह भाटी ने किया था, जो प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर से प्रकाशित हो चुकी हैं । ग्रंथ सं. २६२१ के बाह्य पृष्ठ पर लिखा है— ॥श्री ॥ ग्रंथ महाव जसप्रकाश ॥ आसिया मानसिंघजी कृत ॥ इसी पृष्ठ पर नीचे दाहिनी ओर तिथि अंकित है— "सं. १९३१ महावद ४ सोमे" (सोमवार, जनवरी २५, १८७५ ई.) अंत में पुष्पिका में लिखा है— "माहासींग काम आयो मरद संवत सत्रह अड़सटे ॥ सं. १७६८ व्रषे लिखतं आसिया गोरदान ॥ १९९७ पोष शुक्ला ११ गुरौ ले. नन्दकिशोर शर्मा पल्लीवाल ॥" ग्रन्थ सं. २६२० के ब्राह्य पृष्ठ पर ॥श्री ॥ ॥महाव यशप्रकाश ॥ ही लिखा हुआ है, कोई तिथि आदि नहीं है । उस प्राचीन पुस्तक के अनुसार- वि.सं. १९९७ माघ कृष्ण ९ भौमवार ने श्री मन्महाराजाधिराज महाराणाजी श्री भूपालसिंहजी के विजय राज्यान्तर्गत श्री सरस्वती भंडार कार्यालय के अध्यक्ष कविवर दधिवाड़िया करनीदानजी की अध्यक्षता में लेखक पल्लीवाल जातीय नन्दकिशोर शर्मा ने नई लिखी ॥१ ॥ शुभम् ॥ इससे यह तो स्पष्ट है कि यह काव्य मानसिंह आशिया विरचित तो था किन्तु इसे सं. १७६८ (१७११ ई.) में आसिया गोरादान ने लिपिबद्ध किया था । काव्य के प्रारंभ में ही सुस्पष्ट लिखा— "अथ रूपक ॥ रावत् महासिंहजी रो आसिया मानसिंहजी रो कह्यौ काम आया जद कह्यौ ॥" ऐसा प्रतीत होता है कि मूल प्रति की प्रतिलिपि से ही इन दोनों ग्रन्थों की प्रतिलिपियां तैयार की गई थीं, जैसा कि ग्रंथ सं. २६२१ के बाहरी पृष्ठ पर सोमवार, जनवरी २५, १८७५ ई. (सं. १९३१ महावद ४ सोमे) अंकित है । यह प्रति गुरुवार, जनवरी ९, १९४१ ई. को लिपिबद्ध करली गई थी और मंगलवार, जनवरी २१, १९४१ ई. को १२ दिनों बाद ही दूसरी प्रति (ग्रं. सं. २६२०) भी तैयार कर ली गई थी । यों देखा जाय तो इन प्रतिलिपियों के दस वर्ष पूर्व (१९३१

ई.) प्रकाशित उदयपुर राज्य के इतिहास में डा. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'महाव जसप्रकाश' काव्य ग्रंथ का उपयोग करते हुए पाद टिप्पणी में लिखा है कि 'हमारे संग्रह की हस्तलिखित प्रति', स्पष्ट है कि महाव जस प्रकास की कानोड़-प्रति (मूल) में विभिन्न प्रतिलिपियां तैयार की गई थीं।

कवि मानसिंह आशिया ने इस काव्य में अपना कोई परिचय नहीं दिया किन्तु चारणों की आसिया शाखा के आधार पर डा. हुकमसिंह भाटी ने बताया कि महाराणा उदयसिंह का विवाह पाली के सोनगरा अखेराज चौहान की पुत्री से हुआ था। तब करमसी आशिया पाली से महाराणा के साथ मेवाड़ चला आया। इसके वंशधर सुकवि बखतराम आशिया (पसून्द ग्राम) ने अपने ग्रंथ कीरत प्रकाश में वंश क्रम देते हुए लिखा है कि— आशिया परिवार पहले मारवाड़ में रहता था और अब मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के द्वार पर है। खेमसिंह का पुत्र करमसिंह हुआ और उसके वंश क्रम में बेरड, भीम खेतल, गिरधर, सूरज, पत्ता, मानसी, कृपाराम और जसवन्त हुए जिन्होंने अपने सद्‌गुणों से हिन्दुवा सूरज (महाराणा) को प्रसन्नचित्त रखा। महाराणा उदयसिंह की करमसी पर असीम कृपा थी। उसकी पुत्री के विवाहोत्सव के समय महाराणा स्वयं उसके घर आये और पसून्द ग्राम और कुरब इत्यादि प्रदान कर उसका सम्मान बढ़ाया। करमसी का पौत्र खेतल हुआ जिसको महाराणा जगतसिंह प्रथम ने मेघटिया ग्राम प्रदान किया। यहां उनके वंशज अब भी रहते हैं। खेतल का पुत्र गिरधर हुआ जिसे महाराणा राजसिंह ने मदार ग्राम प्रदान किया। गिरधर आशिया के पौत्र पत्ता ने सादड़ी के झाला राजराणा चन्द्रसेन की प्रशस्ति में गुण राजश्री झाला चंद्रसेणजी नामक काव्य की रचना की।[७] यों मानसिंह गिरधर आशिया का प्रपौत्र एवं पत्रा का सुपुत्र था।

ग्रंथ सामग्री सार

ग्रंथ के शुभारंभ में 'श्री एकलिंगजी, श्री रामजी, श्री गणेशजी' प्रतिलिपिकर्त्ता ने अपनी ओर से लिखा है[८] क्योंकि दूसरी प्रति में केवल 'श्री गणेशजी प्रसादात्' ही लिखा हुआ है।[९] इसके बाद लिखा कि रावत महासिंहजी काम आये तब मानसिंहजी आसिया का कहा हुआ (काव्य) है। इसके पश्चात् कवि ने गणपति एवं सरस्वती की वंदना करते हुए मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह का यशोगान किया और कवि वर्ण्य विषय पर आया।[१०]

शाह आलम बहादुरशाह ने मांडलगढ़, बदनोर, पुर और मांडल परगने अधिकार पूर्वक छीनने के लिए अपने वीर सेनापति रणबाज खां की अधीनता में एक सेना भेजी। महाराणा संग्रामसिंह को जब यह समाचार मिला तो उसने सभी उमरावों को बुलाकर उनसे विचार विमर्श किया कि ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ? इस पर महासिंह बोला कि हम चित्तौड़ राज्य की थोड़ी सी भी जमीन नहीं देंगे और रणबाजखां से युद्ध करेंगे। तब ३६ राजवंश कुल की सेना तैयार की गई और उस विशाल सेना का नेतृत्व महासिंह ने किया जिसमें मेवाड़ के वीर योद्धाओं ने भाग लिया उनकी नामावली इस काव्य में दर्शायी गयी है। हाथियों से सजी मेवाड़ी सेना ने उदयपुर से प्रस्थान किया। मेवाड़ की लाज रखने एवं धर्म की रक्षा करने वाले महासिंह को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कवि ने राजकुलों और क्षत्रिय जाति की शाखाओं-प्रशाओं की वीरता एवं विशिष्टता का बखान इस प्रकार किया है— सीसोदिया

शत्रुओं को जड़ से उखाड़ने वाले हैं। स्तंभ बन कर आकाश को स्थिर रखने वाले हैं। राठौड़ बड़े निडर और वीर क्षत्रिय हैं। कछवाह वीर बड़े क्षत्रिय के रूप में प्रतिष्ठित है। चालुक्य अपनी तलवार की धार से हाथियों को नष्ट करने वाले हैं । चौहान शत्रुओं के समूह के संहारक हैं। यादव आदि काल से ही अपनी पहचान नृप के रूप में दे रहे हैं। परमार पृथ्वी के प्रमाण माने जाते हैं अर्थात् 'पृथ्वी तणा पंवार पृथ्वी पंवारां तणी।' तंवर तलवार के जौहर दिखाने वाले हैं। सूरमा और सोढ़ा सिंह के समान पराक्रमी हैं। खीची चौहान सर्वत्र प्रतापी हैं। हाडा चौहान बलशाली, मचरीक देवड़ा बांके वीर और सोनगरा चौहान शत्रुओं का संहार करने वाले हैं। शत्रुओं के सिर पर तपने वाले भाटी अभंग है। निरवाण, टाक, उमट प्रतापी हैं। महेचा राठौड़ मस्त होकर शत्रुओं का संहार करने वाले हैं। धांधल राठौड़ संसार में प्रकाशमान है। गौहिल, गौड़, वाघेला और चंदेल विजय प्राप्त करने वाले हैं। भमरेचा, डाभी व केलवा दुश्मनों की फौज रूपी कुमारी के लिए दुल्हा स्वरूप है । इसी भांति अहाड़ा, उहड़, जेठुवा, कलवा, सरबहीया, हाला, काबा, पीपाड़ा, मगरोपा, कूचौरा, मांगलिया, डोडिया, सांखला, पड़िहार, चावड़ा, बालीसा, हुल, सिंघल, असायच, धूहड (राठौड़) आदि विविध शाखाओं के क्षत्रिय वीर सुलतान की सेना पर विजय प्राप्त करने के लिए एकत्र हुए। मेवाड़ की विशाल सेना रणबाजखां से लड़ाई करने के लिए आगे बढ़ी।

उधर रणबाजखां की सेना में सरदारखां, दलेलखां, फिरोजखां आदि योद्धा थे। उसकी सेना में चगताई, मुंगोल, रोहेला, रूमी, पठान, खुरासानी, बलोच, उजबेग, सैय्यद, गौरी, लोदी, कायमखानी, मेवाती, खंधरी, लाहोरी आदि शाखाओं के यवन बड़े उत्साह के साथ लड़ने को उद्यत थे।

महासिंह को जब यवन सेना के समीप आने की सूचना मिली तो उसके क्रोध का कोई पारावार न रहा। ऐसा लगा मानो किसी पर्वतीय वन में आग लग गई हो या ग्रीष्म का सूर्य तपने लगा हो। मेवाड़ के सैनिकों के पास कई तोप गाड़िया, बंदूकें, बाण और हाथी व घोड़ों के झुण्ड थे। रसद एवं युद्ध सामग्री ऊंटों पर लदी हुई थी। आगे बढ़ती मेवाड़ की सेना ऐसी लग रही थी जैसे समुद्र अपनी सीमा लांघ कर पृथ्वी पर फैल गया हो। देदीप्यमान महासिंह अपने शूरवीरों के साथ शीघ्र ही आगे बड़ा और १२ कोस पर उसने अपना पड़ाव डाला। इसके बाद और आगे बढ़ा और हुरड़ा नामक स्थान पर अपना शिविर लगाया।

बांधनवाड़ा के युद्ध स्थल पर सिन्धु राग में वाद्य-यंत्र बजने लगे । दोनों सेनाओं ने युद्ध - स्थल में प्रवेश किया। मेवाड़ी सेना में २० हजार योद्धा थे और बादशाह की सेना तो विशाल थी। अतः मेवाड़ की सेना ने रात्रि में युद्ध करने का निश्चय किया। महासिह के आदेशानुसार सभी रावतों ने कवच धारण किये। घोड़ों, हाथियों पर पाखरे डाल कर उन्हें सजाया गया। कवि ने यहां परंपरागत शैली में घोड़ों व हाथियों का सुन्दर वर्णन किया है।

युद्ध से पूर्व सभी योद्धा मिल कर एक साथ भोजन करते हैं, पान के बीड़े आरोगते हैं तथा तलवार, कवच, कटार आदि छत्तीस प्रकार के शस्त्र धारण कर युद्ध के लिये तैयार होते हैं। पहले महासिंह और उसका अनुज सूरतसिंह (काव्य में सूरतसिंह को महासिंह का पुत्र लिख दिया जो उपयुक्त

नहीं है ।) आदि घोड़ों पर बैठकर आगे बढ़ते हैं । उधर रणबाजखां बांधनवाड़ा के बांके दुर्ग में मोर्चा लगाकर युद्ध के लिए तत्पर होता है ।

महासिंह युद्ध भूमि में उदीयमान सूर्य के समान प्रगट हुआ और यवनों पर टूट पड़ा । बादशाह के सैनिक कट-कट कर धराशायी होने लगे । रक्त की नदियां बहने लगीं । बाणों की वर्षा होने से शत्रु सेना भागने लगी । रणबाजखां और दलेलखां को मार कर पराक्रमी महासिंह ने अपार शौर्य का परिचय दिया । आखिर शत्रुओं की बड़ी सेना को तहस-नहस कर मेवाड़ वीरों के सिरमौर एवं महापराक्रमी महासिंह सप्तमी शनिवार, वि.सं. १७६८ के दिन वीरगति को प्राप्त हुआ ।[११]

राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से महत्त्व

महावजसप्रकास काव्य राजनैतिक इतिहास जानने की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण ग्रंथ है । एक ओर अपने काव्य के नायक महासिंह के युद्ध कौशल्य का वर्णन आंखों से देखा सा लगता है वहीं दूसरी ओर इसमें भाग लेने वाले मेवाड़ के वीर राजपूतों एवं विभिन्न जातियों की जानकारी भी मिलती है, जैसे चौहान, राठौड़, डोडिया, सोलंकी, शक्तावत, चूण्डावत, झाला, भाटी, कायस्थ, ओसवाल आदि ।[१२] निःसंदेह मेवाड़-मुगल संघर्ष के अंतिम युद्ध[१३] 'बांधनवाड़ा-युद्ध' का ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्व है ।औरंगजेब ने महाराणा जयसिंह से जजिया के बदले में पुर, मांडल और बदनोर के परगने प्राप्त किये थे । इसके बाद एक लाख रुपया देना स्वीकार कर परगने पुनः ले लिये किन्तु रुपया अदा न करने पर ये परगने जब्त कर लिये गये । औरंगजेब की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह द्वि. ने १७०८ ई. में इन परगनों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर तत्संबंधी फरमान मंगवाने का प्रयास किया । तभी वजीर मुनीमखां खानखाना का देहान्त हो गया और उसके स्थान पर वकील मुत्तलक असदखां का पुत्र जुल्फिकारखां वजीर बना । उसने शहजादा अजीमुश्शान के मना करने पर भी पुर, मांडल के परगने मेवाती रणबाजखां को दिला दिये । तब अजीमुश्शान ने मेवाड़ के वकील को संकेत दिया कि इन परगनों पर रणबाजखां का अधिकार किसी भी स्थिति में न होने दें । इस की सूचना वकील ने महाराणा संग्रामसिंह को भी दे दी । शहजादा मुइज्जुदीन और वजीर जुल्फिकारखां के द्वारा प्रोत्साहित करने से रणबाजखां शाही सेना के साथ इन परगनों पर अधिकार करने के लिए आया ।[१४] महावजस प्रकाश से ज्ञात होता है कि महाराणा संग्रामसिंह को जब रणबाजखां के आने की सूचना मिली तो उसने अपने उमरावों से विचार विमर्श कर अंततः शाही सेना का मुकाबला करने के लिए बाठरड़ा के रावत महासिंह के नेतृत्व में मेवाड़ की विशाल सेना ने प्रस्थान किया जिसमें निम्नांकित प्रमुख सरदार सम्मिलित थे[१५]—रावत देवभांण चौहान (कोठारिया रावत उदयभांण का पुत्र), सूरतसिंह राठौड़ (निम्बाहेड़ा ठाकुर अमरसिंह मेड़तिया का पुत्र), संग्रामसिंह (देवगढ़ रावत द्वारकादास चूण्डावत का पुत्र) देवीसिंह (बेगू रावत हरिसिंह चूण्डावत का पुत्र) सूरतसिंह (बाठरड़ा रावत महासिंह का अनुज), डोडिया नरनाह (नवलसिंह का वंशज नाहरसिंह कुंवारिया), रावत गंगदास (बानसी रावत केशरसिंह का पुत्र), सूरजमल सोलंकी (रूपनगर ठाकुर बीका का उत्तराधिकारी), सज्जा झाला (देलवाड़ा के राज राणा जैतसिंह का पुत्र), सामन्तसिंह चूण्डावत (सलुम्बर रावत केसरीसिंह का अनुज),

महासबलावत भाटी (जैसलमेर रावल मनोहरदास का पौत्र मोई), रावत पृथ्वीसिंह दुलावत (आमेट रावत दुलेलसिह का उत्तराधिकारी), जैसिंह राठौड़ (बदनोर ठाकुर जसवंतसिंह का प्रपौत्र), सायबसिंह (बदनोर ठाकुर श्यामदास का तीसरा पुत्र जिसे बड़ी रूपाहेली मिली), भारतसिंह (शाहपुरा दौलतसिंह का पुत्र), रावत बीकम, रावत मोहनसिह मानावत, मधुकर शक्तावत, जसकरण, कान्हा कायस्थ (छीतर का पुत्र), सांवलदास मेहता और संग्रामसिंह राणावत आदि।

महाराणा की फौज हुरड़ा में ठहरी हुई थी तब रणबाजखां अजमेर से आगे बढ़कर खारी नदी के तट तक पहुंच गया।[१६] इधर मेवाड़ी सैनिक भी पीछे नहीं रहे और खारी नदी को पार कर उसकी सेना को पीछे धकेलते हुए बांधनवाड़ा तक पहुंचे। बांधनवाड़ा में दोनों ही सेनाओं के मध्य भीषण संग्राम हुआ जिसमें अंततः विजयश्री राजपूतों के हाथ लगी तथा रणबाजखां मारा गया। उसका भाई नाहरखां तथा अन्य भाई बेटे भी मारे गये। दिलेरखां घायल हो गया और वह शेष सैनिकों के साथ अजमेर आ गया। मुगल सेना का सामान मेवाड़ की सेना ने लूट लिया। रावत महासिंह और ठाकुर दौलतसिंह खेत रहे तथा राठौड़ जयसिंह, सामन्तसिह, कुंवर नाहरसिंह (महासिंह का पुत्र), रावत सूरतसिंह आदि घायल हो गये।[१७]

बांधनवाड़ा-युद्ध की तिथि के बारे में न तो फारसी ग्रंथों में कोई उल्लेख आया है और न ही स्थानीय स्त्रोतों से कोई जानकारी उपलब्ध होती है। यों देखा जाए तो महावजसप्रकाश में भी कवि ने युद्ध की कोई स्पष्ट तिथि नहीं बताई अपितु महासिंह के मारे जाने का दिन अवश्य बताया जिसमें वार (शनिवार), तिथि (सप्तमी) एवं संवत् (१७६८) तो दिया है किन्तु मास का नाम नहीं दिया है। डा. गौरीशंकर हीराचंद ओझा के महावजसप्रकाश काव्य देखने में आया जिससे काफी ऐतिहासिक गुत्थियाँ जो कविराजा श्यामलदास के वीर विनोद ग्रंथ में रह गई थी उनके ग्रंथ उदयपुर राज्य के इतिहास में सुस्पष्ट हो गई हैं किन्तु ओझा ने महावजसप्रकाश के संवत् को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया और अंग्रेजी तारीख चैत्रादि संवत् १७६८ के आधार पर निकाली जिससे शनिवार, अप्रैल १४, १७११ ई. ठीक ही तारीख आई। महावजसप्रकाश की तिथि, संवत् आदि की पुष्टि के लिए ओझा ने लिखा । इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा के भेजे हुए परवानों में सबसे पहला मेड़तिया राठौड़ों के नाम वि.सं. १७६८, ज्येष्ठ सुदी २ का मिला है। इस परवाने की अंग्रेजी तारीख सोमवार, मई २, १७१२ ई. है किन्तु डा. ओझा ने चैत्रादि संवत् से मंगलवार, मई ८, १७११ ई. बताई है।[१८] आश्चर्य है कि मेवाड़ के महाराणा का परवाना और उसके श्रावणादि संवत् से स्वीकार न कर चैत्रादि संवत् के आधार पर बताना उपयुक्त नहीं जान पड़ता है। यदि इन तिथियों को श्रावणादि संवत् के आधार पर स्वीकार किया जाये तो कोई एक वर्ष का अन्तर आ जाता है। अतः महावजसप्रकाश की तिथि को सुनिश्चित करने के लिए कानोड़-संग्रह (स्व. श्रीमती सरयूदेवी ओझा संग्रह में सुरक्षित) के तीन दस्तावेजों पर विचार करना होगा— **प्रथम परवाना :** महाराणा संग्रामसिंह का रावत महासिंह के नाम दि. माह बदी ३, बुधे संवत् १७६७ (बुधवार, दिसम्बर २७, १७१० ई.)...... ? अप्र साथ सामान ले बाबा संग्रामसींघ मेहता सांवलदास भेला व्हेजो नें थारे डीलें कुचें न व्हे तो कुंवर सारंगदेव हे मोकल जो संवत......" । **द्वितीय परवाना :** महाराणा संग्रामसिंह का रावत सारंगदेव को दि. आसाढ़ बदी १४,

सोमे, संवत् १७६७ ।(सोमवार, जून ४, १७११ ई.) यह रावत महासिह के काम आने पर लिखा गया परवाना है ।[२०] **तृतीय दस्तावेज** : दि. द्वितीय भादवा बदी १४ सुक्रे संवत् १७६८ (शुक्रवार, अगस्त ३१, १७११ ई.) का कानोड़-जागीर का पट्टा है ।[२१]

ये तीनों पत्र एक क्रम से हैं । इनके बीच में कोई अन्य पत्र आया ही नहीं था । युद्ध में सम्मिलित होने का निमंत्रण, युद्ध में काम आने पर परवाना एवं युद्ध में वीरोचित प्रदर्शन के साथ काम आने के उपलक्ष्य में नूतन जागीर का पट्टा ।

निमंत्रण एवं युद्ध में काम आने पर भेजे गये परवाने की तिथि के बीच अर्थात् माह महीने के बाद एवं आषाढ़ माह के पूर्व सुदी ७, शनिवार केवल १७६७ वि.सं. के वैशाख माह में ही मिलता हैं । अतः यह निर्विवादपूर्वक कहा जा सकता है कि बांदनवाड़ा का युद्ध वैशाख सुदी ७, वि.सं. १७६७ (शनिवार, अप्रेल १४, १७११ ई.) को ही हुआ था । महावजसप्रकाश में उल्लेखित वि.सं. १७६८ उपयुक्त नहीं जान पड़ता है । ऐसा प्रतीत होता है कि गोरादान ने वि.सं. १७६८ में लिपिबद्ध करते समय 'सड़सटे' को 'अड़सटे' सुनने की भूल कर दी हो और यह वि.सं. की गलती रह गई तो कोई आश्चर्य नहीं । साथ ही यह भी संभव है कि प्रतिलिपिकर्ता ने गोरादान द्वारा अंकों में लिपिबद्ध करने का संवत्(१७६८) लिखा देख अक्षरों में लिखे 'सड़सटे' में फेर बदल कर दिया हो जिसे अद्यतन स्वीकार किया जाता रहा है ।

यह भी विवादास्पद है कि रणबाजखां किसके हाथों मारा गया ? बदनोर, बम्बोरा, शाहपुरा, कानोड़ और देवगढ़ वालों ने अपने-अपने पूर्वजों को इसका श्रेय दिया है ।[२२] ऐसी स्थिति में श्यामलदास भी वीर विनोद में किसी निर्णायक स्थिति पर नहीं पहुंच सका कि अंततः रणबाजखां को किसने मारा ।[२३] इस काव्य से यह गुत्थी सुस्पष्ट हो जाती है कि रणबाजखां रावत महासिंह के हाथ से मारा गया था । इसकी पुष्टि परिशिष्ट सं. १ के परवाने से तथा अगस्त ३, १७११ ई. को महाराणा द्वारा प्रदत्त कानोड़-जागीर के नूतन पट्टे से स्पष्ट हो जाती है.

काव्य का प्रमुख नायक महासिंह है अतः सभी प्रकार की सफलताएं, अच्छाइयां एवं बड़ाइयां उसी के इर्द-गिर्द नजर आती हैं और युद्ध का नेतृत्व भी उसी ने किया था किन्तु दिसम्बर २७, १७१० ई. के परवाने से ज्ञात होता है कि महासिंह को बाबा संग्रामसिंह एवं मेहता सांवलदास के साथ ससैन्य सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया और यह भी लिखा है कि यदि वह (महासिंह) आने की स्थिति में न हो तो अपने कुंवर सारंगदेव को भेज दें । यह तो निश्चित है कि इस समय तक नेतृत्व महासिंह को नहीं मिला था परन्तु युद्ध-स्थल में उसने जिस वीरता का परिचय दिया, उससे हम अपनी आंखें नहीं मूंद सकते जिसकी पुष्टि बाद के परवाने एवं पट्टे से हो जाती है ।

प्रमुख उमरावों की नामावली, महासिंह के युद्ध कौशल का सजीव वर्णन आदि को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि ने युद्ध स्थल पर उपस्थित होकर आंखों देखा वर्णन किया हो ।[२४] इसमें कोई संदेह नहीं कि काव्य में अतिशयोक्ति की भरमार होती है फिर भी कवि वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर सकता, एतदर्थ तत्कालीन राजनैतिक परिवेश में अपने नायक की उपलब्धियां बताता हैं । राजनैतिक इतिहास में कई स्थलों पर आई रिक्तता, गुत्थियां आदि को सुलझाने में ये काव्य

विशेष उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं।अतः इनके ऐतिहासिक महत्व को कदापि नकारा नहीं जा सकता।

परिशिष्ट सं. १

श्री रामोजयति

श्री गणेश प्रसादातु　　　　　　　　　　श्री एकलिंग प्रसादातु

भाला

सही

स्वस्ति

स्वस्ति श्री ऊदैपुर सुथांने महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामसिंहजी आदेशातु रावत सारंगदेवकस्य सुप्रसाद लिष्यते यथा अठारा समाचार भला हे आंपणा समाचार कहाबजो—

१. अप्र रावत महासीघ दरवार रे काम आया सो यो साम धरमो थांरो ईणी धरती सर सो है ईंणी वात रो नतीजो आछो हुकम व्हेगौ थे कांई चींता करो मती ने बेगो हजुर आव जो प्रवांनगी पचोली बीहारीदास प्रोहित सुषराम लेवा मोकल्या हे संवत् १७६७ वर्षे असाढ़ वदी १४ सोमे

हाशिये में बांई ओर लिखि पंक्तियां—

रावत म्हासिंघजी कांम आया सो चींता घणी हुइी पण ईसा ठाकुर धरती रे काम आवे जदीज दरबार रो आछो दीसे ने धरती री मरजाद बंधीयो सांम धरमो ईसो कीधो हे सो म्हारो व्हे ने नही भुले घंणे कांइी लीषां अब रावतजी कणी वात री चिंता राषो मती।

सन्दर्भ सूची

1. गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्यिक निबंध, पृ.३-४
2. राजनाथ शर्मा, साहित्यिक निबंध, पृ.२४८
3. जे.के. ओझा, १८वीं शताब्दी का अप्रकाशित साहित्य 'जगविलास' एवं समाज (अप्रकाशित शोध-निबंध, मरुभूमि शोध संस्थान श्री डूंगरगढ़ सेमिनार में प्रस्तुत दि.७.८.९४ ई.) पृ.३
4. जे.के. ओझा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.११४
5. वही
6. कानोड़-संग्रह (श्रीमती सरयूदेवी ओझा संग्रह में सुरक्षित) सरस्वती भंडार की पुस्तकों के बहीड़ा में दर्ज—महावजसप्रकाश छींट का पाठा की।
7. मज्झमिका (सं.डा. हुकमसिंह भाटी, १९८९ ई.) पृ.ii-iii
8. राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर, महावजसप्रकाश, ग्र.सं. २६२०, पृ.१
9. वही ग्र.सं. २६२१, पृ.१

10. ग्र.सं.२६२०,२६२१ पृ.१

भाषा जस भुवपती मेदपाट महाव मानावत ॥१ ॥

सुर रायां सु प्रसंनं ॥वयण अनोप दुजो ॥२ ॥

अथ दुहा ॥ मेदपाट मोटा मरद ॥ तूझ भुजां तुडताण ॥सुरयंद कहै संग्रामसी ॥

दाषै सह दुनियाण ॥१ ॥ मानावत मेवाड़ घर ॥पाषर वणे प्रचंड ॥केलपुरो मचते कलै ॥

षग भांजवा छषंड ॥२ ॥

11. द्रष्टव्य महाव जसप्रकाश
12. वही, पृ.५-७ (जैरोक्स प्रति स्व.श्रीमती मांगीबाई ओझा संग्रह, मांडल)
13. जे.के. ओझा, मेवाड़ का इतिहास, पृ.६
14. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, जि. २ पृ. ६१०-११, द्रष्टव्य मरु-भारती, पृ. ४६-४७, जे.के. ओझा 'श्री याद ख्यात की' में रावत महासिंह और नवाब रणबाजखां का युद्ध नर्णन
15. महावजसप्रकाश पृ. २-३
16. वही पृ.११, श्रीयाद ख्यात की_ पृ.४७
17. वही
18. ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जि. २, पृ.६१४, पाद टिप्पणी सं.१
19. कानोड़ संग्रह, फाईल नं.१, पृ.४१
20. वही पृ.४२, परिशिष्ट सं.१
21. वही, पृ.४३-४७
22. वीर विनोद, भा.२ पृ.९४०-९४२ ॥माहब तो रण में मरे, गंग मरे घर आय ॥

बदनोर वाले अपनी तवारीख में लिखते हैं—

दोहा— बांधनवाड़ा बीच में जबर करी जैसींग ॥बडंग मार रणबाजखां धजवड़ राखी धींग ॥१ ॥

रण मारयौ रणबाजखां यूं आखे संसार ॥ तिण माथे जैसींगदे ते बाही तरवार ॥२ ॥

कानोड़ की तवारीख में लिखा है—

सोरठा—

अमलां भांगां आज, कर मन्हवारां जग कहै ॥बाह खाग रणबाज सूं कहवो माहब अधिक ॥१ ॥ तें बाही इकतार, मुगलां रे सिर माहबा ॥धज वढ़ हंदी धार, सात कोस लग सीस वद ॥२ । ।

जे पग लागे जाण, रण सामां रणबाजरा ॥ उद्दक पृथी अडाण, करदेसूं माहब कहै ॥३ ॥

ओझा, उदयपुर, जि.२, पृ.६१३-१४

23. वीर विनोद भा.२, पृ.९४२
24. महावजसप्रकाश ग्र.स. २६२०-२६२१

सज्जन यश वर्णन

डा.द्वारका लाल माथुर

उदयपुर स्थित राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में सुरक्षित सज्जनयशवर्णन की पाण्डुलिपि, ऐतिहासिक काव्यों की शृंखला में अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है। इस काव्य के रचनाकार थे, कविराजा श्यामलदास।

कविराजा के पूर्वज देवल गोत्र के चारण थे और उनका मूल निवास स्थान जोधपुर राज्य के मेड़ता परगने में दधिवाड़ा नामक गांव था। महाराणा कुम्भा के काल में वे दधिवाड़ा गांव छोड़कर चित्तौड़गढ़ आ गये जहां महाराणा कुम्भा ने उन्हें पूर्ण सम्मान प्रदान करके ताणा परगने में चोरासी गांवों की जागीर प्रदान की। समय के साथ-साथ यह परिवार विकसित होता रहा और १७९० ई.में मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा भीमसिंह ने कविराजा के प्रपितामह कनहीराम को ढोकलिया और जयसिंहपुरा नामक दो गांव प्रदान किये।

कविराजा के पिता कमजी या काइमसिंह का जन्म १८१० ई.में हुआ था। उनका विवाह किशनगढ़ राज्य के बारठ परिवार की एजन बाई से हुआ। कमजी के चार पुत्र, ओनाड़ सिंह, श्यामलदास, ब्रजलाल और गोपालसिंह तथा दो पुत्रियाँ शृंगार बाई और छतबाई हुए। कमजी को महाराणा स्वरूपसिंह का राज्याश्रय प्राप्त था जिनकी उन्होंने निष्ठापूर्वक सेवा की।

कविराजा श्यामलदास का जन्म ५ जुलाई १८३६ ई. को हुआ था। उनका प्रारम्भ से ही माता पिता की देख रेख में लालन पालन हुआ। उनकी शिक्षा की क्या व्यवस्था थी, इस सन्दर्भ में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलते हैं परन्तु चारणों में घरेलू शिक्षा सदैव से एक वरदान था। अतः उसका कविराजा को अवश्य लाभ मिला होगा। दूसरा श्यामलदास जी को अठाणा के रावत दुलहसिह और देलवाड़ा के राजराणा फतहसिंह का लम्बे समय तक सान्निध्य प्राप्त होता रहा। मेवाड़ के ये दोनों जागीरदार बड़े प्रबुद्ध और साहित्य प्रेमी थे जिनकी जागीरों में पंडितों, कवियों और अन्य पढ़े लिखे

विद्वानों को आश्रय प्राप्त था। उनके सम्पर्क में आने से कविराजा को विद्या के प्रति प्रेम का विकास हुआ होगा। कविराजा अपनी रचना वीर विनोद में लिखते हैं कि वि.१९२७ =१८७० ई. में मैं अपने पिता के साथ महाराणा स्वरूप सिंह की सेवा में आया था। इसके दो तीन वर्ष पहले से मैंने सारस्वत और अमर कोष पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। इसके पीछे दूसरे भी कोष और काव्य तथा साहित्य के ग्रन्थ पढ़ता रहा। फिर मुझको ज्योतिष का शौक हुआ और थोड़ा सा गणित का अभ्यास करके फलित ग्रन्थों में लग गया। मुहूर्त चिन्तामणि, मुहूर्त मार्तण्ड, मुहूर्त गणपति, जातका भरण,मुहूर्त मुक्तावलि, चमत्कारचिन्तामणि, हिल्लाज जातक, पइकोष, जातक लघु पाराशरी, वृहत्पाराशरी, षट्पंचाशिका, प्रश्न भैरव,हायनरत्न वगैरह कई ग्रन्थ देखने के पश्चात् फलितपर से मेरी श्रद्धा उठ गई। फिर मेरा चित्त थोड़े दिनों के लिए मन्त्र शास्त्र, सिद्ध नागार्जुन इन्द्रजालादिक की तरफ रजू हुआ, लेकिन उन को भी व्यर्थ जानकार शीघ्र ही चित्त हट गया। फिर मैंने थोड़े दिनों के लिए वैद्यक पर चित्त लगाया। अलबत्ता इस विद्या में मुझको कुछ लाभ मालुम हुआ। उसके बाद मुख्य विद्या काव्य, कोष और साहित्य की तरफ मन लग गया और बीच बीच में महाभारत, रामायण, भागवत, देवी भागवत आदि पुराण ग्रन्थ भी देखे।फिर मेरा शौक ज्यादातर इतिहास की तरफ झुका। कविराजा के इस विशाल ज्ञान ने उनके व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया। श्यामलदास जी प्रसिद्ध है अपने वीर विनोद नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना से। इसके साथ ही साथ कविराजा ने एक अन्य ऐतिहासिक काव्य सज्जनयशवर्णन की भी रचना की।

काव्य का प्रारम्भ श्री बाणनाथाय नम: । श्री गणेशाय नम: से होता है। इसके पश्चात् कुंडलिका छन्द में वर्णन है । श्रीसज्जन महिपाल के पाटोत्सव दिन शुद्ध 'द्वितीया रितु हेमन्त समय राज्याभिषेक शुभ'

इसके पश्चात तीसरे पृष्ठ पर उल्लेख है कि महाराजाधिराज महाराज राजेश्वर महाराणा श्री १०८ श्री सज्जन सिंह जी का दोहा, छंद, छप्पे सवैया कवित्त कुण्डलिका गीत आदि काव्य लिखते

अथ दधिवाड़िया शावलदास विहित काव्य प्रारम्भ

इसके पश्चात महाराणा सज्जन सिंह के राज्याभिषेकोत्सव दिवस का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं, श्री सज्जन सिंह नृपाल महिपाल का विशाल पाटोत्सव दिवस आया। काव्य में उल्लेख है कि प्रात: नित्यकार्य से निवृत्त होकर नमस्कार स्तुति प्रचारिकादि के महाराज पुष्प शृंगार आस्वर्ण मुक्त बाणलिंग का दर्शन कर दिवान विसर्जन पत्रोपचार से देवाधिदेव को विसर्जन कियो। करपात्री आदो में आशीर्वाद दिया। महाराणा को पोशाक धारण करने का आदेश दिया।

इसके पश्चात् श्री महाराणा निज भवन से रवाना होकर गजानन द्वार के पीताम्बर राम में पधारते हैं। नम्रतापूर्वक दर्शन करके भेंट कर अन्त:करण से प्रेमानन्द को बढ़ाते हैं। पुरोहित शिवराज ने मांगलिक तिलक लगाया। वेद मन्त्रों सहित कलश नृपाल को पुरोहित ने झिलाया।पिछा महिपाल कृपाल ने कुंभ का अधिकार पुरोहित को भलाया। पुरोहित का पटका महिमहेन्द्र ने ग्रहण किया 'श्री

गणेशद्वार पर आकर श्री गणेश का पूजन किया । वहां पूजन करके नीका की, चोपड़ आये वहां कुम्भ स्थापन कर पूजन किया । वहां से महाराणा पांडे की ओवरी पधारे । श्री कैलाशपुरी के गुसाई आनन्दानन्द ने आशीर्वाद दिया । फिर तोपों की सलामी सात हुई । सुभट्ट समूह ने नजराणा किया । बाणनाथ के दर्शन कर महाराणा चन्द्र महल में पधारे । वहां गुसांई श्री गोपिकालकार के दर्शन किये । उनसे भी प्रसाद ऊपरणा सत्कार पूर्वक लिया । फिर ईशान द्वार को अन्तःपुर को समीप लिया । वहां महता लालचंद, देवीचंद, प्यारचन्द आदि ने प्रणाम किया । फिर अन्तःपुर में प्रवेश किया । माता को प्रणाम ऋर आशीर्वाद लिया । यहां से चित्रशाला को पधारे । पोशाक बदल कर भोजनादि से निवृत्त हुए ।'

तीसरे पहर घोड़ों का जूजन हुआ । इसके पश्चात् राम आंगन पशुओं के तमाशों व परेड़ हुई । राम आंगन में ही महाराणा को उनके जागीरदारों तथा सलूम्बर रावत जोधसिंह, पंवार सवाई गोविन्ददा, अज्जावत रावत वीरमदेव,महाराजा हमीरसिंह, शक्तावत रावत रतन मान और कुरावड़ रावत रतनसिंह ने नजराणा किया ।यहीं यह काव्य समाप्त हो जाता है ।

सहायक निदेशक
राजस्थान राज्य अभिलेखागार,
जयपुर

किसनावतवंशप्रकाश की ऐतिहासिकता

—श्रीमती कमला अग्रवाल

अद्वितीय पितृभक्त, वीरवर चूंडाजी का व्यक्तित्व स्वामीभक्त, कर्त्तव्यनिष्ठ और अलबेले त्याग की गाथाओं से जन-जन में महिमा मंडित रहा है। इन्होंने अपने पिताश्री महाराणा लक्षसिंह (लाखा) वि.सं. १४३९-वि.सं. १४७६-७८ के बीच) की आज्ञा से न केवल राज्य सिंहासन के अपने अधिकार को सदा-सदा के लिए छोड़कर अद्वितीय पितृभक्ति का परिचय दिया, बल्कि मेवाड़ की कठिन से कठिन स्थितियों में राज्य का शासन प्रवन्ध अपने हाथों में लेकर एक सच्चे देश-सेवी की तरह अनोखी स्वामी भक्ति का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया, जिसका जोड़ विश्व इतिहास में ढूंढे नहीं मिलता।

महाराणा लाखा विवाह कर यश के भागी नहीं बने, यश के भागी तो हुए चूंडाजी, त्याग के पथ पर चलते हुए अपनी अंतिम सांस तक अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए, किसी ने कहा भी है—

चंवरी चढ़ लाखो फिरे, फिरे बीनणी लार।
पण चूंडां री कीरत फिरे, सात समदरां पार॥

ओझाजी ने ख्यातों के आधार पर महाराणा लाखा के पुत्रों के नाम दिये हैं— चूंडा, राघवदेव, अज्जा, दूल्हा, डूंगर, गजसिंह, लूणां, मोकल और बाघसिंह।

चूंड़ा के वंशज चूंडावत कहलाये। मेवाड़ में चूंडावतों के मुख्य ठिकाने रहे— सलूम्बर, देवगढ़, बेगूं, आमेट, मेजा, भैंसरोड़गढ़, कुराबड़, आसींद, चावंड, मदेसर, बेमाती, लूणदा, थाणा, बम्बोरा, भगवानपुरा, लसाणी और संग्रामगढ़ आदि। 'रावत' इनकी उपाधि रही।

कीर्तिपुरुष चूंडा की सातवी पीढ़ी में किसनदास हुए, जिनके वंशज मेवाड़ के इतिहास में किसनावत-चूंडावत कहलाये। चूंडावतों में किसानवतों का स्थान बड़ा ही उच्च रहा है। किसनावतों-चूंडावतों ने अपने पूर्वज प्रेरणास्पद चूंडाजी के पथ पर चलते हुए स्वामीभक्ति और कर्त्तव्य परायणता के वो आदर्श उपस्थित किये कि जो सुनते ही बनते हैं। किसनदास के अनुज गोविन्ददास के बेटे मेघसिंह के वंशज 'मेघावत-चूंडावत' कहलाये। बेगूं इनका उल्लेखनीय ठिकाना रहा। इन्होंने मराठों के आक्रमणो के समय मेवाड़ की रक्षा की। चूंडा के पुत्र कांधल और कांधल के सिंघ तथा सिंघ के सांगा हुए। सांगा के वंशज 'सांगावत- चूंडावत' कहलाये। मेरों के उपद्रवों का दमन करने में मेवाड़ के इतिहास में इनकी महत्ती भूमिका रही। देवगढ़ सांगावत चूंडावतों का मुख्य ठिकाना रहा, अन्य में भगवानपुरा और संग्रामगढ़।

सिघ कांधलोत के पुत्र जग्गा के वंशज 'जग्गावत-चूंडावत' कहलाये। इन्होंने किसनावतों के साथ रहकर शासन प्रबन्ध व युद्ध अभियानों में भाग लेकर स्वामीभक्ति प्रदर्शित की। इनके ठिकाने आमेट, मेजा, बेमाली, लसाणी आदि।

रावत-चूंडा से रावत जोधसिंह (द्वितीय)[१] तक का पद्यवद्ध वर्णन मिलता है।[२] जिसके रचनाकार महियारिया शाखा के कोई चारण कवि थे, जिनका निवास स्थान चित्तौड़ के पास पांचली गांव था। इनका रचनाकाल संवत् १९०० के आसपास अनुमानित है।[३]

यह रचना १३१ छंदों में समाप्त हुई है— दोहा, सोरठा, छप्पय, छंद-निसाणी आदि। दोहा, सोरठा तो राजस्थानी चारणों के अपने छंद ठहरे। संपादक कविराज मोहनसिंह आदि ने इस रचना को 'रावत चूंडा एवं उसके वंशज' नाम दिया तो डा. हुकमसिंह भाटी ने अपने चूंडावत वंश प्रकाश ग्रन्थरत्न में किसनावत वंशप्रकाश (सलूम्बर का चूंडावतों का इतिवृत्त) शीर्षक से सम्पादित करते हुए लिखा है— संबंधित सलूम्बर ठिकाने में संगृहीत सामग्री के आधार पर इसकी रचना हुई, दूसरे छोटे-मोटे ठिकानों का प्रादुर्भाव कब हुआ ? ठिकानेदारों की संतति, कला व साहित्य के प्रति उनका अनुराग, महाराणा से संबंध, युद्ध अभियानों में उनकी भूमिका आदि, अनेक पक्षों का उद्घाटन इस काव्य कृति में हुआ है।[४]

ऐतिहासिक दृष्टि से किसनावत वंश प्रकाश का महत्व कम नहीं कहा जा सकता यथा—

लाखा ने पहले सात विवाह किये, जिनसे आठ पुत्र हुए। चूंड़ा सबसे बड़े थे। चूंड़ा से छोटे राघव और डूलसिंह— ये तीनों खींचियों के भानजे तो अजमाल और डूंगरसिंह चौहानों के भानजे थे[३]। राघवदेव से छोटे रघू (राघो) भीमसिंह और नेहा। इन आठों में बड़े विरुदधारी चूंडा[४] जिनके साथ संबंध करने को जब मंडोवर के राजा रणमल ने नारियल भेजा तो राणा ने कहा— 'ऊगतो जगत वादे अरक' (ऊगते हुए सूरज की सभी वंदना करते है, अस्त होते हुए सूर्य की वंदना कोई नहीं करता) तो—

अरज चूंड करवाय, लगन नारेल झलाजे।
म्हारे माल प्रमाण अवस, बनड़ाज गवाजे॥

यह प्रसंग वि.संवत् १४५०का है [६] और वरस बावना बचाले मोकल लियो जनम....... तथा प्रथम साल चौपने, राणा सुरलोक सधायो, तो ज्येष्ठ पुत्र चूंडा ने लाखा के राज्य सिंहासन पर मोकल को बिठाकर राजकीय प्रबन्ध का भार हृदय से वहन कर लिया—

लाखा स्वर्ग सिधारता, मोकल बांधी पाग ।
चित्रकूट रक्षा करण, चूंडा बांधी खाग ॥

पर जब चूंडा को अपने मार्ग से हटाने के रणमल के षड़यंत्र सफल नहीं हो सके तो माता ने चूंडा को देश छोड़ जाने का हुक्म दे दिया, चूंडा ने भाई राघो को प्रबंध सौंप उधर मांडू की शरण लेते हुए मंदसोर का पट्टा बादशाह से लिया । अपने अधिकारों को छोड़कर चूंडा को दूसरों की अधीनता में रहना पड़ा पर उन्होंने इसी में अपना सुख और गौरव समझा । मांडू में रहते उन्होंने कभी ऐसा काम नहीं किया, जिससे मेवाड़ को हानि पहुंचे, जब कभी मेवाड़ के विरूद्ध तलवार उठाने का अवसर भी आया तो यह कहकर मना कर दिया कि महाराणा और मेवाड़ के साथ युद्ध कर अपना धर्म भ्रष्ट नहीं करना चाहता ।

इधर रणमल ने धोखे से राघो को मरवा डाला । इतना ही नहीं, उस रणमल ने राघो के छोटे भाई राघोदास को भी केलवाड़ा में मरवा दिया ।

तीसरे भाई अजमल (अज्जा) के पुत्र सारंगदेव [५] ने कानोड़ का दुर्ग बनवाया । चौथा भाई डूला (दुलहा) [६] कुंभलगढ़ प्रांत में रहता था जिसकी संताने सोमल और ईसवाल में भी है । रघु से छोटे भाई भीम का वंश कपासन के पास खेड़ और आंजणियां गांव में है । छठे भाई डूंगरसिंह [७] का वंश डूंगला के पास पिराणा में । सातवें रूपा [८] की संतति घाटा के पास गामड़ा में रहते हैं । आठवां नेहा निःसंतान नष्ट हुआ और नवां मोकल ।

रणमल के पुत्र जोधा और रूपवंती बडारण लाला का प्रकरण तथा चूंडा का बुलावे पर चित्तौड़ लौटकर रणमल को मारना ।

चूंडा द्वारा मंडोवर पर मोकल का अधिकार करते हुए उसे सात वर्ष तक भाई भज्जा की देखरेख में मेवाड़ के अधीन रखना ।

चूंडा द्वारा नागरचाल प्रान्त पर तलवार के बल अधिकार कर संवत् १४६२ में बेंगू (चित्तौड़ के पास) में राजधानी कायम कर १५ वर्ष तक राज्य करना ।

चूंडा के नौ पुत्रों के वंशजों के स्थानवार उल्लेख । [९]

चूंडा के उत्तराधिकारी कांधल का वंश विस्तार अधिक हुआ और अत्यधिक ख्याति प्राप्त करने का परम सौभाग्य भी इसी वंश को मिला ।

सम्वत् १४७७ में चूंडा के देहावसान के बाद कुंतल का अनुज कांधल बड़ा यशस्वी हुआ, जिसने बेंगू पर १५ वर्ष तक राज्य किया । तत्पश्चात् रतनसिंह, दूदा, सांईदास, खेंगारदास [१०] और किसनदास । रचनाकार ने कांधल के चार, रतनसिंह के दस और खेंगारदास के बीस पुत्रों का स्थानगत उल्लेख किया है । खेंगार का सबसे बड़ा कुंवर किसनदास कश्यप पुत्र सूर्य के समान तेजस्वी था । यह सम्वत् १६२९ में गद्दी पर बैठा । महाराणा प्रताप ने इन्हें सलूम्बर आदि की जागीरें प्रदान

की । उपद्रवी भीलों को अधीन करने में इन्होंने सफलता पाई और हल्दीघाटी के युद्ध में अटूट साहस का परिचय देते हुए वीर गति पाई । इनके दस कुंवर थे । किसनदास के उत्तराधिकारी जेतसिह खीचियों के भानजे थे । इन्होने हरावल के हक को बरकरार रखते हुए सम्वत् १६७६ में अष्टमी के दिन उंटाला में अपना बलिदान दिया ।

"जाती हरवल जिका, राव राखी बल रुका "

हरावल नेतृत्व की प्रतिष्ठा जो समाप्त हुई जा रही थी, रावत ने तलवार के बल पर उसकी रक्षा की और वह सूर्य रूपी वीर "पूगियों सूर मंडल-पतंग बिहूँ लोका बाखाणियों " ॥ ८१ ॥

फिर महाराणा अमरसिह प्रथम के समय सलूम्बर की गद्दी पर आसीन मानसिह शाही सेना पर सवेग तलवार चलाते शत्रु सेना और उसके हाथियों को गिराते हुए, स्वयं युद्ध में काम आये ।

मानसिंह के तीन शिरोमणि पुत्रों में से रावत की गद्दी पर अवतारी पुरुष रघुनाथसिंह [११] सम्वत् १६८७ में आसीन हुए । (महाराणा जगत्सिंह के समय में) सम्वत् १७११ तक रघुनाथसिंह ने राज्य किया । [१२] विधिवत महाराणा राजसिंह ने रघुनाथ के कुंवर रतनसिंह को तलवार बंधाई ।

रतनसिंह (द्वितीय) के और उसके पुत्र बखतसिंह के युद्धों में काम आने पर सोलज ठिकाने से कांधल (द्वितीय) को सम्वत् १७३९ में गोद लिया गया ।

सम्वत् १७५० में रावत केसरीसिंह (प्रथम) ने गद्दी पर बैठ ४७ वर्षों तक राज्य किया ।

सेंताली बरस राजस कियों, पछे राव मृत पाबियो ।

सम्वत् १७९७ में केसरीसिंह की गद्दी पर कुबेर सिंह दूसरे सिंह के समान दिखाई देने लगा । सम्वत् १८०५ में कुबेरसिंह के देहावसान हो जाने पर जेतसिंह (द्वितीय) राजसी ठाठ-बाठ के साथ बैठे और महाराणा जगत्सिंह (द्वितीय) ने तलवार बंधाई । जेतसिंह मराठों से लड़ते हुए काम आये, तब इनके भाई जोधसिंह (प्रथम) सम्वत् १८११ में सलूबर की गद्दी पर बैठे । इनकी मृत्यु नाहर मगरे में विष युक्त पान दिये जाने से हुई थी । इन्होनें दस वर्ष तक ही राज्य किया । इसके पश्चात् सम्वत् १८२१ में पहाड़सिंह ने उनके स्थान को सुशोभित करते, सदा की तरह दान करते रहे । ये उज्जैन की लड़ाई में सिंधिया की सेना से लड़ते हुए सम्वत् १८२५ में वीरगति को प्राप्त हुए । नि:संतान पहाड़सिंह के बाद इनके काका भीमसिंह ने सलूंबर की बागडोर संभाली । इन्होनें विपक्षियों द्वारा दबाये गये मेवाड़ी भू-भाग को बलपूर्वक छीनकर महाराणा को सौंपा । इनके तेंतीस वर्ष बराबर राज्य करने के बाद तीन वर्ष तक भवानीसिंह गद्दी पर रहे । सम्वत् १८६० में भवानीसिंह के बाद रतनसिंह उदीयमान सूर्य की तरह सिंहासन पर बैठे जिनके मात्र सवा वर्ष ही राज्य संचालन करने पर उनके स्थान को पर्थासिंह ने देदीप्यमान किया । महाराणा भीमसिंह ने सम्वत् १८६४ में इन्हे स्वर्ण सुसज्जित तलवार,, बहुमूल्य स्वर्णाभूषण, जड़ाऊ पोंचे, कर्णभूषण, मोतियों का हार, हमेशा बैठने की पालकी, सोहनकलश नामक घोड़ा, अलिबक्ष नामक हाथी आदि रावत को दिये । अमात्य आदि व्यक्तियों को दुशाले सिंहमुखी कड़े दिये । चालीस वर्ष राज्य करने पर इनके पश्चात् सम्वत् १९०५ में केसरीसिंह

(द्वितीय) राजगद्दी पर बैठे । इनका महाराणा स्वरूपसिंह के साथ मेल नहीं रहा अत: महाराणा ने तलवार बंधाने की रस्म अदा नहीं की पर केसरी १५ वर्ष तक बलपूर्वक ठिकाने का उपभोग करता रहा । इनके कुंवर नहीं होने से बम्बोरा से जोधसिंह चूंडावत को गोद लिया गया । (सम्वत् १९१९) रचनाकार ने निसाणी छंदो में केसरीसिंह का गुणगान किया है । बड़े भाग्यशाली केसरी सिंह के हाथ भोज एवं दधीचि के समान उदारता लिए हुए हैं । ये सत्यवादिता में युधिष्ठिर के समान, बुद्धि में गणपति के समान और भीष्म सा जितेन्द्रिय होकर हिन्दू धर्म का पालन करने वाले एवं गुरु-गोरख से ज्ञानी तथा बाप्पा रावल के समान कीर्तिशाली हैं । इसी क्रम में राजस्थानी चारणी शैली में कवि ने छप्पन छंदों में रावत जोधसिह (द्वितीय) को मेवाड़ धरा री ढाल, कर्ण के समान दानी, सामन्तों का मुकुट, दीनों पर सहज दयालु, कृपाणों के शरीर में दाह उत्पन्न करने वाला, प्रसन्नचित्त होकर संख्यातीत गांव, घोड़े वेशभूषा, हाथी आदि दान में देने वाला, चारों वर्णो का पालन करने वाला, दुश्मनों को मूल से उखाड़ फेंकने वाला, कवियों का गुणग्राहक, निर्बलों का आसरा कहते हुए उनके प्रताप को बढ़ाने की कामना परम प्रभु से की है । मारवाड़, मेवाड़ और जयपुर के सभी राजा, महाराजाओं, उमरावों व प्रजाजनों में उन्होने विशेष ख्याति प्राप्त की । सभी को जोधसिंह पर बड़ा गर्व है ।

"कुल अधको कसनाण, जको आलम सह जागे ।"

पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी
(छात्राएं) उदयपुर

सन्दर्भ सूची –

1. सलूम्बर के चूंडावतों की परम्परा में जोधसिंह दो हुए— प्रथम संवत् १८११ में गद्दी पर बैठा था, जेतभ्रात जोदसी, अनुज बेठो घर ओढम (१००), दूसरा वीरवर जोधसिंह मेवाड़ के लिए कपाटतुल्य रहा, जिसको तोड़े बिना कोई दुश्मन मेवाड़ में प्रवेश नहीं कर सकता— मांझी भडां कुंवाड़
2. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग २, संपादन कविराव मोहनसिंह और सांवलदान आशिया, साहित्य संस्थान उदयपुर पृ.७६-१३२.
3. वही पृ.७६ की पाद टिप्पणी (संग्राहक आशिया सांवलदान द्वारा)
4. सम्पादकीय पृ.७-८ चूंडावत वंश प्रकाश (प्रताप शोध प्रतिष्ठान उदयपुर)
5. अज्जा के पुत्र सारंगदेव से सारंगदेवोत शाखा चली ।
6. दुल्हा के वंशज दूलावत कहलाये ।
7. डूंगरसिंह के वंशज भांडावत कहलाये ।
8. यहां 'रूपा' की जगह 'लूंणा' होना चाहिए जिसके वंशज लूंणावत कहलाये ।

9. द्रष्टव्य : विवेच्यरचना के छंद २१-३२ तक।
10. दूदा, सांईदास और खेंगारदास-तीनों भाई थे।
11. 'राव पाट रघुनाथ', आण बैठो अवतारी
12. राज कियो रुगनाथ, वरस ग्यारह बराबर।
तेण कंवर रतनेस, जको दुनियाण उजागर॥
13. उज्जैण सफरा परा दलां रोक कीदी फते
(उज्जैन पहुंच कर सफरा- क्षिप्रा नदी के किनारे सैन्य समूह को रोककर विजय प्राप्त की)

'उदय-प्रकाश' का ऐतिहासिक महत्त्व

— प्रो. मथुराप्रसाद अग्रवाल

ऐतिहासिक व सांस्कृतिक संदर्भ से युग-युगीन राजस्थान महिमा-मंडित भारतवर्ष के उन प्रदेशों में से रहा है, जिनके श्रीनाम अपनी अद्वितीय परम्पराओं के लिए विश्व-विश्रुत रहते आये हैं। वीरता, शौर्य और पराक्रम की प्रतीक राजस्थान की धरती तो पौराणिकता की दृष्टि से अपनी अलबेली पहचान रखती है। यहां के रण-बांकुरों की रक्तरंजित गौरव-गाथाएं भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों का शृंगार कर रहीं हैं, यही नहीं अपनी उदात्त मानवीय गुणावलि लिए कई आदर्श व अनुकरणीय चरित्र के धनी नरेश सम्प्रति भी प्रेरणादायी बने हुए हैं।

मौखिक, हस्तलिखित व प्रकाशित-तीनों रूपों में विद्यमान प्राचीन राजस्थानी भाषा साहित्य के प्रकाशित साहित्य की तुलना यदि किसी टापू की सतह से कर लें, तो प्रथम दोनों प्रकार के साहित्य उसकी जलमग्न विशाल काया हैं। ये दोनों संख्यातीत हैं। राजस्थानी पद्य और गद्य में उपलब्ध हस्तलिखित साहित्य तो कई ज्ञान भण्डारों, पोथीखानों आदि को शोभा-श्री के आगार बनाये हुए हैं, तो कई ग्रंथ यत्र-तत्र दीमकादि का आहार बनते अपने सर्वनाश की इंतजारी में हैं।

राजस्थानी साहित्य का अधिकतम भाग चारणों-भाटों आदि द्वारा रचित साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है, इसे ही राजस्थानी का प्रधान साहित्य कह सकते हैं। इस साहित्य का सृजन राजस्थानी कवियों ने अपनी समस्त अनुभूतियों के साथ-साथ निज के जीवन को समर्पित करते हुए किया है, इसीलिए तो अलबेला बांकापन लिए इस शैली के साहित्य में वीरता सिर पर चढ़कर बोल रही है, तभी तो प्रबंध व मुक्तक काव्य रूपों में उपलब्ध इस साहित्य की प्रशंसा देशी-विदेशी विद्वानों ने मुक्तकंठ से की है।

राजस्थानी काव्य की सुदीर्घ परम्परा में समय-समय पर यहां अनेक ऐतिहासिक

कृतियों की सर्जना हुई है । घटना विशेष या ऐतिहासिक पुरुष के श्रीनाम से कवियों ने जहां अपनी कृतियों के नामकरण के रोचक शीर्षक दिए हैं, वहीं छंद वैविध्य के आधार पर भी उन्होंनें अपनी छोटी-मोटी रचनाओं को अनेक नामों से अभिहित किया है, यथा— रासो, रास, विलास, प्रकास[१] रूपक, वचनिका, वेलि, झमाल, झूलणां, सिलोका, दवावैत, नीसांणी, मरस्या, छंद, दूहा, कवित्त, चउपई, चौपाई, परची, प्रबन्ध आदि ।

वर्तमान राजस्थान के सुदूर दक्षिण में आदिवासी बाहुल्य जिले बांसवाड़ा-डूंगरपुर, जो पुराने समय में 'वागड़' के नाम से विख्यात रहे, अरावली पर्वतमाला की छितरायी पहाड़ियों से युक्त, त्रिभुजाकार डूंगरपुर जिले का आधार उत्तर में सोम नदी तथा पूर्व की भुजा माही नद, दक्षिण व पश्चिम में गुजरात है । पर प्राचीन वागड़ में आज के उदयपुर जिले का कुछ भाग अर्थात् 'छप्पन'[२] अंचल, प्रतापगढ़ व उत्तरी गुजरात के सूंथरामपुर आदि महिकांठा तक के भाग का समावेश होता था, जो समय के हेरफेर में वर्तमान वागड़ से अलग हो गया ।[३]

मेदपाट-मेवाड़ के शासक रणसिंह (कर्णसिंह) से रावल शाखा में सामंतसिंह (वि.सं. १२२८-३६)[४] पहले मेवाड़ के, फिर वागड़ के राजा हुए, उनके क्रम में महारावल उदयसिंह (दूसरे) का शासन-काल वि.सं. १९०३ वि.सं. १९५४ है ।[५]

महारावल गिरधरदास (वि.सं. १७१३-वि.सं. १७१७) के एक पुत्र हरिसिंह को साबली की जागीर मिली । साबली के सरदार गुहिलोत वंशी (अहाड़ा) और 'ठाकुर' उनकी उपाधि थी । हरिसिंह के पांचवे वंशधर जसवन्तसिंह हुए जिनके चारपुत्र हुए— अभैसिंह, भैरूंसिंह, उदयसिंह और लछमनसिंह ।[६] उदयसिंह का जन्म वि.सं. १८९५ द्वितीय ज्येष्ठ वदि १० (ई. सन् १८३९ ता. ६ जुलाई) शनिवार को भरणी नक्षत्र में हुआ ।[७] महारावल जसवंतसिंह को अंग्रेज सरकार द्वारा वृन्दावन भेज दिया गया था, वही उनकी मृत्यु हो जाने पर अंग्रेज सरकार के निर्णायनुसार महारावल घराने के समीपी हकदारों में से किसी एक को दत्तक लेने का विचार होते ही, साबली के ठाकुर जसवन्तसिंह के पुत्रों में से किसे एक को गोद लेना निश्चित हुआ ।

किसे लिया जाय ? प्रश्न उपस्थित होने पर सरदारों आदि ने उन चारों लड़कों की बुद्धि की परीक्षार्थ मिठाई मंगवा उनमें बांट दी । तीन लड़कों ने तो अपने-अपने हाथ में मिठाई ले ली, पर तीसरे पुत्र उदयसिंह ने हाथ में मिठाई नहीं ली और तश्तरी में लाकर देने का निवेदन किया । आठ वर्षीय बालक की यह चतुराई सुन सभी चकित रह गये । इसके अनन्तर कुछ रुपये मंगवा कर उन चारों को दिये गये तो तीन ने तो रुपये को अपने पास रख लिये पर उदयसिंह ने उन रुपयों में से कुछ ब्राह्मणों को देकर, शेष से शस्त्र मंगवा देने की इच्छा प्रकट की तो उपस्थित सरदारों ने उसकी बुद्धिमानी की सराहना करते हुए उसी को डूंगरपुर राज्य का स्वामी स्थिर किया[८] और—

मन भायो सब के मतो, त्यारी भये तमाम ।
अवस लेंन उदमाल को, गये सावरी ग्रांम[९] ॥२१६ ॥

साबली हवेली वाले के घराने में आनन्द-उल्लास की लहरों का प्रवाहित हो जाना तो

फिर स्वाभाविक ही था— मंगल गान होने लगे, बाजे बज उठे, स्वागत-सत्कार के पश्चात् यथा समय उदयसिंहजी को हाथी पर आरूढ कर सबसे विदा ले, गिरपुर की ओर बढ़े—

कर सलाम कर जोर के, अरु चढ़ाय गजराज ।
मंत्री सुभट हरोल में, बाजे मंगल बाज[१०] ॥२१७ ॥

शहर प्रवेश पर 'जुत युवति प्रोहित विप्र बुध जन आयस मुख बधावने' और 'कृत तिलक कुंकुम आरती कर विमल लीन बधायने ', सुभावने सकुन हुए ।फिर —

पंडित द्विजकूं पूछके पहिनाये नरपति प्रथम, जेवर हेम जड़ाव ।
कियो तबे खग ढाल कस, सत्र उज्वल सरपाव ॥२२० ॥

और—

सिंहासन सीसोद । बाह ग्रहके बैठायो ॥
कियो राजगुर तिलक उर सुं आनन्दित छायो ॥
अभिषेक विप्र धुनि वेद किय । उग्र शब्द जय-जय जयो ॥
उदमाल भूप गिरपुर अवनि । भान रूप उदित भयो[११] ॥२२२ ॥

महारावल उदयसिंह के सिंहासनरूढ होने की तिथि अश्विन सुदि अष्टमी वि.सं. १९०३ (२८ सितम्बर ई. सन् १८४६) है,[१२] पर 'उदयप्रकास' के रचनाकार ने इस तिथि को 'पोस वदी दुतिया' संवत् गुनीसद्वी[१३] बताया ।

दक्षिण राजस्थान में 'किशनजी' नाम के दो रचनाकारों की जानकारी मिलती है, एक तो किशनजी-मेवाड़ और दूसरे किशनजी-डूंगरपुर । पहले किशनजी मेवाड़ राजस्थान के प्रसिद्ध चारण कवि दुरसाजी की वंश-परंपरा में दुलहाजी के बेटे थे । इनकी फुटकर रचनाएँ मिलती है, इनका निर्माण काल सम्वत् १८८० है ।[१४] दूसरे किशनजी-डूंगरपुर सिंढायच[१५] कुलोत्पन्न चारण थे, जो डूंगरपुर-महारावल उदयसिंह (दूसरे) के आश्रित थे । महारावल के आग्रह से[१६] इन्होंने 'उदयप्रकास' नामक ग्रंथ रचा, जिसमें महारावल उदयसिंह का जीवन चरित्र वर्णित है । साथ ही इनके पूर्वजों पर भी यत्किंचित प्रकाश डाला गया है । छंद पद्धरी में विष्णु १ से क्रमानुसार उदयसिंघ १९४ तक 'रघुकुल वंश ब्रह्मादि' वर्णन करते हुए कृतिकार कहता है—

सिंघासन तिनके उदय सिंघ । अति उग्रभाल भारथ अभंग
खटबरन निवाजन करन भोज । तद्रूपं रूप मूरत मनोज ॥
साक्षात भीम अरजुन समान । भुज दंड प्रबल तप तेज भान
आसीस कसन कवि क्रत बखान । जग कोटि रहहु कायम सुजान ॥१२ ॥

पूर्वजों के नामोल्लेखों को छंद-बद्ध प्रस्तुत करने के पश्चात् महारावल खुमांणसिंह के पुत्र म. रामसिंह से विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है, यथा—

म. रामसिंह : वि.सं. १७५९ (ई. सन् १७०२)/ वि.सं. १७८६ (ई. सन् १७३०) वर्णित छंद संख्या११

रामगढ़ घाले केते अटकी पहारन पे मेवासीन मेरे याते सर ना उठावे है ॥

फिरे गस्त चोकी सेना देस रखवार काज शत्रुन कूं देवे दंड मूल तें नसावै हैं।
वागर की रेत निस कंटक अबाद बसे ॥ऐसो राज रावल को बंकट कहावै है ॥१ ॥[१७]

तदनन्तर म. शिवसिंघ (वि.सं. १७८६ (ई. सन् १७३०)/ वि.सं. १८४२ (ई. सन् १७८५) के संदर्भ में विवरण छंद मोतीदाम, कवित, दोहा, छप्पै, त्रोटक, पद्धरी में प्रस्तुत है । म. शिवसिंह वीर, राजनीतिज्ञ और बुद्धिमान थे, उन्होंने प्रजा के हितार्थ शासन प्रबन्ध में कई सुधार किये । उनके समय में प्रजा सम्पन्न थी । वे संस्कृत के ज्ञाता, काव्य प्रेमी और आगन्तुक विद्वानों का यथेष्ट सत्कार करते थे । इन्होंने मारवाड़ के कविया करणीदान को लाख पसाव दिया ।[१८] और कितने ही चारणों व ब्राह्मणों को गांव तथा जमीन दी ।[१९] 'आवे निज देशी वो विदेशी कवि जांचवें कुं 'जैसे गुन होय तेसो भूप सनमाने हैं । 'जब देत अश्व हाथी ग्राम लाख के प्रसाव केते' याते सूम राजन की छाती फट जाती है[२०] ॥४० ॥ शिव स्तोत्र के रचयिता म. शिवसिंह को स्वपन्न आय शिवसिंध कूं, दत्त शंकर वर दीन ।लेगो पेढ़ी चतुर थी, पुनरपि जनम प्रबीन[२१] ॥४६ ॥

म. बेरीसाल प्रताप वर्णन चार छंदों में तथा म. फतेसिंह प्रताप वर्णन के पश्चात् म. जसवंत सिंघ (द्वितीय) का विवरण छंदबद्ध है । ग्रंथ 'उदय प्रकाश' इतिहास की दृष्टि से लिखा गया है अतः इसमें संधि आगम, सलूंबर के रावत भैरवसिंह के साहजादा से युद्ध का वर्णन, रामदीन आगमन, सिंधी न ते युद्ध, अर्जुनसिंघ पठानों की पलटन बदल गये ते साहेजादे को जुद्ध वर्णन गलिया कोट मध्ये घेरा को युद्ध के विस्तृत विवरण[२२] के पश्चात् कवि किसन यशवंतसिंह के गिरपुर आगमन का वर्णन करता कहता है—

इहिं भांति कर्‌यो अरि को विनाश ।
हिय भई प्रजा अतिशय हुलास ॥
उमराय त्रियन जुत धर अधोप, डूंगरपुर आयो वंशदीप ।
रघुनाथ मार रावन अरेश, प्रभु भये अवध पुरज्यूं प्रवेश ॥[२३]

महारावल जसवंतसिंह की दो राणियों में से राठौड़ राणी ईडरणी गुमानकुंवरी से सूरजकुंवरि का जन्म हुआ था, जो अविवाहित ही परलोक सिधारी[२४] ।

ऐतिहासिक काव्य 'उदयप्रकाश' चारण-भाटों की प्रथाबद्ध रीति पर रचा गया है । इस समय के ऐतिहासिक काव्यकारों में प्रशंसात्मकता भी दृष्टिगत होती है, तभी उदयप्रकाश कार ने, जिन स्थितियों में जसवंतसिंह को वृन्दावन जाना पड़ा, इन पर प्रकाश न दे कर कहा—

आगे चतुराश्रम भये, बर भूपति बन जात ।
जिधर चले युग च्यार की, नई कोन की बात[२५] *॥२०० ॥*
वृन्दावन पावन विमल, आपन पद निर्वान ।
कह्यो अधिक बैकुंठ ते, पंडित वेद पुरान[२६] *॥२०६ ॥*

और वृन्दावन में महारावल जसवंतसिंह—

'करत परस रज कुंज की, लव लग भक्ति लुभाय।
संत समागम में सुखद, सुख बिच निशि दिन जाय[२७] *॥२०८ ।.*

ब्रजभाषा मिश्रित राजस्थानी—पिंगल.में रचित 'उदय-प्रकाश' का आधे से अधिक भाग म. उदयसिंह और उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं को समर्पित है । बागड़ के पश्चिमी संभाग—डूंगरपुर के इतिहास के सम्यक् अध्ययन निमित्त यह ग्रंथ उपयोगी है ।

सिंहासनारूढ़ होने पर सर्वप्रथम महारावल उदयसिंह को योग्य शिक्षा दिलवाने की आवश्यकता अनुभव की गयी । पर उस समय तक तत्कालीन राजपूताने में आधुनिक पद्धति से शिक्षा दिलवाने का आरंभ ही नहीं हुआ था, एतदर्थ तत्समय में प्रचलित प्रथानुसार स्थानीय पंडितों द्वारा ही शिक्षा दिलवाने की व्यवस्था रही । उन्हें सुयोग्य और अनुभवी सरदारों के निरीक्षण में रखा गया, जिससे उनकी मानसिक और शारीरिक क्षमताओं का समुचित विकास संभव हो सका । मझोले कद व भरे-पूरे गठीले गौर वर्ण के शरीर वाले महारावल ने अपनी कुशाग्र बुद्धि व अद्वितीय स्मरण शक्ति से शीघ्र ही अपेक्षित शिक्षा प्राप्त कर ली और शासन प्रबन्ध का यथेष्ट ज्ञान ग्रहण कर लिया । अनुभवी सरदारों के कुशल मार्ग-दर्शन में व्यावहारिकता में वे कुशल हो गए—

सुभ भाल विशाल नेन दुहूं मुख पंकज की छब छाजत हैं।
उर थूल भुजासु अजान बने कटि सिंघ की जान विराजत हैं॥
नृप के सब लछन अंक लिये प्रतिबिम्ब अनूप प्रकाशत हैं।
उदमाल की सूरत देखत ही तहां काम की मूरत लाजत है॥[२८]

अपने अनुभव में बढ़ोतरी निमित्त इन्होंने तत्कालीन राजपूताने के अन्य राज्यों में भी भ्रमण किया[२९] । महारावल का पहला विवाह सिरोही के महाराव शिवसिंह[३०] की पुत्री (उम्मेदसिंह की बहिन) उम्मेद कुंवरी[३१] से हुआ ।—

आबू गढ़ प्रति देवरो, सीरोही शिवसिंघ ।
सुता तासु गन रूप श्रुभि, आक्रति लक्ष्मी अंग ॥२४० ॥
नृप सुत बडो गुमान[३२]*, इनते लघु उम्मेद सी ।*

कवि किसन ने इस विवाह महोत्सव का वर्णन दोहा-सोरठा, कवित, छंद पद्धरी, छप्पय के साथ-साथ नाराच, छंद मोतीदाम, छंद हनुकाल, छंद रोमकंद, छंद त्रोटक, चन्द्रायना, छंद भुजंगी में किया है ।[३३] इसके अन्तर्गत ही कवि ने 'आबू को वर्णनम्' शीर्षक से अर्बुद की शोभा का वर्णन करते हुए वहां के फल-फूलों के नाम दिये हैं —

चंपक, कंदब, अंब, जंबु वो गुलाब बृंद केतकी रू केवरे चमेली पुष्प छावै हैं ।
दाड़िम अनार दाख सेवती जसूल केते मोगरे नरंगी नींबू ग्राम कूं निसावें हैं । ।
संकुलित नाना ब्रछ कोकिल मयूर पुंज डम्मर सुंगधीते भोंर छक जावे हैं ।
अष्टोतर तीरथ की प्रगट प्रभाव लिये अरबुद की शोभा कैलाश सी दिखावे हैं[३४] *॥३२३ ॥*

'जब भूप व्याह कर गिरं नग्र आये' तब—

उत्सव संगीत युवती उचार । पुर होत धवल मंगल अपार ।
कर थार सुहागनि कनक थार । स्वीपज वेद आरती उतार ॥३३३ ॥

महाराणी देवड़ी उम्मेदकुंवरी से महाराजकुमार खुमाणसिंह का जन्म हुआ—

द्वादशाब्दि मधुमासु शुभ, रतु वसंत दन धन्य ।
कृष्णपक्ष तिथि अष्टमी, पुत्र भयो उत्पन्न ॥३३९ ॥
घर घर मंगल गावही, नगर मध्य नरनार ।
द्वार-द्वार दुंदभि बजत, बटत बधाई वार ॥३४१ ॥

दो वर्ष पश्चात् राजकुमारी गुलाबकुंवरी[३६] का शुभ जन्म हुआ । महारावल शिवसिंह के पश्चात् एक तरह से आपत्तियों का घनघोर गर्जन की वागड़ के राजघराने तथा प्रजा में रहा । महारावल उदयसिंह का समय कई दृष्टियों से वागड़ में नवीन प्रभात-सा रहा । कई लोकोपयोगी कार्य[३७] हुए । राजमहलों का जीर्णोद्धार, उदय विलास नामक नवीन और भव्य महल का निर्माण,[३८] सागवाड़ा तथा आंतरी में छोटे महल बनवाये, उदयबाव तथा गैवसागर की पाल पर नये मंदिरों की प्रतिष्ठा करवाई और स्वर्ण का तुलादान भी किया ।[३९] दुर्भिक्ष[४०] के समय में प्रजा पालन में लाखों रुपये व्यय किये । गुण-ग्राहक, सरल हृदयी महारावल उदयसिंह काव्य रसिक होने के साथ-साथ कवियों के आश्रयदाता[४१] भी रहे और कभी-कभी स्वयं भी कविता करते थे । निशाना लगाने में वे बड़े कुशल रहे । उनके समय में प्रजा सुखी और सम्पन्न थी । इन सबकी पुष्टियों में उदय प्रकास के कवि किसन द्वारा रचित— विलास व राज क्रिया वर्णन, नृप छवि वर्णन, सहर, महल, गढ़ के वर्णन, गेवसागर पुरुष स्त्री संयुक्त वर्णन, सुर (देव) स्थान, बाग-बगीचे, दशरावे, गनगोर वंसत के वर्णन, हाथी-घोड़ों के साथ शिकार के वर्णन, बन्दूक, तलवार के वर्णन[४२] द्रष्टव्य हैं और वे सटीक-सशक्त बन पड़े हैं, जो पढ़ते ही बनते हैं । कवि स्वयं कहता है—

कवी सभे वरनन करे, पूग न आवत पार ।
महारावल उदमाल के, बारेई मास त्युहार ॥४४९ ॥

राजस्थान की साहित्यिक संस्कृति में चारण का नाम सदैव गौरवमंडित रहा है और अतीत के इतिहास में तो वह अमर रहेगा । अतः राजपूत राजाओं के आश्रय में रहकर चारण ने जितना लिखा उतना जैन-यतियों के अतिरिक्त और किसी ने नहीं । राजा के जन्म की बधाई गायी तो चारण ने, राज्याभिषेक के गीत गाये तो चारण ने, विवाह के मंगल गान गाये तो चारण ने, रणभूमि में गीत सुनाकर प्रोत्साहित किया तो चारण ने, सौन्दर्य की, गुणों की, वीरता की, दानशीलता की, गरिमा गाई तो चारण ने । राजपूतों के जीवन में तो चारण प्राण बनकर समाया हुआ था । इसी घनिष्ठ संबंध के कारण राजपूत राजाओं का विवरण छंद बद्ध करना भी चारण ही का कार्य बन गया था ।[४३] उदयप्रकाश के कवि किसन ने म. उदयसिंह कालीन कतिपय प्रसंगों को न लेते हुए,[४४] उनका प्रशस्ति गान किया है ।कवि से स्वयं महारावल ने इस ग्रंथ को सुना था, अतः इस कृति का रचनाकाल वि. संवत् १९६५ जैसा कि उल्लेखित होता रहा है,[४५] संभव नहीं । महारावल उदयसिंह का स्वर्गवास, ५८ वर्ष की आयु में ५१ वर्षों तक शासन कर, वि.सं. १९५४ (अमांत) माघ (पूर्णमांत फाल्गुन) वदि छठ (ई. सन् १८९८

ता. १३ फरवरी) को सायं के समय हुआ था ।अतः इसका रचनाकाल वि.सं. १९५४ के पूर्व ही होना अनुमानित है—

सुन्यो ग्रंथ कवि कसन क्रत, उदेप्रकाश अनूप ।
करनी सुरसति की क्रपा, भयो उदे दन भूप[४६] ॥४५२ ॥

इस पर कवि को लाख पसाव और ताजीम मिली थी—

उद्दल निवाज कीनी उमंग । ताजीम गांम हाथी तुरंगा ॥
हिय हिंदुनाथ आनंद होय । दीने सुलाख पवशाक दोय ॥४७ ॥४५३ ॥

और काव्यकार के आशीष भरे स्वर फूट पड़े—

कर जोड़ कसन आसीस कह लखू मख्य कीरत लहो ।
राजाधिराज उदमाल रो राजहि ते कायम रहो[४८] ॥४५५ ॥
अब तक जब तक कलाधर जिते दिनकर ॥

१८- ए अग्रसेन नगर,
उदयपुर

सन्दर्भ सूची

उदयप्रकास संवत् १९६७ में हस्व फरमान रायाराय महाराजाधिराज महारावल जी साहब श्री श्री श्री श्री श्री १०८ श्री विजय सिंह जी बहादुर वाली रियासत डूंगरपुर (राजपूताना) छपाई गई । इलाहाबाद बाबू रामनाथ भार्गव के प्रबन्ध से स्टेण्डर्ड प्रेस में छपा (१९१०)

1. राजप्रकास, महावजसप्रकास, सूरजप्रकास, भीमप्रकास, पाबू प्रकास, केहरप्रकास, दीपंगकुलप्रकास, उदयप्रकास आदि ।
2. डूंगरपुर के तरपोद के उत्तर में सोम के उस पार का अंचल 'छप्पन' पूर्व में सलूंबर के पश्चिम में परसाद तक और उत्तर में जगत से दक्षिण में सोम तक है ।
3. वागड़ और उसका साहित्य पृ.५ : प्रो. मथुराप्रसाद अग्रवाल
4. ओझा : उदयपुर (१) पृ.२१८
5. ओझा : डूंगरपुर पृ.२२२-२४
6. वही पृ.२००-१
7. वही पृ.१६०
8. डूंगरपुर राज्य का इतिहास (उतरार्द्ध) संवत् १९७९ वि. पृ.१८-१९
9. किसन सिंढायच : उदयप्रकास (संवत् १९६७) पृ.७७
10. वही
11. वही पृ.७८

12. ओझा : डूंगरपुर पृ. १६०
13. उदयप्रकास पृ. ७८ (छंद सं. २२१)
14. डा. मोतीलाल मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ. १७६
15. 'सिंढ़ाचय' मारू चारण जाति की भादलिया शाखा की एक उपशाखा है। ऐसा प्रसिद्ध है कि नरसिंह भादलिया को नाहड़राव पड़िहार ने कई-एक सिंहों को मारने के उपलक्ष्य में 'सिंह ढाहक' की पदवी दी थी । उसी का अपभ्रंश सिंढायच है।
16. कियो तीन बेरा हुकम, उदयसिंह नृप एहा

    कविता छन्द प्रबंध क्रम, किसना ग्रंथ करेह ॥७॥ (उदयप्रकास पृ. ३)
17. उदयप्रकास पृ. १५
18. कविराजा श्यामलदास : वीर-विनोद भाग-२, पृ. ९६६
19. ओझा : डूंगरपुर पृ. १३१
20. उदयप्रकास पृ. २१ और २२
21. वही पृ. २४
22. वही पृ. २८ से ६६
23. वही पृ. ६६ (छंद पद्धरी का प्रारंभिकांश)
24. ओझा : डूंगरपुर पृ. १५६
25. उदयप्रकास पृ. ७१
26. वही पृ. ७२
27. वही पृ. ७३
28. वही पृ. ६९-७०
29. वि.सं. १९१२ मार्गशीर्ष (ई. सन् १८५५ दिसम्बर) में ये उदयपुर जाकर महाराणा स्वरूपसिंह से मिले थे, महाराणा ने इनके स्वागतार्थ अगवानी में जाकर सम्मान प्रदर्शित किया था। (ओझा : डूंगरपुर पृ. १६१)
30. महाराव उदयभान सिरोही के तीन रानियां थी पर उसके कोई पुत्र नहीं होने से उसका छोटा भाई शिवसिंह वि.सं. १९०३ में राजगद्दी पर बैठा (राजपूताना— सिरोही : गहलोत पृ. ६२)
31. ओझा : डूंगरपुर पृ. १६१
32. महाराव शिवसिंह सिरोही के सबसे बड़े पुत्र गुमानसिंह ने अपनी अस्वस्थता वश आत्मघात कर लिया था। (वि.सं. १९१८, ई. सन् १८६०)
33. उदयप्रकास पृ. ८३ से १०४
34. वही पृ. १०१
35. जन्म वि.सं. १९१२-१३ चैत्र वदि ८ सोमवार— देहांत वि.सं. १९५० आश्विन वदि ६ सोमवार।
36. वि.सं. १९३० पौष सुदि ३ रविवार को राजकुमारी गुलाबकुंवरी का विवाह जैसलमेर के महारावल वैरिशाल के साथ सम्पन्न हुआ था।
37. मनुष्यगणनाका कार्यारंभ (वि.सं. १९३७) अस्पताल का खुलना (वि.सं. १९४८) प्रारंभिक शिक्षा दिये जाने निमित्त पाठशाला की स्थापना (वि.सं. १९५०) 'म्यूनीसिपैलिटी' की स्थापना (वि.सं. १९५४)
38. वि.सं. १९३९ में प्रारंभ— वि.सं. १९४४ में समाप्ति
39. वि.सं. १९३६ (ई. सन् १८७९)

40. वि.सं. १९२५ (ई.सन्. १८६८-६९)

41. प्रसिद्ध है— 'नृप उदय. कविराज कीन केहर। कसन, जगतेस तीन ॥'

केहरसिंह महिआरिया नया गांव पुनाली के पास/किसनसिंह संढायच नौ.गामा-मांडव के पास/जगतसिंह बारहठ सौदा (सारंगिया) करावाड़ा। इन तीनों को ताजीम सोना देकर म. उदयसिंह ने कविराज की पदवी दी थी अन्य में झांकरी-आसपुर के अमरसिंह व नौगामा के करणीदान सिंढ़ायच पुत्र लालदान की जानकारी मिलती है।

42. उदयप्रकास पृ. १०४ से १४० तक

43. (१) प्रो. मथुराप्रसाद अग्रवाल : राजस्थानी चारणी साहित्य (१९५९) पृ. १०

(२) कुल कलमां काका करै, जिथ जलमै जगदंब।

चारण वरण शिरोमणी थरपै कीरत थंभ ॥

44. भीलों का उपद्रव मुलजिमों के लेन-देन का अहदनामा (वि.सं. १९२६), (वि.सं. १९२४) लड़कियों को मारने की राजपूती प्रथा पर रोक (वि.सं. १९२५) आदि।

45. डा. मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य (वि.स. २०१७) पृ. ३४०

46. उदयप्रकास पृ. १४१

47. वही पृ. १४१ (छंद पद्धरी का प्रारंभिकांश)

48. उदयप्रकास में कुल संख्या (विविध छंदों की) ४६० है। मूल प्रति में या मुद्रण (वि.सं. १९६७) में त्रुटिया संभव है। विविध छंदों में दोहा, कवित, छप्पय, पद्धरी, सोरठा, सवैया, त्रोटक आदि कविराज किसन के प्रिय छंद प्रतीत होते हैं। इन सबकी संख्या अन्य की तुलना में अधिक है।

हरि पिंगल प्रबन्ध में इतिहास

डा. भगवतीलाल शर्मा

डिंगल के विविधतापूर्ण विपुल वाङ्मय में छन्द-शास्त्रीय लक्षण-ग्रंथों की भी समृद्ध परम्परा रही है । प्रस्तुत कृति 'हरि पिंगल प्रबन्ध'[१], रचना क्रम की दृष्टि से भी और विवेचन-विश्लेषण की दृष्टि से भी, इस छन्द-शास्त्रीय लक्षण-ग्रंथ धारा की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रौढ़ रचना है ।

कवि-परिचय

यह रचना 'हरि पिंगल प्रबंध' चारणों की कुंआरियां शाखा के कवि-आचार्य जोगीदास द्वारा रचित है ।[२] ये सुकवि देवलिया प्रतापगढ़[३] के शासक महारावल हरिसिंह (शासन-समय वि.सं. १६८५-१७३०) और उनके पुत्र महारावत प्रतापसिंह के राज्याश्रित कवि थे । तत्कालीन प्रकाण्ड पंडित श्री विश्वनाथ एवं श्री जयदेव इन कविराज के काव्य गुरु थे । कवि जोगीदास को खेरोट (खर्परप्रद्रक, प्रतापगढ़ से ७ मील दक्षिण-पूर्व में) के ठाकुर रूपदेव ने, जो महारावल प्रतापसिंह के सम्मानित उमराव थे, 'लाख पसाव' प्रदान कर सम्मानित किया था— ऐसा पं. कल्याण ने महारावत प्रतापसिंह की प्रशस्ति में रचित 'प्रतापप्रशस्ति' नामक अपने चम्पू काव्य में सूचित किया है ।[४]

कृति शीर्षक

इस कृति का शीर्षक त्रिपदवाची 'हरि पिंगल प्रबंध' है । कवि का अभिप्राय यहां 'हरि' से महारावत हरिसिंह, 'पिंगल' से छन्द-शास्त्र एवं 'प्रबंध' से वंश-स्तवन में प्रयुक्त प्रबंधात्मकता से है । छन्द-शास्त्रीय ग्रंथों में आश्रयदाताओं के प्रशस्तिपरक छंद तो कवियों ने उदाहरण रूप में दिये हैं, परन्तु वंश वर्णन में प्रबन्धात्मकता लिए हुए यह संभवतः अपनी श्रेणी की विरल रचना दृष्टि पथ में आई है ।

कृति-वस्तु-विवरण

इस कृति में कुल ८२५ छंद हैं, [५] जिन्हें कवि ने तीन परिच्छेदों में विभाजित किया है—

१. प्रथम परिच्छेद में छंद-संख्या १ से २६८ तक मंगलाचरण, गुरु-वंदना, विनम्रता-प्रदर्शन, प्रभाव-ग्रहण, काव्य-प्रयोजन, ग्रंथानुक्रम, प्रस्तार-निरूपण एवं मात्रिक छंद-विवरण है।

२. द्वितीय परिच्छेद में छंद-संख्या २६९ से ४२८ तक वर्णिक छंदों का विवेचन है।

३. तृतीय परिच्छेद में छंद-संख्या ४२९ से ५२७ तक दण्डक-प्रकरण और चारण-छंद 'गीत' इत्यादि हैं । फिर छंद-संख्या ५२८ से ८२५ तक कवि द्वारा प्रबंधात्मकता में प्रस्तुत राजवंश-स्तवन है, जो ग्रंथांत में आशीर्वचन के साथ समाप्त हुआ है। [६]

इतिहास विषयक नवीन उपलब्धि

अब हम इस रचना में प्राप्त इतिहास विषयक नवीन सामग्री पर दृष्टिपात करते हैं, जो हमारा अभीष्ट है। इस विवेचन को प्रकाशित सामग्री के पिष्टपेषण से भी बचाने की सार्थक चेष्टा की गई है।

यह इतिहास-सामग्री [७] इस काव्य के तृतीय परिच्छेद में 'अथ राजवंश वर्णनम्' शीर्षकान्तर्गत छंद संख्या ५२८ से ८२५ तक प्राप्त होती है। वंश-प्रशस्ति के इन २९७ छंदों को वर्णन-क्रमानुसार उपशीर्षक देकर इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

१. गुहिल-वंश-प्रशस्ति	छं. सं. ५२८-५२९
२. महाराणा मोकल	छं. सं. ५३०-५३५
३. महाराणा कुंभा और वैमातृ-भ्राता क्षेमकर्ण के मध्य वैमनस्य, सम्बन्ध विच्छेद तथा नवीन राज्य निर्माण का सूत्रपात	छं. सं. ५३६-५५५
४. महारावल सूरजमल	छं. सं. ५५५-५६६
५. महारावल बाघसिंह	छं. सं. ५६६-६२७
६. महारावत रायसिंह	छं. सं. ६२७-६२८
७. महारावत विक्रमसिंह	छं. सं. ६२९-६३१
८. महारावत तेजसिंह	छं. सं. ६३१-६३४
९. महारावत भानुसिंह	छं. सं. ६३५-६३६
१०. महारावत सिंहा	छं. सं. ६३७-६४४
११. महारावत जसवंतसिंह	छं. सं. ६४४-६६८
१२. महारावत हरिसिंह	छं. सं. ६६९-८२५

गुहिल वंश प्रशस्ति (छं. सं. ५२८) से लेकर महारावल सिंहा (छं. सं. ६४४) तक कविराज जोगीदास कुंआरिया ने छोटी-मोटी घटनाएं संकेतित करते हुए अपनी युद्ध वर्णन पारंगतता प्रकट कर अपने प्रौढ़ कवित्व का ही परिचय दिया है । इतिहासकारों की दृष्टि में भी यह समय उपयुक्त एवं विश्वसनीय ऐतिहासिक सामग्री के अभाव का है । हां, हमारे कवि ने महारावल तेजसिंह का वर्णन प्रस्तुत करते हुए शक्तिसिंह (सादड़ी के संभवतः शक्तिसिंह के पुत्र जोधसिंह से अभिप्राय हो), कणेगर (सोनगरा चौहान क्षत्रिय) एवं रामड़ा (रामसिंह) नामों का उल्लेख अवश्य किया है,[८] जो प्रकाशित सामग्री में दृष्टिगोचर नहीं होते । इसी प्रकार महारावल सिंहा के चित्रण में उसके द्वारा किसी जळखेड़िया शाखा के राठौड़ भू-स्वामी से 'नेंणोर' (स्थान विशेष) लिए जाने का उल्लेख हुआ है ।[९]

ऐसी ही नयी सूचना महारावत जसवंतसिंह के समय की भी इस ग्रंथ में मिलती है । उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने वि.सं. १६९० में महारावत जसवंतसिंह को उदयपुर बुला कर उन पर नैश-आक्रमण कराया, जिसमें महारावत जसवंतसिंह अपने ज्येष्ठ पुत्र महासिंह एवं १००० राजपूतों सहित काम आये । महाराणा जगतसिंह की इस कपट कार्य से बड़ी फजीहत हुई ।[१०] कवि जोगीदास ने महारावत जसवंतसिंह के साथ वीरगति प्राप्त करने वाले अनेक वीरों का नामोल्लेख किया है, जो प्रकाशित ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होते । ऐसे शूरवीर हैं— पूर्णमल, श्यामसिंह सोनगरा चौहान, श्यामसिंह डोडिया, ताजसिंह, माधवसिंह, नाहरसिंह देवड़ा, जयमल एवं जगमाल । इनसे संबंधित छंद हैं—

पूरडो चढे रण लोह पूर ।
सत्र गया पछे दूसरे सूर ॥
प्रथिराज लाज पारथ पमाण ।
आफळे विलागो आसमांण ॥६५२ ॥
सामलो कणेगर मरण साज ।
ऊजळो कणेगर करे आज ॥.
सामलो डोड ऊपाड़ खग्ग ।
लोड़तो गओ राठोल [११] लग्ग ॥६५३ ॥
ताजड़ो ताम संसार तज्ज ।
पह चाड हुओ पुरजापुरज्ज ॥
माधवो लड़े फोजां मरोड़ ।
खाना दुरंग किम लगे खोड़ ॥६५४ ॥
नाहरो कहंता नाम न्याव ॥
देवड़ो पड़े खतवाट दाव ॥
जेमल्ल अने जगमाल जास ।
खकमके काम आया खवास ॥६५५ ॥

इस युद्ध में महारावल जसवंतसिंह के देहोत्सर्ग होने पर कवि ने चित्तौड़गढ़ दुर्ग का मानवीकरण करते हुए बड़ा ही मर्मस्पर्शी छंद रचकर वेदना का प्रकटीकरण किया है और साथ ही महाराणा जगतसिंह की कृतघ्नता पर कुठाराघात भी —

मो शिर सूरजमल्ल, चाड पूगो रण चाचर ।
जें दादो रावत वाघ, मूंओ मो उप्पर ॥
पहिलोका रावत, जसो जसवंत नरेसर ॥
मूंझ चाड आवंत, किओ हूंतो करणीगर ॥
जागपत्तराण खूंमाण पह, कूभाव तेंसूं किऔ ।
जसवंत मरण सुणियो नई, चीतकोट सिर धोणिऔ ॥६६८ ॥

महारावत हरिसिंह से सम्बद्ध प्रकाशित सामग्री में इतिहासकार उनकी जन्मतिथि के बारे में मौन हैं । कविराज जोगीदास कुंआरिया ने इस 'हरिपिंगलप्रबंध' में इस ओर निश्चित संकेत दिया है—

हरिसिंघ विराजत तेण पाट ।
कीरत्त जास नह लगत काट ॥
तें जनम हूंत दक्खूं वखांण ।
संवन्त सोळअस्सीह जाण ॥६६९ ॥
शक बंध शालिवाहण नरिंद ॥
पिंताळ पनर संख्या धरंद ॥
सोहंत मास श्रावण सुभाण ।
प्रकाश चंद पाखां प्रमाण ॥६७० ॥
बुधवार शुम्भ अर छठिअ रत्त ।
शुभ साध जोग सुरवख नखत्त ॥
वृष लगन तेण वेळा वहंत ।
शुभ धरम करम आणंदवंत ॥६७१ ॥

तत्पश्चात् जोगीदास ने अपने ज्योतिष ज्ञान का परिचय देते हुए छं.स. ६७२ से ६७६ तक जन्मकुंडली में विभिन्न ग्रहों की स्थिति और उनके अनुसार बनने वाले विशिष्ट योगों का उल्लेख किया है । इस ज्योतिषशास्त्रसम्मत वर्णन से महारावल हरिसिंह की जो जन्मकुंडली बनती है, वह इस प्रकार है—

श्री संवत् १६८०, शक १५४५, श्रावणमासे, शुक्लपक्षे षष्ठयां तिथौ, बुधवासरे, साध्ययोगे, विशाखानक्षत्रे, वृषलग्ने—

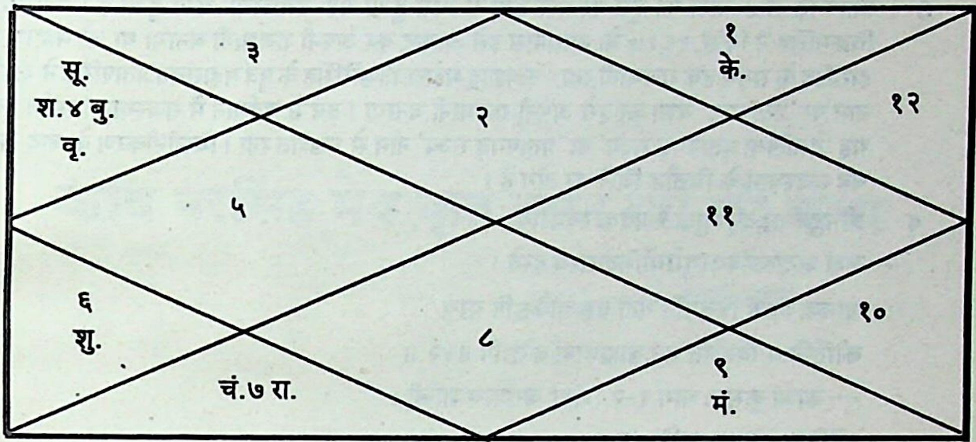

सारतः कविराज जोगीदास कुंआरिया द्वारा अपनी इस काव्य रचना में प्रदत ऐसे छोटे-मोटे इतिहास से संबंधित संकेत देवलिया-प्रतापगढ़ के इतिहास के पुनर्लेखन के समय उसकी श्रीवृद्धि में सहायक हो सकते हैं— ऐसा मेरा विनम्र मत है। अपने सुरुचि-सम्पन्न आश्रयदाता नरेश महारावत हरिसिंह के वंश-स्तवन में इस कवि ने अपनी सीमा और क्षमतानुसार इतिहासकार की भूमिका का सफल निर्वहन किया है और इस तरह प्रमाण पुष्ट इतिहास तथ्यों के विरल सुमेल ने इस काव्य कृति को कुछ सीमा तक काव्यों के इतिहास में और इतिहास के काव्यों में एक वैशिष्ट्य प्रदान किया है।

शांति निकेतन
७८, सरदार क्लब योजना,
जोधपुर

पाद टिप्पणी

1 यह विवेचन राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा, उदयपुर में उपलब्ध आदर्श प्रति पर आधारित है— ग्रं. सं. ६२, पत्र ८५, आकार २६.२ x १४.४ सेमी; स्याही काली, कागज पुराना घोसुण्डा (चित्तौड़गढ़) का बना हुआ। लिपि काल संवत् १७२५, चैत्र वदि ११, लिपि स्थान— देवगढ़ (प्रतापगढ़) जिला चित्तौड़गढ़, लिपिकर्ता-कोदरेण।

2 अब तक की शोध में इस कवि का यही ग्रंथ उपलब्ध हुआ है । इनके लिखे कुछ गीत अवश्य मिलते हैं । इस प्राप्त कृतित्व को देखकर यह विश्वास भी दृढ़ होता है कि कवि जोगीदास ने कुछ और भी लिखा होगा, क्योंकि हर दृष्टि से प्रस्तुत रचना जैसा प्रौढ़ कृतित्व कवि की प्रथम रचना नहीं हो सकती, अंतिम रचना भले ही हो ।

3 प्रतापगढ़ से ८ मील की दूरी पर पहाड़ियों से घिरा हुआ यह 'देवलिया' बसा हुआ है । महारावत विक्रमसिंह ने वि.सं. १६१७ के आसपास इसे आबाद कर अपनी राजधानी बनाया था, जो महारावत हरिसिंह के समय तक राजधानी रहा । तत्पश्चात् महारावत हरिसिंह के पुत्र महारावत प्रतापसिंह ने अपने नाम पर 'प्रतापगढ़' बसा कर इसे अपनी राजधानी बनाया । तब से वर्तमान में राजस्थान-निर्माण तक यह 'देवलिया प्रतापगढ़ राज्य' या 'प्रतापगढ़ राज्य' नाम से प्रख्यात रहा । विलीनीकरण के बाद अब यह राजस्थान के चित्तौड़ जिले का अंग है ।

4 श्रीमद्रुक्माङ्गदनृपसुतो रूपदेवः स्वकीर्त्यै,
लक्षं प्रादात्कविवरगुरोर्योगिदासस्य हस्ते ।
भ्रान्त्वा नित्यं त्रिजगति गता ब्रह्मलोकेऽपि यस्य
कीर्तिर्नित्यं वितरति धनं ब्राह्मणानां करेऽपि ॥३२ ॥
— काव्य कुसुमः भाग १-२ : संपा. जगन्नाथ शास्त्री :
परिशिष्ट : प्रतापप्रशस्ति : पृ. ९.

5. यह समग्र छंद-संख्या ८२५ मेरे द्वारा परिगणित है । कवि ने तो इस ग्रंथ के प्रत्येक खण्ड- उपखण्ड में पृथक्-पृथक् छंद-संख्या दी है और कहीं-कहीं त्रुटिपूर्ण भी है ।

6. कवि ने (क) ग्रंथारंभ एवं (ख) ग्रंथ-समाप्ति-संकेत इस प्रकार दिये हैं—

क. पुष गुरु पंचम जेठ सुद, अमरत योग विचार ।
सतरहसैं बीसे समत, हरिपिंगल विसतार ॥१२ ॥

ख. समत सतर इकवीस में, कातिक सुभ पख चंद ।
हरिपिंगल हरिअंद जस, वणियो खीर-समंद ॥८२४ ॥

7. देवलिया प्रतापगढ़ के इतिहास से संबंधित सामग्री एनल्स एंड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान (कर्नल जेम्स टॉड), वीर विनोद (कविराज श्यामलदास), इतिहास देवलिया-प्रतापगढ़ (पं. श्रीराम दीक्षित), राजपूताने का इतिहास (जगदीशसिंह गहलोत), प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास (डा. गौरीशंकर हीराचंद ओझा) आदि गिनी-चुनी इतिहास कृतियों में कही संक्षिप्त, तो कहीं विस्तार से प्रकाशित रूप में उपलब्ध होती है ।

8. तेजसी खाग धूंणे त्रिसिंध । सादली भांजियो सगतसींघ ॥
धर हंत कणेगर जेण काढ । वेरा सरीस करि आड वाढ़ ॥६३३ ॥
रामड़ा तणो घर चाढ़ रूक । भेराहर तेजे कीध सूध ॥६३४ अर्द्धांश ॥

9. जलखेड़ काढ नेंणोर लीध ॥६४० ॥

10. (क) इतिहास राज देवगढ़ प्रतापगढ़ : पं. आ. म. ठाकरे : पृ. ३२-३३.
(ख) मु. नैणसी की ख्यात : प्रथम भाग : संपा, रा. ना. दूगड : पृ. ९६

11. महाराणा जगतसिंह के आक्रमणकारी दल का प्रमुख राठौड़ रामसिंह कर्मसेनोत ।

कवि नरसिंह मेव कृत हसन खां की कथा

—डॉ. रामकिशन

राजस्थान के टौंक जिले के अन्दर टोडारायसिंह में दिगम्बर जैन मंदिर स्वामी नेमीनाथ का गुटका सं. २१३, पत्र सं. १४ से १३५, गुटका का लि. का. सं. १६२९ वि. पौष सुदी १४ शुक्रवार, पत्र सं १२४ से १३५ तक, अंत अपूर्ण।

कवि नरसिंह मेव कम्भौता गांव का रहने वाला था। यह गांव अलवर जिले में मौजपुर और बाराभड़कौल के बीच में पहाड़ के पास और गढ़ विणजारी के पास है, जो मेवों की बस्ती है।

नरसिंह मेव ने रचना के प्रारंभ में भगवान नारायण एवं खुदा की स्तुति की है। अजमेर के ख्वाजा पीर की स्तुति के पश्चात् सरस्वती और गणेश जी की स्तुति की है। यह कवि के हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृति के समन्वय का प्रतीक है। इससे यह भी व्यंजित होता है कि मेव पहले हिन्दू ही थे। तदुपरान्त कवि ने अपने निवास स्थान का वर्णन किया है—

नगर कंभौता उत्तिम थान
नरसिंह मेव कथै तह जान ॥४॥

कवि ने बाबर और इब्राहिम लोदी के युद्ध का समय सं. ८२ का उल्लेख किया है—

नौ वैकुंठह वासौ लहौ,
जैसी वीती तैसी कहौ।
धुर वैसाख वयासी अडे,
इबराहिमु अरु बावरू लडै ॥५॥

सं. ८२ से तात्पर्य सं. १५८२ वि. हो सकता है, जिसका ई. सन् १५२५ निकलता है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में इस युद्ध का समय २१ अप्रैल १५२६ ई. माना है।

छंद सं. ६ से यह प्रकट होता है कि कवि नरसिंह मेव उस समय विद्यमान था।

उदाहरणार्थ—

हूं तो कहु हुवा सनमाना
देखौ किसौ कथहिगौ ज्ञान ॥
लोक महाजन बैठे आदू,
नरसिंघ, भणइ लड़ैं क्यों सादू ॥६ ॥

छंद ७ से १२ तक कवि ने राम-रावण के युद्ध का दृष्टान्त देते हुए यह कहा है कि युद्ध में जो सबल और नीतिवान होता है वही विजयी होता है॥ गर्व किसी का नहीं रहा, मरते समय कोई किसी का साथी नहीं होता है। तदुपरान्त बाबर और इब्राहिम की राजनीतिक दशा का वर्णन निम्नप्रकार किया है—

तखत बैठि इब्रहमु रज्यो,
भैकरु बाबरु काबिल सज्यो ॥१३ ॥
देश बाग की चिंता नाहि ॥
जाखै खोलै हरमन माहि ॥
पासे खेलो राजा सार ॥
हिन्दू देश लियो सब मारि ॥१४ ॥
ताहू ठाइ के थानो फिरे,
हिन्दू आइ चोली उतरे ॥
मकनु बठौ धोखा के साजि ॥
सांगा आगै चालौ भाजि ॥१५ ॥

यह समाचार काबुल में पहुचने पर नवीन घटना घटी॥ मुगलों ने लाहौर को जीत लिया। मध्यदेश में लोदी का राज्य था जो अनुभव शून्य एवं साधनहीन था। नवीन राज्य एवं वह भी नया था। आदमियों को कोट में चिनवा दिया।आदम के साथी १६ हजार थे, उसको मारकर कृतघ्नता की। जलालखां को पकड़कर मार दिया॥ यह उसका भाई था बहुत से योग्य वीरों को मार दिया।प्रातः सैय्यद खां को मार दिया। बांह तोड़ी पीठको उघाड़ा॥ किसी की दवा दारू भी नहीं की। तब बाबर ने काबुल से चढ़ाई की।इस प्रकार इब्राहिम लोदी की बर्बरता का वर्णन कवि ने किया है। बाबर ने खुरासान काबुल से चढाई की।उसको सुनकर क्रोध में भरकर राजा ने ३ लाख घोड़े की सैना तैयार की। पूर्व में पाण्ड्य, विहार में लश्कर उतर आया।बंगला देश जो बड़ा मुकाम था, उसके सुल्तान को भी रोस आया। पश्चिम देश में गुजरात, मेवात, फौजा बड़ी ठाट से मथुरा के घाट इकट्ठी हो गई। शाह आलम ने वहां सलाम की। सुल्तान ने उसको आठ हजार का स्थान देने की पेशकश की। परगने ले देस को बचाओ। सेना दिल्ली से चढी। दिल्ली में पीर का बड़ा मुकाम था जिसकी सेवा सुल्तान भी करता था। आला दय्यत, उलूखां आदि भी खुरासान को माल देते थे।

इब्राहिम को ख्वाजा (बहनोई) ने समझाया कि बाबर तो माल लेकर चला जायेगा, दिल्ली में तो तू ही राज्य करेगा ।इसको मारकर काबुल को ले लेंगें ।रिसाल ने भी समझाया कि जश्न और लड़ाई तो खुदा ने ही रचे हैं ।इब्राहिम लोदी लड़ने को चूर होकर आया । बाबर ने फाटक को दूर कर दिया ।आपस में बाबर और इब्राहिम कहने लगे कि या तो तू रहेगा या मैं ? अल्लाह देगा वही राज्य करेगा ।दोनों में घमासान युद्ध शुरु हो गया—

तड़के गोले भडकी नालि
हाथी गये अवारी राजि ।
हिंदुसानीलवा कर मुडौ
तोपी छेतहि बावरू चढौ ॥४२ ॥
वावै दाढी झांडै हाथ
हुए उवरे बारह बाट ।
बहुतै कीनी मलिक नवाज
छांडि खसम उठि चलि भाजि ॥४२ ॥

सैय्यद ने उसको थामने को कहा किन्तु सभी सुल्तान को छोड़कर चले गये । दोपहर तक इब्राहिम लड़ा तथा युद्ध में मारा गया । बाबर की सेना ने लूटपाट मचा दी ।

पहर दोइ इब्राहिम लडौ,
आयो नाही रणमहि पडौ ।
नालि करी सब छांडौ देस
लूटण लगे रमिस्तर दरेस ॥४५ ॥

खड्ग तेग कांख में बांधकर मालिक के कार्य हेतु सैनिक लड़ते । चोट पड़ते ही लंगड़े हो जाते ।युद्ध में घोड़े आदमी धूल धूसरित हो गये । समुद्र में जितने जीव होते हैं उतने युद्ध में चमक रहे थे ।सैनिकों ने सभी जातियां माली, कोली, कीर, कहार, दर्जी, सुनार, तमोली, बकर कमाव, सभी की लूटपाट की । कुछ मर गये और कुछ घायल हो गये । मृत सैनिकों को जमुना में फैंक दिया गया । कवि ने युद्ध का भी वीभत्सता पूर्वक वर्णन किया है । बाबर ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया ।

इब्राहिम लोदी की हार का बदला लेने के लिए हसनखां मेवाती जो अलवर का शासक था । उसकी सीमा मथुरा तक थी । वह अलाव खां का पुत्र था । उसकी इज्जत मुगलों ने भी रखी थी । उसने इब्राहिम लोदी की घर का बदला लेने के लिए योजना बनाई । उदाहरणार्थ —

काढ़ौ वैर इब्राहिम तणौ ॥६६ ॥
लड़े खान लोदी के वैर ॥८५ ॥

हसनखां ने राणा सांगा को पत्र लिखकर चित्तौड़ भेजा । उसमें लिखा था— "हे सांगा ! बाबर मेरे सामने कुछ भी नहीं है । आपकी और हमारी तो जोड़ी है । हम मिलकर उस पर आक्रमण करेंगे । दिल्ली को लेकर बाबर को काबुल में भगायेंगे । प्रस्तावानुसार राणा सांगा और हसन खां मेवाती की सेनाएँ टोडा भीम नामक स्थान पर एकत्रित हुई ं । दोनों ने रणनीति तैयार की ।हसन

खां मेवाती एवं राणा सांगा देशी राजाओं के मोर्चा बनाने की घटना को सुनकर बाबर ने हसन खां को फोड़ने की एक योजना बनाई। प्रस्ताव में उसने हसनखां को उसके पुत्र नाहरखां के लिए अपनी पौत्री की शादी करने एवं बयाना परगना देने का प्रस्ताव भेजा। परन्तु हसनखां ने बाबर के प्रस्ताव को ठुकरा कर देशी राजाओं का साथ देना ही उचित समझा। यह हसन खां की राष्ट्रीय भावना का भी सूचक है।

हसन खां की सेना का पहला पड़ाव धसूक में हुआ था तथा दूसरा भीवताजी में। हसनखां की २० हजार सेना थी। हसनखां को युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय अपशकुन भी हुआ था जिसका उसको मालूम नहीं था। खां रातिबावड़ी उतरा। सैय्यद छज्जूसिंह को गढ़ की सुरक्षा के लिए तैनात किया था। खां ने मन में यह भी सोच लिया था कि दोनों में लड़ने पर एक तो हारेगा ही। सोणा में उसका पुत्र नाहर खां मिला। वहां पर दोनों बाप-बेटे गले लगकर मिले और हसनखां ने पुत्र से बाबर के बारे में समाचार पूछे। नाहर खां बोला मुझको उसने (बाबर ने) बयाना देने का प्रस्ताव किया है। नाहर खां ने अलवर को छोड़कर कूल को बसाने की हसनखां को सलाह दी। सेना कन्धार से टूटकर आई। दोनों राजा प्रसन्नता से मिले। भीवताजी (टोडाभीम) में दोनों राणा सांगा और हसनखां मिले। दोनों पत्र लिखकर मन्त्रणाएँ करते कि मुलक मिलने पर हाथोंहाथ ले लेना या तो अलवर-चित्तौड़ हार ही जायेंगे या काबुल को ले लेंगे। इस प्रकार राणी और मीणी के दोनों जोड़ो ने चढ़ाई की। इधर राणा सांगा और उधर खत्री नवलू (नवलसिंह) ने खुदा को बीच में साक्षी मानकर वायदा किया। सेनाओं ने उमड़कर खानुबा में मिलान किया। कवि ने राणा सांगा और हसनखां के मनमुटाव का भी वर्णन किया है। आपस में अपनी ही सेनाओं को लूटने लगे। इस कारण हसनखां ने बहुत सोचा परन्तु असहनीय स्थिति होने पर जालिमों को मार दिया। नवलू रिश्वत लेकर बाबर के साथ मिलकर दाग लगाया। तुर्क मुसरमा शहीद हो गये। कुलीनों में तो चौहान बड़े थे परन्तु सभी बाजी हार गये। रचना अंत में अपूर्ण होने के कारण हसनखां की मृत्यु के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। इस ऐतिहासिक काव्य में यही राजनीति व्यक्त होती है कि विदेशी शासकों से देशी राजाओं चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान, मिलकर मुकाबला करना चाहिए। बाबर के प्रलोभन को स्वीकार न करना। यह हसनखां मेवाती द्वारा बाबर को पराजित करने की भावना का द्योतक है।

वरिष्ठ शोध सहायक,
राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
शा. का. अलवर

सन्दर्भ सूची

1. अलवर राज्य का इतिहास — डॉ. एस. एल. नागौरी
2. राजस्थान का इतिहास — बी. एल. पानगडिया
3. मध्यकालीन भारतीय इतिहास — हेमसिंह बघेला
4. मध्यकालीन भारतीय इतिहासकार — दुर्गाप्रसाद शर्मा

गोरा बादल पद्मिणी चउपई : ऐतिहासिक अन्वेषण

डॉ. सोनाराम विश्नोई

आचार्य हेमरत्न कृत 'गोरा बादल पद्मिणी चउपई' (गोरा बादल चरित्र) के विषय में वैदिक साहित्य, संस्कृति, संस्कृत और इतिहास के उद्भट विद्वान् डा. फतहसिंह ने लिखा है कि "प्रस्तुत ग्रन्थ के दो भाग कहे जा सकते हैं, एक काव्य और दूसरा इतिहास ।"[१] स्पष्ट है इस ग्रन्थ का काव्य सौन्दर्य जितना समृद्ध है ; ऐतिहासिक पक्ष भी उतना ही प्रबल है । इसके महत्वपूर्ण इतिहास भाग पर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के भूतपूर्व सम्मान्य संचालक स्वदेशाभिमानी, इतिहास मर्मज्ञ, शोधवृत्ति सम्पन्न, सूक्ष्मद्रष्टा तथा समीक्षणपटु मुनि जिनविजय ने ग्रन्थ की भूमिका में पूर्ण प्रकाश डाला है, जिससे प्रातः स्मरणीय महाराणी पद्मिनी तथा उनके पतिदेव रत्नसिंह की ऐतिहासिकता प्रमाणित हुई है, साथ ही भारतीय इतिहास के एक अत्यन्त गौरवपूर्ण चरित को विदेशी इतिहासकारों तथा उनके भारतीय शिष्यों द्वारा विस्मृत अथवा उपेक्षित किये जाने के दुष्प्रयत्न से बचाकर भारतीय इतिहास को एक अपूर्व देन प्रदान की है ।

पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय के मतानुसार "चित्तौड़ की रानी पद्मिनी अथवा पद्मावती भारत के जनमानस में एक विशिष्ट वीरांगना और सती नारी के रूप में शाश्वत स्थान प्राप्त कर चुकी है । विशाल भारत की विभिन्न देश भाषाओं में इसके विषय का विपुल साहित्य निर्मित हो चुका है । कथा, कहानी, नाटक, उपन्यास, एवं काव्यों के रूप में इसकी कथा भारत के कोने कोने में बहुत व्यापक और हृदयंगम बनी हुई है । भारत के ऐतिहासिक युग की यह एक बड़ी रूपवती, बुद्धिमती और श्रेष्ठ सती नारी है ।[२]

विद्वान् जैन यति हेमरत्न कवि कृत 'गोरा बादल पद्मिणी-चउपई' पद्मिनी विषयक राजस्थानी भाषा की एक विशिष्ट काव्यकृति है, जो राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश जैसे पश्चिमी भारत के प्रदेशों में विशेष प्रसिद्ध रही । इसकी भाषा सुपरिष्कृत राजस्थानी है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य कृति का विशेष महत्व है । इस रचना के प्रमुख प्रेरक मेवाड़ के महाराणा प्रताप के अत्यन्त विश्वस्त राजभक्त और स्वदेश प्रेमी भामाशाह के भाई ताराचंद थे, जो मेवाड़ राज्य की दक्षिण-पश्चिमी सीमा के केन्द्र स्थान सादड़ी नगर में महाराणा प्रताप के शासन के एक महत्वपूर्ण अधिकारी थे । वि. स. १६४५ में कवि हेमरत्न सादड़ी नगर में चातुर्मास करने हेतु पधारे थे, उन्हीं दिनों तारचन्द ने हेमरत्न से अनुरोध किया कि वे चित्तौड़ के इतिहास की पद्मिनी विषयक गौरवमयी गाथा का अपनी काव्यमय वाणी में गान करें । इसी अनुरोध से प्रेरित होकर महारानी पद्मिनी के प्राणोत्सर्ग के लगभग २८६ वर्ष पश्चात् जैन यति हेमरत्न ने 'गोरा बादल पद्मिणी चउपई' की रचना करना प्रारम्भ किया जो वि. स. १६४५ के चातुर्मास के श्रावण सुदी पंचमी के दिन सम्पूर्ण हुई ।

अपनी काव्यकृति के मंगलाचरण में समस्त प्रकार की सुखं सम्पत्ति के दाता गणेशजी को प्रणाम करके विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के चरण कमलों में प्रणाम करते हुए अपने गुरु के चरणों में नमन करके कवि सत्य कथा कहने का संकल्प धारण करते हुए कहता है —

सुख संपति दायक सकल, सिधि बुधि सहित गणेश ।
विघन विडारण विनयसु, पहिली तुझ प्रणमेस ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव सइ मुखइ, नितु समरइ जसु नाम ।
ते देवी सरसती तणइ, पदयुगी करूं प्रणाम ॥
पदमराज वाचक प्रभृति, प्रणमी निज गुरू पाइ ।
केलवस्युं साची कथा, काणि न आवइ काइ ॥

हेमरत्न जैसे जैन यति द्वारा इस प्रकार के संकल्प का विशिष्ट महत्व है । किसी भी प्रकार की मिथ्या बात अपनी रचना में नहीं आने की कवि की यह प्रतिज्ञा इस रचना की ऐतिहासिकता का प्रबल प्रमाण है ।

इस काव्यकृति में गोरा और बादल की स्वामिभक्ति का अतिअनुपम उदाहरण है और इन स्वामिभक्त उद्भट योद्धाओं द्वारा चित्तौड़ के गौरव की अद्‌भुत रक्षा का वर्णन हुआ है । इस रचना का प्रतिपाद्य इन शूरवीरों की स्वामिभक्ति के आदर्श को प्रस्तुत करना है । वीर, श्रंगार, हास्यादि काव्य-रसों से परिपूर्ण प्रस्तुत काव्यकृति में स्वामिभक्ति का वीर रस में विशिष्ट स्थान प्रतिपादित किया गया है । इस सन्दर्भ में स्वयं कवि का यह कथन विशेष उल्लेखनीय है —

वीरारस सिणगार रस, हासा रस हित हेज ।
सामि धरम रस सांभलु, जिम हुइ तनि अति तेज ॥
सांमि धरम जिणि साचविउ, वीरा रस सविशेष ।
सुभटां महि सीमा लही, राषी खित्रवट रेष ॥

वस्तुतः गोरा और उसका भतीजा रावत ही इस काव्यकृति के नायक हैं —

गोरू रावत अति गुणी, बादिल अति बलवंत ।
बोलिसु वात बिहुं तणी, सुण्यौ सगला संत ॥

कवि ने ऐसा कहीं पर भी नहीं कहा है कि मैं रानी पद्मिनी की बात कहूंगा या राजा रत्नसिंह का यशोगान करूंगा, अपितु उसने तो स्पष्ट कहा है कि रतनसेन (रत्नसिंह) के साथ सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा षड़यन्त्र के विकट समय में गोरा और बादल ने पद्मिनी के शीलव्रत और रतनसेन के प्राणों की रक्षार्थ युद्ध करके यशोपार्जन किया तथा भूमण्डल पर सुविख्यात हुए एवं साथ ही चित्तौड़ को भी प्रसिद्ध किया — वही बात मैं अपनी इस रचना में कहूंगा —

रतनसेन राजा तणइ, छलि हूआ अति छेक ।
गोरू बादिल बे गुणी, सत्तवंत सविवेक ॥
युद्ध करी जिम जस लीउ, वसुहा हुआ विख्यात ।
चित्रकूट चावु कीउ, ते निसुणु सहु वात ॥

वस्तुतः यदि स्वाभिमान की प्रतिमूर्त्ति वयोवृद्ध क्षत्री गोरा और उसका भतीजा महाआत्मबली व परमपराक्रमी बादल नहीं होते तो भारतीय इतिहास और संस्कृति की यह गौरव गाथा ही नहीं होती, इसके स्थान पर इस धवल उज्जवल इतिहास के पृष्ठों पर कलंक लग जाता, राजा रत्नसिंह असहाय होता तथा रानी पद्मिनी परिस्थितियों के अधीन व विवश ।

सुलतान अलाउद्दीन द्वारा राजा रत्नसिंह को बंदी बनाकर पद्मिनी नारी के बदले राजा को छोड़ने की शर्त रखी गई —

ततरइ आविउ इक परधांन, आलिमसाहि तणु असमांन ।
खबरि करावी आविउ माहि, एम कहइ छह आलिमसाहि ॥
हमकूं नारि दिउ पदमिणी, जिम हम छोड़ा तुम्हनु धणी ।
नहीतरि प्राणइ लेंशा सही, जु तुम इण परि देशु नही ।
जु तुम देशु हम पदमिणी, तु छूटेसी गढनु धणी ॥

संकट की इस घड़ी में चित्तौड़ के सभी सामन्तों - सभासदों व राजा रत्नसिंह के पुत्र वीरभाण ने भरी सभा में पद्मिनी अलाउद्दीन को सौपने का निर्णय ले लिया था —

विण दीधइ सहु विणसइ वात, पदमिणी विणि का न मिलइ धात ।
प्राणइ इ ए लेशइ सही, जे ईम आविउ छइ ईहां वही ॥
प्राणइ लेतां विणसइ घणु, न रहइ वांसइ एको त्रिणु ।
नहीं तरि जाशइ एक पदमिणी, अवर विणास हुइ नहु विनी ॥

राजा रत्नसिंह के पुत्र राजकुमार वीरभाण तो इस निर्णय से अत्यन्त प्रसन्न था । संकीर्ण हृदय वीरभाण सोचता है —

वीरभाण पिण पदमिणी दिसी, देतां होइमन मांहि खुसी ।
इणि मुझ मात तणु सोहाग, लेई दीधु दुख दुहाग ॥

राजकुमार वीरभाण तो अन्य सभासदों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि पद्मिनी अलाउद्दीन को दे दी जाय, पद्मिनी को देने से ही सब कुछ सुरक्षित रह सकेगा —

तिणि कारणि देतां पदमिणी, वलि मुझ मात हुइ सामिनी ।
वीरभाण समझावी कहई, पदमिणी दीधई सगलुं रहइ ॥

इस प्रकार — "सगळे सुभटे थापी बात, पदमिणी देशां परभाति" चित्तौड़ के सभी शूरवीर सतहीण हो गये, भूमण्डल पर क्षत्रियत्व क्षीण हो गया —

सुभट सहु हूआ सतहीण, खिति पुडि खित्रवट हुई खीण ।

तब रानी पद्मिनी वृद्ध शूरवीर गोरा के घर गई, जो सदैव राजा रत्नसिंह का कोप भाजन रहा, राज्यकृपा से वंचित रहा और किसी भी प्रकार के राज्य-संरक्षण व सहयोग से सर्वथा वंचित गोरा के घर जाकर पद्मिनी ने अपने शीलव्रत की रक्षा तथा पति के प्राणों की रक्षा हेतु प्रार्थना की —

पदमिणी जपइ गोरा सुणु, इणि घरि छाजइ ए मंत्रणु ।
सिरिखइ सिरखु सगले थाइ, भीत पखे नवि चित्र लिखाइ ॥
अवर सुहड़ सतहीण हुआ, जस लीजइ तइ एक लइ ।
अल्लावदीन सु खग्ग बलि, रतनसेन छोड़ावि लइ ॥

गोरा रानी पद्मिनी को साथ लेकर अपने भ्राता के गाजन के पुत्र बादल के पास आया, तब अतुल बलधाम योद्धा बादल ने कहा —

इम सुणि बादिल बोलीउ, दूठ महा दुरदंत ।
जाणि कि गयवर गाजीउ, अतुल बली एकंत ॥
सुणि बाबा बादिल कहइ, सुभंटा सुं कुण काम ।
सुभट सहु सुए रहु, ए करस्यु हुं काम ॥

गोरा का बुद्धि कौशल, प्रभावी मंत्रणा और बादल के आत्मविश्वास से परिपूर्ण पराक्रम ने रानी पद्मिनी के शीलव्रत व उसके आत्माधार पति के प्राणों को बचाया, स्वामिभक्ति के प्रति अपने सच्चे स्नेह का पुष्ट प्रमाण देते हुए इन दो शूरवीरों ने क्षत्रीय परम्परा की रक्षा की । इस युद्ध में गोरा वीर गति को प्राप्त हुआ —

सामिधरम साचु ससनेह, राखी बादलि रणवट रेह ।
गोरु रावत रणमहि रहिउ, आलिम सेन सहूलहु बहिउ ॥

अपने पति को सुरक्षित प्राप्त करे रानी पद्मिनी ने बादल की माता तथा पत्नी को धन्य धन्य कहते हुए अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त की —

धन्य धन्य तो माता सार, तुझ तणु जिणि झेलिउ भार ।
धन्य धन्य ते नारी सार, जेहनह बादल छइ भरतार ॥

अपने तन को तिल तिल छेद कर शूरवीर गोरा ने सभी शूरवीरों की लाज रख ली और अपने कुल को उज्जवल किया । गोरा ने सुलतान अल्लाउद्दीन के अनके हाथियों तथा अपार शूरवीरों को नष्ट करके अल्लाउद्दीन को अकेला कर दिया । गोरा के पराक्रम व रणकौशल का वर्णन कवि ने बादल के कथन द्वारा इस प्रकार किया है —

बादिल बोलइ माता सुणु, किसु बखाण करुं ते तणु ।
गोरइ दाह्या गयवर घणा, पार न पायुं सुभटां तणा ॥
आलिम साहि कीउ एकलू, इणपरि गोरइ कीउ किलु ।
तिल तिल छेदी तनु आपणु, अमरपुरि पुहतु प्रांहणु ।
कुल अजू आलिउ गोरइ आज, सुभटा तणी उबारी लाज ॥

स्पष्ट है कि गोरा और उसका भतीजा बादल ही इस वीर रसात्मक ऐतिहासिक खण्ड काव्य के नायक हैं । स्वयं कवि ने अपनी काव्य कृति के अन्त में कहा है —

वात रची ए बादिल तणी, सांमिधरमि अति सोहामणी ।
वीररस सिणगार विशेष, रस बे सरस अछइ सविशेष ॥

मुनि जिनविजय के अनुसार "हेमरत्न के इस कथासूत्र में असंभवनीय घटना का किंचित् भी आभास नहीं है । सब घटना क्रमबद्ध और बहुत स्वाभाविक ढंग से वर्णित की गई है । "[३]

स्पष्ट है कि प्रातः स्मरणीय जैन यति हेमचन्द्र ने अपने इस संकल्प का यथासम्भव पालन किया है कि — 'केलवस्युं साची कथा, काणी न आवई कांइ ।" साहित्य जगत् और भारत का इतिहास इस बात के लिए भी हेमरत्न के ऋणी है कि उन्होंने गोरा और बादल जैसे स्वाभिमानी, स्वधर्म रक्षक, स्वामिभक्त शूरवीरों को अपना कथा नायक बनाया । "गोरू रावत अति गुणि, बादिल अति बलवन्त । बोलिसु बात बिहुं तणी, सुणियौ सगला संत ॥"

स्वामिभक्त शूरवीरों की इस कथा के श्रोता भी संत हैं । राजा महाराजाओं और रानी महारानियों के प्रशस्तिगान तो बहुत से चारण - भाटों ने किया है । क्या कारण है कि पन्नाधाय, वीरवर दुर्गादास राठौड़ और गोरा बादल को बहुत कम कवियों ने याद किया ? उत्तर स्पष्ट है — निस्वार्थी संत ही इस प्रकार के शूरवीरों को याद कर सकता है । जिन्होंने स्वामी धर्म जिन साच विउ-राखी क्षित्रवट रेख ।

सहज ही एक प्रश्न और उत्पन्न होता है कि हेमरत्न ने गोरा-बादल की प्रतिज्ञा सम्पूर्ण होने के साथ ही अपनी रचना की सुखद समाप्ति कर दी । इस से आगे के लोक विश्रुत कथानक को क्यों नहीं लिया ? इसका उत्तर भी स्पष्ट है — प्रथम तो उन्हें जो विश्वसनीय और प्रामाणिक लगा उतना ही कथानक लिया । द्वितीय में उनका प्रतिपाद्य तो गोरा और बादल की बात कहना था, उनकी रचना की नायिका चाहे रानी पद्मिनी को मान भी लिया जाय, परन्तु नायक तो राजा रतनसेन (रत्नसिंह) नहीं, अपितु गोरा और बादल ही है ।

इस संक्षिप्त और सारगर्भित कथासूत्र को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक नहीं मानने का कोई उचित कारण नहीं जान पड़ता । हेमरत्न ने अपनी रचना द्वारा न केवल गोरा-बादल अपितु रानी पद्मिनी, राजा रत्नसिंह (रतनसेन) और उनसे सम्बन्धित इस घटना को ऐतिहासिक विश्वसनीयता प्रदान की है ।

लोक विश्रुत इस कथानक से सम्बन्धित हिन्दी भाषा की अवधी बोली मे मुलसमान, सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का बहुत ही लोकप्रिय महाकाव्य है , जो काव्य कला की दृष्टि से बहुत समृद्ध है । किन्तु उसमें अनेक अस्वाभाविक, असंगत और असंभव प्रसंगों की भरमार है । जिससे उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता संदिग्ध हो गई । यद्यपि 'गोरा बादल पद्मिणी चउपई' और 'पद्मावत' में किसी प्रकार का साम्य नहीं होते हुए भी पद्मावत के प्रति इतिहासकारों में उठे सन्देह ने जब रानी पद्मिनी सम्बन्धी सम्पूर्ण कथानक को ही ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रमाणित कर दिया, तो गोरा बादल पद्मिणी चउपई की ऐतिहासिक प्रामाणिकता का भी संदिग्ध होना स्वाभाविक ही था ।

'पद्मावत' हिन्दी साहित्य के अनेक विद्वानों को मुग्ध करने वाला एक प्रेमाख्यानक काव्य है, अनेक विद्वानों द्वारा इस प्रेमाख्यान काव्य पर विवेचनात्मक प्रबन्ध व शोध-निबन्ध आदि लिखे गये हैं । मुनि जिनविजय के अनुसार "इसमें कोई शक नहीं है कि पद्मावत हमारी देश भाषा का एक उत्तम काव्य है और कविता प्रेमियों को उसके अध्ययन मनन में विशेष प्रेमरस की अनुभूति होती होगी ।"[४]

हेमरत्न की आलोच्य रचना एक प्रेमाख्यान नहीं अपितु एक आदर्श हिन्दू नारी के पवित्र शील और सतीधर्म की रक्षा सूचक सच्ची कहानी है, स्वदेश व स्वधर्म रक्षक गोरा और बादल के वीरत्व की आदर्श गाथा है ।

पुरातत्वाचार्य मुनि जिनविजय के शब्दों में "हेमरत्न की यह रचना हमारा एक राष्ट्रीय गीत है । जबकि जायसी के कुछ वर्णन तो ऐसे मुसलमानी पुट देकर किये गये हैं जिनको संस्कारी धर्मनिष्ठ हिन्दू तो पढ़ना, सुनना भी पसन्द नहीं करेगा ।"[५]

हेमरत्न कृत'गोरा बादिल पद्मिणी चउपई' के विषय में मुनिजिनविजय आगे लिखते हैं —"इसमें भारत की एक श्रेष्ठ सती नारी के शीलव्रत का और सच्चे स्वामिभक्त वीर राजपूत योद्धा के स्वधर्म रक्षक उदात्त जीवनव्रत का श्रद्धापूर्वक आलेखन है । इसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता का आभास नही होता है । ऐसा मालूम होता है कि हेमरत्न मानो अपनी आखों देखी घटनाओं का अनुभूत तथ्यस्वरूप वर्णन कर रहा है ।"[६]

पद्मिनी विषयक सम्पूर्ण साहित्य को ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध मानने का मूल कारण जायसी का महाकाव्य पद्मावत है । जायसी की असंबद्ध और अप्रासंगिक बातों सें ओतप्रोत पद्मिनी की कथा के लोकप्रिय होने पर सुविज्ञ पाठकों को उसकी तथ्यता पर शंका होने लगी और इतिहास के विद्वानों ने उसके बारे में ऊहापोह प्रारम्भ किया । भारत के प्राचीन व गौरवपूर्ण इतिहास को आशंका की दृष्टि से देखने वालों को जायसी से पूर्ववर्ती पद्मिनी की कथा का कोई विश्वसनीय स्रोत नहीं मिला तो उन्होंने यह मत प्रतिपादित किया कि पद्मिनी की कथा जायसी की कल्पना मात्र है इसमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है । प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता बंगाली विद्वान् डा. कालिकारंजन कानूनगो के अनुसार - रानी पद्मिनी मलिक मोहम्मद जायसी की कल्पना प्रसूत नारी है । डा. कानूनगो ने अपने मत के पक्ष में प्रमुख रूप से निम्न लिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं —

१. सुल्तान अलाउद्दीन के समकालीन किसी भी इतिहास लेखक ने रानी पद्मिनी और उससे सम्बन्धित इस घटना का अपने इतिहास ग्रन्थ में उल्लेख नहीं किया है । यहां तक कि अलाउद्दीन का दरबारी इतिहास लेखक अमीर खुसरो जो उसका समकालीन था, तथा चित्तौड़ पर आक्रमण के समय उनके साथ भी था, ने अपने ग्रन्थ 'खजाइन-उल-फुतूह' तथा 'तारीखे-अलाई' में पद्मिनी विषयक इस घटना का संकेत तक नहीं किया है । जियाउद्दीन बर्नी भी अलाउद्दीन का समकालीन और उसका दरबारी था, उसके ग्रन्थ तारीखे फिरोजसाही में भी इस घटना का उल्लेख नहीं है । इसामी भी अल्लाउद्दीन के समकालीन इतिहास लेखकों में एक है , उसके ग्रन्थ फुतूह-उल-सलातिन में भी इस घटना का उल्लेख नहीं है । अलाउद्दीन के शासन काल में लिखे गये इन इतिहास ग्रन्थों में कहीं पर भी रानी पद्मिनी और राजा रतनसेन (रत्नसिंह) का नामोल्लेख तक नहीं है ।

२. चित्तौड़ राजघराने की वंशावली में राजा रत्नसिह (रतनसेन) का नाम नहीं मिलता है ।

३. जायसी के पद्मावत से पूर्व प्रकाशित या रचित पद्मिनी विषयक कोई रचना नहीं मिलती है । सभी रचनाएं पद्मावत की उत्तरवर्ती हैं, जो पद्मावत के अनुकरण पर लिखी गईं अथवा उससे प्रभावित हैं, पद्मावत ही उनका आधार है । जब आधार स्वयं ही अप्रामाणिक हो तो वे रचनाएं प्रामाणिक नहीं हो सकतीं ।

४. उत्तरवर्ती चारण भाटों द्वारा रचित पद्मिनी विषयक कथाओं में परस्पर विसंवाद और कालक्रम का असंबद्ध उल्लेख है । भाट चारणों की बातों के आधार पर सबसे पहले कर्नल जेम्स टॉड ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'राजस्थान का इतिहास' (Annals and Antiquities of Rajasthan) नामक पुस्तक में पद्मिनी की घटना का वर्णन लिखा है, जिसमें उसने पद्मिनी के पति का नाम भीमसिंह लिखा है । मुंहता नैणसी की ख्यात में रतनसी को अजैसी का पुत्र लिखा है । चित्तौड़ के राजाओं के नामों में भीमसी या रतनसी का कोई पता नहीं है । अत: यह पद्मिनी केवल जायसी की कल्पना प्रसूत चित्तौड़ की रानी है । इसमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है ।

स्व. श्री भंवरलाल जी नाहटा, बीकानेर द्वारा सम्पादित लब्धोदय कवि कृत पद्मिनी चउपई के प्रारम्भ में राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा. दशरथ शर्मा का 'रानी पद्मिनी एक विवेचन' शीर्षक से संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित शोध निबन्ध प्रकाशित हुआ है, जिसमें डा. शर्माजी ने डा. कानूनगो के तर्कों का युक्तियुक्त खण्डन किया है ।

हेमचन्द्र की प्रस्तुत रचना 'गोरा बादिल चरित्र' की भूमिका में पुरातत्वाचार्य मुनि श्री जिनविजय का 'गोरा बादल पद्मिणी चउपई' विषयक एक पर्यालोचन शीर्षक से निबन्ध प्रकाशित है - जिसमें मुनिजी ने बड़े विस्तार के साथ पद्मिनी की ऐतिहासिक प्रामाणिकता का विवेचन करते हुए डा. कानूनगो के उपर्युक्त तर्कों को तर्क की संज्ञा से ही शून्य करते हुए इनका प्रामाणिक युक्तिसंगत खण्डन करके, रानी पद्मिनी राजा रतनसेन और उनसे सम्बन्धित घटना को ऐतिहासिक सिद्ध किया है, साथ ही जैन यति हेमचन्द्र कृत 'गोरा बादिल चरित्र' (गोरा बादल पद्मिणी चउपई) को ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना प्रतिपादित किया है ।

इसी रचना की भूमिका में परिशिष्ट शीर्षक के अन्तर्गत 'रतनसिंह की समस्या' शीर्षक से मुनि श्री जिनविजय का अत्यन्त महत्वपूर्ण विवेचनात्मक निबन्ध छपा है, जो ऐतिहासिक तथ्यों का प्रामाणिक दस्तावेज कहा जा सकता है । इस शोध निबन्ध द्वारा रत्नसेन (रत्नसिंह) से सम्बन्धित सभी भ्रान्तियों का निराकरण करते हुए मुनि जिनविजय ने बहुत विनम्र शब्दावली में डा. कानूनगो के मत को भ्रान्तिजनक सिद्ध करके रानी पद्मिनी और राजा रतनसेन, गोरा और बादल, पं. राघव चेतन आदि पद्मिनी विषयक कथा काव्यों के सभी प्रमुख पात्रों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता सिद्ध कर दी है । वस्तुत: गोरा बादिल चरित्र की भूमिका स्वरूप लिखे गये ८० पृष्ठों के मुनि श्री जिनविजय के उपर्युक्त दो निबन्ध अपने आप में अत्यधिक महत्वपूर्ण शोधग्रन्थ हैं जो इतिहास के शोधार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा प्रेरणादायी हैं । इस विस्तृत विवेचन द्वारा मुनि श्रीजिनविजय ने डा. कानूनगो के मत का अकाट्य खण्डन किया है । प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा. दशरथ शर्मा तथा पुरातत्वाचार्य मुनि श्री जिनविजय के सारगर्भित व विस्तृत शोध निबन्धों के आधार पर डा. कानूनगो के तर्कों का सरल सहज और संक्षिप्त तथा हृदयग्राही ढंग से निम्न लिखित प्रमुख बिन्दुओं के अन्तर्गत खण्डन प्रस्तुत है —

१. किसी भी इतिहासकार द्वारा अपने ग्रन्थ में सभी घटनाओं का समावेश किया ही जाय यह अनिवार्य तो नहीं है । किसी इतिहासकार विशेष द्वारा किसी घटना विशेष का उल्लेख नहीं करने से यह सिद्ध नहीं हो जाता है कि अमुक घटना ही नहीं घटी । किसी घटना का इतिहास लेखक द्वारा नहीं लिखे जाने के कई कारण हो सकते हैं - यथा उसकी जानकारी में किसी घटना विशेष का नहीं आना । जानते हुए भी अनजान बन जाना, किसी विवशता के कारण उस ज्ञात घटना का उल्लेख नहीं करना इत्यादि । फिर इस विवशता के भी अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे कि किसी इतिहास लेखक का पराधीन अथवा पराश्रित होना एवं अपने आश्रयदाता के विरुद्ध जाने वाले उल्लेख से आश्रयदाता की नाराजगी का भय आदि ।

अलाउद्दीन के समकालीन तीनों इतिहास लेखक- अमीर खुसरो, जियाउद्दीन बर्नी तथा इसामी, अलाउद्दीन के अधीनस्थ दरबारी कर्मचारी थे, वे उसी के वेतन से जीविकोपार्जन करते थे, यद्यपि अमीर खुसरो स्वयं चित्तौड़ पर आक्रमण के समय अपने बादशाह सुल्तान अलाउद्दीन के साथ था, किन्तु पद्मिनी विषयक प्रसंग का सविस्तार उल्लेख करके वह अपने आश्रय दाता का कोपभाजन नहीं बनना चाहता था ।

यहां विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि अमीर खुसरो द्वारा लिखित दो इतिहास ग्रन्थों की चर्चा डा. कानूनगों ने की है, और मुस्लिम इतिहास के इस मर्मज्ञ विद्वान ने इन ग्रन्थों को अति विश्वसनीय और प्रामाणिक तथा महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ मानते हुए इनके आधार पर अपना मत प्रतिपादित कर लिया कि पद्मिनी और उससे सम्बन्धित सभी पात्र एवं उनसे सम्बन्धित कथा काल्पनिक हैं । वस्तुत: खजाइन-उल-फुतूह और तारीखे-अलाई अमीर खुसरो के दो पृथक्-पृथक् ग्रन्थ नहीं हैं अपितु एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं । मूलत: इसका नाम खजाइन-उल-फुतूह था, नाम बोलने में कुछ दुरूह होने के कारण अन्य इतिहास ग्रन्थों के नामकरण का अनुसरण करते हुए इसी ग्रन्थ का नाम तारीखे अलाई कर दिया गया ।

तारीखे अलाई भी विशुद्ध इतिहास ग्रन्थ नहीं होकर अतिरंजना प्रधान शब्दाडम्बर से परिपूर्ण कविताबद्ध ग्रन्थ है, जबकि इतिहास तो विशुद्ध गद्य विधा है । काव्य बद्ध रचना में अतिशयोक्ति भी अलंकार बन कर रचना के काव्य सौन्दर्य का अंग बन जाती है तथा शब्दाडम्बर भी उपमा, रूपक, अनुप्रासादि अलंकारो के रूप में काव्य की शोभा में अभिवृद्धि कारक अंग हो जाते हैं । निश्चय ही ऐसा ग्रन्थ इतिहास की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण व विश्वसनीय नहीं होता जितना की किसी सर्वमान्य व जन विश्रुत परम्परा व मान्यता के पुष्ट खण्डन के लिए आवश्यक है ।

तारीखे-अलाई अथवा खजाइन-उल-फुतूह में अतिशयोक्तिपूर्वक अमीर खुसरो ने चापलूसी के भाव से अपने बादशाह का जो यशोगान किया है वह इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता व प्रमाणिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है । ऐसे अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय ग्रन्थ के आधार पर प्रतिपादित डा. कानूनगो का मत सर्वमान्य व निर्विवाद नहीं हो सकता ।

इस सब के उपरान्त यदि ध्यानपूर्वक अमीर खुसरो का ग्रन्थ 'खजाइन उल फुतूह' पढ़ें और सही सही समझें तो पद्मिनी की घटना का स्पष्ट संकेत मिल जाता है — अमीर खुसरो के अनुसार जब सुल्तान अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की तो वह स्वयं (अमीर खुसरो) उसके साथ था । सुल्तान ने जब चित्तौड़ पर विजय प्राप्त करके उसे अपने इस्लामी झण्डे के अधीन कर लिया तो वह चित्तौड़ गढ़ में पहुंच कर एक महल से दूसरे महल में बेचैनी के साथ भागता फिरा तथा 'हुदहुद' 'हुदहुद' पुकारता रहा । सभी महलों में कुछ ढूंढता हुआ 'हुदहुद' 'हुदहुद ' बकता रहा और आखिर निराश होकर दिल्ली को लौट गया ।

यहां पर विचारणीय तथ्य यह है कि जब उसने चित्तौड़ को अपने अधीन कर लिया तो फिर यह निराशा किस बात की थी ? यह प्रश्न भी सहज ही उत्पन्न होता है कि वह महलों में क्या ढूंढ़ रहा था ? सर्वाधिक विचारणीय बात तो यह है कि वह बैचेन होकर 'हुदहुद' शब्द क्यों पुकारता रहा ?

कुरान की प्रसिद्ध कथा के एक प्रसंगानुसार (अध्याय - २७, खण्ड -२) 'हुदहुद' एक पक्षी था, जो सोलेमन के पास शेबा की रानी बालकीसा का समाचार लाता था । मुनिजी जिनविजय के अनुसार सोलेमन की शेबा की इस उपमा से प्रसिद्ध पद्मिनी का ही स्पष्ट संकेत मिलता है । ७

यदि हुदहुद पक्षी की उपमा यहां पर अमीर खुसरो के लिए प्रयुक्त मान लिया जाये तो भी रानी पद्मिनी का स्पष्ट संकेत सिद्ध हो जाता है । हुदहुद सोलेमन को रानी बालकीस के समाचार सुनाता था तो अमीर खुसरो ने अपने सुल्तान अलाउद्दीन को रानी पद्मिनी के विषय में कुछ न कुछ बताता रहता था, उसे प्रेरित करने के लिए पद्मिनी का वर्णन करता रहता था । यद्यपि हेमरत्न की रचना के अनुसार यह कार्य पं. राघव चेतन ने किया था किन्तु मुस्लिम इतिहास ग्रन्थों (उत्तरकालीन) के अनुसार अमीर खुसरो भी ऐसा करता था । यदि इस बात को सही माना जाये तो सुल्तान अलाउद्दीन हुदहुद पुकार कर अमीर खुसरो को बुला रहा था जिसका प्रयोजन यह था कि वह उस हुदहुद (अमीर खुशरो से पूछना चाहता था कि पद्मिनी कहां है .? वह मुझे क्यों नहीं मिल रही है ? परन्तु अमीर खुसरों के पास इसका भला क्या जबाब था ? इसलिए तो वह अपने बेचैन बादशाह की पुकार सुनने

के बाद भी उसके पास नहीं गया क्योंकि उसे भय था कि उसका बादशाह क्रोध करके पद्मिनी के विषय में पूछेगा तो वह क्या कह सकेगा । इस सम्भावना का स्पष्ट संकेत अमीर खुसरो ने तारीखे-अलाई में इस प्रकार किया है —

"वे बार बार हुदहुद ! हुदहुद ! चिल्ला रहे थे; किन्तु मैं (अमीर खुसरो) हाजिर नहीं हुआ, क्योंकि मुझे भय था कि शायद सुल्तान गुस्से में पूछ बैठे — क्या बाता है, हुदहुद क्यों नही दिखाई पड़ा ? क्या वह भी अनुपस्थितों में है ?और यदि वह मेरी अनुपस्थिति की ठीक कैफियत मांगे तो मैं क्या बहाना बनाऊंगा ? यदि गुस्से में आकर बादशाह कह दे कि "मैं तुझे दण्ड दूंगा" तो बेचारा यह पक्षी उसको सहन करने का कैसे हौंसला कर सकेगा ।"[७]

स्पष्ट है कि सुल्तान अलाउद्दीन रानी पद्मिनी को ही बैचेनी से ढूंढ रहा था, जो उसे नहीं मिली, उसकी राख ही अलाउद्दीन के हाथ लगी जिसने उसके नापाक इरादों को खाक कर डाला, वह निराश होकर लौट गया । जिस पद्मिनी की प्राप्ति हेतु उसने अपने हजारों सैनिक मरवाये, वह उसके हाथ नहीं लगी, तब निराशा स्वाभाविक ही थी ।

२,भारतीय परम्परा और सामाजिक रीति-रिवाज के ज्ञाता जानते हैं कि यहां पर एक ही व्यक्ति के कई नामों की परम्परा रही है । बालक का अपने माता-पिता के घर एक नामकरण होता है, तो उसके ननिहाल में दूसरा नाम । ज्योतिष के विधानानुसार एक नामकरण होता है तो बोल चाल के रूप में, प्रिय - संबोधन स्वरूप अन्य कोई नाम भी संभव है । इस प्रकार एक ही व्यक्ति के अनेक नाम रहे हैं । संभव है कि इन्हीं कारणों से रतनसेन (रत्नसिंह) के भी अन्य नाम रहे हैं, वंशावली में कोई और नाम होगा परन्तु वह लोक में रतनसेन (रत्नसिंह) के नाम से विख्यात हुआ ।

कर्नल जेम्स टॉड के ग्रन्थ में आये भीमसिंह (भीमसी) नाम को मुनि श्रीजिनविजय ने अप्रामाणिक माना है । उनके अनुसार कर्नल जेम्स टॉड ने सुनी सुनाई बातों के आधार पर यह नाम लिखा है जो सही नहीं है । कर्नल टॉड के ग्रन्थ में इस विषय में आये सम्पूर्ण प्रसंग को मुनिश्री जिनविजयजी ने अप्रामाणिक आधार पर लिखा मान कर संदिग्ध माना है ।

शिलालेख भी ऐतिहासिक रूप से एक प्रबल प्रमाण होता है जो वंशावली से कम महत्त्व नहीं रखता । चित्तौड़ के दरिबा में माताजी के मन्दिर के एक स्तम्भ पर वि. स. १३५९ के शिलालेख से सिद्ध है कि चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़ में गुहिलोतवंशीय राजा रतनसिंह राज्य कर रहा था ।

चित्तौड़ में आज भी स्थित गोरा और बादल के स्मारकों से इन शूरवीर योद्धाओं की भी ऐतिहासिक रूप में प्रामाणिकता सिद्ध है ।

३. डॉ. कानूनगो कि यह मान्यता निराधार है कि जायसी के पद्मावत से पूर्व पद्मिनी विषयक रचनाएं नहीं हुई । वस्तुतः जायसी के पद्मावत से पूर्व पद्मिनी विषयक प्रबन्ध रचनाएं यथा मल्ल कवि कृत 'गोरा बादल कवित्त संग्रह' तथा अन्य कवियों के फुटकर छन्द प्राप्त हुए हैं । हेमरत्न ने भी इनका संकेत किया है । यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हेमरत्न की काव्य कृति 'गोरा बादल पद्मिणी चउपइ' व जायसी के पदमावत में कोई साम्य नहीं है । अतः इस रचना में

पद्मावत का न तो किंचित् भी अनुकरण है और न ही यह पद्मावत से प्रभावित है । मुनिजिन विजय के अनुसार तो 'गोरा बादल पद्मिणी चउपइ' के रचियिता हेमरत्न जायसी के पद्मावत से पूर्णः अनभिज्ञ थे ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हेमरत्न की रचना के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं । रानी पद्मिनी और राजा रत्नसेन (रत्नसिंह) की प्रामाणिकता सिद्ध हो गई है । इस रचना के नायक गोरा और बादल के स्मारक उनकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं । किसी भी काल्पनिक व्यक्ति पर आज तक कोई भी स्मारक कहीं पर भी नहीं बना है । गोरा और बादल के स्मारक हमारे गौरवमयी इतिहास के साक्षी और धरोहर हैं ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जैन यति हेमरत्न कृत 'गोरा बादल चरित्र' (गोरा बादल पद्मिणी चउपइ) एक उत्कृष्ट कोटि का वीररसात्मक ऐतिहासिक खण्ड काव्य है । इसके सभी पात्र व मुख्य घटनाएं ऐतिहासिक हैं । यदि डा. कालिकारंजन कानूनगो यह कहते हैं कि — चित्तौड़ की रानी पद्मिनी मलिक मोहम्मद जायसी की कल्पना प्रसूत रानी है, तो हम यह कह सकते हैं कि डा. कानूनगो का यह मत ऐतिहासिक रूप से संदिग्ध मलिक मोहम्मद जायसी कृत पद्मावत - प्रसूत है, जो निराधार व अप्रामाणिक है । यदि सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा. कानूनगो हेमरत्नकृत 'गोरा बादल पद्मिणी चउपइ' का ध्यानपूर्वक अध्ययन करते तो ऐसा मत प्रतिपादित नहीं करते ।

एसोशिएट प्रोफेसर, राजस्थानी विभाग
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सन्दर्भ ग्रन्थ —

1. गोरा बादल चरित्र प्रधान सम्पादकीय वक्तव्य, पृष्ठ १ (प्रकाशक - राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)
2. गोरा बादल पद्मिणी चउपई विषयक एक पर्यालोचन - पृष्ठ १ (गोरा बादल चरित्र की भूमिका पृ. १)
3. गोरा बादिल पद्मिणी चउपइ : एक पर्यालोचन पृष्ठ १२
4. गोरा बादिल पद्मिणी चउपइ : एक पर्यालोचन पृष्ठ १५
5. गोरा बादिल पद्मिणी चउपइ : एक पर्यालोचन पृष्ठ १(गोरा बादल चरित्र की भूमिका
6. वही
7. गोरा बादल पद्मिणी चउपइ - रतनसिंह की समस्या पृष्ठ ५५
8. प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासविद् विद्वान प्रो. हबीब द्वारा 'खज़ाइन-उल-फतूह' का अंग्रेजी भाषान्तर (जर्नल आफ दी इण्डियन हिस्ट्री १९२९ में प्रकाशित) का हिन्दी अनुवाद - मुनिश्री जिनविजय द्वारा गोरा बादल पदमिणी चउपइ की भूमिका पृ. ५४